प्रकाशक—
साहित्यरत्न—बलदेवदास अग्रवाल
बलदेव-मित्र-मंडल,
राजादरवाजा, बनारस सिटी

प्रथम संस्करण

मूल्य ३)

मुद्रक—
विजयबहादुर सिंह, बी० ए०
महाशक्ति-प्रेस
बुलानाला, बनारस सिटी

sArDArs11ahr

प्रकाशकीय वक्तव्य

हमारे देशवासी अधिकांश प्राचीनता के पुजारी और नवीनता के कट्टर विरोधी हैं। जिस प्रकार प्राचीन में उत्तमता और निकृष्टता का मिश्रण है उसी तरह नवीनता में भी दोनों का समावेश है। किन्तु प्राचीन विचारों के लोग नवीन सुधारों में अवगुण के अतिरिक्त अन्य कोई बात च ही नहीं सकते। इसी प्रकार नवीन सुधारक भी प्राचीन धर्म और आचार-विचारों में केवल दोष ही और अवगुण देखते हैं। यह उभयपक्ष के लोगों का अविचार और प्रमाद है। यह दोनों पक्ष के अतिविश्वास, पक्षपात अथवा उनकी अन्धश्रद्धा का अनिष्ट परिणाम है और इसी प्रमाद के योग से आजकल समस्त भारत में प्राचीन और अर्वाचीन विचारों के मध्य तुमुलयुद्ध चल रहा है। इस कारण— निष्पक्षपात और समदृष्टि रखनेवाले स्त्री-पुरुषों का यह धर्म है कि प्राचीन और नवीन धर्म एवं आचार-विचार के गुणावगुण पर दृष्टि रखकर तटस्थ-बुद्धि से उनके गुण-दोषों को

प्रकट करें। उनके गुणों को स्वीकार कर दोषों का बहिष्कार करें और उन बुराइयों का निवारण करके पुरातन धर्म, आचार-विचार को निर्दोष करने का प्रयत्न करें।

आज उपासना के पवित्र मन्दिरों में पाप का जाल बिछ रहा है। राम और कृष्ण के नाम पर सम्पूर्ण भारत में पाप और व्यभिचार के असंख्य अड्डे मौजूद हैं। उनमें धर्म की आड़ में अधर्म, असत्य और अन्याय प्रतिष्ठित किया जाता है, और प्रपञ्च का उद्घाटन होता है। हम जिन देवालयों में भक्ति की परम पुनीत भावना से उपासना की विधि सम्पन्न करने जाते हैं उनमें अधिकांश ऐसे हैं जहाँ से प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक बुराइयों की उत्पत्ति हो रही है। हम मन्दिरों के विरोधी नहीं, अपितु समर्थक हैं। हम मन्दिरों के अस्तित्व में हिन्दू-जाति की धार्मिकता, उसकी सभ्यता और उसके आदर्श की महिमामयी विभूति का अनुभव करते हैं। हम इसकी वर्तमान प्रणाली के ही विरोधी हैं। आज हिन्दू-तीर्थस्थानों की स्थिति भयावह है। हमारे देश में एक करोड़ से अधिक संख्या उन पण्डों पुजारियों और साधुओ की है, जिनमे अधिकांश दिन-रात चुपचाप बैठे हमारी कमाई पर मौज उड़ाते हैं और धर्म के

पवित्र नाम पर अधर्म और व्यभिचार का बीज वपन करते हैं। हम साधुओं और पुजारियों के विरोधी नहीं, यदि वे धार्मिक-पथ-प्रदर्शक हों। हम उन्हें श्रद्धा और भक्ति से अपना मस्तक झुकाते हैं।

प्राचीन रूढ़ियों में अन्धविश्वास करके हिन्दूजनता धर्म का ढोंग करनेवाले साधु-महात्मा नामधारी दुष्टों के कपट-जाल में फँसकर किस प्रकार अपना धर्म और धन सर्व-नाश करती है यही इस पुस्तक में दिखाया गया है। जो लोग धर्मगुरु साधु-महात्मा को परमपूज्य मानते हैं और उनके नामपर लाखों रुपये प्रतिवर्ष धूल में मिलाते हैं उन्हीं धर्म-गुरुओं में कितनी भयंकर भ्रष्टता और पापाचार भरे हैं यही स्फोट करना इस उपन्यास के प्रकाशित करने का उद्देश्य है। हिन्दू-समाज में व्याप्त इन दोषों को प्रकट करने के लिए उनकी अंधश्रद्धा अतिश्रद्धा, तथा प्रमाद-निवारण के लिए इस उपन्यास का निर्माण किया गया है। कुछ लोग महात्मा के चरित्र में अतिशयोक्ति की गंध पावेंगे। पर, बात यह नहीं है। ऐसे ही अनेक दुष्ट साधु और धर्म-ध्वंसक धर्मगुरु भारत के अधिकांश स्थानों में आज भी वर्तमान हैं। आज भा उनके प्रासाद-तुल्य मन्दिरों और मठों में

विलास-भोग के प्रचुर साधन सदा प्रस्तुत रहते हैं। वैराग्य में आसक्ति की अपेक्षा वे विषय-भोग में अनुरक्ति रखते हैं। हम अपनी अंधश्रद्धा और विवेक-हीनता के कारण उनके सत्य स्वरूप को नहीं देख सकते। पृथ्वी के प्रत्येक भाग में जहाँ-जहाँ धार्मिक संस्थाओं को राजसंस्था के समान अधिकार हैं और धर्मगुरुओं के हाथ में कंचन और न्यूनाधिक सत्ता आदि वैराग्य-विघातक पदार्थ हैं, वहाँ सर्वत्र ऐसे ही अनिष्ट परिणाम देखे जाते हैं। परिताप का विषय तो यह है कि जानते हुए भी हम अनजान बने रहते हैं। दुर्गुण के लीलास्थल पापगृहों को हम परमात्मा के भक्तों का निवास-कुंज समझते हैं।

इस उपन्यास का सार मैंने एकबार अपने सुयोग्य अनुवादक श्रीयुत बाबू विजयबहादुर सिंह जी, बी० ए० महोदय से सुना। सुनकर रोमांच हो गया। उस समय मैंने यही निश्चय किया था कि कम-से-कम दो-तीन मास के लिए प्रकाशन-धारा को रोककर विक्रय-प्रवाह में बहूँ; किन्तु 'संदिग्ध संसार' की उत्तमता देखकर मैं उसे प्रकाशित करने के लोभ को संवरण न कर सका, और उक्त अनुवादक महोदय से मैंने अपना अभिप्राय प्रकट किया।

उन्होंने कृपापूर्वक मुझे छापने की अनुमति दे दी। अनुवाद कैसा हुआ है, उसकी क्या विशेषता है, इस विषय में मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। सुयोग्य पाठक इसका निर्णय स्वयं कर लेंगे। अस्तु।

इस उपन्यास को पढ़कर यदि एक भी धर्मगुरु—दुराचारी-साधु अपने दुराचार का परित्याग कर, जीवनोद्देश्य को सफल करेगा, अथवा एक भी अंधश्रद्धालु भक्त अपनी अंधश्रद्धा को तिलांजलि देगा और धर्म के विषय में विवेक-बुद्धि से काम लेगा, तो मैं अनुवादक महोदय के श्रम की सफलता के साथ ही अपने एवं अपने प्रकाशन को गौरवान्वित समझूँगा।

काशी
१–१२–३२

विनीत—
बलदेवदास अग्रवाल

दो शब्द

कुछ दिनों की बात है कि अपने पितृव्य से मिलने के लिए मैं बम्बई गया था। वहाँ पर कोई विशेष कार्य था नहीं। हर समय अवकाश ही रहता था। सदैव से मेरी यह प्रकृति है कि मैं खाना-पीना भूलकर पढ़ता हूँ। आदत कैसे छूटती। पुस्तकालयों में पुस्तकें पढ़ने के लिए जाने लगा; किन्तु वहाँ पर हिन्दी-पुस्तकों का प्रायः उस समय अभाव ही-सा था। आवश्यकता इस बात की हुई कि गुजराती सीखकर गुजराती-साहित्य के भांडार का रसास्वादन करूँ। फलतः गुजराती के उपन्यासों का पढ़ना आरम्भ कर दिया। वहाँ के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों ने मुझे 'संदिग्ध संसार अथवा शैतान के साधू' तथा 'सरस्वतीचंद्र' पढ़ने की सलाह दी। मैंने पढ़ा। उसी समय मेरी इच्छा हुई कि यदि 'संदिग्ध संसार' का अनुवाद हिन्दी में होता तो हिन्दी-पठित जनता का बड़ा उपकार होता।

प्रायः दो वर्ष पहले की बात है, मैंने इसका अनुवाद करना आरम्भ करना चाहा; परन्तु उसी समय महाशक्ति-साहित्य-मन्दिर (काशी) के संचालक ने मुझे 'सुखी जीवन' नामक एक गृहस्थोपयोगी पुस्तक लिखने एव 'आरोग्य-मन्दिर' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के सम्पादन का भार दिया। उन्हें

तैयार कर देने के बाद फिर मैंने 'संदिग्ध संसार' का अनुवाद आरम्भ किया; पर बीच ही में उपर्युक्त 'मन्दिर' के संचालकजी ने कामशास्त्र की एक पुस्तक लिखने का आग्रह किया। उस विषय पर भी एक सुन्दर पुस्तक लिखने का विचार बहुत दिनों से था। संयोग भी अच्छा मिल गया। इसे भी लिखना आरम्भ कर दिया। संभवतः इसी मास में 'सुखी जीवन' और 'कामशास्त्र'—दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो जायँगी।

अस्तु; एक दिन बातों-ही-बातों में इस पुस्तक का जिक्र बलदेव-मित्र-मंडल (काशी) के सुयोग्य संचालक बाबू बलदेवदासजी अग्रवाल के सामने आया। पुस्तक का प्लाट सुनकर वह बहुत उत्साहित हुए; मुझसे शीघ्र समाप्त कर देने का आग्रह किया। अनुवाद होता गया और पुस्तक छपती गई। ऐसी दशा में त्रुटियो का रह जाना असम्भव नहीं।

हाँ, मूल पुस्तक के दो-एक अध्यायों को मैंने इसलिए छोड़ दिया है कि वे अनावश्यक-से जँचते थे और इस पुस्तक से उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता था।

मैं इस पुस्तक के विद्वान लेखक का आभारी हूँ, जिन्होंने इतनी सुन्दर पुस्तक लिखकर भारतीय समाज—विशेषकर हिन्दू समाज—का बहुत उपकार किया है।

—अनुवादक

संदिग्ध संसार

१

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशा शून्या कुबान्धवैः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दरिद्रिणाम्॥

पवित्र श्रावण मास था। उस दिन श्रावण की पूर्णिमा थी। रात के लगभग आठ या नौ बजे थे। रक्षाबन्धन के उत्सव की समाप्ति हो चुकी थी। सूर्य की प्रखर किरणों से सन्तप्त पुरुष अब तक सिंधु नदी की प्रबल धारा से निकली हुई कुलेली नदी की नहर के किनारे शीतल वायु सेवन के लिए इधर-उधर टहलते दिखाई पड़ रहे थे।

श्रावण मास में सूर्य की प्रखर किरणों की बात सुन-कर पाठक चकित न हों; सिंधु-प्रदेश में केवल दो ऋतुएँ होती हैं—जाड़ा और गर्मी। कभी-कभी चौमासे में दो-

चार बार वर्षा हो जाती है। अन्न की उपज के लिए यहाँ वर्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्न नहर के पानी से उत्पन्न किया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि वहाँ बहुधा दुष्काल का आक्रमण नहीं होता। भयंकर दुष्काल के समय में गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ तथा मारवाड़ की अकाल से पीड़ित प्रजा अपने उदर-पोषण के लिए सिंधु-देश मे आती है, और यह उन सब का उदर-पोषण करता है। सिन्धु-देश पर यह भगवान की अत्यन्त कृपा है।

कुलेली नदी के उस तट पर जो हैदराबाद नगर की ओर है, अनेक धनवानों ने ग्रीष्मकाल में रहने के लिए बँगले और मकान बनवाये हैं जो दूर से देखने पर एक गाँव की तरह दिखाई पड़ता है। कुलेली के तट पर बनी हुई एक हवेली के दुमंजिले पर लगभग चालीस-पैंतालीस वर्ष की एक प्रौढ़ा स्त्री चन्द्रमा के प्रकाश मे मनोहर तरंगित जल-प्रवाह के वक्षस्थल पर आन्दोलित नौका की शोभा निरखने मे लीन थी। वह ठुड्डी पर हाथ धरे सृष्टि-सौन्दर्य देखने में निमग्न थी; किन्तु उसका मन किसी चिन्ता से उद्विग्न भासित होता था। उसे अपने आसपास का कुछ भी ज्ञान न था। अचानक किसी ने उसके कंधे पर

हाथ रख दिया। वह विचार-निद्रा से जग पड़ी। चमक कर उसने पीछे की ओर देखा तो उसका पति खड़ा मुस्करा रहा था।

'आज घर आने में इतनी देर क्यों हुई?' स्त्री ने नम्रता से पूछा।

इस स्त्री के पति की अवस्था लगभग पचपन वर्ष की थी। वह आमिल जाति का था। सिंधु-देश के रिवाज के अनुसार उसने दाढ़ी रक्खी थी। शुभ्र दाढ़ी देखने से वह फरिश्ता मालूम होता था। अपनी टोपी को खूँटी पर टाँग वह कुर्सी पर बैठ गया और पत्नी के प्रश्न का उत्तर देता हुआ बोला—'मन्दिर में कथा-प्रसंग चल रहा था और अनेक साधु-संत वहाँ पर आये थे। कथा की समाप्ति के पश्चात् शास्त्र-चर्चा होने लगी। इसीसे आज आने में थोड़ा विलम्ब हो गया।'

'भोजन मगाऊँ'?

'आज तो भोजन करने की कुछ इच्छा न थी। पर मँगा लो जो रुचेगा खा लूँगा।'

समीप ही में एक खाट पड़ी थी। उसके ऊपर एक कालीन बिछा दिया गया। सेवक ने आज्ञा पाते ही उनके

लिए भोजन लाकर खाट पर रख दिया। सिन्ध के लोग बहुधा खाट के ऊपर ही बैठ कर खाते हैं। उनमें यही चलन है। सिन्ध के हिन्दू बहुधा मांसाहारी होते हैं; किन्तु दम्पति के खाद्य पदार्थ में दुर्गन्ध का लेश मात्र न था। अनेक कारणों से दम्पति ने मांसाहार का त्याग कर दिया था। भोजन कर लेने पर सेठ एक आराम कुर्सी पर लेट कर तम्बाकू पीने लगा। सेठानी भी आकर खिड़की में बैठ रही। सेठ ने कहा—'आज तुम्हारी मुख-मुद्रा देखने से प्रतीत होता है कि तुम किसी चिन्ता में पड़ी हो। इस चिन्ता का क्या कारण है? मुझे बताओ मन का भार कुछ हल्का हो जायगा।'

'प्राणनाथ! जो अग्नि मेरे अन्तःकरण में जला करती है वह केवल मेरी निज की नहीं किन्तु वह आपकी चिन्ता का एक अंग है। उदासी का कारण बताने से आपकी चिन्ता जागरित हो जायगी और अनायास शोक के बादल घिर आएँगे। इसीसे मैं अपनी चिन्ता का कारण नहीं बताती।'

'मेरी चिन्ता जग उठेगी, यह विचार तुम्हें करना ठीक नहीं है। स्त्री-पुरुष एक दूसरे के अंग हैं। इससे तुम्हारी

चिन्ता में भाग लेने का मुझे विशेष अधिकार है। तू अब तक चिंता में पड़ी है, इससे क्या मेरे मन में चिन्ता नहीं उत्पन्न होती ?' पुरुष ने कहा।

आपका यही विचार है तो मैं आपकी इच्छा के आधीन हूँ। मुझे यह चिन्ता जलाया करती है कि भगवान ने कृपा करके हम लोगों को धन-गृह, दास-दासी, मान और प्रतिष्ठा आदि संसार के जितने सुख-साधन हैं, सब दिया है; पर भगवान की कृपा से जब अपने लोगों का स्वर्गवास हो जायगा तब इन सम्पत्तियों का उपयोग करने वाला कोई नहीं रह जायगा। इस विचार से मेरा कलेजा टूक-टूक हो रहा है और प्रस्तुत सुख में भयंकर दुःख का अनुभव होता है।'

पुरुष के मन में शोक का आघात हुआ। शोक की छाया उसके मुखमंडल पर दृष्टिगोचर होने लगी। वह निःश्वास लेकर बोला—'शोक है! अंधों की लकड़ी के समान एक लड़की थी; उसे भी दुष्ट काल ने लुटेरा का रूप धारण करके अपनी झोली में रख लिया। यदि वह मर गई होती तो एक प्रकार से संतोष रहता; पर किसी ने उसे हरण कर लिया—यह विचार मन में आते ही जीते जी ही मरण के समान वेदना होती है।'

'आज वह लड़की रहती तो सोलह-सत्रह वर्ष की युवती होती। उसके रहने से लड़की और जमाई के सुख की तो आशा रहती! वह आशा भी नहीं। प्राणनाथ! कन्या मरी नहीं, चुराई गई है, इसीसे हम सन्तान-हीन हो गये। उस दिन हम लोग कन्या के गले में हीरा-मोती का हार न पहनाये होते, तो आज हम लोगों को यह दुःखद दिन न देखने पड़ते। हार के लोभ से किसीने उसे उड़ा लिया; और सम्भव है, अपना पाप छिपाने के लिये उस निर्दोष बालिका को मार भी डाला हो। उफ्! आह!!' यह कहते हुये उस सन्तान-हीन अबला की आँखों से अश्रु-वर्षा होने लगी।

'भावी प्रबल है। वह कोई-न-कोई निमित्त से घटित हो जाता है। लड़की के भाग्य में संसार-सुख न था और हम लोगों को भी सुख नहीं बदा था। अब व्यर्थ शोक करने से कोई लाभ नहीं है। मेरा यह विचार है—आज से सब माया-प्रपंचों को त्याग कर हम लोग काशी चलें और जीवन के शेष दिन काशी-निवास कर प्रभु-भजन में बिताएँ। इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है?'

'जो आपका विचार है, वही मेरा भी है। पति की

आज्ञा और उसकी इच्छा के अधीन रहना ही स्त्री के लिए परम कल्याणकारक धर्म है। मैं अपने विचार की कुछ महत्ता नहीं मानती।'

'मैं तुम्हारे मुख से इसी उत्तर की आशा रखता था। परन्तु विचार यह है कि काशी जाने के पूर्व अपनी धन-सम्पत्ति कहाँ रक्खी जाय और यह मकान आदि किसकी देखरेख में छोड़ा जाय। आज कल समय कुछ विकट आ गया है। किसी मनुष्य में विश्वास रखने का साहस नहीं होता। बैङ्क में सम्पत्ति सुरक्षित समझी जाती है; पर बैङ्क तो बड़े-बड़े व्यापारियों के होते हैं जो बाहर से देखने में तो बड़े सजधज से रहते हैं; किन्तु अचानक दिवाला बोल देते हैं; सबका सर्वस्व ले लेते हैं। आजकल बैंकों में रुपया जमा कर ब्याज का लाभ उठाने में कोई भी मनुष्य अपने धन को सुरक्षित नहीं समझ सकता।'

'आपका यह संशय सत्य है। आजकल भाई या सगे सम्बन्धी के यहाँ धरोहर रखना सुरक्षित नहीं है; तब व्यापारियों के पास और बैंकों में कहाँ तक सुरक्षित हो सकता है! जो पुरुष भगवान का परम भक्त हो, धर्म-अधर्म जानने-वाला हो, निस्पृह हो एवं जगत को तृण-समान समझता हो

उसके पास धरोहर रखना सुरक्षित समझा जा सकता है। परन्तु आजकल ऐसे पुरुष दुर्लभ हैं, जिससे विश्वास और निःशंक शब्द ही व्यर्थ हो गये हैं।' स्त्री ने पति की बातों का समर्थन किया।

'मेरे देखने में इस हैदराबाद में केवल एक पुरुष है। यदि वह अपने सिर पर हमारी सम्पत्ति-रक्षा का भार ले, तो अपने को भय रखने की कोई बात नहीं रह जाती। यह मेरा दृढ़ विश्वास है।'

'वह महात्मा कौन हैं? क्या नाम है?' स्त्री ने पूछा।

'आज तेरह-चौदह वर्ष से अपने नगर में रहने वाले चैतन्यप्रभु के परम भक्त महात्मा गोपालदास।'

'महात्मा को मैं भली भाँति जानती हूँ। इनकी भक्ति की महिमा अगाध है। आजकल बहुत से स्त्री-पुरुष इनके गुण का कीर्तन करते हैं। पर जहाँ तक मैं सुनती हूँ यह महात्मा धन का स्पर्श भी नहीं करते और कामिनी से दूर रहते हैं। यदि इनमें आपका विश्वास हो, तो कोई बाधा नहीं है। पर निस्पृह महात्मा, पर-संपत्ति की रक्षा का भार कैसे उठावेंगे?' भोली भामा ने अपने भोलेपन का परिचय देते हुये कहा।

'यदि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं कल उनके पास जा कर विनय करूँ। वह परोपकारी हैं आशा है, मुझे निराश न करेंगे। वरन् हमें चिन्ता-मुक्त करेंगे।'

'आपके निर्णय से मेरी पूर्ण सहमति है। प्रभात में दर्शन के लिये जाने पर इस बात की प्रार्थना कर देखें, वह क्या उत्तर देते हैं।' स्त्री ने कहा।

सिंध में रात की व्यालू के पश्चात् दूध पीने की चलन है। नौकर चाँदी के दो गिलासों में दूध लाया। उसे पीकर दम्पति सोने की तैयारी में लगे। स्त्री भीतर की कोठरी में जाकर सो गई और पति उसी छज्जे पर ऊँघने लगा। विचारों की प्रवलता के कारण दोनों को गाढ़ी निद्रा न आ सकी।

ये सन्तान-हीन दम्पति कौन है ? आइये, जबतक ये लोग सोते हैं तब तक इनके विषय में बातचीत करें। पति का नाम आलमचन्द और पत्नी का नाम यशोदाबाई था। आलमचन्द का कुल-गृह—उत्तम, धनवान और प्रतिष्ठित था। वरासत में पैतृक जागीर, मकान और तीन-चार लाख की सम्पत्ति मिली थी। इससे उन्हें सरकारी नौकरी या अन्य कोई व्यापार करने की आवश्यकता ही न थी। आज-

कल कितने ही धनवानों के लड़के निरक्षर रहकर दुर्व्यसन में फँस जाते हैं। यह बात आलमचन्द में न थी। उन्होंने अपनी मातृभाषा सिंधी का अभ्यास करने के उप-रान्त अँग्रेजी तथा संस्कृत भाषा का अच्छा अध्ययन किया था।

अपनी जागीर आदि की व्यवस्था करने के उपरान्त जो समय उनको मिलता था, उसे वह अनेक ग्रन्थों के अध्ययन में लगाते थे। धर्म में कुछ अधिक अनुरक्ति थी, भावना थी; मांस-भक्षण और मदिरापान उन्होंने पूर्व में ही त्याग दिया था। पचीस वर्ष की उम्र में यशोदाबाई के साथ विवाह हुआ था। प्लेग के बारम्बार आक्रमण से आलमचन्द और यशोदाबाई के सब सम्बन्धी एक-एक कर स्वर्गवासी हो चुके थे। यशोदाबाई के पिता की कुल सम्पत्ति आलमचन्द के हाथ आई। उस समय आलमचन्द के कुटुम्ब में, वे स्वयं, यशोदाबाई और उनकी एक पाँच वर्ष की लड़की बच रहे थे। अपनी लड़की को ही देखकर दम्पति अपने हृदय को सन्तोष देते थे; परन्तु निर्दय काल से वह सुख भी न देखा गया। एक दिन यशोदाबाई पुत्री को हीरा-मोती का हार और उत्तम वस्त्र पहनाकर

अपने साथ देव-दर्शन के लिये मन्दिर में ले गई। वह स्वयं मन्दिर में चली गई; किंतु भूल से लड़की बाहर ही रह गई। अलङ्कार के लोभ से उस बेचारी बालिका को कोई उड़ा ले गया। बहुत शोक करने एवं सहस्त्रों रुपए व्यय करने पर भी उस बालिका का कुछ पता न चला। अन्त में निराश होकर दम्पति बैठ रहे। फिर कोई सन्तान न होने से दंपति अत्यन्त हताश हो गये। उनकी अवस्था ढल चुकी थी। सन्तान की कोई आशा न रह गई थी। आशाहीन और शोकातुर अवस्था में वे अपना दिन बिता रहे थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर दीवान आलमचन्द स्नान-सन्ध्या कर देवालय में देव-दर्शन और महात्मा गोपालदास से मिलकर सम्पत्ति-रक्षा की व्यवस्था करने के लिये गये। आलमचंद अपने मन में अनेक प्रकार का तर्क-वितर्क करते हुए जा रहे थे—महात्मा हमारी बात को न माने तब सम्पत्ति की कौन सी व्यवस्था करूँ! अथवा यह सम्पत्ति कदाचित हाथ मे आने से वह लोभ के वश में आ जाय, और कहीं अन्यत्र चला जाय, तो मै क्या कर सकता हूँ? पर ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं है। उसने संसार की सब वस्तुओं, को क्षणिक और चल मानकर त्याग

दिया है ! परोपकार करना ही उसकी विभूति है, और लक्ष्मी के स्पर्श मात्र को घोर पातक मानता है। वह महात्मा मेरी सम्पत्ति का लोभ करके नरक का अधिकारी होगा ! यह बात त्रिकाल में सम्भव नहीं है। अभी मेरे मन से संसार का मोह नहीं गया है। इसीसे मेरे चित्त में यह तर्क-वितर्क उठ रहे हैं। महात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई विश्वासपात्र पुरुष मेरे देखने मे नहीं आता।

आलमचंद विद्वान था, पर मानी भी था। संसार के अनुभव में कच्चा था। धर्म में अति श्रद्धा रखता था। उसके मन में साधु के विषय में इस प्रकार के विचार का उठना स्वाभाविक था। उसने अपने मन से—सब तर्क-वितर्क को निकाल दिया और महात्मा के प्रति एकनिष्ठा रखकर जल्दी-जल्दी चलकर महात्मा गोपालदास के मन्दिर में जा पहुँचा। श्रीकृष्ण और राधा की प्रतिमा के दर्शन से अपने नेत्र को पवित्र कर वह महात्मा के निजी बैठक के द्वार पर आकर बैठ गया। उस समय महात्मा प्रभु-ध्यान में मग्न थे।

२

आलमचंद की तरह अन्य कितने ही हरिजन-भक्त

स्त्री-पुरुष महात्मा के ध्यान-मुक्त होने की प्रतीक्षा करते हुए मंदिर के आँगन में बैठे थे। लगभग आठ बजे के एक शिष्य ने महात्मा के ध्यान-मुक्त होने का समाचार दिया, और महात्मा के दर्शन के लिये कमरे में जाने का सङ्केत किया। सब लोग आतुरता से उठे। महात्मा मखमल के एक उच्च आसन पर विराजमान था। वह कद में नाटा था। उसके शरीर का रङ्ग धूमिल था। सिर के बाल उड़ गए थे। उस पर चोटी वर्तमान थी। मूँछ मुड़ी हुई थी। गले में तुलसी की माला पड़ी थी। नाक के ऊपर से कपाल तक तिलक की दो रेखाएँ दिखाई पड़ती थीं। नीचे नागपुरी धोती और अंग में पीले रंग का बारीक रेशमी चपकन पहने था। हाथ में एक गोमुखी थी। राधाकृष्ण। राधाकृष्ण का शब्द सतत् उसके मुख से निकल रहा था।

सब हरिभक्त पुरुष आकर महात्मा के दाहिनी ओर बैठ गये और बाँयें बगल में गोपियों के समान भक्त स्त्रियाँ बैठ गईं। सारङ्गी और तबला निकाला गया। हरिसभा का रंग जमा।

जब संगीत का रंग बराबर जम गया तब महात्माजी अपने आसन से उठकर प्रेमरस की वृष्टि करते हुये नृत्य

करने लगे। और भक्त लोग वाह! वाह! की ध्वनि से बधाई देने लगे। पश्चात् एक-दो राधाकृष्ण के शृंगार की गीत होने पर हरिसभा का कार्य समाप्त हुआ। हरिभक्तों को ठाकुरजी का प्रसाद बाँटा गया। महात्माजी के चरणों में मस्तक नवाकर अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार पैसा-रुपया गद्दी के पास रख भावुक स्त्री-पुरुष एक-एक कर जाने लगे। वहाँ केवल चार-पाँच मनुष्य किसी कारणवश बैठे रह गये थे। महात्मा की दृष्टि अचानक आलमचन्द पर पड़ी और वह बहुत प्रेम दिखाते हुए बोला—'भक्त-शिरोमणि दीवान आलमचंद! तुम यावनी भाषा सीखकर भी आजकल के उच्छृंखल युवकों की तरह नास्तिक न होकर श्रीचैतन्यप्रभु के वैष्णवधर्म में जो इतनी अटल श्रद्धा रखते हो इसके लिये मैं तुमको अन्त:करण से धन्यवाद देता हूँ। ब्रजविहारी, तुम्हारा कल्याण करें। तुम्हारे सदृश पुण्यवान् भक्तों का समागम भाग्य होने ही पर होता है! घर में सब कुशल तो है न?'

आलमचंद ने कहा—'परमात्मा और आप सदृश महात्माओं की कृपा से सब कुशल है।' उनके मुखमंडल पर शोक और मलिनता की छाया प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रही थी।

महात्मा ने मुख की रंगत से उनके हृदय में व्याप्त शोक को देखकर पूछा—'महाशय! क्या आज तुम्हारे हृदय में कोई चिन्ता उत्पन्न हुई है? तुम्हारी मुखमुद्रा ऐसी मलिन क्यों है?'

'महात्माजी! मैं सन्तानहीन हूँ—यह तो आप जानते ही हैं। केवल एक पुत्री थी—उसे बाल्यावस्था में कोई चुरा ले गया और आज बारह वर्ष हुए उसका कुछ पता न मिला। मेरे विचार से वह अब जीवित नहीं है।' दीर्घ निःश्वास लेकर आलमचन्द ने कहा।

महात्मा के मुखमंडल पर एक प्रकार की अकल्पनीय गंभीरता छा गई। तुरत ही वह गंभीरता शोक के रूप में परिवर्तित हो गई। वह अनुकम्पा दिखाता हुआ बोला—'तुम्हारी लड़की मैंने देखी थी। वह बालिका एक रत्न थी। वह अपनी तोतली भाषा में जिस समय श्रीराधाकृष्ण का उच्चारण करती, मेरे मन में स्वर्गीय आनंद का आविर्भाव हो जाता था। इस कन्या के अपहरण का समाचार सुनकर तीन दिन तक मैंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था।' यह वचन कहते हुए महात्मा का कण्ठ रुँध गया और उसके नेत्रों से आँसू के दो-चार बूंद टपक पड़े।

'हरि-इच्छा ! हमारे भाग्य में संसार में आकर सन्तान-सुख भोगने के लिये विधाता ने लिखा ही न था। महात्माजी ! अब तो हमारी वृद्धावस्था है। हमने काशी-निवास करना निश्चय किया है। हम लोग अपने जीवन के शेष दिन प्रभुनाम-स्मरण में बिताकर काशी के पुण्य-क्षेत्र में अपने शरीर को त्याग करेंगे; यही हमारी कामना है।' आलमचन्द ने कहा।

'अहा ! यह अतिशय उत्कृष्ट संकल्प है। धन्य ! साधु !!' महात्मा ने कहा।

'आप हम संसारी लोगों को उपदेश देते हैं, और प्रभु की प्राप्ति का पथ बताते हैं। हम पामरों के ऊपर आपका महान् उपकार है। परन्तु आज एक विशेष उपकार की आशा से आपके समीप आया हूँ यदि आप अनुग्रह करें तो मैं काशी-निवास कर सकता हूँ; अन्यथा सम्भव नहीं' आलमचन्द ने कहा।

'महाशय ! यह आप क्या कहते हैं। मैं दूसरे का क्या उपकार कर सकता हूँ ! मैं भगवान का दासानुदास हूँ; भक्तों के चरण की धूलि हूँ। वह जो आज्ञा करें उसे करने को तैयार रहता हूँ। मैं अपने प्राणों का बलिदान

करके भी दूसरे का कार्य करने को तत्पर हूँ। बताओ, मैं तुम्हारी कौन-सी सेवा करूँ ? हे हरि ! रक्षा करो।'

'आप जानते हैं—मैंने अपनी भूमि और जागीर आज कितने ही दिन हो गये, बेंच डाली है। केवल शहर में और कुलेली के तट पर एक-दो घर रहने के लिए रख छोड़ा है। अब तक खर्च करने के बाद दो लाख रुपए हमारी तिजोरी में पड़े हैं। यह धन मैं अमानत की तरह आप के समीप रखने का विचार करता हूँ। इनके अतिरिक्त हमारे पास पचीस हजार नकद है, उसे मैं अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। कारण—सिंधु से काशी में जानेवाले यात्रियों के लिए एक धर्मशाला बनवाने का विचार है। इस समय आप हमारी सम्पत्ति रखें, और जब जितने रुपये की हमें आवश्यकता पड़े, उतना रुपया भेज दिया करें।'

'अरे! बाप रे बाप ! यह क्या सर्वनाश है! मैं पराये धन को स्पर्श तक नहीं करता। मैं, हाथ जोड़कर तुम्हारी अन्य सेवाओं के लिये सदैव प्रस्तुत हूँ; परन्तु इस कार्य का भार लेना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। तुम अपना सब धन साथ ही काशी में क्यों नहीं ले जाते ?

ऐसा करने में क्या हानि है? हे परमात्मा! मुझे स्वर्ग में स्थान दो।' महात्मा ने निस्पृहता दिखाते हुए कहा।

'मैं इस समय काशी जाने को तैयार हूँ। वहाँ पर मेरा किसी से हेलमेल अथवा मित्रता नहीं है, जिसके पास मैं इन्हें सुरक्षित रख सकूँ। मध्य हिन्दुस्तान के लोग थोड़े धूर्त और ठग होते हैं; अतः वहाँ पर इतनी बड़ी सम्पत्ति साथ ले जाने का मेरा साहस नहीं होता। वहाँ जाकर मैं इन्हें कहाँ रखूँगा! सम्भव है, इस धन के पीछे हमें प्राण खोना पड़े। यदि मेरा धन चोरी चला जाय अथवा लूट लिया जाय तो भविष्य में धर्म, दान करने की हमारी जो इच्छा है, वह पूरी नहीं हो सकती।'

'यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो सम्पत्ति को किसी बड़े सेठ-साहूकार के पास या किसी अच्छे बैंक में रख दो अथवा गवर्नमेण्ट प्रामिसरी नोट ले लो; इससे तुम्हारी धनरक्षा की चिंता भी मिट जायगी और तुम्हें काशी जाने पर—जब-जब द्रव्य की आवश्यकता पड़ेगी उतना तुम्हें समय पर मिलता रहेगा। यह सब से सुन्दर मार्ग है। हे वृन्दावनवासी कृष्ण! आप इस भक्त को सुबुद्धि दें।'

'यह सब विचार मेरे मन में आये थे। पर इन सभों

में साक्षी आदि की बाधायें दिखाई पड़ीं। अतः यह मुझे स्वीकार नहीं हुआ। आप प्रभु के भक्त हैं, निस्पृह हैं, और जगत को तृण के समान समझते हैं। इसलिए मेरी सम्पत्ति जितनी आप के पास सुरक्षित रह सकती है, उतनी अन्य किसी स्थान में नहीं रह सकती। कृपया, आप इसका भार लेने का कष्ट करें, सम्पत्ति आपके मन्दिर में रहने से मैं निश्चिन्त और निर्भय रहूँगा।'

'परम श्रद्धालु दीवान आलमचन्द! मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि मैं इस जन्म में पराये धन का स्पर्श न करूँगा। लक्ष्मी एक बहुत तुच्छ अपकीर्तिकारिणी वस्तु है। मैं तुम्हारे लिये अथवा अन्य किसी प्राणी के कल्याण के लिये अपने प्राण तक अर्पण करने को तैयार हूँ। परन्तु लक्ष्मी जैसी पातक वस्तु को स्पर्श करने का मुझमें साहस नहीं है। मैं विवश हूँ। मुझे क्षमा करना, तुम सुज्ञ हो; अधिक तुमसे क्या कहूँ? श्रीराधे! श्रीराधे!'

'महात्माजी! आपकी कृपादृष्टि के बिना मेरा उद्धार नहीं हो सकता; कृपा करके आप मेरे काशी-निवास के पुण्य-कार्य में प्रतिबन्धक न बनें। परोपकार ही सन्तों की विभूति है।' आलमचंद ने आग्रह किया।

'प्रभु के प्राणप्रिय भक्त! तुम परम धार्मिक हो, परमेश्वर के अंश हो। इससे तुम्हारे वचन का अनादर मुझसे नहीं किया जाता। एक ओर पर-द्रव्य न स्पर्श करने की मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है और दूसरी ओर तुम्हारे जैसे सुशील भक्त का आग्रह है। दोनों ओर से बन्धन है। हे व्रज-वल्लभ!' महात्मा ने अपना संदिग्ध भाव दिखलाया।

'चाहे जो हो, आप संतजन हैं। आप हमारी रक्षा करने को वाध्य हैं।'

'मैं यह विचार कर रहा हूँ कि अब मैं क्या करूँ? हे राधारमण! तुम अवतक कहाँ हो?'

'यदि आपको परधन-स्पर्श करने में कोई वाधा है, तो आप अपनी सहधर्मिणी को आज्ञा दें; वह गिनकर हमारा द्रव्य तिजोरी में रख ले; रुपया रखने के लिए हमारी तिजोरी यहाँ रहेगी; जब मैं रुपए के लिए लिखूँ तब आप अपनी पत्नी से निकलवा कर भेज दिया करें।'

'तुम्हारी यह आज्ञा मेरी पत्नी किस प्रकार पालन कर सकेगी? वह मेरी अर्धांगिनी है। यदि वह तुम्हारे धन का स्पर्श करे तो मेरे आधे अंग का ही स्पर्श करना होगा। इस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। तुम क्षत्रिय हो,

हरि भक्त हो, साक्षात् भगवान की प्रतिमा हो, मेरा जन्म तुम्हारे ऐसे महात्माओं की सेवा करने के लिये है। अतः तुम्हारे एक साधारण अनुरोध को मैं न मानूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता; परन्तु लक्ष्मी का नाम सुनकर मैं भयभीत हो जाता हूँ। तुम किस विश्वास पर इतनी बड़ी संपत्ति मेरे पास अमानत रखते हो! मैं एक क्षुद्र व्यक्ति हूँ; अधमाधम पुरुष हूँ। मैं तुम्हारा दास होने के योग्य भी नहीं हूँ, हे हरि! आप मुझे अपने चरणों में आश्रय दें।' महात्मा ने नवीन युक्ति से धन रखने की इच्छा प्रकट की और एक ध्यान से राधाकृष्ण का जप करना आरम्भ कर दिया।

'महात्मा जी! क्षमा करें! आज आपके हठ को देखकर स्पष्ट प्रकट होता है कि मेरे और मेरी पत्नी के भाग्य में काशी-निवास करना लिखा ही नहीं है।'

'भाग्यवान! इस प्रकार क्यों निराश होते हो। मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ। आज रात को मैं विचार करूँगा। मैं अपनी स्त्री के साथ परामर्श करके कल प्रभात में उत्तर दूँगा। इस आपत्ति में मैं कदापि नहीं पड़ता। हे भगवान्! रक्षा करो! हरि! हरि!!' महात्मा ने आश्वासन दिया।

आशा और निराशा में द्वंद्व युद्ध चल रहा था। इस

प्रकार का भाव हृदय में लेकर आलमचन्द लगभग दोपहर को विदा हुआ। घर आकर भोजन करते समय उसने सब वार्ता यशोदाबाई से कह सुनाई।

'आलमचन्द के जाने के पश्चात् महात्माजी ने बैठे हुए तीन-चार भक्तों को विदा कर दिया। इतने ही में वहाँ चार पञ्जाबी आ गये। उनको देखकर आनन्द विह्वल होकर महात्मा ने कहा—आओ! आओ! इसी क्षण मेरे हृदय में तुम्हारी याद आ रही थी। कहो, तीन-चार दिन तक क्यों नहीं दिखाई पड़े?'

'किसी शिकार की खोज में फिरते थे पर इधर कोई शिकार हाथ न आया।' एक ने जवाब दिया।

'अच्छा, तुम आज रात में हमारा एक काम करो। तुम्हारे हाथ से हत्या नहीं कराना है; पर यह कार्य प्रदर्शन के लिए करना है। जैसा मैं कहूँ, वैसा ही तुम नाटक करो। इस मेहनत के बदले, मैं तुमको एक सौ रुपए दूँगा।'

यह सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए। महात्मा ने धीमे स्वर से उनसे कितनी ही बातें कहीं। जाते समय एक पञ्जाबी ने कहा—'आज रात को बारह से एक बजे तक मैं यह नाटक खेलूँगा।'

'मैं वहाँ आ पहुँचूँगा।' महात्मा ने कहा।

पंजाबी चला गया और महात्मा भोजन करने बैठा; उस समय उसके मन में कितने ही विचार तरंगित हो रहे थे।

३

महात्मा गोपालदास का जन्म बंगाल में नवाबों की प्राचीन राजधानी मुर्शिदाबाद में हुआ था। वह जाति का कायस्थ था। उसके माता-पिता की आर्थिक दशा बहुत सङ्कीर्ण थी। इससे उसे उचित शिक्षा न मिल सकी। किंतु वह चपल और तीव्र बुद्धि था। अपनी मातृभाषा बंगला के अतिरिक्त हिन्दी और अँग्रेजी भाषा के शब्दभंडार का उसने संग्रह कर लिया था। वह बार-बार तुलसीकृत रामायण पढ़ता था और अपने को भक्त की तरह दिखलाने की चेष्टा करता था। एक बार बंगाल में दुष्काल पड़ा और उसके माता-पिता भूख की ज्वाला से स्वर्गवासी हो गये। इस समय गोपालदास ने मुर्शिदाबाद के एक धनाढ्य जमींदार के यहाँ नौकरी कर ली थी। जमींदार ने दया कर तरुण अवस्था में उसकी भक्ति और धर्म-निष्ठा को देख उसे अपने मुख्य नायक का पद दिया। इस

तरह गोपालदास को अपना स्वभाव प्रकट करने का प्रसंग मिला। इस नौकरी में उसने १५ वर्ष बिताए। वह प्रतिदिन नियमित रूप से गंगा-स्नान करता था और जब स्नान करके लौटता, तो उसके समस्त शरीर पर 'राधारमण' की छाप देखने में आती थी। उस समय वह जोर-जोर से मार्ग में कितने ही संस्कृत-श्लोक और हिन्दी भाषा की कविताएँ कहता जाता था। उसके इस ढंग को देखकर नगर की स्त्रियाँ कहती थीं—'यह साधु पुरुष है, महात्मा है। कठिन कलिकाल में ऐसा विरला ही पुरुष कोई दीख पड़ता है।'

गोपालदास का यह बाह्य रूप था। परन्तु उसका अन्तरंग कार्य भिन्न प्रकार का था। जिस भूमि और जागीर की देख-रेख और वसूली का काम उसे सुपुर्द किया गया था उसमें से वह बराबर चुराकर इकट्ठा करता जाता था और किसी पर इसे प्रकट न होने देता था।

अन्त में पाप का घड़ा फूट गया। हिसाब में गड़बड़ी पड़ी और गोपालदास पर कोर्ट में मुकदमा दायर हुआ। महात्मा को छः मास कठोर कारावास का दंड मिला।

जिस समय वह जेल से छूटा उसके शरीर का वजन पाँच पौंड बढ़ गया था। जेल से आने पर वह लोगों से

कहने लगा—जमींदार और मजिस्ट्रेट—दोनों ने प्रपंच करके मुझे जेल में भेज दिया था। मेरा कोई अपराध न था।

पीछे वह मुर्शिदाबाद के पास एक गाँव में जाकर रहने लगा। वहाँ वह परम वैष्णव बन गया। जहाँ कहीं उत्सव या हरि-संकीर्तन होता, वहाँ उनका अग्रसर बन जाता था। गोपालदास के नृत्य और गान पर सब स्त्री-पुरुष लट्टू बन जाते थे। उसके हाव-भाव भरे नृत्य को देखकर भोली-भाली स्त्रियों का मन आकृष्ट हो जाता था। इस प्रकार धन संग्रह करके उसने अपने मकान के पास ही एक हरि-मन्दिर बनाया। उसकी सभा में आनेवाले भक्त कुछ मासिक देने लगे। उसमें अनेक गुण थे। वह सत्य बहुत थोड़ा बोलता था। वह एक दूसरे की बात कहकर विद्वेष कराने की नारदीय विद्या में बहुत कुशल था। स्त्री-पुरुष के सुखी दाम्पत्य-जीवन को झगड़ा करा कर विषमय बना देता था। ये सब कार्य उसके जीवन के महाव्रत थे। दूसरों की निन्दा और अमुक स्त्री व्यभिचारिणी है, आदि बातें वह बहुत कहता फिरता था। झूठा-मुकदमा दोनों तरफ से लड़ा देता था। मुकदमे में झूठी शहादत देने में भी वह चालाक था।

इस प्रकार सकल गुणसम्पन्न होने पर भी गोपालदास परम धार्मिक माना जाता था। गोपाल की जिह्वा में संभाषण करने की एक जगन्मोहिनी शक्ति थी। बात करते समय वह मन को मुग्ध कर देता था और आकाश के चन्द्र को अपनी हथेली की वस्तु बताता था। सब लोग समझते थे कि गोपालदास पूर्ण वैष्णव है और उसकी वाह! वाह! करते थे। गोपालदास कोई वस्तु उधार लेकर उसकी कीमत देने को तैयार न होता था। इस बात को जानकर भी कितने दूकानदार उसे अन्न, वस्त्र, घी, खाँड़ आदि वस्तुएँ उधार देते ही थे। गोपालदास को एक लम्पट, शठ, चोर, पाखण्डी, विश्वासघातक और गलकटा समझते हुए भी मनुष्य उसके साथ बातचीत और हँसी-मसखरी करते थे। साथ ही उसके मन्दिर में जाते वक्त जरा भी न हिचकते थे।

मनुष्य-मात्र स्वार्थ का दास है। किसी प्रकार अपने स्वार्थसिद्धि का उद्देश्य होने पर मनुष्य—चोर और लुटेरों के पास जाने में भी नहीं हिचकता।

वैष्णव गोपालदास को लोकबल और धनबल दोनों ही थे। लगभग बीस हजार रुपए उसने रोजगार में लगाया

था। उस गाँव में लगभग डेढ़ हजार उसके आज्ञानुवर्ती शिष्य थे; जो लोकबल और धनबल से सम्पन्न थे। उस का दोष सदा उपेक्षणीय था। सेठों और अमीरों के हाँ में हाँ मिलाकर और खुशामद करके वह धनिकों की तरह अपना अधम जीवन बिताता था। धनबल के साथ बाहुबल का संयोग होने से मणिकांचन का संयोग दिखाई पड़ता था। जहाँ तीन सहस्र हाथ गोपालदास के पक्ष में हों, वहाँ उसका नाम लोक प्रसिद्ध न हो, यह कैसे सम्भव था! गोपालदास दिन दहाड़े लूट मचाता था। पर इन लूट-पाटों को देखते हुये भी लोग कहते थे कि यह महापुरुष केवल दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करता है।

कितने ही अन्य कारणों से लोग गोपालदास से डरते भी थे। यह विश्व का नियम है—जिस मनुष्य के मन में भय होता है वह लाचार होकर ऊपर से प्रीति और भक्ति का भाव दिखाता है।—'यदि गोपाल किसी बड़ी आफत में फँसा देवे तो?' इस भय से लोग उससे मीठी-मीठी बातें करते थे। यदि लोग श्राद्ध आदि कार्य में गोपालदास को भंडारी बनाये बिना यज्ञ की तैयारी करते तो वह अनेक कुचक्र रच देता था।

कहने का तात्पर्य यह कि—गोपाल ने धर्म को एक व्यापार बना लिया था और हरिमन्दिर को एक चलने-वाली दुकान बना डाली थी। संसार में सदा से अनेक मूर्ख रहते हैं जो भगवान के नाम पर सहज ही में पिघल जाते हैं। गोपाल के नाचने का ढंग अद्भुत था। उसका नवीन ढंग और उस समय का अंग-विक्षेप वर्णन के बाहर है। उसका रूप अद्भुत हो जाता था और यह कहा जा सकता था—गोपाल के शरीर में बार-बार भगवान का आगमन होता है। इन सब कारणों से गोपालदास आस-पास के दस गाँवों में महापूज्य, वंदनीय, महात्मा और महापुरुष समझा जाता था।

परंतु नीच बुद्धि होने से इतना प्रभाव होने पर भी महात्मा गोपालदास लोभी था और उसका मन संतुष्ट नहीं होता था। वह बीच-बीच में व्यभिचार भी करता जाता था। कितनी ही सौभाग्यवती और विधवा स्त्रियाँ उसके फन्दे में फँस चुकी थीं। इससे महात्मा के मान में धीरे-धीरे कमी होने लगी।

कनक और कामिनी में लोभ न रहे—यह पुरुषों का एक अद्वितीयगुण है। धन का लोभ न हो; मनुष्य व्यभि-

चारी और विषयासक्त न हो, तब उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही जाती है। जो अपनी कुलवधू को छोड़ परनारी-प्रेम में निरत होते हैं उनकी प्रतिष्ठा सदा के लिये धूल में मिल जाती है; यह नियम है। साधारण मनुष्य धन और मान की हानि सह सकता है; परंतु अपनी स्त्री, माता, भगिनी, अथवा पुत्री का सतीत्व-भङ्ग और उससे उत्पन्न होनेवाली निन्दा को नहीं सहन कर सकता। इसीसे व्यभिचारी पुरुषों के अनेक शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। लोग ज्यों-ज्यों गोपालदास के व्यभिचार की बातें सुनते गये त्यों-त्यों उनके मन में उसका मान कम होता गया।

गोपालदास मध्यान्ह समय—पुरुषों का आना-जाना बंद होने के पश्चात् घंटों अपने एकान्त कमरे में स्त्रियों के साथ गुप्त वार्ता-विलास करता, बैठा रहता और उनको मन्त्र, तावीज, डोरा आदि देता था। अनेक स्त्रियाँ इस कारण उसके पास आतीं और उसकी मधुर-मधुर बातों एवं कपट-जाल में फँसकर अपने सतीत्व-शृंगार का नाश कराके लौटतीं थीं। स्त्रियों को डोरा, तावीज देने का समय मध्याह्न के बाद निश्चित किया गया था जिससे बाहर से कोई पुरुष उस समय न आ सके। भाग्य-योग से

किसी के आ जाने पर उसे हटाने के लिए शिष्य कह देते थे—इस समय महात्मा सो गये हैं।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार चलता रहा। पापी के पाप का परिणाम बढ़ता ही गया। इससे वह उन्मत्त हो उठा।

एक बार विचित्र घटना हुई—एक तरुणी बालविधवा स्त्री किसी के साथ गोपालदास के दर्शन के लिये आई। यह तरुणी यौवन-मदमाती और लावण्यवती थी। महात्मा की दृष्टि उस पर पड़ी। बाला सुशीला थी। गोपालदास ने उससे मिलने का बड़ा प्रयत्न किया। एक दूती बहुत आग्रह से उस तरुणी बालविधवा को वहाँ ले गई और एकान्त में उसे बैठा कुछ कारण बताकर वहाँ से चली गई। तरुणी अकेली थी। थोड़ी देर में गोपालदास आया और उससे प्रेम-याचना करने लगा। तरुणी ने उसे धिक्कारा। उस नरपिशाच ने उसके साथ बलात्कार किया। बेचारी विधवा कुछ देर चिल्लाती रही, पर उस बलात्कार से बचाने के लिये कोई न आया। उसका वैधव्य व्रत भंग हो गया। युवती ने वहाँ से निकल कर अपने संबंधियों को एक पत्र लिखा और गंगा में डूब कर आत्महत्या कर लिया। यह पत्र उसके संबंधियो ने पढ़ा। नदी मे से उक्त युवती का

शव निकाला गया। जनता में बड़ी सनसनी फैल गई। सरकार में मुकद्दमा चला। महात्मा को पाँच वर्ष सख्त कैद की सजा हुई। हरि-मन्दिर जनता की सम्पत्ति हो गया।

जब वह जेल से छूटा तो उस गाँव या बङ्गाल में रहने का उसका विचार उथल-पुथल करने लगा। 'देश चोरी परदेश भिक्षा'—यह निश्चय कर उसने परदेश में जाने का निर्णय किया। उसने सुना था—सिंधदेश एक बहुत समृद्धशाली देश है। वहाँ के निवासी उदार, श्रद्धालु और भोलेभाले होते हैं और साधु-संतों का रोजगार अच्छी तरह चलता है। अस्तु, उसने सिंधुदेश में जाना निश्चय कर भीख माँग थोड़ा रुपया इकट्ठा किया और हबड़ा स्टेशन पर टिकट खरीद रेलवे ट्रेन में बैठकर सिंध जाने के लिये बङ्गभूमि को अन्तिम नमस्कार किया।

गोपालदास पहले शिकारपुर में उतरा। वहाँ गर्मी कुछ अधिक थी। इससे हैदराबाद चला आया। प्रथम कुलेली नदी के किनारे पर एक वट-वृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। पश्चात् लकड़ी का एक छोटा मंदिर बनाकर तपस्वी की तरह रहने लगा। गर्मी में सन्ध्या समय कुलेली तटपर हवा खाने के लिये आनेवाले सब गृहस्थों के साथ धीरे-धीरे

परिचय होने लगा। सिंध की जनता भावुक और श्रद्धालु होती है। अतः उसके वाह्य गुणों और वाक्पटुता पर लुभाकर लोगो ने पेड़-तले से आसन उठाकर बाजार के मध्य में एक मंदिर बनवा दिया। मंदिर के खर्च के लिये कुछ लोगों ने मासिक बाँध दिया। गोपालदास की प्रतिष्ठा धीरे-धीरे बढ़ने लगी और वह महात्मा गोपालदास के नाम से कहा जाने लगा। 'आन्तरिक गुण तो भगवान जाने'—इस कहावत के अनुसार लोग उसके आन्तरिक भयंकर दुर्गुणों से सर्वथा अज्ञात थे; अतः उसके कपट-नाटक को समझने में नितान्त असमर्थ थे।

जब हैदराबाद में उसका पूरा-पूरा प्रभाव जमगया और उसने जनता की सब रीतियों को जानलिया तब उसने अपने दुश्चरित्रों को प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। दूध का जला मनुष्य मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है, इस वात को सोचकर और बङ्गाल की बातों का स्मरण करके यहाँ पर वह जो कुकर्म करता था वह बहुत ध्यान से संभाल कर करता था। जिसमे निन्दा होने की संभावना रहती, उसे न करता था। वह परम प्रवीण था। इससे उसके आन्तरिक दुर्गुण जन-समाज की दृष्टि में न आ सके। उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि वह चार-पाँच वर्ष में धनाढ्य हो गया।

जबसे हमारे इस उपन्यास का आरंभ होता है। गोपालदास ५५ वर्ष का था। पाक-भस्म एवं पुष्टिकर खाद्यों से उसका शरीर हृष्टपुष्ट था, बुढ़ापे का कोई चिन्ह न था। लोग उसकी हृष्टपुष्टता को योग और भक्ति का प्रभाव समझते थे।

४

'दौड़ो! दौड़ो! सर्वनाश हो गया! आग लगी है! डांका पड़ा है।'

रात के लगभग दो बजे थे। ऊपर का कोलाहल सुनकर जनता कुलेली के किनारे घबड़ाहट में चारों ओर दौड़ रही थी। यह कोलाहल कहाँ से आरंभ हुआ इसे कोई न जानता था। इस अपार कोलाहल को सुनकर सब लोग चकित एवं भयभीत हो रहे थे। कितने ही गृहस्थ नींद से जगकर अपने-अपने घर का दरवाजा बन्दकर भीतर ही बैठ रहे थे। कुछ लोग जो कोलाहल को पसंद करते थे; शरीर से हृष्टपुष्ट और थोड़ी उद्दण्ड प्रकृति थे, वे निर्भय होकर घर से निकल पड़े थे। उनमें से किसी के हाथ में डंडा और किसी के पानी का घड़ा था।

'भाई! तुम्हें कहाँ जाना है।' किसी ने पूछा।

'मैं कहाँ जाता हूँ' यह तो मैं नहीं जानता। जहाँ सब लोग जा रहे हैं वहीं मैं भी जाता हूँ। दूसरे ने जवाब दिया।

'न तो डाँका पड़ा है, न आग लगी है। बात कोई तीसरी ही है। सुना है, एक आदमी का खून हो गया है।' एक तीसरे व्यक्ति ने कहा।

'अरे नहीं, यह बात नहीं है। किसी आदमी को साँप ने काट लिया है।' चौथे ने कहा।

बात का कुछ निश्चय न हो सका। जिधर से कोलाहल की ध्वनि सुनाई पड़ती थी उधर ही भीड़ दौड़ती चली गई। देखते-देखते दीवान आलमचन्द के मकान के पास बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गई। बहुत से लोग वहाँ पर इकट्ठे हो गये थे; परन्तु कोलाहल का कारण अज्ञात था। सब लोग एक दूसरे से पूँछते थे। कोई कुछ निश्चित उत्तर न देता था। रात अँधियारी थी। क्षण-क्षण में कोलाहल बढ़ता जाता था। इस गुलशोर का ठिकाना न था। लोगों के मन में जो आता वही चिल्ला रहे थे।

'अरे! यह किसका खून हुआ है! रक्त की नदी बह निकली है!'

'उसके जीने की आशा बिलकुल नहीं है। आँखे

धँसती जा रही हैं। बेचारा मृतक की तरह निर्जीव-सा पड़ा है। साँस चल रही है या नहीं, इसमें भी संशय है।'

'अभी तो कुछ-कुछ साँस चल रही है। दो-एक बार बोल भी देता है, प्राणकण्ठ तक पहुँच चुका है; ब्रह्मांड से निकलना ही चाहता है। अब इसका बचना बहुत कठिन है।'

यह काण्ड कैसे हुआ इसका पता किसी को न था। सब लोग अपने विचार के अनुसार कहते जाते थे और हाय! हाय! कर रहे थे।

भीड़ में पैठकर देखा गया तो एक आदमी मरणासन्न अवस्था में पड़ा था। किसीने उसके शरीर को एक चादर से ढँक दिया था; केवल उसका कन्धा खुला था। उसके वस्त्र रक्त से भीग गये थे। उसके पास ही दो आदमी और भी खून में लिपटे पड़े थे।

'चाहे जितना रुपया खर्च हो, इसकी मुझे चिंता नहीं; पर बहुत शीघ्र जाओ और सिविल सर्जन को यहाँ बुला लावो।' यह वात वहाँ बैठे हुए एक सज्जन ने अपने सेवक से कहा। इस पर चादर से ढँके उस मनुष्य ने हाथ से ऐसा करने को मना किया और अर्धस्फुट-स्वर में कहने

लगा—'तुलसी-वृक्ष के नीचे की मिट्टी लाकर मेरे मुँह में डाल दो और उसी मिट्टी से मेरे सर्वांग में 'राधाकृष्ण-राधाकृष्ण' लिख दो; श्रीहरि का चरणामृत मेरे मुख और सिर पर छिड़क दो; मै श्रीहरि के रहते किसी वैद्य-डाक्टर की आवश्यकता नही समझता। श्रीहरि ही हमारे वैद्य हैं; वही हमारे डाक्टर हैं; मेरी आज्ञानुसार उपचार करो और देखो—श्री राधाकृष्ण की भक्ति की महिमा से मेरे शरीर का घाव देखते-देखते अच्छा हो जाता है। हे भक्तगण! भगवद्भक्ति का अगम्य चमत्कार प्रत्यक्ष देख लो।'

इतने ही में एक आदमी मन्द-मन्द जलता हुआ हरीकेन लैम्प लेकर वहाँ आया। उसके प्रकाश में लोगों ने उस घायल आदमी को देखा और पहचान कर चिल्लाने लगे—'अरे! यह तो महात्मा गोपालदास हैं! अरे भाई, महात्मा की यह दशा किसने की?

महात्मा गोपालदास धीमे स्वर से पुनः कहने लगे—'मुझ मे बोलने की शक्ति नहीं है। शरीर अवसन्न हुआ जा रहा है। आँख से कुछ सुझाई नहीं पड़ता। तुम लोग ढोल बजाकर हमारे समीप नृत्य करो, और हरिकीर्तन गाओ। श्रीहरि मुझे पास बुला रहे हैं। यह मेरा अहो भाग्य है।

पर यह सुख मेरे भाग्य में कहाँ है ? हे हरि ! मेरा शीघ्र उद्धार करो।'

मध्याह्न-समय महात्मा के पास जाकर अपनी सम्पत्ति सुरक्षित रखने की प्रार्थना करनेवाले शुद्ध हृदय दीवान आलमचन्द महात्मा के सिर के पास बैठे हुए डाक्टर को बुलाने की आज्ञा दे रहे थे। वह बार-बार रोते, माथा पीटते और महात्मा को सम्बोधित कर कह रहे थे—'महाशय ! मैं ही अभागा आपके इस दुर्भाग्य का कारण हूँ।'

'भक्त-शिरोमणि दीवान आलमचन्द ! तुम विना कारण ही यह शोक न करो। इस उपलक्ष्य में यदि मेरा स्वर्गवास हो जाय तो मेरे समान भाग्यवान कोई नहीं है। तलवार की मार से मैं जर्जरित हो गया हूँ—यह सत्य है, पर मुझे इसमें बड़ा आनन्द है। आज मुझे स्वर्गसुख है। तुम अपने पवित्र हाथ से मेरे सिर का स्पर्श करो। तुलसी का वृक्ष लाकर मेरे सिर के पास रख दो। मैं बोल नहीं सकता हूँ। मेरी वाणी रुकती जाती है। हे दीनबन्धु ! हे नन्दनन्दन ! हमारा बेड़ा पार करो।'

देखते-देखते थोड़ी ही देर में अनेक बाबाजी इकट्ठा हो गये। कारण—कुलेली के किनारे पर साधुओं के लिए

हमेशा सुकाल था। साधुओं की जमात इकट्ठी हो गई। और वे भयंकर भाव से नृत्य करने लगे। भारतवर्ष के दीप का निर्वाण हो गया और पुनः ज्योति प्रकट हुई; परन्तु इस ज्योति का भी थोड़े ही समय में अन्त हो गया और पुनः घोर अन्धकार दिखाई देने लगा; किन्तु हरिकीर्तन का प्रचार तो समान भाव से चल रहा है। रात्रि विशेष बीत गई थी और दूसरे मनुष्य चले गये थे; केवल भक्त और साधु लोग हरिकीर्तन और नृत्य कर रहे थे।

यह गोरखधन्धा क्या है? यह हमारे पाठक समझे न होंगे। उनकी उत्कण्ठा को तृप्त करने के लिये खुलासा करता हूँ। जिस दिन दीवान आलमचन्द महात्मा गोपालदास के यहाँ अपनी रोकड़ और मिलकियत रखने के लिये गये थे, उसी दिन रात के लगभग एक बजे आलमचन्द के घर में डाँका पड़ा। कोई-कोई चोर अपने शरीर को काले रङ्ग से रंग लिये थे और कोई बनावटी दाढ़ी लगाए थे। चोरों को रात अधिक प्यारी होती है। वह डाँका पड़ने के लिये वहाँ आये थे। 'जय महाबीर की' आदि शब्दों का उच्चारण करते हुए साहूकार के यहाँ डाँका पड़ा। एक दरवाजा तोड़ रहा था; बाकी दो चोर हवा में अपनी लाठी

को सुदर्शन चक्र की तरह घुमा रहे थे। उसी रात को महात्मा गोपालदास स्नान करने के लिये कुलेली नदी के तट पर आये। महात्मा गोपालदास परहितैषी और परोपकारी पुरुष था। उसका हृदय आलमचन्द के घर में डाँका पड़ते हुए देख, दया से पिघलकर पानी हो गया। वह तुरत दौड़कर कुलेली किनारे पर के कितनों ही मुस्तण्ड साधुओं को बुला लाया और अपने प्राण की जरा भी परवा न करके उनके साथ मारपीट करने लगा।

घाटपर चोर और साधुओं के बीच—कई बार मारपीट हुई। इस कोलाहल से आकृष्ट होकर आसपास से जागकर कितने ही लोग आ पहुँचे। आनेवाले मनुष्यों के भय से घबड़ाकर चोर वहाँ से भग गये। लड़ते-लड़ते महात्मा गोपालदास के हाथ में तलवार की एक ऐसी चोट बैठ गई कि वह रक्त से शराबोर हो कर जमीन पर गिर पड़ा। दो साधु और भी घायल हुये थे। यह समाचार सत्य था कि झूठ—सो तो नहीं कहा जा सकता; पर लोक में जो बात प्रचलित थी, उसका यही सार है।

रात बीत गई और अरुणोदय का आरंभ हुआ। आज नगर में एक नई ही बात का कोलाहल फैला था। समस्त

नगर हरिनाम की गूँज से भर गया था। भक्तजनों के भीषण नृत्य से नगर की भूमि कम्पायमान हो रही थी। आज एक अपूर्व समारोह था। कलिकाल मे इस प्रकार का चमत्कार देखने को कौन कहे, कोई सुने भी न होगा। तुलसी-वृक्ष के तले की मिट्टी के लेप करने से महात्मा गोपालदास का घाव सूख गया था, और उसका लेशमात्र भी नहीं दिखाई पड़ता था। आज इसी बात की चर्चा सर्वत्र फैल रही थी।

सैकड़ों मनुष्य महात्मा को घेरकर बैठे थे। एक आदमी ने पूछा—'महात्मा! मैं बहुत दूर से आया हूँ कृपा करके यह रहस्य मुझे बताइये।'

'इसमें कोई विशेष रहस्य नही है। केवल हरि की इच्छा और हरि की कृपा का परिणाम है। बन्धुओं! एकबार हाथ ऊँचा करके गगनभेदी ध्वनि से हरि का नाम उच्चारण करो। हरिनाम के प्रताप से संसार के सब पाप दूर होते हैं। मैं तो एक क्षुद्र व्यक्ति हूँ।.हे राधाकृष्ण! इस दीन-दास पर दया करो।'

इतने ही में वहाँपर एक आदमी हाँफता और दौड़ता हुआ पहुँचा और बोला—'भगवन्! मैं आपके कमल-चरणों

का प्रसाद लेने आया हूँ। आपके चरणों की धूलि सिरपर धारण करने से मेरा मनुष्य-जन्म सार्थक होगा। मेरे सुनने में आया है कि गत रात को आप स्वर्गवासी हो गये थे और यम के दूत आपको लेने के लिये आये थे; परन्तु भगवान की कृपा से विष्णु के दूतों ने आपको उनके पंजे से बचा लिया। आप मनुष्य नहीं वरन् देव है।'

'मैं तो कीट-पतंग की तरह अधम हूँ। मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मेरी कोई महत्ता नहीं है।' महात्मा ने कहा।

एक भक्त ने कहा—'हे भावुक भक्तो! प्रभु, जप करने बैठे हैं। इसमें लगभग एक पहर लगेगा। आप लोग घर जायँ। संध्या समय पुनः कथा-श्रवण करने आवें।'

सब भक्त लोग चले गये और महात्मा एकान्त में जाकर माला फेरने लगे।

५

कुलेली नहर के पुल के पीछे दायें किनारे पर लगभग चार सौ कदम चलने के पश्चात् एक विशाल बँगला दिखाई पड़ता था। इस बँगले का चौगान बहुत विशाल था और कुलेली के किनारे तक लम्बा फैला था। यह बँगला हैदरा-

प्रियतमा रोहिणी !

आगामी रविवार को कालेज बन्द है। उस दिन कराची से सबेरे की ट्रेन से मैं एक बजे हैदराबाद आऊँगा। संध्या समय लगभग साढ़े छः या सात बजे तुमसे मिलने के लिए अनाथाश्रम में आऊँगा। अन्तिम बार जहाँ हम लोग मिले थे, वहीं मेरी प्रतीक्षा करना।

मोहनलाल

'साढ़े छः बज गये! अब उनके आने का समय बीत रहा है। संभव है, वह आवें और कुशल समाचार पूछने के पश्चात् मुझसे विवाह करने के लिए अनुरोध करें तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगी! कुछ सूझ नहीं पड़ता। परन्तु वह काहे को ऐसा पूछेंगे।' रोहिणी इस प्रकार विचार कर रही थी, इतने ही में एक तरुण ने पीछे आकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया। युवती एकाएक चौंक पड़ी; परन्तु जब मोहनलाल उसके सम्मुख आकर खड़ा हुआ, उसका भय, लज्जा में परिवर्तित हो गया। लज्जा से वह अपनी आँखों को नीची करके भूमि निरखने लगी। शिष्टता के अनुसार उसने नीची दृष्टि करके विनय पूर्वक धीमे स्वर में कहा—'भले आये! मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रही थी।'

'धन्यवाद ! तबीयत तो अच्छी है ? आजकल क्या पढ़ रही हो ?' तरुण ने पूछा ।

'अँग्रेजी की चौथी पोथी चल रही है । साथ ही रसोई बनाने का काम मैं अपनी प्रसन्नता से सीख रही हूँ ।' सकुचाते हुए रोहिणी ने कहा ।

'रोहिणी ! भारत की स्त्रियों के लिए रसोई बनाना, सीना-पिरोना, बच्चों की सेवा-सुश्रूषा करना एवं खेलाना तथा गृह-संसार के लिए अन्य उपयोगी कलाओं में निपुणता प्राप्त करना, बहुत उपयोगी है । स्त्रियों के लिए शिक्षा की आवश्यकता अवश्य है; परन्तु अधिक नहीं वरन् परिमित होनी चाहिये । तुम्हारे इस नवीन प्रयास के लिए मैं तुम्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ ।'

'मैं आपके इस धन्यवाद के लिए अन्तःकरण से आभारी हूँ । मोहनलाल! आप यहाँ कई बार आ चुके, पर मुझसे आप का कुछ सत्कार न बन पड़ा । पान, बीड़ी, सिगरेट आदि कोई वस्तु आप स्वीकार नहीं करते । आप इनको व्यसन समझते हैं । कहिये, कौन-सी वस्तु आपकी रुचि के अनुकूल लाऊँ ।'

'मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में जो शुभवाञ्छा और प्रीति है, वही हमारे सत्कार के लिए यथेष्ट है।' मोहनलाल ने कहा ।

मोहनलाल के संयम और मिताचार की प्रशंसा करती हुई रोहिणी भगवान से विनय करने लगी कि सब कुमारी युवतियों को ऐसा ही निर्व्यसनी और सदाचारी पति मिले।

'तुम भी अभी कुमारी हो—अतः तुम भी ईश्वर से ऐसा ही पति मगाँती होगी।'—मोहनलाल ने रोहिणी की लज्जा छुड़ाने के लिए पूछा।

'सब सुशील कन्यायों की ऐसी अभिलाषा का होना स्वाभाविक है; पर उनकी इच्छा सफल होती ही है, यह कोई निश्चय नहीं है। कितनी ही युवतियाँ दुर्भाग्य से इसके विरुद्ध स्वभाववाले पति को वरण कर लेती हैं और उनका नारी-जीवन विफल हो जाता है। जिनका सौभाग्य रहता है, उन्हीं को संयमी और सदाचारी पति मिलता है।' रोहिणी ने नम्रता से उत्तर दिया।

'मेरे चरित्र के विषय में तुम्हारी क्या धारणा है?' मोहनलाल ने आग्रह किया।

'आप शारीरिक सौन्दर्य और आन्तरिक सद्गुण दोनों से विभूपित हैं। आपके चरित्र में कोई भी संशय नहीं कर सकता। आपको अपना पति बनाने का जिस स्त्री को सौभाग्य होगा उसका जन्म सफल हो जायगा।'

'यदि तुम्हें ही मुझे अपना स्वामी कहने का सम्मान प्राप्त हो, तो कैसा हो।'

'यह होना असंभव है! यदि आप मेरा वृत्तान्त सुनें तो आपको अवश्य दुःख होगा। सम्भव है आपका स्नेह मुझपर से कम भी हो जाय।' रोहिणी आगे कुछ कहना चाहती थी, पर बीच ही में मोहनलाल आवेश से बोल उठा।

'प्रेम कम हो जायगा रोहिणी! आज तुम यह क्या कह रही हो! मेरा प्रेम कम हो जायगा? असंभव! यदि तुम्हारी यही धारणा हो, तो मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ—तुम आजतक मेरे प्रेम की ठीक परीक्षा नहीं कर सकी हो।'

'आपने समझने में भूल और आतुरता की है। मेरे कहने का यह अर्थ नही है। भाव यह है—मैं गरीब हूँ, निराश्रित हूँ, अनाथ युवती हूँ; मेरे माता-पिता कौन थे; कौन नहीं; यह, मैं स्वयं कुछ नहीं जानती। अतः मेरे सदृश एक अनाथ और अज्ञातकुलशीला कुमारी से प्रेम रखना कहाँ तक सम्भव है! यह विचारणीय है।'

मोहनलाल ने उसको बीच ही में रोककर आवेशपूर्वक कहा—'बस! बस करो। रोहिणी, मैं अस्ताचलगामी सहस्ररश्मि भगवान् सूर्यनारायण के समक्ष प्रतिज्ञा करके

कहता हूँ—यदि मैं विवाह करूँगा तो तुम्हारे साथ, अन्यथा आजन्म अविवाहित रहूँगा। तुम्हारे माता-पिता अज्ञात हैं; यह विशेष चिंता की बात नहीं है। तुम्हारे अनाथाश्रम की लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट की सहायता से मैंने यह जाँच लिया है कि तुम आमिल जाति की स्त्री-रत्न हो। अतः केवल इतने ही से मुझे सन्तोष है।'

'आपकी बातों पर मुझे पूर्ण विश्वास है; पर मन बहुत ही शङ्काशील होता है।' यह कह रोहिणी ने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया।

'यदि तुम्हारा शङ्काशील मन तुम्हारे विचारों में कोई बाधा डालता हो और तुम्हें मेरी बातों में विश्वास न हो, तो निःसङ्कोच सब बात कह डालो।'

'शंका यह है कि आप कुलीन हैं, सुशिक्षित हैं, सुन्दर हैं तथा सद्गुणी हैं। अतः आपकी जाति के बहुत से धनी लोग प्रचुर द्रव्य, दहेज में देकर अपनी कन्याओं का विवाह करने के लिए तैयार होंगे। आपकी जाति में कन्या के माता-पिता, निरीक्षकों अथवा प्रतिपालकों को वर पक्ष को दहेज देना पड़ता है तभी कन्या को पति के मुख का दर्शन सम्भव होता है। अतः जिसके कुलशील का कोई पता नहीं, जिसकी

ओर से धन मिलने की भी कोई आशा नहीं; ऐसी मेरे सदृश अनाथ कन्या के साथ विवाह करने के लिये आपके माता-पिता सगे-सम्बन्धी कब सम्मति देंगे? उनको कष्ट होगा। मेरे लिये आपके कुटुंब को कष्ट हो—यही विचार कर मैं दुःखी हूँ। मेरे भाग्य में जो लिखा है, सो होगा। आप सुखी रहें, और संसार में कीर्तिमान और आयुष्यमान हों, यही मेरी भावना है। आपको सुखी देखकर मैं भी अपने को सुखी मानूँगी। हृदय से मैंने आपको अपना पति वरण कर लिया है। केवल बाहर से कुमारी दशा मे हूँ। ऐसे ही अपना जन्म बिताऊँगी और जो सौभाग्यवती आपसे परिणीत होकर आपके गृह को सुशोभित करेगी उससे मैं यही कहूँगी—'तुझे चाहूँगी दूना, तू मेरे प्यारे की प्यारी है।'—रोहिणी ने मलिन मुख करके अपने आन्तरिक भाव को प्रकट किया।

'रोहिणी! तुम्हारी यह शंका सत्य है। कितने ही निर्धन भारतीयों में तो कहीं-कहीं कन्या-विक्रय का व्यापार बहुत धूमधड़ाके से चल रहा है। केवल अपनी ही जाति में नहीं; अपितु भारत की अनेक सुधरी और सुशिक्षित जातियों में वर-विक्रय का व्यापार बहुत तेजी से चल रहा

है। बङ्गाल और मध्यप्रान्त के ब्राह्मण एवं कायस्थ जाति मे, पंजाब के कुलीन क्षत्रियों में, पूना के ब्राह्मण, बम्बई के पारसी और सिंधु की अपनी आमिल जातिमें वरों को प्रकट रूप से नीलाम करने का व्यापार सुन्दर रीति से चल रहा है। अभागे भारतीयों की बात तो दूर रही, विलायत के सभ्य और उच्चकुल समाज में भी इसी प्रकार के दहेज का रोग लगा है। वहाँ भी उच्चकुल के वरश्रेष्ठ इसी प्रकार प्रकट रूप में नीलाम होते हैं। जिस प्रकार कन्या-विक्रय करनेवाली जातियों में कन्या का जन्म नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अपनी जाति में वर के विक्रय से वर का जन्म भी नष्ट हो जाता है। दोनों की भयंकर हानि होती है। बेचारी लड़कियाँ, जिनके माता-पिता के पास वर को देने के लिये पर्याप्त धन नहीं मिलता, अधिकांश कुमारी रहती हैं; यदि वे किसीको अपनी लड़की ब्याह नहीं देते, तो वह किसी दुष्ट के पंजे में पड़कर जन्मभर दुःख उठाती रहती है। सम्पूर्ण भारत में सबसे सुधरी हुई पारसी जाति में अनेक अबलाएँ ३५, ४० वर्ष की अवस्था होनेपर भी कुमारी ही अवस्था में देखी जाती हैं।

मैं जब बंबई के विल्सन कालेज में पढ़ रहा था उस

समय वहाँ पारसियों से मेरा बड़ा सम्पर्क था जिससे उनकी जाति की यह अन्तरंग दशा मुझे ज्ञात हुई। कितनी ही पारसी युवतियाँ अपनी इस दयनीय दशा पर आँसू बहाती हुई दीख पड़ती थीं। हमारी जाति में भी गरीब कन्याओं की यही दशा है और यह स्थिति जब तक वर्तमान रहेगी; अपनी या अपनी सदृश रिवाज को पालन करनेवाली जातियों में नैतिक उन्नति की आशा करना सम्भव नहीं है। इन प्राचीन रूढियों के अधीन मैं नहीं हूँ। मैं तुम्हारे सदृश एक अनाथ; परन्तु सुशीला स्त्री को अपनी गृहलक्ष्मी बनाने को उत्सुक और उद्यत हूँ। यदि स्त्री-पुरुष को अपना संसार सुखमय बनाना है, तो आपस मे प्रीति-बन्धन का होना आवश्यक है।'

'मोहनलाल! आजतक मैं आपको मनुष्य समझती थी; परंतु आज मैंने समझा कि आप देवता हैं।' रोहिणी ने कहा।

'तुम मेरे साथ विवाह करने को तैयार हो या नहीं? तुम्हारे मन में मेरे विषय में कोई शंका न हो तो वचन दो।' मोहनलाल ने कहा।

'मेरे मन में किसी प्रकार का संशय नहीं है; पर

मेरे प्रतिपालकों का वन्धन है ।' रोहिणी ने विनय-पूर्वक कहा ।

'तुम्हें अपने प्रतिपालकों का वन्धन कैसा है; तुम्हारे प्रतिपालक कौन हैं ?'

थोड़ी देर तक रोहिणी चुप थी । फिर अपने मन में सब बातों को विचार कर कहने लगी—'जिस भेद के जानने का प्रसङ्ग आज तक न आया था, उसे आज कहना पड़ रहा है । जिस समय मैं यहाँ अनाथाश्रम मे रहने के लिए लाई गई ; मेरी अवस्था वहुत छोटी थी । अधिक से अधिक मेरी अवस्था पाँच वर्ष की रही होगी । कुछ दिन पूर्व मेरी बाल्यसखी सिंजल अपने पालक के साथ आश्रम को त्यागकर चली गई । उस समय से मेरे मन में यह चिंता रहती है कि यदि मेरे प्रति-पालक भी मुझे घर ले जावें तो क्या होगा ? मैंने लेडी सुपरिन्टेन्डेएट से अपने प्रतिपालक के विषय में अनेक प्रश्न पूछा था ।' उन्होंने कहा था—

'रोहिणी ! सुनो ! अव तुम कोई वच्ची नहीं हो । जो कुछ मैं तुम से कहती हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो, और याद रखो । यह वात चार दिन पीछे सुनने ही में आती ।

आज जो यह प्रसंग निकल आया है, अच्छा ही हुआ। तुम्हें इस आश्रम में आये आज बारहवाँ वर्ष चल रहा है। यह आश्रम १८— ई० के जनवरी में स्थापित हुआ था। उस समय तेरी अवस्था पाँच वर्ष की पूरी न थी। आश्रम के रजिस्टर में लिखा हुआ तुम्हारा जन्मदिवस नहीं मिलता, परन्तु जो स्त्री तुमको यहाँ लायी थी, उसके कहने के अनुसार तुम्हारा यह सत्रहवाँ वर्ष चल रहा है। वह स्त्री मुहरबन्द एक छोटी पेटी और एक सील किया हुआ पत्र मुझे दे गई है। स्त्री ने वह पत्र ५ वीं अक्टूबर सन् १९०— के दिन तुमको देने के लिए व्यवस्थापकों को आज्ञा दी है। रोहिणी! यह अगस्त का महीना चल रहा है। इससे वह पत्र तुमको मिलने में अभी दो मास का विलम्ब है। परन्तु उस स्त्री ने इतनी सख्त ताक़ीद कर दी है कि वह पत्र अक्टूबर सन १९०— को तुमको दे दिया जाय; पर उस दिन से भी पाँच दिन के भीतर खोल कर उसे तुम मत पढ़ना; क्योंकि सम्भव है उस पाँच दिन के भीतर तुम्हारे पालकों में से कोई आकर तुम्हें ले जाय। यदि कोई इस पाँच दिन की अवधि में न आवे तो ११ ता० को वह पत्र फाड़कर तुम पढ़ लेना और जो उचित जँचे, उसके अनु-

सार कार्य करना।' यही मेरे भाग्य का भविष्य है। रोहिणी ने कहा।

'क्या तुमने मुहर बंद पेटी को देखा है?' मोहनलाल ने पूछा।

'हाँ, वह पेटी बहुत साधारण है; पर अधिक भारी है। गत वर्ष आश्रम की सफाई हो रही थी, इससे पेटी को एक कोठरी से उठाकर दूसरी में रखने के लिये तीन-चार वार उठाना पड़ा था।' रोहिणी ने उत्तर दिया।

रोहिणी का यह वृत्तान्त सुनकर मोहनलाल कुछ देर तक गंभीर और गहन विचार में निमग्न हो गया। वात का रुख वदलने के लिए रोहिणी ने पूछा—'आपको कराँची कव जाना होगा?'

'साढ़े दस की ट्रेन से।' मोहनलाल ने कहा।

'परन्तु आपके मुख पर इतनी देर तक गंभीरता किस कारण से आ गई थी।'

'तुम्हारा वृत्तान्त सुनकर मेरा विचार कुछ वदल गया है। मैंने एक दूसरा ही निर्णय किया है।' मोहनलाल ने कहा।

'वह निर्णय क्या है?' रोहिणी ने आतुरता से पूछा।

'वह यह है—पत्र तुम्हारे हाथ में जाने के पीछे

पाँच दिवस के भीतर तुम अपने किसी पालक के आने की बाट देखोगी। इस अवधि में यदि कोई न आवेगा, तब मैं तुमको ले जाऊँगा। मैं तुम्हारा पालक, तुम्हारे जन्म के सुख-दुःख का साथी हूँ। इसमें तुम्हारी हार्दिक इच्छा है या नहीं?'

'आप बार-बार यही प्रश्न पूछते हैं। आपके समान पति का मिलना मेरा परम सौभाग्य होगा। परन्तु आपके पिता मुझसे विवाह करने की सम्मति कैसे देंगे?' रोहिणी ने संशय प्रकट किया।

'रोहिणी! यदि तुम्हें मेरे साथ परिणय की इच्छा होवे तो मुझे स्वीकार है। पिताजी मेरे सुख-मार्ग में कभी बाधक न होंगे। क्या मैं इस विषय में तुम्हारी लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट से पूछ सकता हूँ?' मोहनलाल ने आश्वासन देते हुए कहा।

'क्या पूछना है?'

'यह कि यदि उस पाँच दिन के अन्दर तुमको ले जाने के लिए कोई यहाँ न आवे तो मैं पालक के स्थान पर तुम्हें ले जाने का प्रबन्ध करूँ।' मोहनलाल ने जवाब दिया।

'ठीक है, इसमें हमारी सहमति है।'

मोहनलाल ने घड़ी निकालकर देखा तो आठ बज गये थे। इस समय अनाथाश्रम में पढ़ने के लिये घंटी बजी। 'रोहिणी! समय पूरा हो गया। मैं जाने की अनुमति चाहता हूँ।' मोहनलाल ने कहा। रोहिणी ने उसे प्रेमपूर्वक देखा और अपने नेत्रों के संकेत से उसे जाने की आज्ञा दे दी। इसके पीछे तेजी से वह लाइब्रेरी की ओर चली गई।

रोहिणी लायब्रेरी में जाकर पढ़ने बैठ गई; परन्तु आश्रम की व्यवस्थापिका मोहनलाल की बातें स्वीकार करेंगी, और मोहनलाल के पिता इस विवाह का अनुमोदन करेंगे आदि प्रश्नों के विचार में पड़ गई। अतः पढ़ने मे उसका चित्त न लगा।

६

मध्याह्न का समय था। महात्मा गोपालदास अपने खानगी बैठक में मृदु आसन पर विराजमान था। छत में पंखा लटक रहा था; उसमें बँधी हुई डोरी पकड़ कर एक लड़का बाहर बैठा पंखा झल रहा था। मन्द और शीतल हवा महात्मा के शरीर को स्पर्श कर ताप का निवारण कर रही थी। जँगलों और दरवाजों में खस का पर्दा लगा था। उस पर जल छिड़का जा रहा था। सब साधनों का प्राचुर्य था। महात्मा ग्रीष्मकाल मे शरदृऋतु का आनन्द ले रहा था।

उसके पास चार आदमी बैठे थे। इनका आकार-प्रकार विचित्र ढंग का था। देखने से मालूम होता था कि ये कोई डाँकू, उठाईगीर हैं। महात्मा ने उनसे कहा—'वाह भाई ! वाह ! परसों रात में तो तुम लोगों ने कृत्रिम डॉका का अद्भुत प्रदर्शन किया।'

'यह तो हमारा पैतृक गुण है। यदि यह कला न आती होती, तो भला परदेश में पेट किस प्रकार भर सकता।' एक ने कहा।

'पर महात्माजी ! तलवार तो आप ने कभी देखा भी न था। पर, तलवार के जख्म का ढोंग करने में आपने जो कुशलता दिखाई वह कभी नहीं सुनी गई थी। हम तो आपके ढोंग के अभिनय को देखकर दंग हो गये थे।' दूसरे ने कहा।

'महात्माजी ! यदि इस प्रकार का कोई दूसरा कार्य हो तो बताओ। ऐसे कार्यों मे हमारे ऐसा कुशल अन्य कोई व्यक्ति न मिल सकेगा।' तीसरे ने कहा।

'प्रतिज्ञा के अनुसार पैसा देने और अपने वचन का पालन करने में आप जैसा उदार कोई मनुष्य नही दीख पड़ता। आप आखिर महात्मा हैं न ?' चौथे ने कहा।

महात्मा ने तुरत अपनी गद्दी के नीचे से नकद एक सौ रुपया निकाल कर उनको दे दिया।

जब यह लोग जाने को तैयार हो रहे थे, उसी समय एक शिष्य ने अन्दर आकर खबर दिया—'गुरु महाराज! दीवान आलमचन्द आकर आँगन में बैठे हैं और आपका दर्शन करना चाहते हैं।'

'दीवानजी को बगल की बैठक में ले आवो। जिससे इन लोगों की नजर उन पर न पड़ सके।' महात्मा ने कहा।

शिष्य उतावली से आलमचन्द को दूसरे दालान में ले गया। बीच के दरवाजे से आलमचन्द महात्मा के बैठक में आये और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर बैठ गये। कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—'महात्माजी! कल तबीयत अस्वस्थ होने से न आ सका; मेरे अपराध को क्षमा करें। परसों रात को यदि आप हमारी रक्षा न किये होते, तो धन और प्राण दोनों के नाश का समय उपस्थित हो गया था।'

'कृपाकर ऐसी बात फिर न कहना। मैंने अपने कुंज-विहारी श्रीकृष्ण भगवान् की आज्ञा को कर्तव्य मानकर

पालन किया था। सहायता करनेवाले तो घट-घट व्यापी श्रीहरि हैं।' महात्मा ने कहा।

'आपने चोरों के पंजे से बचाया और मेरा मान रक्खा। अतः मेरी सम्पत्ति को अपनी रक्षा में लेकर कृपया मुझे इस चिंता से मुक्त कीजिये। संपत्ति के कारण से ही मेरे घर पर डाँका पड़ा था। अब मैं काशी जाने को आतुर हो रहा हूँ।' आलमचन्द ने विनीत भाव से कहा।

'दीवान! मेरे सामने धन का नाम न लो। मरण-पर्यन्त धन न स्पर्श करने की मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है। यह मैं आपसे अनेक बार कह चुका हूँ। संसार में धन ही सब अनर्थों का मूल है। हे राधारमण! हरि! तुम कहाँ हो।'

'पूज्य महात्माजी! मैं कौन-सा मार्ग लेऊँ?' आलमचन्द ने कुछ नैराश्य का भाव दिखाते हुए कहा।

'देखो, महाशय! लक्ष्मी का नाम सुनकर मेरे शरीर में कितनी कँपकँपी हो रही है। जब केवल नाम सुनकर मेरी यह दशा है, तो लक्ष्मी के स्पर्श से कितना विकार होगा, यह तुम स्वयं कल्पना कर सकते हो। हे श्रीगोपिका-वल्लभ! मुझे जल्दी बुला लो!' महात्मा ने निस्पृहता का भाव दर्शाया।

'महाराज! क्या आप किसी प्रकार की दया न करेंगे ?' आलमचन्द ने निराश होकर पूछा। जिस प्रकार कोई अगाध समुद्र में डूब गया हो, उसी तरह गोपालदास दस-पन्द्रह मिनट चुप रहा; पश्चात् एकदम राधावल्लभ! राधावल्लभ! का बार-बार नामोच्चारण करने लगा।

'आलमचन्द! तुम्हारी रक्षा के लिये राधापति ने मुझे एक उपाय सुझाया है। मैं अपने शरीर से तुम्हारी संपति को स्पर्श भी न करूँगा; यह निश्चित है। मेरी एक विधवा साली है; वह जिस प्रकार अद्वितीय बुद्धिमती है उसी प्रकार गुणवती और सतीसाध्वी भी है। मैंने अपने धन-भंडार की चाभी उसीके हाथ में सौंप दिया है। हे दयामय राधेश्याम! कुछ दया करो।' महात्मा ने अपनी निस्पृहता में कुछ न्यूनता दिखलाई।

'तब मेरी सम्पत्ति की व्यवस्था वह साध्वी अच्छी तरह कर सकती हैं।'

'मैं भी इसी विचार में पड़ा हूँ। मैंने अपनी साली को वैष्णवी बना दिया है, आप उसके पिता के समान हैं, इससे उसको यहाँ बुलाने मे कोई बाधा नही है।' यह कहकर महात्मा ने 'ललितादेवी' कहकर पुकारा।

बुलाते ही महात्मा की साली वहाँ आकर खड़ी हो गई। वह एक अत्यन्त रूपवती युवती थी। उस सर्वांग सुन्दरी की अवस्था २२ या चौबीस वर्ष से अधिक न थी। वह विधवा थी। एक सोने की चूड़ी के अतिरिक्त उसके शरीर पर अन्य कोई अलंकार न था। वस्त्र उज्ज्वल थे। सफेद चोली और सफेद डोरियादार धोती। बंगाल में विधवाएँ केश कटवा लेती हैं पर इसके केश कलाप वर्तमान थे। इसके शरीर की बनावट और आकार को देख, यह नहीं कहा जा सकता था कि यह कोई वंगमहिला है; आते समय उसने घूँघट काढ़ लिया था पर पीछे घूघट का पट खोल मृदु मंद हँसती हुई कोकिला स्वर से महात्मा-जी से पूछने लगी—'महाराज! इस दासी को आपने क्यों याद किया है?'

आलमचन्द ने कहा—'पुत्री! मैं तेरे पिता के समान हूँ। अतः तू मेरे ऊपर कृपा करे तो............

'दीवानजी! जरा शान्त होइये। यह अवश्य आपके ऊपर कृपा करेगी। यह परोपकारिणी है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि यह कोई देव-कन्या है और शाप भ्रष्ट होने से परोपकार करने के लिये इस मृत्युलोक में अवतरित

हुई है। यह लक्ष्मी स्वरूपिणी दया की एक प्रतिमूर्ति है। इसके गुण की परीक्षा कर मैंने इसका नाम 'दयामयी ललिता' रखा है।

'महाराज! आप साक्षात् विष्णु के अवतार हैं। आपके सम्मुख मेरी कोई महत्ता नहीं है। मेरी प्रशंसा कर क्यों मुझे लज्जित कर रहे हैं?' ललिता देवी ने कहा।

'धन्य हो, ललिता देवी! तुम जानती हो मैं पराये धन को हाथ से नहीं छूता। मुझे धन देखने की आकांक्षा नहीं है। तुम्हें मेरी एक आज्ञा माननी पड़ेगी।' महात्मा ने प्रस्ताव किया।

'आपकी आज्ञा इस दासी को सदा शिरोधार्य है। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है?' कहकर ललितादेवी ने अपनी सम्मति दिखाई।

'यह भक्त शिरोमणि दीवान आलमचन्द नि सन्तान हैं। यह पत्नी सहित काशी-निवास करना चाहते हैं। आज-कल संसार में विश्वासपात्र मनुष्य बहुत थोड़े हैं। इनका मुझमें विश्वास और पूज्यभाव है। यह अपनी सम्पत्ति मुझे सौंप कर जाना चाहते हैं। मैं धर्म संकट मे पड़ा हूँ। यदि नहीं रखता हूँ, तो यह हरिभक्त निराश हो जाता है और

रखता हूँ तो परधन को न स्पर्श करने की मेरी भीष्म प्रतिज्ञा भंग होना चाहती है। तुम कृपा कर इनकी संपत्ति, रोकड़ इत्यादि तिजोरी में रख लो और जिस समय जितना द्रव्य वह मँगावें उतना भेजना स्वीकार करो, तब यह चिन्ता-मुक्त हो जाँय और तुमको आशीर्वाद देकर काशी निवास कर सकें।'

'महाराज! मैं अबला हूँ। इतनी बड़ी सम्पत्ति का उत्तरदायित्व किस प्रकार ले सकती हूँ? तिसपर आज-कल रात-दिन चोर और डाकुओं का भय बना रहता है। कहीं विपरीत बात हुई, तब सारा दोष मेरे या आपके सिरपर आवेगा, और इसके लिए ईश्वर हमलोगों को दोषी ठहराएगा।' ललिता देवी ने अपना संदिग्ध भाव दिखाया।

'तुम्हारी यह शंका सत्य और मान्य है। यह शंका निवारण हो जाय और तुम्हारे मन में भय का कोई कारण न रहने पावे; इसकी व्यवस्था मैं कर दूँगा। तुमसे मेरा शतशः अनुरोध है; सहस्र अनुरोध है—तुम मेरे कहे अनुसार यह कार्य करो; यदि ऐसा न करोगी तो तुम्हारे 'दयामयी' नाम में कलंक लग जायगा।' महात्मा ने पुनः आग्रह करके कहा।

'यदि ऐसा है, तो यह भार मैं अपने सिर पर उठाने को तैयार हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करना ही मेरा धर्म है। आपके वचन का मैं कभी अनादर नहीं कर सकती।' ललितादेवी ने कहा।

ललितादेवी की इस प्रकार अनुमति मिल जाने से महात्मा गोपालदास गंभीर मुद्रा से आलमचन्द को लक्ष्य कर बोला—'हे हरिभक्त! आजकल उत्तरी हिन्दुस्तान में दुष्काल पड़ा है। सिंध को फलद्रूप देश जानकर गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ और मारवाड़ के दुष्काल-पीड़ित लोग सिंध में आकर भर गये हैं। यहाँ उनको कोई-न-कोई रोजगार मिलजाता है और उनका पेट भरता है। तिसपर भी कितने ही बदमाशों ने अधिक धन पाने के लोभ से लूट-पाट और चोरी-बदमाशी से देश में आतंक खड़ा कर दिया है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उस दिन आपने देख ही लिया है। इससे आप समझ सकते हैं कि आजकल अपने घर में द्रव्य रखना कितना उत्तरदायित्व-पूर्ण है। हे हरि! कल्याण करो।'

'आपकी यह बात अक्षर-अक्षर सत्य है।' आलमचन्द ने कहा।

'यहाँ हरि के नाम पर जो कुछ आता है वह सदाव्रत देने तथा भण्डार में ही समाप्त हो जाता है। इससे उनके रक्षा की कोई चिन्ता ही नहीं रहती। केवल ठाकुरजी के आभरण आदि की रक्षा करनी पड़ती है। उसकी रक्षा करते-करते हमारे नाक में दम आ गया है। छः महीना पहले एक बदमाश ने ठाकुरजी को लूट लेने का प्रयत्न किया था। हे प्रभो! कलिकाल का प्रभाव कितना भयंकर है!'

'हाँ, इस महापातक की बात मैंने सुनी थी।' आलमचन्द ने कहा।

इसीसे नीतिशास्त्रवालों ने कहा है—'लक्ष्मी जिस प्रकार सुखकारिणी है, उसी तरह प्राणहारिणी भी है। मुझे भय है कि तुम अपनी सम्पत्ति हमारे मन्दिर में रखते हो और इस बात की यदि चर्चा चारों ओर फैल जाय और मेरे मन्दिर में डाँका पड़ जाय, तब मैं क्या करूँगा! इससे यदि तुमको धर्म में और मेरे शुद्ध व्यवहार में पूर्ण विश्वास हो, तो मेरे मन्दिर में अपनी सम्पत्ति रखने की बात किसी अपने सच्चे-से-सच्चे मित्र से भी न कहो; वरन् सब पर यह प्रकट कर दो कि काशी-निवास के लिये जाते समय तुम अपनी सारी सम्पत्ति काशी में दान-धर्म करने के वास्ते लिये जा रहे हो;

यदि ऐसा करने की तुम्हारी इच्छा न हो या तुम्हारे मन मे संशय हो, तो तुम अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था अन्यत्र करने को स्वतन्त्र हो। तुम इसे यहीं रखो—यह हमारा आग्रह नही है।' महात्मा ने भय और निर्भय होने का भाव दिखाया।

आलमचन्द विचार मे पड़ गये। उन्हे आशा थी कि महात्मा सब सम्पत्ति अपने पास रखने की एक रसीद लिख देंगे। पर दूसरे के सन्मुख वह इस बात की चर्चा करने की आज्ञा नही देते। इससे अब उन वस्तुओं को धरोहर की तरह रखने के रसीद की क्या आशा हो सकती है! पहले आलमचन्द के हृदय मे प्रकृति के नियम के अनुसार शंका उठी; पर तुरत धर्म की अंधश्रद्धा ने संशय के स्थान पर उनमें विश्वास उत्पन्न कर दिया। महात्मा की युक्ति में उन्हें सत्य दिखाई पड़ने लगा। इससे इस विषय मे किसीसे कुछ न कहने का निश्चय कर तथा महात्मा मे पूरा विश्वास करके उन्होंने पवित्र बुद्धि से कहा—'मै इस समय भयंकर विपत्ति में पड़ा हूँ। इससे आप जो कुछ उपाय बतावें, उसे करने को मैं तैयार हूँ। मैं अपने सम्बन्धियों और मित्रो से कह जाऊँगा कि अपनी सब सम्पत्ति काशी—दान-धर्म करने के लिये साथ ले जा रहा हूँ।

'श्री वृन्दावन-विलासिनी, श्रीमती राधारानी की यह सब इच्छा है। हे राधाकान्त ! तुम इस समय कहाँ चले गये ? श्री राधे, श्री राधे !' महात्मा ने भक्ति का भाव दिखाया।

आलमचन्द, महात्मा और उनकी साध्वी साली ललितादेवी के चरणों में मस्तक नवाकर काशी-निवास की व्यवस्था करने के लिये वहाँ से उठकर हर्ष-पुलकित हृदय से घर आये और सब बातें अपनी साध्वी स्त्री से कह सुनाया। हिन्दू स्त्रियाँ धर्मिष्ठा होती हैं। यशोदा ने महात्मा की कृपा की बात सुनकर विशेष हर्ष प्रकट किया।

दूसरे दिन आलमचन्द भूषणों की एक छोटी पेटी, सोना-मोहरों से भरी तीन थैलियाँ, और नोटों का एक बंडल, लेकर महात्मा के पास आये। महात्मा ने ललिता देवी को बुलाकर उनकी सारी सम्पत्ति उसके अधिकार में दे दिया। सम्पत्ति को देकर आलमचन्द ने कहा—'इस पेटी में सोना, चाँदी, हीरा-मोती का लगभग पचीस हजार का भूषण है। और यह गिनी, मुहर और नोट आदि भी दो लाख रुपये के हैं। श्रीमती ललितादेवी की इच्छा हो, तो इन्हें गिनकर देख लें।'

'हरि ! हरि ! आपने यह क्या कहा ! आप ऐसे परम-

हरिभक्त धन ऐसी तुच्छ वस्तु के लिए असत्य बोलेंगे। यह मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं है। जो कुछ है वह आप जानते ही हैं।' ललितादेवी ने कहा।

'हाँ, दीवान जी! आप काशी से जब पत्र लिखें, उसे लिफाफे में बन्द करके भेजें; कार्ड पर कभी मत लिखना। कारण यह है कि कार्ड पढ़ लेने की कुछ लोगों को कुटेव होती है; इससे गुप्त बातें प्रकट हो जाती हैं। हे राधारमण! रक्षा करो। मान की रक्षा करो।'

आलमचन्द ने इस बात को भी स्वीकार कर लिया। उस दिन उन्होंने महात्मा तथा अन्य साधुओं को सन्ध्या समय मालपुआ खिलाया और अपना मकान इत्यादि पुराने नौकरों को सुपुर्द कर अतिथि और मेहमान के भोजन और निवास की व्यवस्था के लिए दो हजार रुपए नौकरों के नाम से बङ्क में जमा कर दिया। दूसरे दिन रात को साढ़े बारह वजे पंजाव मेल से आलमचन्द और उनकी धर्मपत्नी की यात्रा का समय था। कुछ सगे-सम्बन्धी और स्वामि-भक्त नौकर उनको पहुँचाने के लिये स्टेशन तक आये थे। ट्रेन-छूटने का जब समय आया उस समय आलम-चन्द जैसे उदार और सज्जन स्वामी तथा यशोदा

सरीखी साध्वी और उदार सेठानी के वियोग-दुःख से सन्तप्त होकर सब नौकर आँसू बहाने लगे। दम्पत्ति ने उनको आश्वासन दिया और एक नौकर को साथ लेकर रवाना हो गये।

आलमचन्द ने इतना कौशल अवश्य किया कि महात्मा की आज्ञा से ललितादेवी को दिये हुए नोटों का नम्बर अपनी नोट बुक में लिख लिया था और उनके पास रखे हुए आभूषणों को बनानेवाले सोनार और जौहरियों की दी हुई रसीद को भी अपने साथ ले लिया था।

७

सिंध हैदराबाद के निवासी स्वर्गवासी दीवान दयाराम जेठमल ने वकालत से मान और अतुल सम्पत्ति पैदा करके करॉची में एक कालेज स्थापित किया था। मोहनलाल ने यहीं पढ़कर प्रीवियस और इन्टरमीडिएट पास किया था। वह प्रिवियस के सेकेण्ड टर्म में बम्बई के विल्सन कालेज मे अभ्यास कर रहा था। वह एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी था। कालेज के प्रोफेसर और प्रिन्सपल उसे अपने कालेज का विद्यार्थी कहने में गौरव समझते थे। इस कालेज में फीस, पुस्तक और खाने-पीने का कुल खर्च

मिलाकर पचास पचपन रुपए मासिक लगता था। इसीसे इसमे धनवान विद्यार्थी ही पढ़ते थे। यदि सिंध के विद्यार्थी मितव्ययिता की वात जानते, तो तीस-चालीस रुपये में भी खर्च चल सकता था। पर, साधारण रीति से कितने ही सिंध के युवक खर्चीले स्वभाव के होते हैं। उन पर फैशन का भूत सवार रहता था, और मितव्ययिता की वात तक नहीं करते थे। देखा-देखी लड़के खर्चीले वन जाते हैं और वेचारे पिता, ऋण मे डूव जाते हैं। मोहनलाल हैदरावाद के एक धनवान पिता का पुत्र था। उसे इस कालेज में पढ़ने में कोई अड़चन न थी। विगड़े हुए विद्यार्थी—मोहनलाल को विवेकी और विचारवान् समझकर उसे पागल कहते थे। वह अपने पिता के पास से प्रति मास आनेवाले पचास रुपये में से दस रुपये मासिक वचा लेता था और उसी से वह हैदरावाद आने-जाने का खर्च चलाता था। जितना वम्वई से सूरत या पूना है उतना ही करॉंची है। हैदरावाद में वह अपनी मनमोहिनी रोहिणी को देखने के लिए प्रायः जाया करता था।

सिंध कालेज के वोर्डिङ्ग की इमारत और उसकी व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि वड़े-वड़े धनवान् गृहस्थों का

बँगला, लॉज, एवं निवास-कुञ्ज की उसके आगे कोई महत्ता न थी। प्रत्येक विद्यार्थी को अलग-अलग कमरा मिला था। उस कमरे में एक मेज, तीन कुर्सी, एक बेंच, कमरे के बराबर का फर्श, पुस्तक रखने के लिए बुकस्टैण्ड और एक लैम्प तथा एक चारपाई आदि वस्तु कालेज की तरफ से दी गई थीं।

इसके अतिरिक्त शौकीन और फैशन के पुजारी विद्यार्थी अन्य वस्तुयें अपने पास से खरीद कर अपने-अपने कमरों को सजाये थे।

जेनरल रूम की तरह एक कमरा सजाया गया था। सुबह शाम अपने अपने कमरे में चाय पीने के बदले इस कमरे में इकट्ठे होकर लड़के गप्प करते हुए चाय-काफी का प्याला उड़ाते थे!

इस हाल की लम्बाई लगभग तीस फीट और चौड़ाई तेइस फीट से ऊपर थी। चूना पोतने से दीवाल दूध के समान उज्ज्वल दिखाई पड़ती थी। ऊपर बारीक कैनवास की छत थी और उस पर चूना की चाँदनी थी। नीचे भूमि पर कार्पेट बिछा था; और उसके चारो ओर डेढ़ फीट चौड़ी रंगीन कालीन का हासिया-किनारा लगा था। एक

तरफ खुली आलमारी में कितनी ही अस्त-व्यस्त पुस्तकें पड़ी थीं; और उनके साथ-साथ कितने ही दैनिक और मासिक अँग्रेजी पत्र पत्रिकाएँ भी पड़ी थीं। कमरे के मध्यभाग में एक बड़ा गोल, मेज रखा था; और उस पर टेबुल-क्लाथ बिछा था। मेज के आसपास बाईस-तेईस कुर्सियाँ पड़ी थीं। उस पर मोटे-मोटे ग्लास पड़े थे; और ब्राण्डी की एक खुली बोतल रखी थी। एक कोने में एक सुंदर मेज रखा था; और उस पर शृङ्गार करने की अनेक वस्तुएँ रखी थीं और उसके साथ ही एक गिलास भी रखा था। इसी कोने में एक गोलाकार बड़ा मेज था; और उसके ऊपर ताजे आये हुये तीन-चार पत्र और डी० जे० सिन्ध कालेज-मेगजीन दिखाई पड़ती थी। दोनों कोनों में एक तिपाई पर तीन-चार सोडावाटर की बोतलें और खाली प्याले आदि वस्तुएँ पड़ी हुई थी। बाहर के किसी मनुष्य के आने से रोकने के लिए दर्वाजे पर एक साइनबोर्ड टँगा था।

शाम के लगभग सात या साढ़े सात बजे थे। रात्रि का आगमन हो रहा था। शांतिगृह मे लैम्प का प्रकाश हो चुका था; परन्तु भीतर कोई आदमी न था। अचानक

एक तरुण ने आकर दरवाजे पर धक्का मारा। दरवाजा स्प्रिंग-वाला था। भीतर की ओर ढकेलने से वह खुल गया। वह युवक कमरे में जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया; और सन्ताप करता हुआ धीरे-धीरे कहने लगा—'यह बदमाश आज कितने ही दिन से हम लोगों के साथ रहता है। पर किसी रीति से हमारे मंडल के रङ्ग में नहीं मिलता। आज कोई चाल करके इसे भ्रष्ट करने का उपाय करें। यह अक्ल का दुश्मन शराब का नाम सुनकर भड़क उठता है। मैं अपने हार्दिक मित्र नानकराम के द्वारा इसको शीशा में उतार सकता हूँ। नानकराम भीतर से पूरा है, मगर बाहर से साधुता दिखाने की कला मे प्रवीण है। इस प्रकार विचार कर उसने मेज पर की घंटी बजाई। आवाज होते ही एक नौकर ने आकर पूछा—'क्या आज्ञा है?'

'नानकराम के कमरे में जाओ और यदि वह आया हो तो मेरा नाम बताकर बुला लाओ।' उस तरुण ने कहा।

सेवक नानकराम के कमरे में गया। वह तुरत ही बाहर से आकर कपड़ा उतार रहा था। नौकर ने सन्देश कहा। नानकराम उतावली से वस्त्र बदलकर शान्तिगृह में आकर कहने लगा—'भाई लालचन्द! इतनी उतावली से मुझे

क्यों बुलाया ? थोड़ी देर में तो मैं स्वयं आने ही वाला था।' यह कहकर पास की एक कुर्सी पर बैठ गया।

'हमारे सब सहपाठी आ जाते तो मैं एक खानगी बात तुमसे कहना चाहता हूँ वह नहीं कह सकता। इसीसे उतावली से बुलाया है। मित्र! आज तो किसी प्रकार महात्मा मोहन को शीशा में उतार कर अपनी मण्डली में मिलाना होगा। यह सब बातों में अपने से आगे निकला जा रहा है और अपनी मर्यादा हीन हो रही है। मेरे ही साथ इसने पढ़ना शुरू किया। पर हम प्रीवियस में तीन वर्ष रह गये और यह तो बी० ए० क्लास में है। अवश्य ही यह पहले ही चान्स में निकल जायगा। क्रीकेट में देखो, तब भी पहले और सोशल गैदरिंग में भी पहले। इसे देखकर प्रोफेसर नर्म पड़ जाते हैं। जब हमें देखते हैं तो नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और धमकी देते हैं। आज प्रात: समय प्रोफेसर मोहन के साथ हँस-हँसकर बातें कर रहे थे; और सन्ध्या समय मोहन को अपनी गाड़ी में बैठाकर हवा खाने के लिए क्लिफ्टिन की ओर ले गए थे। क्या इसमें अपना अपमान नहीं है ?'

'भयङ्कर अपमान, पांडव पुत्र ने जरासन्ध का जिस

प्रकार अपमान किया था उसी प्रकार का अपमान! यह असह्य है।' नानकराम ने हाँ में हाँ मिलाया।

'यह सब अपमान मैं सह रहा था। पर यह मेरे प्रेम के मार्ग में आया है। हैदराबाद के अनाथाश्रम में रोहिणी नाम की एक लड़की है। वह बहुत सुन्दरी है। कुछ दिनों से मेरी दृष्टि उस पर लगी है। मोहन भी उससे प्रेम करता है। और महीने मे दो-चार बार उससे मिलने के लिए हैदराबाद जाता है। आजतक मैं यह विचार करके कि यह बाजार की मिठाई है जिसकी इच्छा हो वह खा ले, टलता जाता था। पर, अफसोस! मोहन उससे विवाह कर अपनी स्त्री बनाना चाहता है; और यदि यह हो गया तो इस शिकार का मेरे जाल में फँसना असंभव होगा।'—लालचन्द ने अपने क्रोध का दूसरा कारण भी बतलाया।

'ये सब बातें तुम्हें किस प्रकार मालूम हुईं?' नानकराम ने आश्चर्य दिखाते हुए पूछा।

'मोहन बार-बार रोहिणी से मिलने जाता है। यह तो मैं कुछ दिनों से जानता था; परन्तु यह रहस्य नहीं जानता था। आज सुबह बाथरूम नहाने जाते समय मैं मोहन के

कमरे के पास से जा रहा था। उस समय मोहन दरवाजा खुला छोड़कर मुझसे पहले ही नहाने चला गया था। उसके मेज पर एक पत्र पड़ा था; अनायास इच्छा के उत्पन्न होने से मैंने कमरे में जाकर उस पत्र को पढ़ा। उसमें अनाथाश्रम की पारसी लेडी सुपरिन्टेण्डेण्ट ने लिखा था—'तुम्हारा पत्र मिला—जो रोहिणी के पालकों में से उस वक्त कोई नहीं आवेगा, तो प्रसन्नता से तुम उसे ले जाओ। तुम्हारे सदृश गुणी गृहस्थ से परिणय कर रोहिणी सुखी होगी। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। तुम स्वयं आगामी रविवार को हैदराबाद आकर मिलना।—यह पत्र कल ही आया है। आज शनिवार है। कल रविवार है। इससे मोहन आज के मेल से या कल सवेरे रवाना होगा। मेरा विचार है कि उसको किसी प्रकार यहाँ से जाने न दिया जाय; यदि जाय भी तो रोहिणी और अनाथाश्रम के व्यवस्थापकों के सम्मुख उसे अपमानित करूँ, जिससे उसकी आशा सफल न हो सके। यदि ऐसा न हो सके तो कोई ऐसा प्रबन्ध करो जिससे ये दोनों आजन्म एक दूसरे को देख न सकें।' लालचन्द ने भयानक विचार प्रकट किये।

'मित्र लालचन्द ! मुझमें इतना साहस और शक्ति है कि एक बार आकाश के तारे भी नीचे उतार लाऊँ; सुधरे को बिगाड़ दूँ और बिगड़े को सुधार दूँ। किन्तु यदि द्रव्य रहे तभी यह सम्भव है। तुम मेरे मित्र हो, मैं तुमसे कुछ लेना नहीं चाहता। परन्तु कार्य करनेवाले दूसरे अवश्य द्रव्य लेंगे।' नानकराम ने कहा।

रुपये का नाम सुन निःश्वास लेकर लालचन्द कहने लगा—'अफसोस, आफत, कयामत ! आज ही घनश्याम को एक सौ पचीस रुपए देने हैं। वादा किया है। पर मुझसे यह वादा पूरा करना सम्भव नहीं है। रात जब तुमने कहा था—उस समय खेलना छोड़कर मैं उठ गया होता तो लगभग डेढ़ सौ रुपया मुझे मिला होता। हठ में आकर उसे तो हार ही गया; साथ ही अपनी गाँठ का सवा सौ रुपया भी हार गया। कोई चिंता नहीं—किसी प्रकार यह रुपया देना ही होगा। नहीं तो आबरू में बट्टा लग जायगा। पिता रुपये देने में कजूसी करते जा रहे हैं। दर्जी का बिल आया है। मदिरावाले का बिल भी दो महीने से नहीं चुकाया है। इससे उसका तकाजा भी चल रहा है; मैं पैसे का क्या प्रबन्ध करूँ? ब्याज पर रुपया लाऊ? पर ऐसा

हो कि मोहनलाल अपनी आशा में सफल न होने पावे।' लालचन्द ने लालच दिखाते हुए कहा।

'तुम रुपये-पैसे का प्रबन्ध करो। बाकी इन सबका भार मेरे सिर है।' नानकराम ने साहस बँधाया।

लालचन्द हैदराबाद के एक धनी तथा प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र था। परन्तु बाल्यावस्था से नीच सङ्गति में पड़कर विद्याभ्यास और सदाचार में प्रसिद्ध होने के बदले जूआ, मदिरापान, व्यभिचार और आलस्य इत्यादि दुर्गुणों मे वह सर्व प्रथम निकला। उसके पिता आवश्यक खर्च भेजते थे, पर उसका उससे पूरा नहीं पड़ता था। कभी-कभी वह अपनी किताबे भी बेंचकर खा जाया करता था; और सदैव ऋणभार से दबा रहता था। उसके भाषण व रहन-सहन से पाठकों ने उसके स्वभाव का अनुमान कर ही लिया होगा। नानकराम एक साधारण स्थिति के कुटुम्ब का दीपक था। वह बातचीत तथा खुशामद करने में विशेष निपुण था। लालचन्द-जैसे गाँठ के पूरे और आँख के अन्धे और अक्ल के अधूरे को हाथ मे पाकर वह उसे ही दिवालिया बना दिये था।

यह बातचीत चल रही थी इतने ही में दूसरे सहपाठी

के आ जाने से रुक गई।—'अहा! मिस्टर लालचन्द और नानकराम! आप लोग यहीं बैठे हैं और हमने आप लोगों के कमरे को खोज डाला।' एक विद्यार्थी ने कहा।

'मुझे यहाँ आये लगभग एक घण्टा हो गया। यदि तुम पाँच मिनट और देर करके आते तो हम लोग अपने कमरे में चले गये होते।' लालचन्द ने कहा।

'क्षमा करना भाई लालचन्द! आते-आते सदर बाजार में हम तीनों को एक पेग ले लेने का विचार हुआ इससे कुछ देर हो गई!' दूसरे विद्यार्थी ने कहा।

'परन्तु भाई! तुम्हें दुनियाँ की कुछ खोज-खबर भी है या नहीं। आज यूनिवर्सिटी में रजिष्ट्रार का तार आया है। आगामी परीक्षा एक मास के लिये टाल दी गई है। कारण बम्बई में प्लेग का प्रकोप है।' तीसरे ने कहा।

'अरे यार! तुम तो बात का बतक्कड़ करना खूब जानते हो। मैं तुम्हारी दीन-दुनियाँ की बात सुनकर अचम्भे में पड़ गया था कि हे परमेश्वर! क्या नई आपदा आ खड़ी हुई। पर इस बात में कोई तत्व नहीं है। परीक्षा की क्या चिन्ता! इसकी चिन्ता तो मूर्ख और आलसी लोग करते हैं।' लालचन्द ने कहा।

'भाई साहब ! तुम तो बुद्धिमान हो, अतएव थोड़ा भी अभ्यास करके पास कर सकते हो। यदि न भी पास हो, तो कोई चिन्ता नहीं; धनी के पुत्र हो, पैसे की चिन्ता नहीं है; परन्तु हमलोग साधारण स्थिति के मनुष्य हैं जो पास हो जायँगे तो नौकरी मिलने ही से आश्रय मिलेगा। अच्छा, जाने दो, इन व्यर्थ की बातों को; मुझसे मोहनलाल मिला था। उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर यहाँ आने के लिए कहा है।'

'धन्यवाद! तुमसे यह समाचार सुनकर तुम्हारे ऊपर से मेरा क्रोध उतर गया।' लालचन्द ने कहा।

इतने ही में मोहनलाल आ गया। विद्यार्थियों ने उसे आदरपूर्वक बीच की कुर्सी पर बैठाया। सबसे पहले लालचन्द ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मोहनलाल आज तुम्हें अपने मण्डल में विराजमान देखकर मन में यह प्रश्न उठ रहा है कि तुम देवता इस नर्क में कैसे आ पड़े !

'जिस प्रकार विद्यार्थियों से मिलने के लिए बड़े लोगों को आना पड़ता है उसी तरह पापी जीवों को स्वर्ग में ले जाने के लिए देवताओं को भी नर्क में आना पड़ता है।' मोहनलाल ने मुस्कुराते हुए गम्भीरता से उत्तर दिया।

'वाह भाई ! वाह ! हाजिरजवाबी इसे कहते हैं।

'प्रोफेसर लोग भाई मोहनलाल को चाहते हैं। इनकी बुद्धि का प्रभाव कुछ और ही है।' नानकराम ने कहा।

'मोहन भाई! यदि आप बराबर यहाँ आकर हम लोगों को आनन्द देते, तो कितना अच्छा होता। आपकी बुद्धि का कुछ लाभ हमलोगों को नहीं मिलता। यह हमारे कितने दुर्भाग्य की बात है।' घनश्याम ने कहा।

'भाई! आने में मुझे कोई आपत्ति नही है। पर आप लोग अपने अमूल्य जीवन को जिस प्रकार क्षय कर रहे हैं, वह मेरे मन के अनुकूल नहीं है, इसीसे मैं नहीं आता। आप जिसे मौज-मजा मानते हैं; उसे मैं जीवन का नाश समझता हूँ। प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव भिन्न होता है। मैं आप लोगों को दोष नहीं देता। मुझे जो मार्ग अच्छा दिखाई पड़ता है, उसी मार्ग से मैं चलता हूँ।' मोहन ने कहा।

'अरे भाई! इस बात को दूर करो, किसी हँसी-खुशी की बात चलाओ।' घनश्याम ने कहा।

इतने ही में रसोइया ने लाकर एक के बाद एक चाय का प्याला मेज पर रख दिया। दूसरे नौकर ने चाय की जलती हुई केटली, एक दूध का पात्र लाकर बीच में रख

दिया। अँग्रेजी ढङ्ग से चाय का प्याला भरा जाने लगा। लालचन्द ने इस प्रसंग से लाभ उठा मोहनलाल को फन्दे में फँसाने का विचार किया। वह कुछ बहाना बताकर अपने कमरे में गया। थोड़ी देर बाद पुनः आकर मोहनलाल के पीछे बैठ गया। मेज पर इंगलिश पेपर 'टैटलर' का अङ्क खोलकर मोहनलाल से कहने लगा—'देखो मोहनलाल! यह बाला और यह तरुण एक ही हैं, केवल पोशाक के भेद से यह स्त्री और पुरुष के रूप में दिखाई पड़ती है। तुम ध्यान से देखो तो इसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा।'

मोहन पढ़ने का बड़ा प्रेमी था। वह चित्र का वर्णन पढ़ने लगा। इतने ही में हाथ में ली हुई बुकनी को लाल-चन्द ने उसके प्याले में डाल दिया। थोड़ी देर में प्याला भर गया; चाय का पीना आरम्भ हुआ। पहले मोहनलाल ने चाय पीने से अनिच्छा प्रकट की; परन्तु सबके आग्रह से विवश होकर, उनका अपमान न करने की इच्छा से उसने रकाबी में से थोड़ी चाय दूसरी तरफ रख दी। लालचन्द के मुखमण्डल पर हर्ष और भय का चिन्ह दिखाई पड़ता था। पर उसे कोई समझ न सका। चाय पीने के बाद सिगरेट

और सिगार पीने का फैशन शुरू हुआ। मोहन ने सिगरेट और सिगार को हाथ से भी न छूआ। लालचन्द सिगार के धुएँ से अपना दिमाग तर करने लगा। लगभग पन्द्रह मिनट बीतने के पश्चात् मोहनलाल ने एकदम घबड़ाकर कहा— 'भाई लालचन्द ! मेरा सिर दर्द करने लगा और दिल में घबड़ाहट हो रही है।'

लालचन्द ने शुष्क भाव से आश्वासन देते हुए कहा— 'आजकल तुम रात को अधिक जागरण करके पढ़ते हो; इसी का यह परिणाम है। अति, किसी चीज की अच्छी नहीं होती। जरा आराम करो, माथा भारी हो गया है, ठीक हो जायगा। पढ़ना कम कर दो; तो बहुत अच्छा हो।'

'भाई ! मैं सदा नियमित रूप से अध्ययन करता हूँ; न किसी दिन कम पढ़ता हूँ न अधिक। रात में जागरण की बात असत्य है; मुझे प्रतीत होता है कि मेरी इस अवस्था का कोई दूसरा ही कारण है।' मोहनलाल ने कहा।

'वास्तविक कारण को पीछे ढूँढ़ना—इस समय थोड़ा लेट जाओ।' लालचन्द ने कहा।

मोहनलाल का सिर अधिक घूमने लगा—सोफा पर लेटते ही उसकी आँख मुँद गई। वह अचेत अवस्था में

पड़ गया। मोहन के निश्चेष्ट होनेपर उस कमरे में अजीब रंग जमगया। पहले आलमारी में रखी हुई बोतल-वासिनी मदिरा को लोगों ने खूब चढ़ाया। पश्चात् कुरुकुल-नाशक जूए का व्यापार चलने लगा। घनश्याम, लालचन्द से अपने सवासौ रुपए का तकाजा करने लगा। पर, लालचन्द ने हँसकर जवाब दिया—'सवासौ-सवासौ क्या कह रहे हो? जरा ठहरो; हमारे हाथ में भी बाजी आ जाने दो।' तुरत वह दाँव फेंकने लगा। बाकी लोग बैठकर चुपचाप देख रहे थे। पहले दाँव में लालचन्द जीता। होड़ और चढ़ाचढ़ी के कारण जूए का बाजार गर्म हो गया। दर्शक मूर्ति की तरह मौन धारण कर हार-जीत का रंग देख रहे थे। लालचन्द की हार का समय आ गया। पन्द्रह मिनट में उसे जो कुछ मिला था, वह सब स्वाहा हो गया। तब भी जीतने की आशा ने उसे न छोड़ा। रोकड़ हार जानेपर वह अपनी वस्तुओं की बाजी लगाने लगा, और धीरे-धीरे सब कुछ हार गया। भला जब जुए में राजा नल और पांडव सदृश लोगों का सत्यानाश हो गया, तो बेचारे लालचन्द की क्या हकीकत थी? पाकेट एकदम खाली होनेपर उसकी बुद्धि ठिकाने आई—उसे कुछ होश हो गया।

रात अधिक बीत चुकी थी। मित्रों ने जूआ बन्द करने की सम्मति प्रकट की। इस समय मण्डल में दो ही एक सचेत दशा में थे। सब-के-सब सुरादेवी के प्रसाद से मत्त बन गये थे; परन्तु मोहन के अतिरिक्त अन्य लोग कुछ सचेत और अपने होश-हवाश में थे। मोहन के साथ जो धोखा किया गया था, उसे लालचन्द और नानकराम के अतिरिक्त कोई भी न जानता था। सब मित्रों के चले जाने पर, लालचन्द ने नानकराम की सहायता से मोहन को उसके कमरे में पहुँचा कर खाट पर लिटा दिया। जब सब लोग निद्रा की गोद में जा पड़े; लालचन्द, नानकराम को अपने कमरे में ले गया और कहा—'कल किसी प्रकार खोज कर के पाँच सौ रुपए ले आओ, नहीं तो आत्मघात कर, मेरे मर जाने का समय आ गया है।'

'चिन्ता नहीं! यह काम मैं करूँगा। पर इसके बदले मुझे क्या मिलेगा?'

'पचीस रुपए।' लालचन्द ने कहा।

'तुम निश्चिन्त रहो'। नानक ने कहा।

'यह रकम मुझे कल ग्यारह बजे से पूर्व मिलनी चाहिये। बारह बजे की गाड़ी से मुझे हैदराबाद जाना है। मोहन के

बेहोश करने का यही कारण है जिससे उसकी तबियत खराब हो जाय और वह कल किसी प्रकार हैदराबाद न जा सके। उसकी अनुपस्थिति में रोहिणी के सम्बन्ध में मुझे जो व्यवस्था उचित प्रतीत होगी, मैं कर लूँगा। यदि दुश्मन मोहनलाल मैदान में बाजी मार ले जावे, तो मुझे रोहिणी के नाम से हाथ धोना पड़ेगा।'

'दस बजे पाँच सौ रुपया तुम गिन लेना।' यह कह कर नानकराम अपने कमरे में चला गया।

८

रविवार का दिन था। सन्ध्या समय रोहिणी ज्योंही अनाथाश्रम से बाहर निकली तारवाला प्यून आकर रोहिणी का नाम पूछने लगा।

'रोहिणी मैं हूँ; क्या काम है ?'

'बाई ! तुम्हारे नाम का एक तार है।'

प्यून को विदा कर रोहिणी मन मे अनेक तर्क-वितर्क करती सिंधु तट पर आकर तार पढ़ने लगी। तार का आशय यह था—'अचानक बीमार हो जाने से आज न आ सका। आगामी रविवार को आऊँगा। अपनी संरक्षिका-देवी से यह सन्देश कह देना। —मोहन'

'बीमार ! कौन सी बीमारी ? आज कल समय बहुत खराब है। भगवान उन्हें दीर्घायु करे जिससे मेरी भावी सुखाशा सफल हो।' तार को जेब में रखकर वह अनाथ युवती मन में ईश्वर से दया एवं करुणा की भीख माँगने लगी।

'रोहिणी ! आजकल तुम्हारी तबीयत कैसी है ?' एक तरुण ने आने के साथ ही उससे प्रश्न किया।

'भाई लालचन्द ! धन्यवाद। भाई, मैं तुमको अपना बन्धु समझती हूँ। तुम मुझे 'तू' आदि से सम्बोधित करते हो, यह उचित नहीं जान पड़ता। लोग इसका विचित्र अर्थ करेंगे जिससे तुम्हारे निर्दोष नाम में कलङ्क लग सकता है।' रोहिणी ने कहा।

नानकराम से रुपए पाकर लालचन्द बड़े सजधज से रोहिणी को मुग्ध करने हैदराबाद आया था; किन्तु रोहिणी का उत्तर सुनकर उसका दिल बैठ गया। फिर भी साहस कर बोला—

'रोहिणी ! आज इतने दिनों से मैं तुमसे प्रेम-भिक्षा माँगता आ रहा हूँ। प्रार्थना किया करता हूँ। क्या तुम्हारे हृदय में दया का लेशमात्र भी नहीं है ? अन्धकार और कवि

लोग कहते हैं—स्त्रियों का हृदय बहुत कोमल और दयालु होता है। पर मेरा अनुभव तो यह बतलाता है कि उनका हृदय पाषाण की तरह कठोर और निर्दय होता है। क्या मेरा प्रेम तुच्छ है? अथवा तुम्हारा प्रेम पाने की मुझ में योग्यता नहीं है? तुम्हारी क्या धारणा है? मैं तुम्हें तू कहकर बुलाता हूँ—इस मेरी प्रिय भाषा को तुम कदाचित् तुच्छ समझती हो; वस्तुतः यह बात नहीं है। जिस व्यक्ति में प्रेम होता है उसीको तू कहकर संबोधित किया जाता है। लोग ईश्वर को तू कहते हैं। मैं तुम्हें देवी मानता हूँ। जरा, मेरा हृदय खोलकर देखो तो—वहाँ तुम्हारे प्रेम का स्रोत बहता हुआ दिखाई पड़ेगा। मैं तरुण हूँ, सुन्दर हूँ, सुशिक्षित और धनवान् हूँ। मुझसे विवाह कर तुम हर प्रकार से सुखी होगी। अतः अपने भविष्य का विचार कर तिरस्कार करना छोड़ दो और आदर से मेरे प्रेम को स्वीकार करो।' प्रगल्भ लालचन्द ने नाटक के ऐक्टर की भाँति हावभाव के साथ उपर्युक्त बातें कही।

'भाई, तुम तरुण हो, सुन्दर हो, सुशिक्षित हो एवं धनवान् हो यह सब मैं अस्वीकार नहीं करती; परन्तु एक अबला; तरुण, सुन्दर, सुशिक्षित एवं धनी बर से विवाह

कर सदा सुखी रहती है यह कोई संसार का नियम नहीं है। यौवन न हो, रूप न हो, विद्या न हो और धन का भी अभाव हो; किन्तु यदि स्त्री और पुरुष के मन में परस्पर प्रेम और सन्तोष हो तो उसके समान उत्तम सुख त्रिभुवन में नहीं है। प्रेम और सुख पर्यायवाची शब्द हैं। इन सब गुणों के होते हुए भी तुम में मेरा प्रेम नहीं है। मेरा मन तुम्हारे स्नेह के प्रति आकर्षित नहीं होता। ऐसी स्थिति में परिणय कर सुख की आशा करना व्यर्थ है! मैं एक हितेच्छु भगिनी की तरह तुम्हें सम्मति देती हूँ। कृपया मुझसे प्रेम की आशा छोड़ अपने योग्य किसी अन्य कुमारी को खोज लो। तुम्हारी जाति में कुमारियों का अभाव नहीं है। यदि तुम एक के लिये अपना अभिप्राय प्रकट करो तो दस कन्याएँ तुम्हारे लिए प्रस्तुत हो सकती हैं।' रोहिणी ने अपना मनोभाव प्रकट किया।

'रोहिणी! क्या तुम्हारे मन को किसी ने आकृष्ट कर लिया है? बताओ, तुम्हें अपने प्रति मुग्ध करनेवाला वह भाग्यशाली पुरुष कौन है?' लालचन्द ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

'अपने प्रेम के योग्य एक पुरुष को मैं अपना हृदय

समर्पित कर चुकी हूँ; परन्तु जब तक धर्मशास्त्र की विधि से हमारा विवाह न हो जाय, उनका नाम प्रकट करना उचित नहीं समझती।' रोहिणी ने कहा।

'रोहिणी! प्रेम अन्धा है। प्रेमोन्माद के आधीन होकर प्रणयी युगल यह समझते हैं कि उनके प्रेम को कोई नहीं जानता। पर, यह उनकी भूल है। प्रेम कभी छिपाये नहीं छिप सकता। कस्तूरी को दबा रखने पर भी उसकी सुगन्धि अवश्य वायु में फैल जाती है। जिस पुरुष को तुमने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है—जिसका नाम तुम नहीं बताना चाहतीं, उसे मैं भली-भाँति जानता हूँ। तुम्हारे हृदय का वह आदरणीय व्यक्ति मोहनलाल है।' लालचन्द ने भेद को प्रकट किया।

'यह बात तुम्हें किस प्रकार मालूम हुई?' रोहिणी ने आश्चर्य चकित हो गंभीर मुद्रा से पूछा।

'यह तुम्हारा रहस्य उसी तुच्छ और ओछे हृदय मोहन ने मुझसे और कालेज के सब विद्यार्थियों से कहा है। आज वह तुम्हें यहाँ से ले जाने के लिए आनेवाला था; पर गत रात्रि उस नालायक ने इतनी मदिरा पी ली कि बेसुध होकर शिथिल पड़ गया और इसीसे वह न आ

सका। जब से भाई साहब की यह बात प्रकट हुई है विद्यार्थी और अध्यापक सभी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे हैं। यह उसके पिता के मान-मर्यादा की लाज है कि अब तक वह कालेज में है; अन्यथा वह कभी निकाल दिया गया होता। रोहिणी! ऐसे आवारा के साथ विवाह कर सुखी होने की तुम कैसे आशा रखती हो?' लालचन्द ने रोहिणी की दृष्टि में मोहनलाल को नीचा दिखाने का प्रयत्न किया।

अनाथ एवं अनुरागवती रोहिणी के हृदय में लालचन्द की बातें बाण सी चुभ गईं। कुछ देर तक वह सिर नीचा कर विचार करने लगी और फिर तिरस्कार मिश्रित स्वर में बोली—'भाई लालचंद! मैं तुम्हारी बातों को सत्य नहीं स्वीकार कर सकती। मेरा अन्तःकरण इन आक्षेपों को मानने के लिए तैयार नहीं है। जो पुरुष आजकल की सुधार की निशानी—सिगरेट, चाय, काफी—आदि वस्तुओं का स्पर्श करने में भी पाप समझता है वह मदिरा पीकर अचेत हो जाय—यह त्रिकाल में भी संभव नहीं है। यदि यह बात सच भी हो तो तुम्हारे सदृश एक प्रतिस्पर्द्धी के मुख से निकली हुई बात असत्य एवं निर्मूल हो सकती है। तुम्हारा यह आक्षेप अतिशयोक्ति पूर्ण है। यह संवाद नितान्त

मिथ्या है; देखो, अभी यह तार आया है—यह कह कर रोहिणी ने तार निकालकर लालचन्द की ओर फेंक दिया।'

लालचन्द तार पढ़कर व्यङ्गहास्य करता हुआ बोला—'मैं तो कह चुका हूँ कि वह बीमार है; परन्तु बीमारी का कारण मद्यपान की बात इसमें कहाँ है? वह पापी अपने पातकों को इस प्रकार छिपा रहा है! सचमुच मोहन पक्का धूर्त और चालाक है।'

'बस, लालचन्द! अपनी जबान बन्द करो। जिसे मैंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। वह चाहे गुणी हो या अवगुणी; धर्मात्मा हो या पापी; उसकी निन्दा सुनने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। कृपा कर यहाँ से चले जाओ—यही मेरी प्रार्थना है। पुनः इस प्रकार एकान्त में न मिलना और मेरे स्नेह के शान्ति-मार्ग में काँटा बनने को न आना।' रोहिणी ने तिरस्कार पूर्ण उत्तर दिया।

लालचन्द कुछ कहना चाहता था, इतने ही में उसकी दृष्टि वृक्षों की ओट में बैठी हुई एक स्त्री पर पड़ी। वह निस्तेज और दिग्मूढ़ हो गया। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। उसको अवाक् देख, रोहिणी बिना कुछ बोले-चाले वहाँ से बिजली की तरह अदृश्य हो गई।

दबे पाँव लालचन्द उस स्त्री के सम्मुख आकर खड़ा हो गया और बहुत धीमे स्वर से बोला—'कौन, सीता !'

'हाँ, झूठा लालचन्द ! तेरे कपट जाल में पड़कर, तेरी कामुकता के कारण भ्रष्ट होकर, इधर-उधर भटकती, इस अवस्था को पहुँची हुई—अभागिनी सीता—पवित्र सती सीता के नाम को कलंकित करनेवाली—मैं वही तेरी सीता हूँ।' उस स्त्री ने कहा।

'सीता ! तुम बार-बार मुझे हैरान कर रही हो; यह अच्छा नहीं है। चार महीने पहले तुम कराँची में आई थी और आज अचानक यहाँ पहुँची हो। क्या तुम मेरा प्राण ही लेना चाहती हो ? यदि यह बात है तो याद रखना—मेरा जीवन लेने के बदले तुम्हें कहीं अपना प्राण न खोना पड़े।' लालचन्द ने क्रोध से आँखें लाल करते हुए कहा।

'यह क्या ? लुच्चा लालचन्द ! मैं तेरी इन गीदड़ भभकी में आनेवाली नहीं हूँ। प्रसंग आनेपर दिखाने के लिए नाटक के पात्रों की कला तुझे आती है। मैं यह जानती हूँ। मुझे बड़ी-बड़ी आशा देकर, मुझसे विवाह कर सुखी बनाने का वचन देकर, तूने मेरा इहलोक नष्टकर दिया। उस समय तू मुझे रंभा और मेनका के नाम से

पुकारता था और जिस प्रकार मैं प्रसन्न होती वैसा ही कार्य करता था। स्वार्थी कुत्ते! ऐसा कहते तेरी जीभ नहीं गल जाती। मेरे हृदय में जो वेदना हो रही है उसकी कल्पना करके कुछ भय कर। अरे पापी! पाप बोलता नहीं; वह एक दिन अवश्य तुझे मार डालेगा। केवल पेट के लिए, मैं कराँची होकर यहाँ आई हूँ। पतिता होकर भी आत्महत्या करने की मुझे इच्छा नहीं होती। इसीसे बार-बार भिक्षा माँगने तेरे पास आना पड़ता है। अन्यथा तेरे जैसे चाँडाल का मुख देखने में भी पातक लगता है। तू भोली अज्ञान युवतियों को फुसला कर उनके सतीत्व-अपहरण का कुत्सित व्यापार करता है। तू महापापी है; रौरव नरक अधिकारी है।' सीता ने दुःख के असह्य होने से यह उद्गार निकाला।

'सीता! एक पाप का फल तो तू भोग ही रही है और दूसरे मुझे चाँडाल कहकर और मेरे मुँह को देख कर क्यों पाप-संग्रह कर रही है। यह अच्छा नहीं; मैं तुझसे आजिज आगया हूँ। कृपाकर अब मेरा तिरस्कार न कर।

'मैं तुझे फटकार न बताऊँ और घर में रीझ-रीझ कर भूखों मरूँ; यह कदापि नही हो सकता। तूने मुझसे विवाह

करने को कहा था। कहा था—पैतृक संपत्ति पाने पर विवाह करूँगा। फिर, तूने मेरे निर्वाह की व्यवस्था करने का वचन दिया था; वह भी तुझसे पालन नहीं किया गया। अब तेरी बातों पर से मेरा विश्वास उठ गया है। तू लंपट है; झूठा है। तूने कहा—घर जाकर छिप कर रहो और मैं दस रुपए महीने निर्वाह के लिए दूँगा। वह भी तूने केवल दो महीने तक दिया। मैं बरतन बेंच कर किसी तरह कराँची तेरे पास आई थी। बीमारी का बहाना कर तूने उस समय बीस रुपया दिया और आगे भेजने का वचन दिया था। आज चार महीने से मुझे एक पैसा भी न मिला। कराँची में सुना है—तू वेश्यागमन, जुआ एवं मदिरा आदि व्यसनों में रुपया बर्बाद करता है; मैं आज चार दिन से उपवास कर अब मजूरी से जीविका चलाने के लिए पैदल ही हैदराबाद आई हूँ। अनाथाश्रम में एक सेविका की माँग सुनकर यहाँ की व्यवस्थापिका से मिलने आ रही थी; इतने ही में उस निर्दोष युवती से बातचीत करते तुझे देख लिया। मेरा दिल पक गया था, तथापि तेरी मान-रक्षा के लिए मैं छिप रही। बता, अब तेरा क्या विचार है? मुझे कहीं ठिकाना नहीं है; माता-पिता, भाई-बहन तथा सगे-

सम्बन्धियों तक ने मुझे त्याग दिया है। तुझे छोड़, अब मेरा कोई आधार नहीं है। साँप का हृदय क्रूर होता है; परन्तु स्त्री का हृदय अत्यधिक क्रूर होता है और उनमें भी पति, पुत्र और धन-हीन अबला का हृदय, तो क्रूरता का उल्लंघन किये रहता है। यह बात तू कभी न भूलना। मेरा अमृत तुल्य जीवन तेरे ही कारण से विषमय बन गया है। यदि मैं प्रतिशोध लेने का विचार करूँ तो तेरे जीवन को दुःखमय और विषाक्त बनाने की शक्ति मुझमें है। मेरी उदारता और सहनशीलता का आज यह अन्तिम दिन है। मेरे भावी सुख-दुःख का आज, अभी—इसी क्षण निर्णय हो जाना चाहिये। आशा के दुःखदायी तंतु में लटकी रहकर दुःख सहने की अब मेरी लेशमात्र भी इच्छा नहीं है। तेरे एक 'ना' या 'हाँ' कहने पर मेरी और तेरी प्रतिष्ठा निर्भर करती है। बोल, जहरीले साँप, शीघ्र बोल! अपने पाप का दुःख तो न होता होगा! बता, मेरा पालन करेगा या नहीं?' यह कहते हुए सीता ने उग्ररूप धारण कर लिया।

'सीता! तुम सुशीला और मेरी प्रेमिका हो; तुम्हारे सम्मुख अपना भेद कहने में कुछ अनुचित नहीं दिखाई पड़ता। यह बात नहीं है कि मैं तुमको जानबूझ कर दुःखी

करता हूँ। मैं बहुत संकीर्ण स्थिति में पड़ गया हूँ। पिता के दिये हुए रुपये से कालेज का व्यय ही नहीं चलता; तुम्हें कहाँ से दूँ? थोड़े दिनों में कालेज छोड़ व्यापार करने का विचार है। मैं पैतृक सम्पत्ति में से अपना भाग लेनेवाला हूँ। इसके मिलते ही पाँच हजार रुपए तुम्हारे नाम से बैंक में जमा कर दूँगा और कराँची में बुलाकर तुम्हारे साथ विवाह कर आनन्द करूँगा।' लालचन्द ने प्रलोभन देते हुए कहा।

'नहीं-नहीं, नरपिशाच! मैं तेरे वाक्जाल में फँस जाऊँ, ऐसी भोली अब मैं नहीं हूँ। मेरा विवाह इस लोक में होना असम्भव है। कदाचित् नरक में हो, तो मैं नहीं कह सकती। तुम मुझे अपनी पत्नी बनाकर मेरे जीवन को सुखी करोगे—इस आशा को सदा के लिए मैं अपने हृदय से निकाल चुकी हूँ। अब तुमसे रुपए लेकर एकान्त में प्रभु-भजन कर अपने पाप का प्रायश्चित करने का मेरा संकल्प है। क्षणिक सुखदायी कामविकार के वश होकर जीवन-नष्ट करने के सिवा अन्य कोई लाभ नहीं है। यह अनुभव, मैं कर चुकी हूँ। अब पुनः इस दुःखदायी मार्ग में विचरण करने का मेरा विचार नहीं है। बताओ, तुम मुझे रुपए देते हो या नहीं।'

'सीता ! आज तेरी इस विचित्र बात के मर्म को मैं नहीं समझ सकता। यदि तुम हरिसेविका होने का निश्चय कर चुकी हो तब मुझसे रुपए पाने का लोभ किस लिए करती हो ? हरिभक्तों के निर्वाह के लिए हिन्दुस्थान में द्रव्य या किसी वस्तु की कमी नहीं है। यदि तुम्हें हरिद्वार या काशी जाना हो, तो मैं रेलभाड़ा दूँ। वहाँ अनेक सदाव्रत के क्षेत्र खुले हैं। भिक्षावृत्ति करके अपना जीवन निर्वाह करना, और धर्मशाला या देवमंदिर में सोकर नित्य गंगा-स्नान तथा हरिभजन में जीवन बिताना; इससे तुम्हारा कोटि-कोटि-कल्याण होगा। यदि तुम्हे यह बात मान्य हो, तो बलात् तुम्हें संसार बँधन में रख पापी बनने का मेरा विचार नही है। इस असार संसार में एकान्तवास और हरिभजन की तरह अन्य कोई आनन्द की वस्तु नहीं है। तू बड़ी भाग्यवती है, जो तेरे हृदय में यह विचार उदित हुआ है।' लालचन्द ने गंभीरता से सीता के विचार का अनुमोदन किया।

'पापी, पिशाच पुत्र ! जो भयंकर पाप करना था, वह तो तू कर ही चुका। तू ने अपनी काम-वासना-तृप्त कर ही डाली है। इसीसे परोपदेश देकर पंडिताई बघारता है, यह

स्वाभाविक है। नराधम! पति की सेवा से ही स्त्री का उद्धार होता है; परन्तु यह सेवा मेरे भाग्य में न थी; जिससे मैं प्रभु-भजन कर पापमुक्त होने की आशा रख सकूँ। मुझे त्रिशंकु की अवस्था में लानेवाला तू ही है; मेरे पीछे, तुझे इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। बस, अब मैं तुझ पापी के मुख से निकला हुआ एक शब्द भी सुनना नहीं चाहती। हरिद्वार और काशी-वास करने की योग्यता तूने मुझमें कहाँ बाकी रहने दी है कि यह आनन्द भी मुझे मिल सकेगा। मुझे तू ने इतना अपवित्र कर दिया है कि मेरे स्पर्श से काशी एवं गंगा अपवित्र हो जॉय; इसी प्रकार की शंकाएँ मेरे मन में उठती रहती हैं। मुझे आज, अभी, इसी क्षण, द्रव्य दे; बोल देता है कि नहीं?' यह कह कर सीता ने अपनी कमर से एक तीक्ष्ण धारवाली छुरी बाहर निकालकर महा उग्र एवं भयंकर रूप दिखाया।

पापी घबड़ाया और घबराहट में भग्न स्वर से कहने लगा—'सीता, इस छुरी के निकालने अथवा इस भयंकर हथियार को अपने पास रखने का क्या कारण है? मुझे इससे महान् आश्चर्य हो रहा है।'

'कारण—तेरे सदृश पापी इस शरीर पर बलात्कार

न कर सकें; तुम्हारे अतिरिक्त किसी पुरुष ने आजतक इस शरीर को स्पर्श नहीं किया है और भविष्य में स्पर्श करने की आशा भी नहीं है। पापी होने पर भी तू मेरा पति है; परन्तु जो आज मेरी इच्छानुसार तू आचरण नहीं करेगा, तो तुम्हारा प्राण-नाश कर मै स्वयं भी मरूँगी।' सीता ने कहा।

'देखो सीता! इस समय मेरी स्थिति खराब है। पैसे-रुपए की इतनी तंगी है कि कुछ कहने योग्य नहीं। एक वार मुझ पर कृपा करके अपने मकान पर चली जाओ। मैं दो दिन के भीतर तेरे पास रुपए भिजवा दूंगा।' लालचन्द ने कहा।

'नादान! यदि तूने मुझ पर दया दिखाई हो, तो दया के लिए अनुरोध कर। ववूल को वोकर आम फल की आशा रखना मूर्खता है। मैं तुझे एक घंटे का अवसर तो देने के लिए तैयार नहीं हूँ; दो दिन का समय देना दूर की वात है। अवसर देने का फल मैं पा चुकी हू। इसीसे सोच-विचार कर इस निश्चय पर आई हू।' सीता ने कहा।

'अच्छा, यदि तेरा विश्वास मेरे पर से उठ गया है तो मेरे साथ वाजार चल। यह सोने का आभूषण किसीके यहाँ गिरवी रख कर तुझे रुपए दूँगा।' लालचन्द ने कहा।

'अच्छा, यहीं सही, पर याद रखो, यदि बाजार में भागने की चेष्टा करोगे, तो तुम्हारी बर्बादी कर डालूँगी, या तो आज, मैं ही रहूँगी या तुम्हीं रहोगे।' सीता ने भीषणता से कहा।

लालचन्द कुलेली के किनारे वाले मार्ग से जाने लगा; और उसके पीछे एक हाथ की दूरी पर सीता भी चली जाती थी। रात के लगभग डेढ़ बजे थे, और इस तरफ आदमियों की बस्ती भी कम थी। इससे चारो ओर शान्ति छाई हुई थी। नदी का किनारा बहुधा जन-हीन रहता है। नदी के गर्भ में दूर पर दो-तीन मछवाहों की नौका पर दीपक का प्रकाश ताराओं की ज्योति के समान दिखाई पड़ता था। लगभग एक सौ कदम चलने के बाद लालचन्द यकायक रुक गया और विचार करता हुआ खड़ा हो गया। उसे खड़ा देखकर सीता ने पूछा—'क्यों, खड़े होने का क्या कारण है?'

'पुल यहाँ से दूर है। इससे चक्कर खाते हुए जाने में अधिक समय लगेगा। कोई मछुवा मिल जाय, तो सरलता से नौका में बैठकर किनारे पर पहुँच जावें; इसीसे मछुवा के आने की बाट देख रहा हूँ।' लालचन्द ने जवाब दिया।

'अब नौका मिलने की संभावना नहीं है। व्यर्थ समय न खोकर आगे चलो।' सीता ने कहा।

लालचन्द एकदम नदी के प्रवाह में कूद पड़ा; उसकी चालाकी देखकर सीता भी सिंधु के प्रवाह में कूद पड़ी। लालचन्द तैरने की कला में कुशल था। एक डुबकी मार कर कुछ दूर पर जा निकला। सीता तैरना न जानती थी। वह एकदम पानी के तल में पहुँच गई, और फिर पानी की सतह पर आकर तड़फड़ाने लगी। लालचन्द के थक जाने पर उसका जीवन संकट में पड़ गया; पर अंत में वह सकुशल नदी किनारे पहुँच, तुरत भागकर स्टेशन पर पहुँचा। बेचारी सीता जीवन निर्वाह के लिए लालचन्द से पैसे लेने आई थी पर इसके बदले में उसके प्राण पर संकट आ पहुँचा। वह जल के प्रबल वेग के साथ सिंधु नदी के मुख्य प्रवाह में चली गई। 'धर्म की जय और पाप का क्षय—' यह कहावत प्रसिद्ध होने पर भी आज इस समय 'धर्म का क्षय और पाप की जय—' दिखाई पड़ने लगी।

६

काशी एक प्राचीन क्षेत्र है। विद्या, वैभव, अध्यात्म-विद्या और भक्ति इत्यादि का इस नगर में अनेक बार उद्भव

हुआ। आज भी उनका रंग थोड़ा बहुत दिखाई पड़ता है। आज काशी की शक्ति क्षीण होनेपर भी उसका सर्वनाश नहीं हुआ है। हिन्दुओं के इस पवित्र स्थान में अनेक बार दुष्ट जनों के पाप का घड़ा फूटा है और काशी को पवित्र जानकर लोग पातक-मुक्त होने के लिए आते हैं; इस स्थान में योग्यता के अनुसार भक्तों की उन्नति एवं अभक्तों की दुष्ट-वृत्ति का नाश होता है।

काशी प्राचीन काल से भारतवर्ष की प्रतिष्ठित विद्यापीठ है और पवित्र गंगा के तटपर स्थित होने से—काशी में मृत्यु हो जाय तो अवश्य स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो—यह हिन्दुओं की दृढ श्रद्धा है। कितने ही वृद्ध स्त्री-पुरुष मरण-काल समीप आता देख मरने के लिये मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए सदा के लिए काशी-वास करते हैं। आलमचन्द और यशोदा को भी कोई सन्तान न थी। अन्त समय काशी में मृत्यु हो और मोक्ष प्राप्त हो—इस कारण से वे काशी में निवास करते थे। काशी में आने के दो-एक दिन के पश्चात् अपने पूर्व संकल्प के अनुसार आलमचन्द ने दशाश्वमेध घाट के समीप भूमि खरीदा और वहाँ सिन्धु के यात्रियों के लिए एक धर्मशाला बनवाने की व्यवस्था की।

वे स्वयं एक भाड़े का मकान लेकर रहने लगे। दो बार सन्ध्या करना, कथा-श्रवण, देवदर्शन तथा साधु-संत और विद्वानों के साथ ज्ञानचर्चा करना ही काशी में आलमचन्द का व्यवसाय रह गया। साध्वी यशोदा गृहकार्य से निवृत्त होने पर धर्माध्ययन में अपना समय बिताती थी।

काशी में अनेक साधु आया करते हैं और कितने ही बार काशी में गंगा तटपर उनका विद्वता या अविद्वतापूर्ण व्याख्यान सुनने का प्रसंग काशी निवासियों को आया ही करता है। आलमचन्द को काशी में आये पन्द्रह दिन हो चुके थे। आज वह दशाश्वमेध घाटपर घूमने के लिये आये थे। वहाँ चबूतरे के ऊपर बैठा हुआ एक साधु व्याख्यान दे रहा था। श्रोताओं की भीड़ लगी हुई थी। वह भी वहाँ जाकर साधु का व्याख्यान सुनने के लिए भीड़ में बैठ गये।

साधु के शरीर की तड़क-भड़क प्रभावशाली थी। वह मध्यम कद का, भरी हुई शरीर एवं गौरवर्ण का था। दाढ़ी-मूँछ मुड़ी हुई थी और एक कषाय रंग का झुल्ल; कमर मे रेशमी डोरी, सिरपर कषाय रंग का साफा तथा नीचे धोती आदि वस्त्र पहने हुए था। बहुत से साधु पैर में जूता तक नहीं पहनते; पर यह मोजा पहने हुए बैठा था

और पास ही स्लीपर रखा था। यह सब बहिरंग दशा थी। उसे देखकर कोई नवयुग का साधु या सन्यासी ही अनुमान कर सकता था। उसके व्याख्यान का सार निम्न-लिखित था—

'हिन्दुस्तान के साधु' यही आज के हमारे व्याख्यान का विषय है। आजकल हिन्दुस्तान में साधुओं की संख्या भयंकरता से बढ़ती जा रही है और उनके निर्वाह का भार, स्वल्प आयवाले दुःखी भारत के गृहस्थों के सिरपर पड़ने से दिन-दिन भारतवर्ष अवनति के समुद्र में डूबता जा रहा है। कदाचित कोई यह शंका उपस्थित करे कि साधु तो संसार-बंधन को तोड़नेवाले और धर्म का मार्ग बतलानेवाले हैं; वे अवनति के कारण किस प्रकार हो सकते हैं? यह शंका यथार्थ है; और मैं भी कहता हूँ कि यदि साधु—सच्चा साधु, निस्पृह, उद्योगी और कर्तव्य परा-यण हो, तो अवश्य उन्नति के शिखरपर ही ले जाता है; परन्तु ऐसे साधु बहुत कम मिलते हैं। विशेषतः आजकल के साधु निरक्षर, बदमाश, और दुर्व्यसनी होते हैं। जो विद्वान तथा प्रतिष्ठित हैं, वे निज कर्तव्य को भूल; मान, अभिमान, प्रतिष्ठा तथा वैभव-विलास में तल्लीन

हो साधु नाम धारण कर गृहस्थ बने बैठे हैं। भारतवर्ष के गृहस्थ इन साधुओं के पालन-पोषण में जिस धन का व्यय करते हैं उसका बदला उन्हें कुछ भी नहीं मिलता।

उद्योगहीन और आलसी भक्तों की संख्या बढ़ने के कारण देश दिन-प्रति-दिन दारिद्रय के अन्धकार से घिरा ज़ाता है। कोई यह कहे कि भाई, साधुओं का रामनाम जपने के सिवा और कर्तव्य ही क्या है? क्योंकि संसार के कर्तव्यों को छोड़कर ही वह साधु बने हैं; अगर कार्य करना होता तो साधु क्यों बनते? यह ठीक नहीं है। इस तरह जितने कर्तव्यहीन पुरुष हैं उन सबको साधु ही मानना होगा। साधु संसार के अश्लील प्रपञ्चों को त्याग करता है; परन्तु फिर भी उसका एक कर्तव्य—अज्ञान प्रजा को सज्ञान बनाने का है। बीमारों की सुश्रुषा करना, और दुःखी मनुष्यों के मन को सान्त्वना देना—ये भी साधुओं के परम कर्तव्य हैं। परमार्थी साधु होने के बदले वर्तमान काल में साधु स्वार्थी ही बने फिरते हैं। लक्ष्मी एवं ललना का लोभ रखते हैं, और खान-पान की वस्तुओं का स्वाद लेते हैं। यही उनका आजकल परम धर्म, परम कर्तव्य, और जीवन हो रहा है। मैंने ऐसे अनेक साधु देखें हैं जो

साधु के रूप में शैतान हैं। किसीने ठीक कहा है—'नीम हकीम खतर-ए-जान; नीम मुल्ला खतर-ए-ईमान'—यानी आधा हकीम जान को जोखिम में डाल देता है और अर्ध-दग्ध धर्मगुरु धर्म का नाश करनेवाला होता है। अभागे भारतवर्ष में इस कहावत की सत्यता का हम आजकल प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। साधु नामधारी शैतान ऐसे दम्भी और गलकट्टे होते हैं कि उनसे परमात्मा ही बचावे। अनेक प्रकार के पाखंडों का विस्तार करके धूर्त्त लोग—पुरुष-वर्ग और भावी स्त्रीवर्ग को भ्रम में डाल देते हैं एवं उनके धन, शील तथा सर्वस्व का हरण करके स्वयं महात्मा बने अमन-चैन उड़ाते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, किन्तु साधु—अहिंसा परमधर्म का प्रतिपादन करनेवाले मनुष्यहिंसा और स्त्री-हत्या करना अपना परमधर्म मानते हैं। कहिये महाशय! ऐसे साधुओं का भारत में होना क्या उसके उदय का चिन्ह है? मैं ऐसे ही एक शैतान साधु का चेला था और अपनी अज्ञानावस्था में शैतान गुरु की आज्ञानुसार खुद ऐसे अनिष्ट कर्म करता था। मगर जब आँखें खुलीं तो ऐसे कामों पर तिरस्कार तथा धिक्कार होने लगा। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को तोड़ डाला

और पवित्रता से जीवन व्यतीत कर जन-समाज को ऐसे सा-धुओं के कपट-जाल से बचने का मार्ग दिखाने का निश्चय-कर लिया। सब महाशयों और देवियों से मेरी प्रार्थना है कि किसी साधु में विश्वास करते समय पात्र-अपात्र का विचार कर लें; अन्ध श्रद्धालु न बनें, और बिना कारण दान कर धन का नाश न करें; अपात्र को दान देने से मनुष्य पापभागी होता है। यह क्या आप नहीं जानते? मगर आजकल बहुधा रेशम की गद्दी पर बैठनेवाले और वैभवों को भोगनेवाले, हाथी की सवारी करनेवाले, व्यभिचार में रत रहनेवाले, और विषय-वासना में लिप्त, कुपात्र साधुओं को ही दान दिया जाता है। और सच्चे साधुओं का—दंभी न होने के कारण—अपमान किया जाता है। यही कहावत ठीक मालूम होती है—'भरे को सब कोई भरता है और गरीबों को देना हो तो तीन-पाँच करता है।' रुग्ण, अवयवहीन, तथा साधनहीन किंवा सुशील कर्तव्यपरा-यणों का पालन करो, उनके दुःखों का टालन करो; परन्तु पापी कलंकित साधुओं का त्याग करो उनके दर्शन से दूर रहो; नहीं तो जिन्दगी की बरबादी होगी; और हर घर में, सारे देश में शैतानों की आबादी होगी।'

साधु आगे बोलनेवाला ही था कि उसकी दृष्टि अचानक आलमचन्द के ऊपर पड़ गई और उसकी वाणी अचकचा गई। जिस किसी तरह उसने अपने भाषण की समाप्ति की। जनता व्याख्यान के विषय में अपने विचार प्रकट करती चली गई।

आलमचन्द घाट के ऊपर बैठे थे। व्याख्याता साधु आकर आलमचन्द के बगल में बैठ गया और पूछा—'महाशय आप यहीं के निवासी हैं, या यात्री हैं?'

'महात्माजी! आप यह सवाल अचानक क्यों पूछ रहे हैं?' आलमचन्द ने कहा।

'कारण, मुझे स्मरण आता है कि कुछ वर्ष पूर्व मैंने आपको सिंध हैदराबाद में देखा था। यदि आप वही हों तो मेरा आपके साथ कुछ काम है; परन्तु यदि एक-सरीखे कई आदमी होते हैं, ऐसी बात हो, और आपको पहचानने में मेरी भूल हुई हो, तो आपसे इस तकलीफ के लिए मैं क्षमा माँग, जाने की आज्ञा चाहता हूँ।' उस साधु ने कहा।

'महाराज! आपकी धारणा सही है। सिंध-हैदराबाद में आपने भी मुझे अवश्य देखा होगा। मैं वहीं का निवासी

हूँ। कुछ दिन से यहीं काशी-निवास करने के लिए आया हूँ।' आलमचन्द ने कहा।

'आपका एक मकान कुलेली के किनारे पर था ?'

'हाँ'.

'और आपका नाम दीवान आलमचन्द है ?'

आलमचन्द आश्चर्य चकित हो गये और आँख फाड़कर उसकी ओर देखते हुए कहने लगे—'महाराज! आप इतनी बातों को जानते हैं और मैं आपको बिलकुल ही नहीं पहचानता, क्या कारण है ? मेरी स्मरण-शक्ति नष्ट तो नहीं हो गई ?'

'ना, ना, यह बात नहीं है। मैं जब हैदराबाद में था तो आपको पहचानने के लिए मेरे पास अनेक कारण थे। और मैं साधारण स्थिति में था। इससे आप नही पहचान सकते। यह स्वाभाविक है। आप महात्मा गोपालदास के मन्दिर में कथा सुनने को आते थे।' साधुने कहा।

गोपालदास को महात्मा विशेषण देते हुए मन में होने-वाली धिक्कार की छटा उसके मुखपर दिखाई पड़ती थी; परन्तु भोला आलमचन्द उस रहस्य को न जान सका। वह बोला—'हाँ, महात्मा गोपालदास के मन्दिर में कथा सुनने जाने का मेरा नित्य-नियम था।'

'मैंने आपको पहले पहल वहीं देखा था। मैं आपसे एक गुप्त बात पूछना चाहता हूँ'। साधु ने कहा।

'जो गुप्त बात कहनी हो, आप खुशी से कहें। आप पवित्र और सुशील साधु हैं; यह मेरा विश्वास है। आपको जिस प्रकार की सहायता आवश्यक होगी, मैं यथाशक्ति करने के लिए तैयार हूँ।' आलमचन्द ने कहा।

साधु गम्भीर मुद्रा से कहने लगा—'दीवान साहब! एक समय मैं लोगों को उल्लू बना, उनसे पैसा लेनेवाला शैतान साधु था; पर आज मैं सत्य ही साधु हूँ। पहनने के लिए वस्त्र, भोजन के लिए अन्न और यात्रा के लिए रेलभाड़ा मिल जाने से ही सन्तुष्ट रहता हूँ। जहाँ जाता हूँ, धर्मशाला में ठहरता हूँ। मैं किसी स्थान में आठ-दस दिन से अधिक नहीं ठहरता। भिन्न-भिन्न स्थानों में जनता को उपदेश देकर सेवा करना ही मैंने अपने जीवन का उद्देश्य समझा है। स्त्री-पुत्र के जंजाल में पड़ना नहीं चाहता। मुझे रुपए की सहायता नहीं चाहिये; एक दूसरी ही बात आपसे कहनी है और वह आपके हित की है।'

'महात्मा! आप मेरे अपराध को क्षमा करें। जो बात कहनी है उसे कह मुझे कृतार्थ करें।' आलमचन्द ने कहा।

'मेरी बात एकान्त में सुनें, तो बहुत अच्छा हो; वह बात इस स्थान पर कहने योग्य नहीं है।'

'इस वार्ता में क्या रहस्य है?' आलमचन्द ने आश्चर्य दिखाते हुए पूछा।

'रहस्य समझें तो बहुत है, अन्यथा कुछ भी नहीं है। मेरी बात सुनकर या तो आप हर्ष से प्रफुल्लित हो जावेंगे या तो शोकसागर में पड़कर प्रमादी बन जावेंगे। मेरी बात सुनने से आपके हृदय में एक प्रकार का आघात तो अवश्य लगेगा; किन्तु यदि वह आघात सहने की शक्ति आप में हो, तो मेरी बात सुनें; अन्यथा अज्ञानता बहुत सुखकारिणी है।' साधु ने अपनी बात की भयङ्करता प्रकट करते हुए कहा।

'महाराज! आप अवश्य कोई विलक्षण पुरुष हैं। आपकी बात में मुझे पूर्ण विश्वास है; मैं अपने जीवन को जोखिम मे डालकर आपकी रहस्यमयी वार्ता सुनूँगा। यदि मेरा हृदय मिट्टी की तरह कोमल होगा, तो कुछ समय के लिए मैं उसे पत्थर बना लूँगा। यदि मेरी आँखों में आँसू आवेंगे तो शोकाग्नि से सूख जायँगे। यदि छाती फटना चाहेगी तो साहस से उसे फटने से बचा लूँगा।

जहाँ आप कहें, मैं चलने को तैयार हूँ। यदि आपकी इच्छा हो, तो हमारा घर है, आप वहीं चलें।' आलमचन्द ने कहा।

'आपका घर बहुत अनुकूल होगा। कारण, आघात असह्य होने से आपको मूर्छा आ सकती है और वहाँ आपको सचेत करना सुलभ होगा।' साधु ने कहा।

'आइये चलें।' आलमचन्द ने अधीरता से कहा।

दोनों आदमी वहाँ से चलकर रामघाट के पास एक मकान के सामने आकर खड़े हुए। नौकर ने बुलाते ही द्वार खोल दिया। दीवान ने नौकर से ऊपर की बैठक में सतरंजी बिछाने और दीपक जलाने की आज्ञा दी। सेठानी या अन्य किसीको ऊपर आने से मना कर दिया।

नौकर ने आज्ञानुसार सब व्यवस्था कर दी। यशोदा नीचे रसोई करने में व्यस्त थी। इससे उसे ऊपर जाने की कोई आवश्यकता ही न थी। आलमचन्द और साधु बैठक में आकर आसन पर बैठ गये। नौकर ने रोशनी जला दी। दीवान ने साधु से जलपान करने के लिये आग्रह किया। साधु ने जलपान करने के बाद कहा—'महापुरुष आलमचंद, जो बात मैं आपसे कहनेवाला हूँ, वह मेरे

निज कृत पाप-कर्म की हृदयद्रावक वार्ता है, और मेरे इसी पाप ने आपके संसार-सुख को नष्ट कर दिया है, जिससे आपको काशी-निवास करना पड़ रहा है। कितने ही वर्षों के किये हुए पापों का स्मरण होने से हृदय में भयानक वेदना उत्पन्न हो रही है। मैं अपने हृदय को दृढ़ और वज्र बनाकर अपने पाप को व्यक्त करता हूँ और पश्चात्ताप करके मन का भार कम करना चाहता हूँ।

१०

भाषण करनेवाले साधू ने कहा—'मेरी जन्मभूमि पञ्जाब है। पञ्जाब प्रान्त के गुजरानवाला गाँव में उस समय सुशील और साधन सम्पन्न एक राजपुत्र जमींदार के गृह में मेरा जन्म हुआ था। मैं अपने माता-पिता का एकलौता लाड़ला था। जब मैं दस वर्ष का था, उस समय हैजे के प्रकोप से एक ही दिन में मेरे माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। मैं इस संदिग्ध संसार में अनाथ हो गया। मेरे पिता का नाम भोलासिंह और माता का पार्वती था। मेरे पिता अपने नाम के अनुरूप ही सीधे थे और माता साक्षात् पार्वती की प्रतिमा थी। अचानक मृत्यु के आ जाने से पिता अपनी जायदाद हमारे नाम न लिख सके।

मेरे पालन का भार चचा ने लिया। एक वर्ष तो ठीक-ठीक चला गया; पर दूसरे ही साल उनकी नीयत बदल गई। उन्होंने सच-झूठ अनेक कारण बतला कर जमीन बेंच दी; रुपए और अन्य वस्तुओं को छिपाकर रख लिया। इतना ही नहीं; बल्कि हमारी दुष्टा चाची की बातों में आकर आबरू-इज्जत की पर्वाह न करके मेरे चचा ने मुझपर चोरी का अपराध आरोपित किया और घर से बाहर निकाल दिया। मेरे ऊपर चोरी का अपराध झूठे ही आरोपित हुआ था; पर वही मुझे भविष्य में चोर बनने का सूचक था। आगे चल कर मैं एक प्रसिद्ध चोर बन गया।

चचा के निकाल देने पर मैं गाँव में ही रहा और मन में गर्व होने के कारण किसीसे कोई वस्तु न माँगता था। इस प्रकार दो दिन तक भूख-प्यास से व्याकुल होकर मैंने मरने का निश्चय किया। रात्रि के समय गाँव के बाहर निर्जन बाग में एक कुँए पर गया। कपड़े के साथ एक पत्थर बाँधकर कुँए में गिरने को तैयार था। उस कुएँ के आसपास पत्थर का चबूतरा बना था। मैं जिस ओर बैठा था वहाँ कोई आदमी सोया था; पर अन्धकार के कारण मैं उसे देख न सका था। जब कुँए में गिरने का समय आया, तो मेरी

आँखों में आँसू आ गये और दुःख के आवेग के कारण मैं बोल उठा—'हे भगवान्! पिता की इतनी सम्पत्ति है; किन्तु चचा की बेइमानी से आज भूख से मरता हुआ मैं आत्म-हत्या करने को तैयार हूँ। वाह प्रभु!' उस सोये हुये आदमी ने हमारी इन बातों को सुन लिया। तुरत उठकर दौड़ा और ज्योंही मैं कुँए में कूदने वाला था कि उसने मुझे मजबूती से पकड़ लिया और आश्वासन देता हुआ अपनी झोली में से गुड़ निकालकर मुझे शर्बत पिलाया और सब बातें सुनकर कहने लगा—चिन्ता न कर; मेरे साथ चल, मैं तेरे चचा के पास से तेरी सम्पत्ति वसूल करा दूँगा।' मेरे मन में आशा हो गई और मैं उसकी इच्छा के अधीन हो गया।

वहाँ से उसी क्षण हम रवाने हो गये और जङ्गल की राह से चलने लगे। मार्ग में वह साधु-वेशवाला आदमी मुझसे कहने लगा—'बेटा! इस तरह आत्मघात करके मरना कायरों का काम है। दुनियाँ ठग, चोर और बेइमान है। हमें भी चाहिये कि दुनियाँ को ठगी, बेइमानी से तङ्ग करें। अपना पुरुषार्थ इसीमें है। जब चचा ने भतीजे को बर्बाद करने में धर्म-अधर्म का विचार नहीं किया; तब

दूसरों को बर्बाद करने में धर्म-अधर्म के विचार की क्या आवश्यकता है ? आज ईमानदार भूखों मर रहे हैं और बेइमान माल-मलीदा खारहे हैं। सती को शरीर ढकने के लिए वस्त्र नहीं मिलता; पर वेश्या रेशमी वस्त्र पहने घूमती है। धर्मात्मा को कष्ट और पापी को आनन्द मिल रहा है। इससे आजकल तो यह करना चाहिये, जिससे किसी प्रकार धन मिले। यही आजकल हमारा सिद्धान्त है। अवसर पर अनेक वेश बदलकर पैसा पैदा करता हूँ। यदि तू भी मेरे मण्डल में आ गया, तो थोड़े ही दिनों में मालदार हो जायगा। हमारा भेद न खोलना, चाहे एक या दो वर्ष में तुम्हारे चचा के हाथ में गई हुई सम्पति आवे या न आवे; इसकी चिन्ता न करना। उसका यह उपदेश मेरे मन में बैठ गया और मैं तन-मन-धन से उसका परम भक्त बन गया।

धर्मशालाओं में रात को निवास करते हुये तीन दिन के पश्चात् हमलोग एक छोटे गाँव में पहुँचे। वहाँ हम एक मकान में गये। मकान पुराना पर विशाल था, और मेरे उपकारक के व्यवसाय का यह हेडकार्टर था, वहाँ हमलोग सबेरे ९ बजे पहुँचे। मकान में अलग-अलग आठ कमरे नीचे, और दो कमरे ऊपर के हिस्से में थे। इन कमरों में

भिन्न-भिन्न ज्ञान होता था ; एक कमरे में भिक्षा माँगने की कला सिखाई जाती थी ; और जनता के मन में दया उत्पन्न करने के लिये क्या-क्या अभिनय करना चाहिये इसकी शिक्षा दी जाती थी। अन्धे की तरह किस प्रकार अपने को दिखाना चाहिये, तत्पश्चात् किस प्रकार बोलना है, लँगड़े की तरह चलना, अमुक प्रकार के रङ्ग से रङ्गकर कोढ़ी, एवं रक्तपित्त के रोगी की तरह दिखाना, गूँगे बनने में किस प्रकार जीभ टेढ़ी करनी चाहिये और विविध भाँति के वस्त्र परिवर्त्तन आदि कलाओं के लिये वहाँ योग्य व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी।

दूसरे कमरे में सेंध फोड़ने और चोरी करने की शिक्षा दी जाती थी। तीसरे कमरे में लूटपाट करने की विधि सिखाई जाती थी। चौथे कमरे में चोरी लूटपाट करने, एवं भिक्षुकों के वेश बनाने के उपयोगी वस्त्र, रंग, हथियार आदि का भण्डार था। बाकी कमरे—बैठने, सोने और रसोई बनाने के काम आते थे। ऊपर का कमरा नेताओं के रहने और सभा आदि करने के कार्य में आता था। सब की अनुमति से और अपने उपकारक की प्रबल इच्छा के कारण मैं भी इस ठगमण्डल का सभासद बनाया गया।

दूसरे दिन से भिक्षुक वर्ग में मुझे शिक्षा दी जाने लगी। दो महीने में भीख माँगने और जनता को दया से द्रवित करने की कला में मैं इतना दक्ष और निपुण हो गया कि जब मैं शहर में भिक्षावृत्ति के लिये जाता तो बहुत धन बटोर लाता था। मेरे अग्रसर की दया मुझपर बढ़ने लगी; जिससे मैं दिन में भिक्षुक बनकर रात में सब सुखों का उपभोग करने लगा। मदिरापान, मांसाहार एवं सुन्दर वस्त्रों का मैं दास बन गया। हमारे मण्डल का अगुआ लूटपाट कर इतना धन लाता कि उस धन को देख अलिफलैला के चालीस चोर और उनके सरदार की बात मुझे बराबर याद आती थी।

लगभग दो वर्ष भिक्षा माँगने का काम करने के पश्चात् मैं लूटपाट करनेवालों के वर्ग में दाखिल हुआ। मेरे कहने से लोगों ने हमारे चचा के घर डाँका डाला। घर में रुपए और अन्य वस्तु रखने के स्थान को मैं जानता था। इससे सब धन हमारे हाथ लग गया, और इस चोरी का पता चचा या पुलिस को न लगा। पीछे सुनने में आया कि चचा शोक से मर गये और उनके बाल-बच्चे दुःख से जीवन व्यतीत करने लगे। मुझे दया आती थी और मैं

छिप-छिपकर उनकी मदद करता था। हमारी चाची अपनी बेईमानी की बात याद करके बारबार रोती थी। वह बेचारी भी सूख-सूखकर मर गई। लड़के भी मर गये। आपको एक बात जान लेनी चाहिये कि ये डाँकू और चोर निर्दय एवं अत्याचारी होनेपर भी वास्तव में बड़े सच्चे थे। कारण, मेरे चचा के यहाँ डाँका डालकर जितना द्रव्य इन लोगों ने लिया था उसे लोगों ने मुझे सौंप दिया था। एक पाई की चीज भी उन्होंने न ली थी; और उसे एक कमरे में मुहर करके रख दिया था। इस तरह तीन-चार वर्ष बीत गये। एकबार भूल से जंगल में सरकारी खजाना लूट लिया गया और चार सिपाही मार डाले गये। चारों ओर हाहाकार मच गया और तलाशी होने लगी। डाकुओं को पकड़ने के लिये दस हजार के इनाम की घोषणा की गई। 'घर फूटे घर जाय' की कहावत के अनुसार हमारे मण्डल के दो आदमी फूट गये और हमारा अगुआ पकड़ा गया; वर्षों की पैदा की हुई करोड़ों की सम्पत्ति सरकार ने जप्त कर ली। उस समय मैं किसी काम से शहर गया था। वहीं पर यह बात हमें सुनाई पड़ी। चचा के घर से निकाली हुई संपत्ति सरकार के कोप में

चली गई। अतः मैं पुनः भिखारी बन गया। पहले तो वेषधारी भिक्षुक था मगर अब सचमुच का भिखारी हो गया। 'करतल भिक्षा-तरुतलवास।' कच्छ में योगियों और सिंध में ढोंगियों का बड़ा मान होता है। इसीसे मैंने सिंध में जाने का निश्चय किया। भीख माँगकर गाड़ी भाड़ा के लिए पैदाकर लिया और साधु का वेश धारण कर सिंध की ओर चल पड़ा।

पहले मैं सेंवण में उतरा। वहाँ की गर्मी असह्य होने के कारण हैदाराबाद चला आया। वहाँ उदासी साधु के तरीके से नानकपंथी साधु के मन्दिर मे डेरा डाला। सिंध के आदमी श्रद्धालु होते हैं। मेरी वाचालता के कारण लोग मेरा आदर करने लगे। जिस बाबा के स्थान में मैं रहता था, वह वृद्ध होनेपर भी व्यभिचारी था। संग का प्रभाव पड़े बिना नही रहता। इससे मैं परदारागमन के व्यसन में प्रवृत्त हो गया। स्त्रियों की ओर से मुझे प्रोत्साहन मिलने लगा। एक धनाढ्य विधवा की कृपा से मैंने नानक का एक मन्दिर बनवा लिया।

'आप मनसुखाणी गलीवाले जोधासिह तो नहीं हैं ?' आलमचंद ने आतुरता से पूछा।

'हाँ, हाँ, वही'—कहकर साधु ने पुनः अपना

वृत्तान्त आरम्भ किया। 'मैं वहाँ अन्न-वस्त्र से सुखी था, और यदि मैं वैसे ही बैठा रहता तो जीवन सुख से बीत जाता; परन्तु व्यभिचार और मद्यपान ने मेरा सत्यानाश कर दिया। इन व्यसनों में द्रव्य खर्च हो जाने से मैं तङ्गिश में पड़ गया, और चोरी कर धन संग्रह करने लगा। इस काम में मदद करने के लिए तीन-चार स्त्रियों को मिला लिया था। इससे अन्य स्त्रियाँ आने में हिचकने लगीं। आय रुकने से मैं कठिनाई में पड़ गया। इतने ही में घूमता-फिरता दंभी और लोभी एक साधु मिला। उसने पैसा पैदा करने की एक नवीन युक्ति बताई। वह युक्ति थी—बच्चों को बुलाकर और फुसलाकर उनका आभूषण उतार लेना। मैं यह युक्ति करने लगा। कुछ लड़के-लड़कियों का आभूषण उतार लिया; और बात प्रकट नही हुई। कारण—गृहस्थ लोग मुझे साधु मानकर रुपया-पैसा देते ही थे। यह अपराध मैं वेश बदलकर करता था; जिससे कोई बालक मुझे पहचान न सके।

लोभ बढ़ता ही जाता है—इसके अनुसार ज्यों-ज्यों मैं इस धन्धा में फँसता गया, त्यों-त्यों बेपरवाह और निर्भय होता गया। एक दिन मैं महात्मा गोपालदास

के मन्दिर के दरवाजे पर एक आदमी के साथ बातचीत करता खड़ा था। इतने ही में आप अपनी पाँच वर्ष की पुत्री के साथ आये, और तुरन्त मन्दिर के भीतर चले गये। आपकी लड़की के गले में पड़े हुए हीरे के हार के ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। मेरा हृदय उस हार को पाने के लिए तड़फड़ाने लगा। मेरे साथ का वह आदमी चला गया। मैं वहीं पर खड़ा रह गया। इतने में आपकी लड़की घूमती हुई बाहर आई। मैंने प्यार से बुला अपने जेब से चार बतासे निकाल कर उसे खाने को दिया। वह प्रसन्न हो गई। हार को तुरत उतार लेने का मेरा विचार था। पर इस समय मैं अपने असली वेष में था और लड़की भी समझदार और चालाक थी। कदाचित् लड़की मुझे पहचान लेवे—यह सोचकर मैंने अपने मन को दबा रखा। परन्तु उस हार को लेने के लिये मैं एक दूसरे ही विचार में डूब गया। मैं उस लड़की को फुसलाकर दूर ले गया और आगे बढ़कर सन्ध्याकाल में जब अँधेरा फैल रहा था, लड़की के साथ कुलेली के किनारे पर पहुँचा। लड़की ने मार्ग में मुझे एक बार घबड़ा दिया था। इतनी दूर तक वह मेरी उँगली पकड़कर बिना बोले-चाले चली आई थी।

अन्त में हम कुलेली के किनारे पर आ गये। वहाँ से मैं उसे एक ऐसे भाग में ले गया जहाँ पर मनुष्य का नाम-निशान तक न था। तुरत ही मैंने उस लड़की के गले का हार, हाथ की बँगड़ी, कर्णफूल, पैर का कड़ा और नाक की नथिया उतार ली और नरपिशाच का रूप धारण कर उस निर्दोष बालिका को एक पत्थर की तरह उठाकर कुलेली के जलप्रवाह में फेंक दिया। जोर से एक धड़ाका हुआ और मैं निर्भय हो गया।

आलमचन्द मौन धारण कर शांति से मुग्ध होकर साधु का वृत्तान्त सुन रहे थे। पर उन्हें यह अन्तिम वृत्तांत यमराज के समान दीखने लगा। अपनी पुत्री को कुलेली में फेंकने की बात सुनकर कोप की ज्वाला से उनका हृदय जलने लगा। वह यकायक उठकर बैठ गए और साधु का गला दबाकर भीषण ध्वनि से कहने लगे—'चांडाल! यदि तुझे धन की लालसा थी तो हार उतार लिये होता; पर मेरी निर्दोष एकमात्र बालिका को तूने निर्दयता से मार डाला, इससे तुझे विशेष लाभ क्या मिला? बस, अब मैं तेरा प्राण लूँगा।'

'वैर का प्रतिशोध लेना—यह तो मनुष्य का स्वभाव

है ; परन्तु वैरी को क्षमा करना देव स्वभाव है। मुझे आशा है कि आप अपने को देवता सिद्ध करेंगे। मैं एक विशेष बात कहनेवाला हूँ। उससे आपका शोक मिट जायगा, और हृदय में आनन्द की तरंगें उठने लगेंगी।' साधु ने दीनतापूर्वक कहा।

'मुझे तर्क-वितर्क अथवा आशा-निराशा में न रखो। जो कुछ कहना हो, शीघ्र कहो।'

साधु ने कहा—'मैं जेवर लेकर अपने उस्ताद के पास आया और उसने सब भूषण लेकर मुझे पाँच हजार रुपए दिए।'

'अरे केवल एक हार ही दस हजार रुपये का था। खैर आगे बताओ।' आलमचन्द ने आतुरता दिखलाई।

'मैंने पाँच हजार रुपए लिए तो अवश्य; पर हराम का रुपया हराम धन्धे में नष्ट हो गया। दो ही वर्ष में मैं दरिद्र हो गया। जब तक रुपया था नया अपराध नहीं किया। पर पैसा खतम होते ही नवीन अपराध करके पैसा पैदा करने का विचार मन में आने के बदले मुझे इस पापी संसार से घृणा होने लगी। अपने पापों का प्रायश्चित करता हुआ सच्चा साधु बन परमार्थ में जीवन बिताने का निश्चय कर लिया। अपना मन्दिर बेंच डाला। उस रुपये से धर्म-दान

एवं परोपदेश करने के लिये बाहर निकला। सिंधु के मनुष्य बड़े सीधे होते हैं। सिंध के एक-एक शहर और प्रत्येक ग्राम में घूम-घूमकर जनता को उपदेश देने लगा। जनता में मेरी प्रतिष्ठा बढ़ गई। लोग मुझे पूजने लगे। इस समय मानापमान या रुपये की लालसा न थी। लोग मेरा मान करते हैं या अपमान करते हैं इसकी मुझे चिंता न थी। एक वर्ष इसी तरह बीत गया। इतने में हैदराबाद से दस गाँव की दूरी पर टंडा मुहम्मदखाँ में मैंने एक अनाथाश्रम की स्थापना सुनी। वहाँ देखने गया। उस समय वहाँ चार-पाँच बालिकाएँ थीं। उनमें एक को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। कारण यह था कि जिसे मैंने पानी मे डाल दिया था, वहाँ पर वही लड़की मौजूद है, ऐसा मुझे प्रतीत होने लगा। अनाथाश्रम की सुपरिन्टेन्डेन्ट बाई से पूछने पर पता चला कि उस लड़की को एक महिला वहाँ पर रख गई है परन्तु उसके पिता वगैरः का नाम-पता नहीं मालूम है। मेरा विचार और भी दृढ़ हो गया। पर उससे विशेष सम्बन्ध न होने से मैंने चर्चा उठाना उचित नहीं समझा। दीवान आलमचन्द! आपकी लड़की के ललाट पर चोट का निशान है?'

'हाँ।'

'बस, वही लड़की है।'

'क्या मेरी लड़की जीवित है!'

'हाँ, मेरी धारणा के अनुसार वह जीती है। आप चिंता न करें। अब मैं शैतान नहीं हूँ; किंतु सत्य साधु हूँ। मुझे आज्ञा दें, मैं जाऊँ। मैं यहाँ से सिंध प्रांत जाऊँगा। उस लड़की का पता लगा आपसे मिलाप कराके अपने कर्तव्य से मुक्त होऊँगा। वियोग करानेवाला मैं ही हूँ और मिलाप करानेवाला भी मैं ही होऊँगा। ईश्वर मुझे इस शुभ कार्य में अवश्य सहायता देगा।' साधु ने कहा।

'परन्तु कुसुम समान कोमल बालिका पानी के प्रवाह में फेंकी जाने पर भी जीवित रहे और अनाथाश्रम में वह तुमको देखने के लिए मिले—यह बात मेरे मन में नहीं बैठती। साधु! मुझे बुरी आशा में रखकर तुम निकल भागने और नया पाप करने का विचार तो नहीं कर रहे हो?' आलमचंद ने शंका किया।

'यदि मेरे प्राण को कल जाना हो, तो आज ही निकल जाय; और आज निकलना हो, तो इसी क्षण निकल जाय। इसकी मुझे तनिक चिन्ता नहीं। परन्तु जब तक इस शरीर

में प्राण है—असत्य बोलना एवं अज्ञानता से भी पाप-कर्म का विचार करना मेरी प्रतिज्ञा के प्रतिकूल है। मेरी बातों पर विश्वास रखें।'

'ठीक है, अब तक हमने अपनी पुत्री को सदा के लिये खो दिया था। यदि तुम अपने वचन के अनुसार उस लड़की के साथ हमारा मिलाप करा दो, तो भगवान तुम्हारा कोटि-कोटि कल्याण करेंगे और तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा करेंगे। हम तो निराश होकर बैठे ही हैं।'

'दीवान साहब! संसार बड़ा विचित्र है। इसमें ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं कि मनुष्य उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। कितनी असत्य बातें ऐसी बन जाती हैं कि उन्हें असत्य नहीं कहा जा सकता। तुम्हारी लड़की को मैंने पानी की धारा में फेंक दिया था; परन्तु ईश्वर की इच्छा उसके बचाने की हो और वह किसी के हाथ में पड़ जाय तो आश्चर्य ही क्या हो सकता है? आशा रखिये; आशा का त्याग कदापि न करना चाहिये। आशा ही मनुष्य का जीवन है। आशा-तन्तु से बँधा हुआ मनुष्य जीवन धारण करता है। मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ। सन्मार्ग स्वीकार करने के पीछे मेरे हाथ से मनसा, वाचा और कर्मणा यदि

एक भी पाप न हुआ हो, तो परमात्मा आपको पुत्र दें और आपका वंश अमर हो।' साधु ने अत्यन्त पवित्र हृदय से आशीर्वाद दिया।

'जिस आशा को मैंने अपने हृदय से निकाल दिया था, उसी आशा को पुनः अपने हृदय में रखता हूँ। भगवान् तुम्हारी बात को सच करे; और मेरे अँधेरे गृह में पुत्र या पुत्री रूपी दीपक का प्रकाश फैलावे।'

'भगवान आपकी यह आशा अवश्य पूर्ण करेंगे; पर अब मैं आपसे जाने की आज्ञा चाहता हूँ। मैं आज ही भोर में जानेवाली गाड़ी से सिंध की तरफ जाने का इरादा करता हूँ।' साधु ने कहा।

'नहीं, शीघ्रता की कोई बात नहीं है। इतने दिन बीत गए, तो एक दिन और भी बीत जाने दो। आज तुम अचानक यहाँ आ गये हो, अतः रात भर यहीं रहो; और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो। भोजन तैयार है। अब यहीं भोजन कर के रात भर विश्राम करो। कल सुबह की ट्रेन से मैं तुम्हारे जाने का पूरा बन्दोबस्त कर दूँगा।' आलमचन्द ने शिष्टाचारपूर्वक रहने का आग्रह किया।

'मेरा यहाँ रहने का विचार नहीं था; परन्तु आपके

आग्रह का अनादर करना मुझे उचित नहीं प्रतीत होता। अस्तु, कल ही जाऊँगा।' साधु ने कहा।

रात के समय सब लोग भोजन करके जब सो गये तब आलमचन्द ने अपनी स्त्री यशोदाबाई से साधु का सब वृत्तान्त कह सुनाया। यशोदा अपनी पुत्री के जीवित रहने की बात सुनकर हर्ष से रोने लगी और पति से बोली—'प्राणनाथ! इस साधु की पूरी मदद कीजिये जिससे अपनी पुत्री का पता मिल सके। ईश्वर की माया अगम्य है। मुझे भासित होता है कि हम अपनी पुत्री को देख सकेंगे।'

'प्रयत्न करने में तो मैं कुछ उठा न रखूँगा; पर प्रयत्न को सफल करनेवाले भगवान हैं।' आलमचन्द ने कहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल उस साधु के जाने की तैयारी होने लगी। आलमचंद ने साधु को नमस्कार कर महात्मा गोपालदास के नाम एक पत्र लिख उसके हाथ में दिया और कहा—'मेरी लड़की के खोजने में जो खर्च लगे, यह पत्र गोपालदास को देकर आवश्यकतानुसार ले लेना। मैंने पाँच सौ रुपए देने के लिए लिखा है। यदि इससे अधिक की आवश्यकता पड़े, तो मुझे लिखना। इस रुपए की व्यवस्था इसलिये करनी पड़ी कि तुम्हें अपने निर्वाह या

मेरी लड़की की खोज में आवश्यकता पड़ने पर कोई बाधा न पड़े। इसीसे ऐसा प्रबन्ध किया। यह प्रार्थना तुम्हें अस्वीकार तो नहीं है।'

'जो आपकी इच्छा'—कहकर साधु ने पत्र लेकर अपने पास रख लिया; और आलमचंद का पता भी लिख लिया।

'पर, महाशय! तुम्हारा नाम तो अबतक हमें मालूम ही न हुआ। कृपा करके बताओ।' यशोदा ने कहा।

पूर्व का नाम तो मेरा दूसरा था; परन्तु आजकल मैं आनंदानंद के नाम से पुकारा जाता हूँ। मैं जहाँ-जहाँ उतरूँगा वहाँ-वहाँ से आपको पत्र लिखता रहूँगा। और हैदराबाद में आप मेरे पास कहाँ पत्र भेजेगें, यह मैं लिखकर बतला दूँगा।' आनंदानंद ने उत्तर दिया।

दोपहर के समय भोजन करने के पश्चात् वह साधु स्टेशन जाने के लिए तैयार हुआ। आलमचंद और उनका नौकर उसे पहुँचाने के लिए मुगलसराय तक गये। साधु गाड़ी बदल कर अपने प्रवास की ओर गया और आलमचंद अपने नौकर के साथ काशी लौट आये।

'क्या अनाथाश्रम की लड़की आलमचंद की पुत्री है?'

—ग्रंथकार

११

आज रविवार है। दिन के ११ वजे थे। रोहिणी भोजन-कार्य से निवृत्त हो, अपने कमरे में जाकर वैठी थी। विगत रविवार को दुष्ट लालचंद ने मोहनलाल की जो निन्दा की थी, वह यौवन-प्रदेश में प्रवेश कर युवती के हृदय में गूँज रहा था। वह अपने मन में सोचने लगी—'आज मोहनलाल आनेवाले हैं। इससे जो वात सत्य है, वह प्रकट हो जायगी। मैं घुमा-फिरा कर ऐसे प्रश्न पूछूँगी कि सच या झूठ का पता लगही जायगा। यद्यपि मोहनलाल के चरित्र के विषय मे शङ्का या संशय करने को मेरा मन स्वीकार नहीं करता, तथापि परीक्षा करके देख लेना है। सोनार अच्छे सोने को भी बिना कसौटी पर परखे नहीं लेता और एक पैसे का मिट्टी का वर्तन भी ठोंक-पीट कर लिया जाता है, यह तो जीवन भर के लिए सुख-दुःख का सम्बन्ध होना है। भगवान करे! वह मेरे हृदय के अनुकूल ही सद्‌गुणी और निर्दोष सिद्ध होवे।'

वह अपने विचार प्रवाह में वही जा रही थी कि इतने ही में लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट की वात ने उसके विचार-प्रवाह को रोक दिया। अधिकारिणी ने आकर दरवाजे पर धक्का

दिया और पूछा—'रोहिणी, क्या कर रही हो ! मैं अन्दर आऊँ ?'

ज्योंही रोहिणी ने उठकर दरवाजा खोला, तुरत एक बुर्कावाली अज्ञात स्त्री के साथ अधिकारिणी ने कमरे में आकर कहा—'रोहिणी ! यह तुम्हारी पालक माता हैं। तुम्हें आश्रम में रखनेवाली यही हैं।'

'मेरा सद्भाग्य है कि इतने वर्षों के पीछे मेरी पालक मातुश्री ने मुझ दीन बाला को अपने दर्शन का सौभाग्य दिया'—कहकर रोहिणी ने उस स्त्री का चरणस्पर्श किया। अज्ञात स्त्री ने मुख से कुछ न कहते हुए उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

'रोहिणी ! यह तुम्हारी पालक मातुश्री आज तुमको यहाँ से ले जाने के लिए आई हैं। आज तुमसे वियोग होगा इससे हमारे हृदय में बड़ा शोक है; परन्तु मैं तुम्हारी पालक मातुश्री के अधीन हूँ। छुटकारे का कोई उपाय नहीं है।' अधिकारिणी ने उस नवागन्तुक स्त्री के आने का उद्देश्य शोकमुद्रा से प्रकट किया।

'उस दिन आपने जो पत्र मुझे पढ़ने के लिए दिया था, और जिस तारीख को इन्होंने आने के लिए लिखा था उसमें

तो विलम्ब हो गया। किंतु अचानक आज आने का क्या कारण है !' रोहिणी ने पूछा।

'इसका कारण मुझे नहीं मालूम।' अधिकारिणी ने अपनी अज्ञानता प्रकट किया।

'मैं उस निश्चित दिन को यहाँ क्यों न आसकी, इसका कारण मैं नहीं कह सकती। घर चलने पर तुझे वह बात मालूम हो जायगी।' पालक माता ने कहा।

'क्या आप मुझे आज ही ले चलना चाहती हैं ?'

'तुम्हें आज ही यहाँ से न लेजाना होता, तो अकारण मैं न आती। पर इस प्रश्न से प्रतीत होता है कि तुम्हारा विचार आज आश्रम छोड़ने का नहीं है।' पालक माता ने संशय प्रकट किया।

'आज मैं अनाथाश्रम नहीं छोड़ना चाहती; इसका यह अर्थ नहीं है और तुम्हारे साथ जाना नहीं चाहती—यह बात भी नहीं है; किन्तु मेरा उद्देश्य यह है कि जिस वर्ग में मैं पढ़ रही हूँ उसकी परीक्षा हो जाय तब मुझे तुम्हारे साथ चलने में कोई अड़चन नहीं है।'

'सच पूछो तो मेरा भी यही अभिप्राय था।' अधिकारिणी ने रोहिणी की बातों का समर्थन किया।

रोहिणी ने आश्रम न छोड़ने का जो कारण बताया वह सत्य न था। आज ही उसका प्रेमी मिलने के लिए आनेवाला था और उसके साथ की बातचीत से अपने भावी जीवन के सुख-दुःख का निर्णय होनेवाला था। आज आश्रम छोड़ने का प्रसङ्ग टल जाय, तो मोहनलाल से भेंट हो जाय; इसीलिए वह आश्रम में रहने की इच्छा प्रकट कर रही थी। उसके न जाने का सत्य कारण यही था।

'रोहिणी! मुझे यहाँ आये लगभग तीन घंटे हो गए और इतने समय तक मैं तुम्हारी अध्यापिका के साथ तुम्हारे ही विषय में बातचीत करती थी। आज तुम्हारे भोजन के समय यह बाई न आ सकी, इसका भी यही कारण था। इन अधिकारिणी देवी के कहने के अनुसार अपनी मातृभाषा की योग्य शिक्षा पाने के उपरांत तुमने अँग्रेजी का भी अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है; और स्त्रियों को सुशोभित करनेवाले गृहकार्य की कला में भी कुशल हो चुकी हो; अब तुम्हे अधिक अभ्यास करने और परीक्षा पास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक हिन्दू स्त्री के लिये इतनी शिक्षा पर्याप्त है। तुम्हें कोई वकील बैरिस्टर होकर अदालत में मुकदमा लड़ने के लिये अधिक

पढ़ने की आवश्यकता थोड़े ही है ? तुम अपनी वस्तुओं को सँभाल लो और मेरे साथ चलने को तैयार हो जाओ।' पालक माता ने रोहिणी और अध्यापिका के मत का निषेध करते हुए आज्ञा दी।

'यदि आपकी यही इच्छा है, तो मैं अधिक कुछ कहने के योग्य नहीं हूँ—मैं आपकी आज्ञा के आधीन हूँ।' रोहिणी ने अनिच्छा से हृदय दवाकर उत्तर दिया।

'अच्छी वात है। जव तक मैं अध्यापिका के साथ उनके कमरे मे वैठी हूँ, तुम अपनी तैयारी कर लो।' इतना कहकर पालक माता लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट के साथ चली गईं।

रोहिणी किताब और वस्त्र इकट्ठा करती हुई रोने लगी। यह सव काम करते समय उसे अपने शरीर तक का ध्यान न था। अचानक एक वात स्मरण आने पर उसने एक पत्र लिख, लिफाफे में वन्दकर; ऊपर पता लिख मेज के खाने में रख दिया। वस्तुएँ कोई अधिक न थीं। इससे उनके वाँधने का काम तो देखते-देखते हो गया। आधा या पौन घटे के वाद वह अध्यापिका के कमरे में आकर अपने पालक माता को लक्ष्य कर विनयपूर्वक वोली—'मातुश्री ! मैं तैयार हूँ।'

'मैं भी तैयार हूँ।' यह कहती हुई पालक माता कुर्सी से उठीं और रोहिणी का हाथ पकड़कर मकान के बाहर निकलीं।

आश्रम का नौकर पहले ही सामान गाड़ी में पहुँचा गया था। बाहर के दरवाजे पर गाड़ी तैयार खड़ी थी। अध्यापिका और अनाथाश्रम की अन्य लड़कियाँ रोहिणी को पहुँचाने के लिये गाड़ी तक आईं। वियोग का समय निकट आने पर पालक माता को छोड़कर सबके नेत्रों से अश्रु की प्रबल धारा बहने लगी। चारों ओर शोक छा गया।

सच है, जिनके साथ अधिक दिनों तक सहवास रहता है, चाहे वे अपने आत्मीय हों या पराये हों; परन्तु जब उनके वियोग का समय आता है, उस समय अवश्य हृदय में शोक का आघात होता है। जिसके कारण आँखों से स्वाभाविक आँसू ढुलक पड़ते हैं। इस नियम की सत्यता इस समय प्रत्यक्ष देखने में आई। इसमें कोई विशेष आश्चर्य नहीं। रोहिणी सब लड़कियों और अध्यापिकाओं के गले मिली। अध्यापिका से मिलते समय—पालक माता न सुन सकें—ऐसे धीमे स्वर से उसने कान में कहा—'मोहनलाल यदि आवें, तो आप मेरे मेज के खाने में पड़े हुए

पत्र को देना न भूलें।' रोहिणी गाड़ी में चढ़ी और देखते-देखते थोड़ी ही देर में अदृश्य हो गई।

अनाथाश्रम में चारों ओर शोक उमड़ आया। अध्यापिका का रोहिणी पर अधिक स्नेह था, अतः वह आकर अपने कमरे में रोने लगी। आँसू के रूप में हृदय का शोक निकल जानेपर उन्हें पत्र का स्मरण आया और रोहिणी के कमरे में जाकर पत्र लेकर उन्होंने अपने जेब में रख लिया।

जिस दिन रोहिणी पालक माता के साथ गई, उसी दिन सन्ध्या के समय ६ बजे मोहनलाल अनाथाश्रम के नहर किनारे रोहिणी के बैठनेवाले स्थान पर आया। वहाँ रोहिणी को न देखकर वह दिग्मूढ़ हो गया और उन्मत्त की नाई चारों ओर देखने लगा। उसकी मनमोहिनी कहीं भी न दिखाई पड़ी। उसके मन में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क होने लगे। मन में शङ्का समाधान करते हुए कहने लगा—'मैं विगत रविवार को अपने कथनानुसार न आ सका। इससे उसके मन में मेरे प्रति तिरस्कार तो नहीं उत्पन्न हो गया! स्त्रियों का स्वभाव अभिमानी होता है। वह थोड़ी-सी बात पर घड़ी-घड़ी मान करने लगती हैं। पर मैंने तार

भी इसीलिए भेज दिया था, जिसमें वह युवती शङ्का न करे। इसका अन्तःकरण अन्य स्त्रियों की तरह संशयशील और मलिन नहीं है। पर, सम्भव है, इसकी तबीयत ही अच्छी न हो? किन्तु यह बात भी होती तो वह मुझे अवश्य लिखती। आज उसके न आने का क्या कारण है? वह बीमार तो नहीं हो गई? चलें, अनाथाश्रम में उसकी खोज करें।'

लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट मकान के बाह्य भाग में आराम-कुर्सी पर बैठी हुई थीं। देखने से प्रतीत होता था कि कुछ विचार मग्न हैं। मोहनलाल को देखकर उन्होंने आदर से स्वागत किया और अपने समीप ही एक कुर्सी पर बैठाकर उससे पूछने लगीं—'आपकी तबीयत खराब होने की बात तार में पढ़ा था। अब तो आपकी तबीयत अच्छी है न?'

'हाँ, भगवान की कृपा है। पर देवि, आज रोहिणी क्यों नहीं दीख पड़ती? उसकी तबीयत कैसी है? वह घूमने के लिए बाहर क्यों नहीं निकली?' स्नेह से अंधा होकर मोहनलाल ने रोहिणी के विषय में पूछा।

'मोहनलाल! रोहिणी, आज इस आश्रम को छोड़कर चली गई। आज अचानक उसकी पालक माता आई

और आग्रह करके उसे ले गई। हम लोग आज उसके वियोग से सन्तप्त हैं।' अधिकारिणी ने निराशाजनक उत्तर दिया।

'पालक माता कौन हैं ? वह रोहिणी को किस स्थान में ले गई ?' मोहनलाल ने तुरत दूसरा प्रश्न किया।

'इसकी मुझे कुछ भी खबर नहीं है। मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानती।'

'उन्होंने अपना पता तो अवश्य दिया होगा ?'

'नहीं, वह भी नहीं बताया।'

'तो आपने उनसे पता क्यों नहीं पूछ लिया ?'

'मैंने पता माँगा; परन्तु उस स्त्री ने कहा—मैं दूर से प्रवास करके आई हूँ और अब तक रहने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की है। इससे ठीक पता नहीं दे सकती। लाचार हूँ; परन्तु जब सब बातें ठीक हो जायँगी तो अपना पता मैं अवश्य भेज दूँगी—अतः उसके स्थान-पता से मैं अज्ञात हूँ।'

'ख़ैर, वह कहाँ गई होंगी ! इसका आप कुछ अनुमान कर सकें, तो सुन्दर हो ?

'इस प्रसंग में अनुमान या तर्क की कोई शक्ति नहीं

चलती। मुझे उसके पता-ठिकाना की सूचना न मिलने का बहुत दुःख है। कारण वह लड़की आश्रम की ज्योति थी। आश्रम में इतने दिन रहकर मैट्रिक बिना पास किये ही चली गई। इससे मेरे मन में बड़ा दुःख है। मैट्रिक पास हो गई होती, तो आश्रम की प्रतिष्ठा बढ़ने में बहुत सहारा मिलता। मोहन! रोहिणी ने जाते समय तुमको एक पत्र लिख कर दिया है।' यह कहकर अधिकारिणी ने अपने जेब से पत्र निकाल कर मोहनलाल के हाथ में दिया।

समीप ही में फ़ानूस जल रहा था। उसी प्रकाश में मोहनलाल पत्र खोलकर आतुरता से पढ़ने लगा—

प्रिय मोहन!

आज मिलने की आशा थी। पर विधि ने विघ्न कर दिया। मेरी पालक माता मुझे कहाँ ले जा रही हैं, यह मैं नहीं जानती और न आपको बतला सकती हूँ। जहाँ जाऊँगी, वहाँ से कालेज के पते पर पत्र भेजूँगी। मैं आप-से फिर मिल सकूँगी या नहीं और अपनी आशा सफल होगी या नहीं—यह मैं नहीं कह सकती; क्योंकि संयोग यकायक बदल जाता है।

—रोहिणी

पत्र पढ़कर मोहन बिलकुल निराश हो गया। आशा केवल इतनी ही थी कि यदि रोहिणी को पत्र लिखने की स्वतंत्रता मिले और स्मरण रखकर वह पत्र लिखे, तो कदाचित् भविष्य में उसका दर्शन होना संभव हो। अथवा अचानक कहीं भेंट हो जाय तब आशा सफल हो सकती है। निराश होकर वह उठा और अधिकारिणी से बोला—'देवि! मैं अपने ऊपर एक विशेष कृपा करने की प्रार्थना करता हूँ। आपके पास रोहिणी का पत्र आवे अथवा उसके पालक माता की ओर से उनका पता मिले, तो कृपाकर मुझे उसे कालेज के पते से भेजिएगा। मैं इस उपकार के लिये आजन्म आभारी रहूँगा—मेरे पास कोई पत्र आवेगा, तो मैं आपको सूचित करूँगा।'

१२

हैदराबाद से लगभग दो मील की दूरी पर सिंधु नदी के मुख्य विशाल प्रवाह के तट पर गीदुबन्दर नाम का एक गाँव बसा था। बस्ती से कुछ दूर दुमहला एक भवन था। सन्ध्या समय उसकी छत पर बैठकर सिंधु नदी की ओर देखने से स्वर्गसुख की प्राप्ति होती थी। मकान विशाल था; पर देखने से यह प्रकट होता था कि कुछ दिनों से इसकी

मरम्मत नहीं हुई है। बाहर की सफेदी फीकी पड़ गई थी। मकान पुराना था; परन्तु भव्य दिखाई पड़ता था। सदर दरवाजे पर दो दरवान सदा बैठे रहते थे। इसके अतिरिक्त सेवक और दासियाँ एवं सुन्दरी सखियाँ थीं। दही, दूध, माखन निकालनेवाली गरीब ग्वालों की लड़कियाँ एवं फूल-माला बनाने के लिए एक मालिन थी। इन सबसे अधिक स्त्रियों की मनमोहिनी महामहोपाध्याया उपाधिधारिणी काशी नाम की एक धाय थी। सब कुछ था। केवल एक वस्तु न थी अथवा यों कहिए कोई भी न था। नीले आकाश में करोड़ों तारे चमकते थे; किन्तु एक चन्द्रमा न था।

इतना विशाल भवन होने पर भी उसका कोई पुरुष स्वामी न था। स्वामिनी केवल एक स्त्री थी। इस स्त्री के पति, स्वसुर, सास, न थी, एवं जेठ या देवर आदि न थे, कोई सन्तान भी न थी। माता-पिता, चाचा-चाची, मौसी आदि कहकर बुलाने के लिए भी कोई न था। वह इस संसार में अकेली थी।

वह अबला दिन-रात अकेली ही रहती थी। दुमञ्जिले के एक कमरे में स्प्रिंगवाले कोच पर बैठ कर पूर्णिमा की निर्जन रात में कलकलवाहिनी सिंधु नदी की शोभा

देखा करती थी। वह निराश्रया नारी कभी-कभी सिंधु सागर के ऊपर दृष्टिपात करती हुई राग भी अलापती थी और अपने को राधा मानकर विरहिणी की तरह अकेली स्नेह-सङ्गीत गाती थी। कभी-कभी श्रीकृष्ण बनकर वसन्त-वायु के साथ स्वर मिलाकर राधा को लक्ष्य कर गाती—

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनम्।
त्वमसि मम भव-जलधि-रत्नम्॥

वह अबला कभी-कभी उन्मादिनी की भाँति अकेली हँसती, कभी रो-रोकर पृथ्वी को आर्द्र कर देती और कभी ध्यान-मग्ना योगिनी की तरह मौनधारण कर मन में कुछ विचार करती रहती थी।

उस स्त्री का नाम वृन्दा था, उसकी अवस्था पैंतालिस वर्ष की थी। उपन्यास में एक पैंतालिस वर्ष की अवस्था दिखाना उपन्यास के मधुर रस को भङ्ग करना कहा जा सकता है। यह सत्य है; अलङ्कार शास्त्र के नियम के अनुसार इसमें दोष और आपत्ति हो सकती हैं; पर दूसरा कोई उपाय नहीं है। मन की कल्पना से सत्य अधिक बलवान होता है।

यह स्त्री ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णों

में उत्पन्न हुई है अथवा चालीस हजार उपजातियों में से किसी जाति में इस रमणी ने जन्म लिया है, आदि प्रश्नों का उत्तर देने की मेरी इच्छा नहीं है। केवल इतना कह सकता हूँ कि यह आर्य हिन्दू-ललना है।

यह अबला चाहे जिस जाति की हो; पर इसके शरीर का रङ्ग ऐसा था, मानो दुग्ध में केशर मिली हो अथवा नवमल्लिका के साथ गुलाब पुष्प का संयोग हो।

दुर्भावना को दूर करने के लिए मैं एक बात कह देना चाहता हूँ कि इस अबला की अवस्था ४५ वर्ष की होने पर भी इसके शरीर की पुष्ट गठन को देखकर कोई भी इसे २८ वर्ष से अधिक की नहीं कह सकता था। तत्वज्ञ पुरुषों की दृष्टि में इसकी अवस्था २४ या २६ वर्ष से अधिक नहीं दिखाई पड़ती थी। भाई रसिकलाल कहता—'मैं अपनी बाल्यावस्था से वृन्दा को इसी एक ही अवस्था में देखता हूँ। इसमें कभी भी कमी नहीं दिखाई पड़ी। सदा एक नया ढंग और नवीन रंग दीख पड़ता है।

इसके आन्तरिक जीवन की वार्ता कुछ गुप्त है। इसे सुनने के लिये जो स्त्री-पुरुष आतुर हों वे मेरे पास आकर कान में सुन लें। वृन्दा के घर में काम-काज की व्यवस्था

करने के लिए एक मनुष्य रखा गया था। लोग उसे मुनीमजी कहते थे। मुनीमजी स्थावर-अस्थावर, चेतन-अचेतन एवं उद्भिज सब पदार्थों की रक्षा करते थे। धीरे-धीरे उस रमणी का शरीर भी मुनीमजी के हाथ में आ गया। वृन्दा के घर में वाह्य या अन्तर्भाग में विना रोक-टोक उनका आना-जाना था। धीरे-धीरे उनमें मित्रता इतनी बढ़ गई कि वृन्दा के कोष की कुञ्जी भी मुनीमजी की कमर में लटकती दिखाई पड़ती थी। अन्त में यहाँ तक नौवत आई कि यदि वृन्दा का माथा थोड़ा भी दुःखने लगता, तो मुनीमजी उसकी चारपाई के वगल में वैठे पाये जाते। दुष्ट लोग कहते कि मुनीमजी वृन्दा का माथा दवाते हैं।

दुष्ट तथा दूसरे के सुख की निन्दा करनेवाले सव देश में रहते हैं। ऐसे ही लोग कहते थे—मुनीमजी रात्रि के समय वृन्दा के शयन-गृह में सोते हैं। इस वात को किसीने देखा न था। प्रत्यक्ष प्रमाण किसी को मिला भी न था। पर इस वात की चर्चा वढ़ती ही गई और नगर के एक कट्टर समाज ने वृन्दा को जाति-वहिष्कृत कर दिया।

जिसके पास धन-संपत्ति होती है; वह सहज ही में जाति-वहिष्कृत अथवा संवंधियों से अलग नहीं किया जा

सकता। जाति बहिष्कृत होते ही वृन्दा का धर्मभाव बढ़ने लगा। उसने श्रीराधाकृष्ण की युगलमूर्ति अपने घर में स्थापित कर लिया। नित्य ही चार ब्राह्मण राधाकृष्ण को भोग लगाने लगे। पहले ब्राह्मणों को दक्षिणा में एक-एक रुपया मिलता था; पर कुछ समय के पश्चात् दक्षिणा घट कर चार आने तक आगई। गोकुलाष्टमी और हिंडोला आदि उत्सव के अवसर पर वृन्दा हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराकर तृप्त करती थी।

वृन्दा, साधनहीन एवं दीन-दुःखी लोगों को मुक्तहस्त दान देने लगी। कोई ब्राह्मण, कन्या-दान के भार से दबा हो, तो उसे वृन्दा विवाह के लिए सौ रुपये का चेक लिख देती। यदि डिग्री के कारण किसी का घर एवं जमीदारी नीलाम होती रहती, तो वृन्दा ऋण चुका उसकी रक्षा करती थी। ब्राह्मणों के प्रति उसका भक्ति-भाव इतना बढ़ गया था कि जो कोई ब्राह्मण आकर दो-चार संस्कृत का श्लोक सुना देता, उसे ही वह पाँच रुपए दक्षिणा देती। विवाह मे निमंत्रण पाने पर वृन्दा वस्त्र और १००) रु० नकद देती थी। श्राद्ध आदि के प्रसंग पर आमंत्रण आने पर उसके दान की सीमा ही न रहती थी।

वृन्दा के दान की बात चारों ओर फैल गई; और महात्मा गोपालदास के साथ इसकी मैत्री हो गई। वृन्दा के धर्म-कर्म और दान-कार्य में गोपालदास एक प्रधान सहायक बन गया। कितने ही दिनों बाद महात्माजी के प्रस्ताव और मुनीमजी के अनुमोदन पर इच्छामयी वृन्दा वैष्णवी नाम से अभिषिक्त हो गई। तब से वह श्रीमती वृन्दा नाम से पुकारी जाने लगी। वृन्दा का पूर्व नाम सिंधुलबाई था।

वृन्दा की बुद्धि छुरी की धार की तरह तीक्ष्ण थी। महात्मा गोपालदास की उम्र वृन्दा से अधिक थी; पर, तो भी वृन्दा उन्हें 'देवरजी' कहकर पुकारती थी। जिस दिन देवरजी शब्द को वृन्दा ने प्रथम बार उच्चारण किया उस समय गोपालदास का हृदय हर्ष से उमड़ गया; और उसने कहा—'कोई चिंता नहीं। मेरा मंदिर यहाँ से केवल दो मील की दूरी पर है। यदि तुम अपना एक कुत्ता भी मेरे पास भेज दोगी तो आधीरात के समय भी मैं तुम्हारी सेवा में पहुँच जाऊँगा। तुम्हारी भलाई के लिये हमारा प्राण सदा तैयार है।' एक देवर शब्द से इतनी सफलता देख वृन्दा सदैव मधुर स्वर से उसे देवरजी

कहने लगी। गोपालदास इसके उत्तर में गद्गद होकर बोल उठता—'बड़ी बहू ! क्या आज्ञा है ?'

दान की इतनी विपुलता और महात्माजी तथा मुनीमजी की इतनी चेष्टाओं के बाद भी कुछ मनुष्यों को छोड़कर साधारण जनसमाज वृन्दा के पक्ष में न आया। वृन्दा के धर्म-कर्म के आधार पर महात्मा उसके साथ मित्रता बढ़ाने की अधिक चेष्टा करने लगा। पहले महात्मा की आज्ञा से वृन्दा दान करती थी। दान लेनेवालों के साथ महात्मा का आधा हिस्सा स्वयं पाने का इकरार हुआ रहता था। यह बात जानकर भी वृन्दा अपना हाथ न खींचती थी। गोपालदास ने हैदराबाद में हरि-सभा मंदिर बनवाया था; वह वृन्दा के ही धन से बना था।

महात्मा के मन में धीरे-धीरे यह बात जमने लगी कि वृन्दा उसे बहुत मानती है और उसमें वह श्रद्धा भी रखती है। अतः उसके साथ प्रेम से मिलने की इच्छा हुई। श्रीराधा-कृष्ण की संध्याकालीन आरती हो जाने के पश्चात् दूसरे कोठे पर कृष्णलीला संबधी संगीत होता था। उस्तादजी आकर वृन्दा को गीत सिखाते थे। उस्तादजी के गा लेने पर वृन्दा आलापती थी। मुनीमजी और महात्माजी दोनों

गाने में वृन्दा का साथ देते थे। मान, मिलन, और विरह आदि सब भावों के गाने गाए जाते थे। किसी-किसी दिन अस्वस्थता के कारण मुनीमजी वृन्दा के साथ नहीं गाते थे; केवल महात्माजी ही उसका साथ देते थे।

एक दिन रात के नौ बजे थे। बीमारी के कारण मुनीमजी अनुपस्थित थे। उस्तादजी भी चले गये। पर महात्माजी वहीं पर बैठे रह गए। दस बज गया। तब भी गोपालदास के उठने का कोई लक्षण नहीं दीख पड़ता था। श्रीमती वृन्दा ने कहा—'आज गाना रहने दो; क्योंकि मेरा माथा भारी हो गया है और आँख में अँधेरा छा रहा है।'

'क्या कहती हो, बड़ी बहू ? माथा दुःखता है ? माथे में गर्मी चढ़ गई है, आओ, पँखा डुला दूँ।' यह कह कर महात्मा हाथ में पँखा लेकर डुलाने लगा।

'नहीं देवरजी ! पंखा डुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है; रहने दो। स्वाभाविक ठंढी हवा आ रही है।' वृन्दा ने उन्हें रोका।

'अच्छा, आओ, धीरे-धीरे माथा दबा दूँ।'

'नहीं, नहीं, मैं बिना कारण ही तुम्हें कष्ट नहीं देना चाहती।'

'मुझे इसमें जरा भी श्रम नहीं है; किन्तु मेरा हाथ जरा कठोर है इससे शायद पीड़ा हो।' महात्मा ने हँस कर कहा।

'यह क्या देवरजी ? मैं यह नहीं कहती कि आपका हाथ कठोर है। जाओ, आज संगीत रहने दो। कल सबेरे आना; रात अधिक बीत गई है। इससे मुझे सोने की इच्छा हो रही है। निद्रा भली भाँति आ जाने से सिर का दर्द स्वतः मिट जायगा।' वृन्दा ने मार्मिकता भरी बातें कहीं।

'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, गाढ़ी निद्रा आने से माथे का दर्द मिट जाता है; यह मेरा भी अनुभव है।' कहकर महात्मा अपने मन में अनेक विचार करता हुआ जूता पहनकर वहाँ से चला गया। सीढी उतरकर वह फिर ऊपर आया और वृन्दा से पूछने लगा—'बड़ी बहू ! तुम सबेरे मुझे आने को कहती हो; कहो तो ब्राह्म मूहूर्त में आकर उपस्थित होऊँ। दिन निकलने के पूर्व अँधेरे ही में आऊँ क्या ?'

'अँधेरे में आने की कोई आवश्यकता नहीं है। दिन में आना।' वृन्दा ने मुस्कराकर कहा।

महात्मा लज्जित हो गया और शिथिल पाँव सीढ़ी से उतर कर चला गया। वृन्दा ने महात्मा के जाने के बाद

दासी को बुलाया। 'क्या आज्ञा है !'—कहती हुई दासी हाजिर हो गई।

'दरवानों से कह दे कि महात्मा गोपालदास को किसी प्रकार भी इस मकान में न आने दें और यदि पिछले कमरे में रोहिणी सोई न हो, तो उसे मेरे पास बुला ला।'

'जो आज्ञा'—कह कर दासी चली गई। और वृन्दा कोच पर लेटकर कुछ विचार करने में लीन हो गई।

थोड़ी देर बाद दासी रोहिणी को लेकर आई। विनीत रोहिणी ने आते ही नम्रता से कहा—'माँ, क्या आज्ञा है ?'

'बेटी ! बैठजा।'

रोहिणी का इस प्रकार सत्कार करके वृन्दा ने दासी से जाने का संकेत किया। पश्चात् एकान्त में रोहिणी की ओर देखकर बोली—'बेटी ! सत्य मे तुम किसकी बेटी हो यह मैं नहीं जानती; पर तुम्हारे रूप और गुण को देखकर कोई भी यह कह सकता है कि तुम कुलीन माता-पिता की पुत्री हो। जब तू छोटी थी तभी एक आदमी ने तुझे मेरे हाथों में सौंपा था। पर उसे भी तुम्हारे माता-पिता का कुछ पता न था। मैंने

तुम्हें अनाथाश्रम में इसलिए रख दिया था कि तू बड़ी होने के साथ ही गुणी और चतुर भी हो जाय। कदाचित् तुम्हारे बड़े होने तक मैं मर जाऊँ, तो तू निराधार अवस्था में न पड़ जाय, इसलिए मैंने पाँच हजार रुपया उसी समय अनाथाश्रम में जमा कर दिया था कि अमुक समय पर यदि मैं वहाँ न आ सकूँ, तो वह रुपया तुझे दे दिया जाय। पर भगवान की कृपा से तुम्हारी युवावस्था देखने को मैं जीती रही और तुम्हें घर लाई हूँ। जो पाँच हजार रुपए मैंने तेरे लिये आश्रम में जमा किये थे उसे मैंने आश्रम के लाभ के लिये दे दिया है। अब हमारे स्थावर और जंगम संपत्ति की उत्तराधिकारिणी तू ही है। मैं तुझे अपना वारिस बना रही हूँ—यह बात किसी से न कहना।'

'माँ! आपका मेरे ऊपर अनन्त उपकार है। मैं यह जानना चाहती हूँ कि क्या आपके श्वसुर पक्ष में कोई नहीं है जो इस सम्पत्ति का वारिस बन सके।' रोहिणी ने पूछा।

वृन्दा ने एक दीर्घ निःश्वास लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। साड़ी के आँचल से आँसू पोंछकर वह कहने लगी—'बेटी! मैं बड़ी दुर्भाग्यवती हूँ। तुम्हारे

इस प्रश्न से मेरा बहुत दिनों का दबा हुआ दुःख उमड़ आया है। इस संसार में एक ईश्वर और तेरे सिवा मेरा अन्य कोई भी नहीं है। प्लेग और हैजा ने मेरे दोनों कुलों को निकंदन कर दिया है। इससे भोग करनेवाले किसी के न रहने से यह संपत्ति मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रही है। स्त्री का अन्य कोई सगा-संबंधी नहीं होता, केवल एक पति ही होता है। उसके अतिरिक्त किसी अन्य सगे-सम्बन्धी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। पति ही स्त्री के सिर का छत्र है। इस छत्र के अभाव में स्त्री नग्न दिखाई देती है। चाहे कितनी ही संपत्ति क्यों न हो, तब भी पति-विहीन स्त्री की लोग निन्दा ही करते हैं; और उसके ऊपर अनेक कलंक आरोपित करते रहते हैं। कितने पापी तो ऐसे हैं जो सब विधवाओं को दुराचारिणी समझकर अपने काम-जाल में फँसाने का उद्योग करते रहते हैं। दैवयोग से यदि कोई विधवा धनाढ्य हो, तो ये सब पापी उसके पावों पड़ते हैं, और उस विधवा का वैधव्य-व्रत और धन दोनों का नाश कर मौज करते हैं। जब मैं २२ वर्ष की थी तभी विधवा हो गई। तब से लेकर आज २० वर्ष तक इस संदिग्ध संसार में सब बातों का

मुझे भली-भाँति अनुभव हो गया है। मैं इस संसार से ऊब गई हूँ। विधवा के धर्म-कर्म में लोगों को पाप ही दिखाई देता है। यह लोक-स्वभाव की विचित्रता है। यदि सच पूछो, तो लोक का इसमें कोई दोष नहीं है। जब साधु-संत तक विधवाओं को उपदेश देने की जगह पर उन्हे पाप-मार्ग में ले जाने की कोशिश करते हैं और बेचारी अज्ञान विधवाएँ अपनी ओछी बुद्धि के कारण पाप को धर्म जानकर धर्म-भ्रष्ट और कर्म-भ्रष्ट हो जाती हैं; तभी लोग निन्दा करते हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं रह जाती। हमारी इस बात को तू कदाचित् अप्रासंगिक और असंबद्ध समझे; पर इस बात को तुम्हें बतलाने मे मेरा खास उद्देश्य है। तू कुमारी है और तुझे संसार-सागर से पार उतरना है। अतः जिससे तूफान आने पर भी तू बची रहे और अपने निवारण का मार्ग निकाल संसार-समुद्र से पार हो सके, इसीलिए मैं यह बात तुझे सुनाती हूँ। स्त्री और धन के लोभी पुरुष इस संसार में सब जगह मिलते हैं। अतः अनाथाश्रम में रहती हुई यौवन के विकार उत्पन्न होने पर अज्ञानता से तू किसी अपवित्र मार्ग मे न चली जाय इसी कारण पढ़ने में बाधा

डालकर तेरी इच्छा के विरुद्ध मैं तुझे यहाँ लाई हूँ। तूने अबतक अपनी अवस्था अनाथाश्रम के एक कोने में विताई है। वाह्य जगत् की बातों की तुझे कल्पना भी नहीं है; और इसीलिए तुझे यात्रा कराने की मेरी इच्छा है। एक या दो दिन में हम यात्रा करने के लिए रवाना होंगी; इससे देशाटन के साथ ही तीर्थयात्रा का पुण्य भी मिलेगा। एक पंथ दो काज। तेरा इसमें क्या मत है।'

'माता की इच्छा के आगे पुत्री के मत की क्या महत्ता है? मैं आपकी आज्ञा के आधीन हूँ।' रोहिणी ने अनुमोदन किया, पर उसकी मुद्रा से कुछ अनिच्छा की छाया दिखाई पड़ती थी।

चपल और अनुभवी वृन्दा, रोहिणी के मनोभाव का कुछ अंश समझ गई और गंभीरता से बोली—'रोहिणी! यदि तुम्हारे मन में कुछ संकोच हो, तो बतला दो। मेरे सामने शरमाने, मन का भाव मन में दाब रखने या मौन धारण करने का कोई कारण नहीं है।'

'ना, माँ! मेरे मन में इस विचार के विरुद्ध कोई बात नहीं है। तू बिना कारण हृदय में शंका न कर।' रोहिणी ने नीचे मुख कर पृथ्वी की ओर देखते हुए कहा।

वास्तव में रोहिणी अचानक तीर्थ-यात्रा करने के लिए राजी न थी। कारण—अनाथाश्रम छोड़ते समय अपने प्रिय मोहनलाल के साथ उसका मिलाप न हो सका था और वृन्दा के साथ आने पर वह उसे एक पत्र भी न लिख सकी थी। जो गिदूबंदर में रहना होता तो पत्र लिखने पर अवश्य किसी निमित्त मोहनलाल से मिलना संभव था; परन्तु यदि तीर्थ-यात्रा में चली जाय तो मनमोहन का मिलना कौन जाने कब होगा। इसका निश्चय नहीं है। इसीसे उस स्थान को छोड़ने की उसकी इच्छा न थी।

विधाता ने स्त्रीजाति में लज्जा इतनी भर दी है कि लज्जावती ललना का प्राण भले ही चला जाय; पर श्रेष्ट-जन के सामने अपने प्रेम की वार्ता वे प्रकट नहीं करतीं। रोहिणी ने यह मार्ग ग्रहण करके अपनी इच्छा के विरुद्ध अनुमोदन किया। स्त्री या पुरुष प्रथम अपने प्रेम को गुप्त रखने के लिये असत्य भाषण करते हैं। यहीं से उनके असत्य का आरंभ होता है। रोहिणी ने भी असत्य का आश्रय लेकर अपने प्रेम को छिपाने का यत्न किया। इस प्रकार के असत्य के लिए रोहिणी सदृश मुग्धा

मानिनी अपने को दोष-भागी नहीं मानती। प्रम का यह धर्म है और धर्मानुसार आचरण करने में दोष नहीं लगता।

चतुर विधवा वृन्दा के मन में जो संशय उत्पन्न हुआ था, वह सत्य था। रोहिणी ने जो धर्म-मर्यादा बचाई उसे वह मर्यादाहीन नहीं करना चाहती थी। इस उद्देश्य से उसने वार-वार पूछना योग्य न समझा। वह बोली—'बेटी! मेरी आज्ञा के आधीन रहने ही में तेरा कल्याण है। दो-तीन दिन में हम लोग देशाटन के लिए निकलेंगी, इससे तुझे जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, उन्हे एक कागज पर नोट कर मुझे दे दे जिससे मैं कल मँगा लूँ। प्रवास से लौटने पर तेरा विवाह कर दामाद और बेटी के हाथ में संपत्ति-सौंप संसार से विरक्त होने की मेरी इच्छा है। जा, रात अधिक बीत गई। अब सो जा। सुबह उठना।'

रोहिणी अपने कमरे में जाकर शय्या पर पड़ रही। निद्रा आने की अपेक्षा भयंकर विचारों में उसका समय बीतने लगा। वृन्दा ने जो विवाह का इशारा किया था, उससे उसके हृदय में विशेष आघात लगा। वह अपने मन में कहने लगी—'बेटी और गाय जिसे दे दी जाँय, वही जाती हैं।

इस कहावत के अनुसार मेरी पालक माता जिसके हाथ, मेरा हाथ सौंप देगी, उसी पुरुष का पति की तरह मुझे मान करना पड़ेगा। मोहन के साथ विवाहकर सुखी होने की मेरी आशा सफल न होगी। पर यह बात यदि किसी प्रकार मोहनलाल को मालूम हो जाय, तो ठीक है।' यह निश्चय कर उसने एक पत्र लिखा और उसे बंद करके अपने पास रख लिया। विचार करती हुई सो गई।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरे दिन प्रातःकाल महात्मा गोपालदास श्रीमती वृन्दा के दरवाजे पर आया। आज उसका आगमन और प्रत्यागमन एक हो गया। जिस पाँव वह आया था उसी पाँव उसे अपने घर का मार्ग लेना पड़ा। दरवान ने उसे मकान भीतर जाने से रोका। यही अच्छा हुआ कि दरवान ने अपमान करके उसको बाहर नहीं निकाल दिया। पर उसने हाथ जोड़कर मीठे स्वर से कहा—'आज हमारी सेठानी की तबीयत खराब है। इसीसे किसीको भीतर जाने की आज्ञा नहीं है। कृपा करके आप लौट जाइए।'

'अरे, नहीं भाई! जरा बड़ी बहू से कहो—महात्मा जी आये हैं।' गोपालदास ने नम्रता से कहा।

'मुझे उनके पास जाने का हुक्म नहीं है।' दरवान ने हाथ जोड़कर कहा।

'यदि तुम्हें उनके पास जाने का हुक्म नहीं है, तो किसी दूसरे नौकर से कहला दो।' महात्मा ने कहा।

'संदेश भेजने की भी आज्ञा नहीं है।' दरवान ने जवाब दिया।

'तुझे मेरा जरा भी डर नहीं है; जा, जाकर कह दे कि मैं आया हूँ।' महात्मा ने किंचित् रोष दिखाया।

'महाराज! क्षमा करो! मुझे आज इस प्रकार का कोई भी कार्य न करने का सख्त हुक्म है।'

कोई उपाय न देख, लाचार होकर महात्मा बाहर के दरवाजे से ही आवाज देने लगा—'बड़ी बहू! तुम्हारा देवरजी आया है।'

'चुप रहो! वंदनीय महाराज! इस प्रकार चिल्लाने की भी सख्त मनाई है। दया करके कोलाहल मत मचाओ।' दरवान ने मधुर स्वर से कहा।

'नाट्यशाला में केवल बीड़ी पीना मना है और यहाँ जोर से बोलने की भी सख्त मनाही है; आश्चर्य!' महात्मा ने कहा।

'महात्माजी! नाट्यशाला तो एक सार्वजनिक स्थान

है और यह एक प्रतिष्ठित विधवा (गृहस्थ) का निवास-सदन है। अतः इनमें भेद होना स्वाभाविक है।' दरवान ने कहा।

महात्मा मन में बहुत व्याकुल हुआ। वह खड़ा-खड़ा कुछ विचार कर रहा था। फिर उसने दृष्टि फेरकर टूटे-फूटे शब्दों में कहा—'अच्छा, यदि ऐसा है तो मैं समझ लूँगा।' यह कहकर वह क्रोध के आवेश में दाँत से ओठ चबाता हुआ चला गया।

उस दिन से महात्मा ने वृन्दा की निन्दा करने का व्रत स्वीकार कर लिया। आज तक जिसे वह सीता के नाम से बुलाता था; उसी को वह वेश्या के नाम से पुरकाने लगा। जिसे वह दानेश्वरी कहता था; उसे कृपण, कंजूस एवं मक्खी-चूस कहने लगा। महात्मा के मन में वृन्दा के प्रति इतना क्रोध बढ़ गया था कि यदि वह उसे पा जाता तो निश्चय छिन्न-भिन्न कर डालता; परन्तु वृन्दा का वही भाव था। उसने गोपालदास की न तो निन्दा की और न अप्रतिष्ठा। वह पहले से भी अधिक महात्मा की प्रशंसा करने लगी। इससे गोपालदास वृन्दा के स्वभाव के विषय में असमंजस में पड़ गया।

छः दिन बीत गए। श्रीमती वृन्दा ने इतने समय के भीतर विदेश-यात्रा की सब तैयारी कर डाली थी। आज रात की गाड़ी से तीर्थ-यात्रा के लिए मध्य हिन्दुस्तान की ओर जाने का उसने निश्चय कर लिया था। मुनीमजी ने स्टेशन मास्टर को पूर्व ही से लिखकर मेल के सेकण्ड क्लास का एक कम्पार्टमेंट रिजर्व करा लिया था। रात में गाड़ी के समय से एक घंटा पूर्व वृन्दा आठ-दस आदमियों के साथ स्टेशन पर जाने के लिए निकली।

स्टेशन पर आने के बाद वृन्दा एवं मुनीमजी में घर संभालने और अन्य विषयों पर बातचीत होने लगी। इस अवसर पर रोहिणी ने जरा दूर हटकर एक कुली को बुलाकर उसके हाथ में दो आना पैसा दिया और पत्र को लेटर-बक्स में छोड़ने को कहा। दो आना मुफ्त में मिलता देखकर कुली ने खुशी से वह काम स्वीकार कर लिया और लेटरबक्स में पत्र छोड़ आया। रोहिणी के हृदय का भार कुछ हल्का हो गया। घंटी बजी, ट्रेन आकर खड़ी हो गई। वृन्दा, रोहिणी, एक नौकर और एक दासी अपने रिजर्व कमरे में बैठ गये। पंद्रह मिनट बाद ट्रेन खुली और पुलपर होकर हैदराबाद आई। हैदराबाद से ट्रेन आगे चली।

उस समय रोहिणी की आँखों में आँसू आ गए। वृन्दा ने उसके नेत्रों का आँसू न देखा; अन्यथा कारण पूछने पर रोहिणी का हृदय व्यथित हो जाता। सब लोग सो गये। केवल रोहिणी आधीरात तक जागती बैठी रहीं।

दूसरे दिन जब वृन्दा के तीर्थ-यात्रा की बात गोपालदास ने सुनी तो वह आश्चर्यचकित हो गया। उसकी निराशा के अनेक कारण थे। वृन्दा के जाने से धन के आमद में बाधा पड़ गई; दूसरे अपने फन्दे में उसे फँसाने का उसका प्रयास विफल हो गया, और तीसरे महात्मा को साथ में लिए बिना ही वह तीर्थ-यात्रा को चली गई। इससे महात्मा के मन में वैर और ईर्ष्या की आग सुलग उठी। उसने अपने लालची शिष्यों-द्वारा यह बात चारों ओर फैला दी—'विधवा वृन्दा पाप करती थी अतः तीर्थ-यात्रा के बहाने कहीं पर गर्भ गिराने गई है।'

१३

सवेरे दस या साढ़े दस बजे थे। महात्मा गोपाल-दास अपनी साली के साथ एकान्त कमरे में बातचीत करता हुआ बैठा था। एक बात का स्मरण आ जाने से उसने अपनी गद्दी के नीचे से एक पत्र निकाला। यह पत्र रजि-

हुई आया था। उसने पत्र पढ़ा था; किन्तु पुनः प्रियतमा साली को सुनाने के लिये पुलकित होकर कहा—'श्रीमती दयामयी! इस पत्र में क्या लिखा है? और यह कहाँ से आया है? इसका अनुमान कर सको, तो बहुत अच्छा हो।'

'इस पत्र के ऊपर की खास निशानी देखकर यही विश्वास होता है कि यह बंगाल और आसाम के अपने शाक्तमंडल के सबसे बड़े अध्यक्ष की ओर से आया है।' श्रीमती दयामयी ने कहा।

'तुम्हारी कल्पना सत्य है। यह पत्र सबसे बड़े धर्माध्यक्ष की ओर से आया है। इसमें एक अधिक आनन्द की बात है। जिस पदवी की लालसा आज वर्षों से हमारे हृदय में जाग्रत रही है, जिसके लिए मैं बहुत दिनों से सतत प्रयास करता रहा हूँ उसी पदवी से मुझे विभूषित करने के लिए बड़े धर्माध्यक्ष ने निश्चय किया है और उसीके लिए यह आज्ञा-पत्र है।' महात्मा ने अपने आनन्द का कारण बताया।

'यह मैं समझ न सकी। आप अपने आशय को स्पष्ट समझा दें।' श्रीमती ने आतुरता से प्रश्न किया।

'इस सिंधु देश के शाक्तधर्म के मुख्य धर्माध्यक्ष की पदवी मुझे दी जानेवाली है। यह पदवी हिंगुलदेवी के मार्ग में आनेवाले शाक्तसदन में पदवीदान के अवसर पर दी जायगी। चार दिन के बाद हम लोगों को वहाँ जाना पड़ेगा। उस दिन सब शाक्तों को वहाँ आने का निमंत्रण दिया जा चुका है।' महात्मा ने कहा।

'ठीक है। आप जो प्रसन्नता दिखा रहे हैं वह सकारण है; यह विलास वैभव देने वाली पदवी बड़े सौभाग्य से मिल सकती है। यह समारंभ किसके हाथ से होने वाला है?'

'आसाम के महान् धर्माध्यक्ष का प्रतिनिधि यहाँ के शाक्तसदन में आ पहुँचा है, और उसीके हाथ से पदवीदान का समारंभ होगा। अहा! कितना आनंद है। महात्मा गोपालदास के भाग्य की कितनी प्रबलता है। शोक केवल इस बात का है कि यदि कहीं वह राँड़ वृन्दा होती, तो उसे वहाँ ले जाकर बलात् शाक्तधर्म की दीक्षा दे देता। पीछे किसी प्रकार की अस्वीकृति करने योग्य न रह जाती। अस्तु 'गतं न शोचामि' फिर यत्न करेंगे।'

'सत्य है। यदि वह विधवा अपने मंडल की उपासिका

हो जाती तो अपने को और शाक्त मंडल को उससे विशेष लाभ होता। चिन्ता नहीं। तीर्थ-यात्रा करके पुनः आवेगी। तब मैं किसी प्रकार उसे अपने फंदे में लाऊँगी।' श्रीमती दयामयी ने कहा।

'अब तुम बाहर चलने की तैयारी करो; अपने को शाक्त-मंडल में जाना है—यह किसी पर प्रकट न होने पावे। उस समारंभ उत्सव के अवसर पर अपनी सौन्दर्य वृद्धि के लिए आलमचंद के सब आभूषणों को ले लेना; क्योंकि अब यह धन अपने पूर्वजों का हो गया है।'

'इसमें कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस तरह बने, वस्त्राभूषण से शरीर का शृंगार कर पुरुष को अपने सौन्दर्य के जाल में फँसावे—यह स्त्रियों का स्वभाव है। मैं अपने शाक्तसदन में जाने की भी बात छिपा रक्खूँगी। यदि कोई पूछेगा तो द्वारिका, तीर्थ-यात्रा करने का बहाना कर दिया जायगा।'

'ठीक है, दयामयी! मैं तुमको मायामयी मानता हूँ। तुम्हारी इस चतुरता को देखकर तुम्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।'

'यह आप-जैसे भोगी महात्मा की अलौकिक शिक्षा का

प्रभाव है। मेरे चातुर्य्य की कोई बात नहीं है। शिष्या की चतुरता का सारा श्रेय गुरु को है।'

'तुम्हारी ऐसी चतुरा शिष्या का गुरु होने से मैं अपने को महाभाग्यशाली समझता हूँ।'

'गुरुदेव ! आप मुझे बारबार 'तुम' कहकर क्यों संबोधन करते हैं। अपने व्यवहार को देखकर आपको मुझे 'तू' कहने का पूर्ण अधिकार है। 'तू' शब्द में जो मिठास और प्रेम का लगाव अनुभव होता है। वह 'तुम' शब्द में नहीं होता।'

'तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। 'तू' शब्द में मिठास और प्रेम की लगावट होती है पर मैं 'तुम' का व्यवहार इसलिये करता हूँ कि सदा तुच्छ वाणी बोलने से यदि आदत पड़ जाय और वही बात चार आदमी के बीच में निकल पड़े तब हम लोगों के परस्पर व्यवहार का भेद खुल जाने से प्रतिष्ठा की हानि होगी।'

'यह ठीक है पर मेरी यह इच्छा है कि जब हम और आप एकान्त में रहें, तो आप मुझे 'तू' कह कर बुलावें। इसके बिना संभाषण और स्नेह-विहार में रस नहीं मिलता।'

'यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो भविष्य में मैं ऐसा ही व्यवहार करूँगा।'

इतने ही में एक नौकर ने आकर कहा—'बाहर एक साधु आया है और आपसे मिलने के लिये बहुत आतुर है।'

'अच्छा, उसे बुलाओ!' महात्मा ने स्वीकृति दी।

नौकर बाहर चला। महात्मा ने दयामयी से कहा—'तब तक तू अंदर जाकर प्रवास की तैयारी कर। मैं इस नवागत के साथ बातचीत करके आता हूँ।'

दयामयी दूसरे कमरे में चली गई। थोड़ी देर में नौकर ने परदेशी साधु को बुलाकर वहाँ उपस्थित किया और साधु से कहा—'यही महात्मा श्री गोपालदास हैं।'

'मैं महात्माजी को भली भाँति जानता हूँ। इससे तुम्हें परिचय कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम जाओ।' साधु ने कहा।

नौकर चला गया। वह साधु महात्मा के पास ही एक उच्च आसन पर बिना कहे ही बैठ गया। महात्मा उसके व्यवहार से बड़े आश्चर्य में पड़ गया। उसने शंकित हृदय से पूछा—'महाशय! आप कहाँ से आते हैं? और आप का मेरे पास आने का क्या कारण है? आप कहते हैं कि

आप मुझे भली भाँति पहचानते हैं; यह सुन कर मैं आश्चर्य से चकित हूँ ; आप मुझसे कहाँ मिले थे यह मुझे स्मरण नहीं है।'

'मैं काशी से आता हूँ और मेरे आने का मतलब यह है कि दीवान आलमचंद ने आपको एक पत्र दिया है।'

'आप का नाम ?'

'आजकल लोग मुझे आनंदानंद के नाम से पुकारते हैं।'

'हाल ही में हैदराबाद का त्याग करके जो काशी निवास कर रहे हैं वही दीवान आलमचंद न ?' भृकुटी चढ़ाकर महात्मा ने पूछा।

'हाँ, वही।'

'वाह वाह! आज उसका समाचार सुनकर आनंद हो गया। वह एक बड़ा भक्त पुरुष है। वह सुखी तो है न ?'

'भगवान श्री काशी विश्वनाथ की कृपा से और आप ऐसे महात्माओं के आशीर्वाद से वह आनंद से हैं। उन्होंने आपका कुशल समाचार पूछा है और यह पत्र दिया है—' कह कर जेब से पत्र निकाल महात्मा को दे दिया।

पत्र पाते ही महात्मा पीला पड़ गया। उसके मुख-मंडल पर तिरस्कार की कुछ छटा दिखाई पड़ने लगी।

उसने शंकित दृष्टि से पूछा—'यह पत्र तुमको दीवान आलमचंद ने स्वयं दिया है।'

'हाँ, क्या आप उनके हस्ताक्षर को नहीं पहचान सकते?' आनन्द ने तिरस्कारपूर्वक कहा और महात्मा के भाव को सूक्ष्मता से देखने लगा।

'मैं उनका हस्ताक्षर पहचानता हूँ। आजकल बनावटी अक्षर के लिखनेवालों की संख्या बढ़ रही है। इससे यह हस्ताक्षर दीवान आलचन्द का है या नहीं—इस विषय में मुझे शंका उत्पन्न होती है। मान लो, यह पत्र दीवानजी ने ही लिखा है; पर इस पत्र के लिखने का क्या अर्थ है? यह मैं समझ नहीं सकता। उनका रुपया कुछ मेरे चौपड़े में जमा नहीं है कि उसमें से पाँच सौ रुपए निकाल कर दे दूँ। यह देवमन्दिर है। यदि सराफ की दूकान होती तो खाते में लिखकर दे भी सकता था। यहाँ धर्म के नाम पर जो धन आता है वह परमार्थ के काम में खर्च हो जाता है। अतः इस प्रकार मुझ साधु के पास यह पत्र लिखना दीवान साहब को उचित न था।' महात्मा ने दो टूक जवाब दिया।

'महात्माजी! आप इस चिट्ठी को साफ इन्कार करते हैं? दीवानजी का आपके पास कुछ नहीं है! यह कह रहे

हैं।' आनन्दानन्द ने चिट्ठी को उठाकर अपने जेब में रखते हुए वक्रमुद्रा से पूछा।

'मैं जो एक बार कह देताहूँ वह इतना सरल और सुबोध होता है कि उतने में ही उसका भावार्थ स्पष्ट हो जाय और दूसरी बार कहने की आवश्यकता ही न पड़े।' महात्मा ने रूक्षता से कहा।

'मैं अब जाने की आज्ञा चाहता हूँ। पर इतना याद रखना। इस पाप का परिणाम- अच्छा न होगा। मैं फिर से कहता हूँ कि मैं आपको भलीभाँति जानता हूँ और ज्योंही आप हमारा नाम जान लेगें और हमारा असली रूप देखेंगे त्योंही आप पहचान सकते हैं। पर नहीं; अभी इस भेद के खोलने की कोई आवश्यकता नहीं है। खोलना होगा तो उचित अवसर पर खोलूँगा।' यह बात कहते समय आनंदानंद की दृष्टि महात्मा की गद्दी पर पड़ी हुई शाक्तमंडल के निमंत्रण पत्र पर पड़ी। महात्मा उसकी कही हुई बातों के विचार में पड़ गया था; अतः इस अवसर का लाभ उठाकर उसने उस आमंत्रण को अपने जेब में रख लिया, और यकायक बाहर जाने के लिये उठ खड़ा हुआ।

महात्मा ने उसे रोका और नम्रता से कहा—'अतिथि साधु! विवाद और चिट्ठी की बात जाने दीजिए। आप अतिथि हैं। मैं आपका सत्कार करना चाहता हूँ; इससे कृपा करके दो दिन और रह जाँय और इस दीन का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करें तो बड़ी कृपा हो।'

'नहीं, यह देव-मन्दिर नहीं; किन्तु दानव-मन्दिर है; इस मन्दिर में धर्म नहीं होता; किन्तु पाप होता है। इससे यहाँ का पापमूलक अन्न खाकर पापी होने का विचार नहीं है। मैं तिरस्कारपूर्वक तुम्हारा आग्रह अस्वीकार करता हूँ।' आनन्दानन्द ने धिक्कार दिखाते हुए उत्तर दिया।

'आनन्दानन्द! अब तक साधु समझकर मैं तुम्हारे साथ विवेकता एवं शिष्टतापूर्वक बात करता था। उसका बदला तुम मुझे इस प्रकार देते हो; मेरे ऊपर जो अपराध लगाते हो उसे लगाने का तुमको क्या अधिकार है? मेरा कौन-सा पाप तुमने देखा है? बिना देखे या समझे किसी को दूषित करना यह साधु का कर्तव्य नहीं है।' महात्मा ने साहस से जरा कड़ककर कहा।

'बालहत्या, परद्रव्यापहरण एवं व्यभिचार आदि यही साधु का कर्तव्य है? तुम्हारे कर्मों का फल तुम्हें मिलेगा!

और मेरे कर्तव्य का फल मुझे मिलेगा। बिना कारण दूसरे के कार्य के लिए मुझ को चिंता करने की आवश्यकता नहीं। मैं जाता हूँ और तुमने रुपया नहीं दिया; यह दीवान आलमचंद को लिखे देता हूँ।' आनंदानंद ने भय दिखाया।

'अच्छी बात है, तुम्हें कल लिखना हो तो आज ही लिखो, मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। साँच को आँच नहीं लगती।' महात्मा ने कहा।

'बहुत अच्छा' कहकर आनंदानंद वहाँ से जल्दी-जल्दी चला गया।

महात्मा की साली श्रीमती दयामयी दीवाल की आड़ में खड़ी होकर सब बात चुपचाप सुन रही थी। वह नवागन्तुक साधु को जाते देख महात्मा के पास आई और मंद-मंद मुस्कराती हुई बोली—'अजी! इतनी देरतक क्या पंचायत होती थी?'

'कुछ नहीं, दुष्ट आलमचंद का पत्र लेकर आया था। वह पाँच सौ रुपए लेना चाहता था। पाँच सौ रुपए शायद दे भी देता, पर बिल्ली के दूध पीने का भय नहीं है आदत पड़ जाने का भय है। इस कहावत के अनुसार पाँच सौ रुपए देनेपर किसी दिन सब रुपए और आभूषण आदि

देने पड़ें; इससे मैंने इन्कार कर दिया। बेटा आलमचंद को खबर नहीं है कि उनका रुपया और माल तो हम लोगों ने हजम कर लिया।'

'पत्र लिखनेवाले आलमचन्द और रुपये लेने के लिए आनेवाले इस साधु, दोनों के अक्ल पर परदा पड़ गया है। बुद्धि का दुश्मन इतना भी नहीं समझता कि श्मशान में गया हुआ आदमी पुनः घर लौटकर नहीं आता। भला महात्मा गोपालदास एवं श्रीमती दयामयी के हाथ में आया हुआ धन वापस चला जाय! यह कदापि नहीं हो सकता। ऐसा हो जाय तो गुरु और शिष्या दोनों कच्चे समझे जाँय।' दयामयी ने कहा।

'इस बातको जाने दो; देखो, यह पत्र संभालकर साथ में रखना; इस पर दूसरे किसीका हाथ न पड़ने पावे।' यह कहकर महात्मा ने जहाँ पत्र रखा था, वहाँ हाथ बढ़ाया; पर पत्र हाथ में न आने से वह घबड़ाकर हाँफने लगा। अन्त में निराश होकर बोला—'श्रीमती! भूलकर तुम वह पत्र भीतर तो नहीं लेती गई थी।'

'नहीं, मुझे उसका कुछ पता नहीं है।'

'तब वह पत्र कहाँ गया?'

'वह दुष्ट साधु तो नहीं लेता गया !'

'देखो, कितना बुरा हुआ; उसमें कितनी भेद भरी बातें थीं। मुझे विश्वास होता है कि वह अवश्य मेरी भेद भरी बातों को कुछ-कुछ जानता है। यदि वह साधु इस पत्र को जनता में प्रकट कर दे कि महात्मा गोपालदास शाक्तमंडल का सदस्य है, तो निश्चय ही वैष्णवों मे अपनी प्रतिष्ठा घट जायगी, और अपने को भयंकर हानि उठानी पड़ेगी। अब क्या उपाय करूँ ?' महात्मा ने शोक प्रकट करते हुए कहा।

'पर यह भी संभव है कि वह पत्र उसने न लिया हो; क्योंकि उस पत्र में क्या लिखा है, इसकी तो उसे कुछ खबर न थी।'

महात्मा ने संदूक वगैरह में सब जगह तलाश किया; परन्तु पत्र न मिला। आनंदानंद के जेब में पड़ा हुआ पत्र भला महात्मा के घर में कहाँ से आवे! अन्त में निराश होकर वह गाल पर हाथ रखकर बैठ गया। उसकी यह अवस्था देख दयामयी उसको आश्वासन देती हुई कहने लगी—'वाह! इतनी थोड़ी बात के लिए आप इतना अधिक घबड़ा जाते हैं। यह कहीं प्रकट भी हो जाय तब भी कोई बात नहीं है। हमें यह प्रकट करना होगा कि हमलोग इस विषय

में कुछ नहीं जानते हैं और इस बुरी बात को और बुरे पत्र को हमारे शत्रुओं ने तैयार किया है। अपने ऊपर जनता का इतना विश्वास है कि वे हमारी बात को सत्य मानेगें और इस भटकते हुए भिखारी साधु की बात कोई भी न सुनेगा। हिन्दुस्तान के लोग अन्य किसी विषय में विचार एवं विवेचन कर सकते हैं; परन्तु धर्म के विषय में वे अंधश्रद्धालु होते हैं। इससे अन्त में हमी लोग विजयी होगें।'

'धन्य, दयामयी, धन्य! तुमने आज मेरा मान रख लिया। मेरी चिन्ता दूर कर तुमने मुझे आज नवीन जीवन दान दिया है। तुम्हारी तरह चालाक यदि एक और स्त्री सहायिका हो तो इस प्रकार के हजारों दुश्मन धूल फाँकते रह जाँय। इस में कुछ आश्चर्य नही। किसी मूर्ख कवि ने कहा है—स्त्री की बुद्धि प्रलय करनेवाली है। मैं तो कहता हूँ कि स्त्री की बुद्धि संकट को नाश करनेवाली और आनंद का संचय करनेवाली है।' इतना कहने के बाद आनंद से महात्मा का दयामयी के साथ सुख-दायक आलिंगन, चुम्बन आदि अश्लील व्यापार चलने लगा।

उसी दिन से महात्मा और उसकी साली के द्वारिका-यात्रा की बात भावुक जनसमाज में फैलने लगी। कितने ही भावुक भक्तों ने महात्मा को यथाशक्ति धन इकट्ठा करके

दिया। तीन-चार दिन के पश्चात् महात्मा अपनी साली के साथ हैदराबाद से हिंगुलदेवी के समीप शाक्तसदन की ओर जाने को रवाना हुआ। कितने-ही देवी-भक्त गुप्तरूप से उनके साथ गये। इन यात्रियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक थीं।

१४

शान्त संध्याकाल था। शाक्तसदन में आनद कोलाहल हो रहा था। एक बहुत बड़े कमरे में पदवीदान का उत्सव होने वाला था। कमरा लम्बा और चौड़ा था। पश्चिम तरफ की दीवाल में एक मंडप बना था, उसमें काली की नरमुंडमालाधारिणी प्रतिमा रखी थी। इस मूर्ति के पास एक चबूतरा बना हुआ था। उस पर दो आसन थे। कालिका की मूर्तिवाला कमरा—पुष्पमाला और पत्रतोरण से भूषित किया गया था। दीवाल पर महिषासुर-मर्दिनी, चामुंडा दुर्गा, शंकर की गोद में बैठी हुई पार्वती आदि शक्ति के अलग-अलग चित्र टँगे हुए थे। चबूतरे के पास ही एक ऊँची चौकी पर पका माँस, मदिरा की बोतल, तली हुई मछली रखी थी। शक्ति के उपासक स्त्री-पुरुष भाल में सिन्दूर तिलक लगाये, लाल वस्त्र पहनकर दोनों ओर

बैठे थे। चबूतरे के आस-पास नीचे लाल रेशम की धोती, अँग में पीत वस्त्र पहने, हाथ में त्रिशूल एवं तलवार और खुली चुन्नी, सिंदूर-तिलक से भूषित ललाट धर्मगुरु क्रूर-मुद्रा धारण करके बैठे थे। इस कमरे में लगभग तीन-चार सौ स्त्री-पुरुष बैठे हुए थे। पर वहाँ शांति इस प्रकार विराज रही थी कि यदि सूई गिर पड़े, तो उसकी भी आवाज सुनाई न पड़े। बाहर के लोग समझते थे कि इस मकान में कोई मनुष्य नही है।

सूर्यास्त और निशानाथ के उदय का संधिकाल था। दीपक जला दिये गये। शान्ति की निःस्तब्धता भंग हो गई। एक शाक्त ने गंभीरता से कहा—'महान धर्माध्यक्ष के माननीय प्रतिनिधि, सिंधुप्रान्त के नवीन मुख्य धर्माध्यक्ष के प्रतिनिधि महात्मा गोपालदास आरहे हैं। अतः उनका स्वागत करने को तैयार रहिए।'

बंगालवासी शाक्तधर्म के महान धर्माध्यक्ष के प्रतिनिधि, महात्मा गोपालदास और श्री दयामयी तीनों समारंभ वाले कमरे में आए। सब शाक्तों ने प्रणाम कर उनका स्वागत किया। प्रतिनिधि महाशय अन्य शाक्तों के सदृश ही, किन्तु कुछ भड़कीले वस्त्र पहने हुए थे, और वैसे ही वस्त्र

महात्मा भी धारण किये हुए था। श्रीमती दयामयी का स्वरूप आज देखने ही योग्य था। सिंधु के रिवाज के अनुसार वह लालरंग की रेशमी इजार, नीले रंग की रेशमी चोली और ऊपर से पीले रंग की महीन साड़ी पहने थी। नाक-कान, एवं हाथ में हीरा-मोती के आभूषण थे, और पाँव में चाँदी की झाँझ पहने थी। स्वाभाविक सौन्दर्य के साथ इस कृत्रिम सौन्दर्य के मिलान से उसका रूप वर्णनातीत था। वह दिल्ली की वेश्या की तरह दिखाई पड़ती थी। उसके गले में चंद्रहार अजब शोभा दे रहा था।

प्रतिनिधि महाशय आते ही माताजी के सामने प्रणाम कर बैठ गये, और शाक्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए देवी की स्तुति करने लगे। अन्य शाक्तों ने उनका अनुसरण किया। इस क्रिया की समाप्ति होने पर प्रतिनिधि एक उच्च आसन पर बैठ गये। महात्मा गोपालदास उनके पास ही नीचे आसन पर बैठा था और दयामयी उसके पीछे खड़ी थी। आसन पर बैठकर प्रतिनिधि ने गंभीरध्वनि से कहना आरंभ किया—'यहाँ पर एकत्रित होने वाले शाक्तधर्म के एक निष्ट उपासक पुरुषो और देवियो! मैं आज आप के शाक्तधर्म के महान धर्माध्यक्ष की आज्ञा से महात्मा गोपाल-

दास को सिंधु प्रदेश के शाक्त धर्म मंडल के धर्माध्यक्ष की पदवी देने आया हूँ।

'हम, आज इसी क्षण से सिंधु देश के शाक्तमंडल के मुख्य धर्माध्यक्ष की तरह महात्मा गोपालदास का आदर करेंगे और अपने महान धर्माध्यक्ष की आज्ञा अपने सिर पर धारण करेंगे।' शाक्तधर्म के स्त्री-पुरुषों ने अपनी अनुमति बड़े जोर से प्रकट की।

'महात्माजी! देवी के सामने हाथ जोड़ कर बैठ जाओ और प्रतिज्ञा करो।' यह कह कर प्रतिनिधि ने एक कागज महात्मा के हाथ में रख दिया।

महात्मा गोपालदास हाथ जोड़कर देवी के सम्मुख बैठ गया। पहिले अनेक मंत्रों का उच्चारण किया और कागज को दोनों उँगलियों से पकड़कर वह निम्नलिखित प्रतिज्ञा पढ़ने लगा—'मैं विश्व संचालिका शक्ति कालिका देवी और शाक्तधर्म के महान धर्माध्यक्ष के प्रतिनिधि के सम्मुख एकनिष्ट, निष्कपटता से प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस प्रदेश में या किसी अन्य प्रदेश मे जहाँ मैं रहूँगा वहाँ अपने प्राचीनतम और पवित्रतम शाक्तधर्म तथा उसके मुख्य नेता आसाम-निवासी महान् धर्माध्यक्ष की आज्ञा के विरुद्ध

जो धर्म, पंथ, समाज, राजा, महाराजा होंगे उनके साथ कोई सम्बन्ध न रखूँगा। आज से मैं अपनी देह, धर्मदेवी को समर्पित करता हूँ, और महान धर्माध्यक्ष की जो कुछ आज्ञा होगी उसे विना किसी सोच-विचार के यथार्थ-पालन करने के लिए बाध्य हूँ। जो धर्माध्यक्ष की इच्छा होगी, वही मेरा धर्म होगा। आज से अब मैं अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी कार्य न करूँगा।

मैं हृदय से इस बातको कहता हूँ कि अपने धर्म-मार्ग में विघ्न करनेवाली किसी भी धर्मसंस्था और धर्म-बन्धन का बहिष्कार करूँगा। जो कोई धर्म अथवा धर्म-संस्था अपने महान धर्म और महान धर्माध्यक्ष की सत्ता, मर्यादा को नष्ट करने या दबाने की अभिलाषा करेगा मैं उन सबका बहिष्कार करूँगा, और समस्त विश्व में शाक्त-धर्म का जिस प्रकार विस्तार एवं प्रचार होवे उसे मैं सदा अपने हृदय में पोषण करूँगा। अपने धर्माध्यक्ष के प्रति-बन्ध में रहते हुए अन्य धर्मसंस्थाओं को नष्ट करने का मैं सब प्रकार के गुप्त प्रयत्न करूँगा, और आर्यावर्त के वातावरण में मैं जिस धर्म का उपासक हूँ उस धर्म के तत्व का यथाशक्ति प्रसार और प्रचार करूँगा।

जिन धर्म-संस्थाओं या सत्ताओं ने अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार धर्म स्वीकार करने की स्वतंत्रता दे दी है और प्रत्येक व्यक्ति को स्वातंत्र्य दे रखा है उन सब संस्थाओं का बहिष्कार करने का विचार सदा मैं अपने हृदय में स्थापित करूँगा और शाक्तधर्मानुसार सबको एक करने का परम सिद्धान्त एवं उसके प्रचार की प्रतिज्ञा करता हूँ।

इस शाक्तसदन में जो कुछ आय है उसे मैं अपने लाभ के लिये उपयोग न करने की भीषण प्रतिज्ञा करता हूँ और उसे शाक्तधर्म के लिए ही खर्च करूँगा, और वर्ष में दो बार आय-व्यय का हिसाब बराबर धर्माध्यक्ष की सेवा में भेजता रहूँगा, और मैं उन सब प्रकार के उपायों को करूँगा जिससे शाक्तसदन के कोष में अच्छी संपत्ति आवे। इसके लिये मैं कठिन प्रयास करूँगा।

महान धर्माध्यक्ष या उनके कोई माननीय प्रतिनिधि जिस बातको गुप्त रखने की आज्ञा देंगे उस बातको किसी पर भी प्रकट न होने दूँगा। और यदि किसी से कहना ही होगा तो उससे भी गुप्त रखने की प्रतिज्ञा करा लूँगा। इतनी संभाल रखनेपर भी यदि बाहर बात प्रकट हो ही जाय

तो प्रतिज्ञा तोड़कर उसके अस्वीकार करने पर असत्य का आरोप करूँगा और सिद्धकर बतलाऊँगा ।

जो कोई प्रतिनिधि महान धर्माध्यक्ष के विरुद्ध एवं शाक्तधर्म को हानि पहुँचाने के लिए यत्न करता हुआ मालूम होगा उसे हम तत्काल ही महान धर्माध्यक्ष को सूचित करेंगे, और उसके धर्म को हानि पहुँचाने का यत्न करेंगे ।'

'तथास्तु-तथास्तु ।' प्रतिनिधि के साथ सब धर्म गुरुओं ने बड़े जोर से कहा ।

यह भीषण प्रतिज्ञा करने के पश्चात् महात्मा को उठने की आज्ञा मिली । उठने के पश्चात् शाक्तधर्म के मुख्य चिन्ह देवी के त्रिशूल को हाथ से छूने के लिए प्रतिनिधि ने उसे आज्ञा दी । महात्मा ने आगे बढ़कर त्रिशूल को हाथ से छूआ । उसी क्षण प्रतिनिधि के नेत्र संकेत होते ही त्रिशूल और तलवार धारण करनेवाले धर्म गुरुओं ने महात्मा को चारों ओर से घेर लिया, और उन त्रिशूलों और तलवारों की नोकों को ऊपर उठाकर महात्मा को मार डालने के लिए तत्पर हो गये । महात्मा निश्चल खड़ा था । प्रतिनिधि महात्मा को एक आज्ञा देनेवाले थे । यदि उस आज्ञा को महात्मा अस्वीकार करे, तो महात्मा को मार

डालने की धर्म गुरुओं को पूर्व ही आज्ञा मिल चुकी थी। प्रतिज्ञा के अनुसार भविष्य में आचरण करेंगे; महान् धर्माध्यक्ष की आज्ञा मानेंगे आदि बातों को जांचने अथवा इस उपस्थित आतंक को देखकर मृत्यु से भयभीत तो नहीं होते आदि की परीक्षा का यह एक ढंग था। सिंधु देश के शाक्तसदन के नवीन धर्माध्यक्ष होनेवाले महात्मा गोपालदास को एक अन्य धर्मगुरु ने एक पात्र दिया। यह कपाल-पात्र था। यह मनुष्य की खोपड़ी के आकार का था, और उसमें मनुष्य के रुधिर की तरह श्यामवर्ण का कोई द्रव पदार्थ दिखाई पड़ता था। प्रतिनिधि ने महात्मा को इस पात्र को मुँह से लगाने की आज्ञा दी।

'महात्मा गोपालदास, यह शाक्तधर्म नाना प्रकार की हिंसात्मक क्रियायों से भरा हुआ है। भीरु और कापुरुष इस धर्म का परिचालक नहीं हो सकता। इससे आज जो पदवीदान करना है उस पदवीदान करते समय उसे धारण करने के लिए तुम्हारा मन दृढ़ और अचल है या नहीं—वह इस प्रस्तुत विधि से परीक्षा की जाती है। यह नरशोणित से भरा हुआ कपालपात्र है। यदि तुम्हारी अब तक की की हुई प्रतिज्ञा सत्य है और तुम्हारे हृदय में

शाक्तधर्म एवं महान् धर्माध्यक्ष के वचन-पालन करने में पूर्ण श्रद्धा हो और इसमें तुम्हारा मन दृढ़ और अचल हो तो यह मानव-रुधिर पी जाओ।'

प्रतिनिधि का यह गम्भीर स्वर शाक्तसदन के वातावरण में व्याप्त हो गया और उसने सब शाक्तों के हृदय को आन्दोलित कर डाला। पदवी पाने का अभिलाषी महात्मा जीवनदायक अमृत की तरह बिना किसी हिचकिचाहट के कपालपात्र को होठ से लगाकर मनुष्यरुधिर को पी गया। महात्मा की यह वीरता देखकर प्रतिनिधि ने शस्त्रधारी धर्मगुरुओं से कहा—'धर्मवीरों! तुम लोग अपने हाथ के त्रिशूलों को नीचे कर लो; और तलवार को म्यान के भीतर रख लो; यह महात्मा हर प्रकार से पदवी-योग्य है।'

शस्त्रधारियों ने आज्ञा के अनुसार अपने त्रिशूल को नीचा कर लिया। शाक्तस्त्रियाँ मधुर कण्ठ से देवी की स्तुति करने लगीं और महात्मा पर धन्यवाद की वृष्टि होने लगी। प्रतिनिधि ने एक धर्मगुरु को आज्ञा दी—'जाओ और कमरे में शाक्तधर्म के विरुद्ध लिखी हुई चार-पाँच किताबें हैं; उन्हें उठा लाओ।'

आज्ञानुसार वह धर्मगुरु तीन-चार किताबें उठा लाया।

प्रतिनिधि ने उन्हें लेकर महात्मा के हाथ में दिया। एक शाक्तोपासक ने आग की जलती हुई अँगीठी वहाँ लाकर रख दी। प्रतिनिधि ने उस पुस्तक का परिचय देते हुए कहा—'इस वेदान्त ग्रंथ एवं आजकल के पाखण्डियों का लिखा हुआ अपने धर्म के विरुद्ध ग्रन्थों का नाश हो जाना देखना चाहता हूँ। यदि इन ग्रन्थों का अस्तित्व अवशेष रहने दिया जाय, तो हम लोगों को अपना अस्तित्व अपने ही हाथों से खोना पड़ेगा। यदि यह पाखण्डी फैल जाँय तो विश्व में महा अनर्थ हो जावेगा। महात्मा! इस ग्रन्थ के विषय में अपनी जो घृणा और शत्रुभाव है उसको प्रकट करने के लिए और इन पाखण्डी धर्मों के नाश के लिए यदि तुम में सामर्थ्य हो, तो उसको प्रकट करने के लिए यह उपनिषद, वेदांत और सत्यासत्य विचार आदि पुस्तकों को जलती हुई आग में डालकर भस्मसात कर डालो।'

'पाखण्डियों के इन धर्मग्रन्थों से मैं घृणा करता हूँ। जिस प्रकार धीरे-धीरे यह पुस्तकें आग में जलकर नाश हो रही हैं उसी प्रकार अन्य धर्मों को माननेवालों का नाश होवे, और समस्त विश्व में सर्वश्रेष्ठ शाक्तधर्म का घर-घर प्रचार हो। जो लोग पवित्र तन्त्रों के अतिरिक्त अन्य

धर्मों को मानते हैं उनको नरक की यातना मिले, और शाक्तधर्म पृथ्वी पर अविरत विस्तार पावे।' इस प्रकार कहकर महात्मा ने सब ग्रन्थों को जलती हुई अग्नि में डाल दिया।

ज्यों-ज्यों ये ग्रन्थ जल रहे थे और उनमें से निकलने वाले धुएँ वातावरण में फैलते जाते थे, त्यों-त्यों शाक्तधर्मी स्त्री-पुरुष भयङ्कर स्वर से अपना हर्ष और आनन्द प्रदर्शित करते जाते थे। एक बार पुनः देवी की स्तुति की गई। और उसके बाद एक और विधि का आरम्भ हुआ। प्रतिनिधि ने बड़े जोर से कहा—'हे शाक्तधर्म के गुरु लोग, और शक्ति के उपासकों! सिंधुदेश-शाक्तसदन के नवीन धर्माध्यक्ष महात्मा गोपालदास की आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा करो। यदि तुम इनकी आज्ञाओं का उल्लंघन करोगे, तो निश्चय ही महाभयंकर नरक-यातना के अधिकारी होगे।'

सब शाक्त महात्मा के आसन के पास झुक पड़े और उनकी आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा करते हुए कहने लगे—'महान धर्माध्यक्ष सिंधुदेशवासी महात्मन्! आज से हम लोग आपकी बातों को बिना संशय किये ही आदर करने की प्रतिज्ञा करते हैं।'

इसके पश्चात् प्रतिनिधि ने मखमल का चोगा महात्मा को पहनाया और उनके सिर पर त्रिशूल की तरह का एक ताज रख कर मन्त्र का उच्चारण किया। यह पदवीदान विधि समाप्त हुई। तुरत ही देवी के लिए रखा हुआ मांस आदि पदार्थ उठाकर नीचे भूमि पर अलग-अलग थालियों में रखा गया। प्याला और मदिरा की बोतल भी आ गई। बस भोजन आरम्भ हुआ। पहिले वे लोग मदिरा-पान करके उन्मत्त हो गये, और तब मांस और मछली खाने लगे। तीन मकार तो पूरा हो गया। इसके बाद मुद्रा नाम का मकार आरम्भ हुआ; स्त्री-पुरुष-बच्चे अपने हाथ एवं शरीर से अनेक कुचेष्टायें करने लगे। मदिरा का नशा चढ़ने पर प्रतिनिधि ने दयामयी की चोली फाड़ डाली। इसके पीछे महात्मा की बारी आई, और उनके पीछे क्रम से धर्म-गुरुओं एवं शाक्तभक्तों ने उन्हीं का अनुसरण किया। दयामयी प्रतिनिधि के प्रेम की पात्री हो गई और इस प्रकार यह जोड़ा बन गया। इस क्रिया का आरम्भ और अन्त किस प्रकार हुआ यह हमारे लिखने की शक्ति के बाहर है।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन प्रभात में देवी की पूजा इत्यादि करने के

बाद प्रतिनिधि महात्मा गोपालदास और श्रीमती दया-
मयी शाक्तसदन के अलग-अलग भागों को देखने के लिए
निकले। उनके साथ दो स्त्री और दो पुरुष और थे।
महात्मा ने अनेक गुप्त कमरों और उनमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष
आदि प्राणियों को देखा। वह उस स्थान पर जहाँ अशक्त
और रोगी स्त्रियाँ रखी जाती थीं—जिसे औषधालय या
रुग्णालय कहते थे—आया। वहाँ एक अशक्त तरुणी शय्या
पर पड़ी थी। वह सब लोगों को आते देख शय्या से उतर
कर एक ओर बैठ गई। यह अबला रोगिणी होने पर भी
अत्यन्त सुन्दरी थी। उसके सौन्दर्य ने महात्मा के मन को
खींच लिया। उसने अपने साथ के एक आदमी से
पूछा—'यह कौन है? विगत रात्रि के समारंभ में यह क्यों
न दिखाई पड़ी थी?'

'इस तरुणी को शाक्तसदन में मैं ही लाया हूँ। थोड़े
दिन की बात है कि सिंध हैदराबाद और उसके आस-पास
के गाँवों में शंखोद्धार करने गया था। वहाँ से लौटते समय
फुलेली नदी के किनारे पर भोजन करने के लिए रुक गया।
एक आदमी भात पकाने लगा और हम दो आदमी जल
भरने के लिये नीचे उतरे। इतने ही में एक मनुष्य पानी

में बहता हुआ दिखलाई पड़ा। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि वह कोई स्त्री है। हम दोनों तैरने में होशियार थे, इससे तुरत पानी में कूद पड़े और इस बहती हुई अबला को नदी के किनारे पर लाये। इसके शरीर को देखकर यह मालूम हो गया कि अभी इसका प्राणवायु शेष है। अतः तुरत इसे एक पेड़ से उलटा लटका कर पेट मे भरे हुये पानी को निकाल दिया। इससे इसकी स्वास कुछ अधिक तेज चलने लगी। मुझे इसके बचने की आशा दीख पड़ी और मैं एक गाड़ी करके इसे स्टेशन पर लाया और वहाँ से संभालता हुआ इस मन्दिर में लाकर अच्छा होने के लिए उपचार करने लगा, और उसका जो परिणाम हुआ है उसे आप देख सकते हैं।' एक आदमी ने कहा।

'बहुत ठीक! तुमने एक बड़े परमार्थ का कार्य किया है और तुम देवी की प्रसन्नता के पात्र हो।' इस प्रकार धन्यवाद देकर महात्मा ने उस स्त्री से पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?'

'मेरा नाम सीता है।' उस तरुणी ने उत्तर दिया। पाठक समझ गये होंगे कि लालचन्द के पीछे पानी में कूदने वाली यही अभागिनी सीता है।

'तुम पानी के प्रवाह में क्यों गिरी थी ?' महात्मा ने पूछा।

'संसार में मेरा कोई नहीं है; जीवन से दुःखी होकर मैंने आत्महत्या करने का प्रयास किया था।' सीता ने कहा।

'अब तुम यह बात मान लो कि संसार में तुम्हारे सगे-सम्बन्धी हैं। [illegible] का द्वार देवीस्वरूपा स्त्रियों के लिए सदा खुला रहता है। तुमको सब इच्छित भोग्य पदार्थ यहाँ मिलेंगे और जीवनकाल अनेक प्रकार के आनंद में बीतेगा। केवल एक बात है कि तुम्हें यह मकान छोड़कर कहीं जाना न होगा। इस नियम का तुम्हें पालन करना पड़ेगा !' महात्मा ने आश्वासन दिया।

'क्या बाहर न जा सकूँगी ?' सीता ने गम्भीर एवं शङ्काशील मुद्रा से प्रश्न किया।

'इस बात को मैं तुम्हें एकांत में समझाऊँगा। इस समय तुम्हें विश्रांति के लिए एकांत की आवश्यकता है। अतः तुम शांतिपूर्वक आराम करो और अपने हृदय से चिंता एवं अन्य बुरी बातों को निकाल दो।'

* * *

दूसरे कमरे में एक महाभयानक और [illegible]

दृश्य देखने में आया। शाक्तसदन की स्त्रियों के ऊपर देख-रेख रखनेवाली चंडिका नाम की स्त्री अपनी शय्या पर निर्जीव पड़ी थी। दो स्त्रियाँ उसके पास बैठी थीं। महात्मा ने उनसे पूछा—'क्यों तुम लोग क्यों रो रही हो? क्या घटना हुई है?'

'अचानक हमारी अधिकारिणी का स्वर्गवास हो गया है; इसीसे हम लोग रो रही हैं।' एक स्त्री ने कहा।

'प्रातः चार बजे तक समारंभ में यह बराबर उपस्थित थी; और अभी अचानक इसका स्वर्गवास कैसे हो गया? यह कुछ समझ में नहीं आता।' गोपालदास ने आश्चर्य प्रकट किया।

'प्रातःकाल प्रतिनिधि महाशय इसके पास आये थे और एकान्त में कितनी ही बातें की थीं। तब तक कुछ नहीं हुआ था। बस, प्रतिनिधिजी के जाते ही थोड़ी ही देर में यह घटना हुई है।' दूसरी स्त्री ने कहा।

'बात बहुत सही है। मैं जब यहाँ आया था, तो यह सचेत अवस्था में थी और मेरे साथ बराबर बातचीत करती थी। मैं स्वयं भी नहीं समझ सकता कि यह किस प्रकार मर गई!' प्रतिनिधि ने कहा।

'चाहे जो कारण हो पर आजकल इतनी अचानक मृत्यु हो रही है कि इसमें विशेष आश्चर्य की बात नहीं दीख पड़ती। जो होना था; हो गया। जाओ, जंगल में चिता बनाकर अग्निदाह की तैयारी करो।' महात्मा ने कहा।

शाक्तसदन में मनुष्यों की संख्या पर्याप्त थी। उसी समय प्रेत-यात्रा की तैयारी हो गई। थोड़ी ही दूरपर जंगल में चिता बनाकर चंडिका का मृतक शरीर जला दिया गया।

संध्या समय प्रतिनिधि ने दयामयी को अपने एकान्त कमरे में बुलाकर कहा—'श्रीमती! चंडिका का कैलासवास हो गया। इससे उसके स्थान में शंखोद्धार की क्रिया करके किसी दूसरी अधिकारिणी को नियत होना चाहिए। मेरा विचार है कि यदि तुम इस पदवी को धारण करो तो बहुत अच्छा हो। महान धर्मगुरु के मुझ सदृश प्रतिनिधि की इच्छा के प्रतिकूल होने से यही परिणाम होता है। एक पल मात्र में तुम्हारा जीवन नष्ट हो सकता है। इस बात का तुम विचार कर लो। विगत रात्रि में मैं तुम्हारे प्रेम से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, इसीसे यह गुप्त बात तुमसे कहता हूँ।'

'इसमें आप जरा भी चिन्ता न करें। मैं आपको

अपना तन, मन एवं धन अर्पण कर चुकी हूँ। इससे भविष्य में आपके प्रतिकूल होने की भला कौन संभावना हो सकती है। स्त्री को यदि किसी प्रकार की प्रबल लालसा होती है तो वह इसी प्रकार के आनंद-वासना की होती है, और यदि वह आनंद स्वतंत्रता से मिल सके तो फिर दूसरा क्या खोजना है! आप यह पदवी देकर मेरा मान-वर्द्धन कर रहे हैं, इससे मैं आपकी बहुत ही आभारी हूँ और आपकी सदा दासी बनी रहूँगी।' दयामयी ने अनुकूलता से उत्तर दिया।

'तुम यह संतोषकारक उत्तर दोगी—यह मेरा पहले ही से विश्वास था। आज सुबह विष-प्रयोग करके मैंने चंडिका को इस संसार से रवाने कर दिया है। आजकल यह कुछ उद्धत और स्वतंत्र प्रकृति की हो गई थी और हमारे भेदों को जान गई थी। यह बारबार हमारी आज्ञाओं का अनादर करती थी। इस काँटे को निकालकर मैं आज निष्कंटक हो गया हूँ और तुम्हारी सदृश सुन्दरी और स्नेहवती स्त्री को इस पद का अधिकारिणी बनाने का मुझे सौभाग्य मिल गया है। पर अधिकारिणी को अधिकार महात्मा से मिलता है। अतः यह काम उनके हाथ से होना चाहिये।

मैं इसकी सूचना सबको दे दूँगा।' प्रतिनिधि ने प्रेम-विकार के आवेश में आकर अपने पाप को स्वीकार कर लिया।

दयामयी के हृदय में एक प्रकार के तिरस्कार का भाव उदित हुआ। तत्काल प्रतिनिधि ने गोपालदास की अनुमति लेकर उसीके हाथ से श्रीमती दयामयी को अधिकारिणी के पद पर अभिषिक्त कराया। गोपालदास ने यह अभिषेक किया तो ठीक; पर इससे दयामयी को शाक्तसदन में निरंतर रहना पड़ेगा; और अपने को अकेला दिन बिताना पड़ेगा—यह विचार आने से उसके मन में शोक हुआ। इस शोक के कारण दयामयी के हृदय में भी आघात लगा। कितने ही कारणों से वह महात्मा से प्रेम करती थी। महात्मा और दयामयी एकान्त में मिले। दोनो ने अपना विचार कह सुनाया। कितनी ही बातचीत होने के पश्चात् उन्होंने एक संकेत किया। दूसरे ही दिन प्रतिनिधि जाने वाले थे। अतः उस सांकेतिक कार्य को प्रथम ही करने की योजना उन लोगों ने किया!

❀ ❀ ❀

मध्य रात्रि का समय था; शाक्तसदन में पूर्ण शांति और निःस्तब्धता व्याप्त थी। केवल एक कमरे में दो आदमी

जग रहे थे। एक प्रतिनिधि और दूसरे श्रीमती दयामयी। कमरे के एक कोने में तिपाई पर रखी हुई मोमबत्ती अपने मन्द प्रकाश को कमरे में फैला रही थी। द्वार के पास ही पलङ्ग पड़ा था। उसके ऊपर रेशम का गद्दा और मखमल की तकिया पड़ी हुई थी। प्रतिनिधि पलङ्ग के ऊपर तकिया पर उठँगकर बैठे थे। श्रीमती दयामयी पास की कुर्सी पर बैठी हुई थी। बीच में एक गोल मेज रखा था। उसके ऊपर खाद्य-पदार्थों की दो-तीन रकाबियाँ, मदिरा की दो बोतलें; तथा पानी से भरा ग्लास और दो-तीन खाली शीशे के गिलास पड़े थे। श्रीमती दयामयी ने बोतल से गिलास में मदिरा उड़ेलकर प्रतिनिधि को देते हुए कहा—'लो महाराज !'

'ना, ना, दयामयी ! अब मुझ पर दया करो; और अधिक पीने का आग्रह न करो। अब तक हमने दो बोतल पीकर खाली कर दी है। मुझे कल ही जाना है। इससे यदि यह अधिक हो जायगा तो सबेरे सिर घूमने लगेगा, और मैं यात्रा नहीं कर सकूँगा। अब विषय-भोग करने का समय है। थोड़ा मौज लेकर सोया जाय, तो अच्छा है।'

'ओ हो ! मैं तो समझती थी कि तुम बहादुर पीनेवाले

हो; पर तुम तो इन दो बोतलों से ही टें बोल गये। यह दो बोतल तो मेरा बैरी भी पी जाय। तुम बात करना जानते हो; तुमने थोड़ा भी नहीं पिया। क्या तुमने देवी-भक्तों के इस तत्व को नहीं सुना है—

पीत्वा-पीत्वा पुनः पीत्वा यावद् पतति भूतले।
पुनरुत्थाय पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

'तुम देवीभक्त होने के साथ ही बड़ी पण्डिता भी हो, यह मैं अब जान सका हूँ। प्रत्येक स्त्री देवी स्वरूपा है। और देवी के वचन का अनादर करना महापाप है। अच्छा, लाओ, हमारे ओठ के सामने प्याला लाओ; यदि तुम्हारा आग्रह है तो मैं तुम्हारे ही हाथ से पीऊँगा।' प्रतिनिधि ने दयामयी के हाथ को अपनी ओर खींचकर कहा।

'जो तुम्हारी इच्छा'—कहकर दयामयी ने झुक-कर प्याले में की मदिरा प्रतिनिधि को पिला दी।

'एक प्याला तुम भी लो'—कहकर प्रतिनिधि ने बोतल से उड़ेलकर मदिरा को प्याले में रखना चाहा। पर उनका हाथ काँप रहा था। बोतल हाथ से छूटकर फूट गया। उसमें की मदिरा भूमि पर ढुलक पड़ी। 'दूसरा बोतल लाओ।' उन्होंने जोर से चिल्ला कर कहा।

'यह द्राक्षासव की बोतल तैयार है।' दयामयी बोली।

'इसीमें से पीओ।'

प्रतिनिधि को प्रसन्न रखने के लिये दयामयी ने थोड़ा-सा द्राक्षासव पी लिया; और उनके सिर पर हाथ फेरने लगी।

मदिरा के मद से प्रतिनिधि इतना मत्त हो गया था कि व्यभिचार करने की उसकी इच्छा उसके मन में ही रह गई और वह घोर निद्रा मे डूब गया। उसका शरीर काला और लंबा था। उसके नाक की स्वास लुहार की भाथी की तरह चलने लगी। दयामयी कुर्सी से उठी और उसके मुख पर दृष्टिपात करके धिक्कारती हुई मन-ही-मन बोली—'चांडाल! निद्रा लेने का यह तेरा अन्तिम अवसर है। भली प्रकार निद्रा सुख ले ले; कल प्रभात का सूर्य तुम देख सकोगे या नहीं, इसमें शंका है। तुम्हारे पिये गये दारू के साथ मिले हुये कातिल जहर का प्रभाव प्रातः तक दिखाई पड़ेगा।'

दयामयी ने जलती मोमबत्ती हाथ में उठा ली और कमरे का दरवाजा उठंगा कर वह बाहर चली गई। महात्मा के कमरे के ऊपर से एक रास्ता गया था। वह पास की सीढ़ी

पर चढ़कर वहाँ गई। पर महात्मा को वहाँ न देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रह गया। उसके मन में अनेक प्रकार की कुशंकाएँ आने लगीं। उसके मन में आया कि जिस प्रकार चंडिका का प्राण प्रतिनिधि ने और प्रतिनिधि का नाश मैंने किया; संभव है, उसी प्रकार किसी ने महात्मा को भी न मार डाला हो? जीवन का खतरा तो अवश्य है; पर खोजकर देखना चाहिये कि महात्मा जीते हैं या मर गये। इस प्रकार निश्चय करके वह शाक्तसदन में निशाचरी डाकिनी की तरह घूमने लगी। उसने प्रत्येक कमरे में अनुसन्धान किया; परन्तु महात्मा का सजीव या निर्जीव शरीर कहीं भी दिखाई न पड़ा। अन्त में वह रोगालय के पास आई। वहाँ किसी के बोलने का स्वर सुनाई पड़ा। दरवाजे के छेद में से उसने जो कुछ देखा उससे वह चकित रह गई।

अशक्त सीता नेत्रों में आँसू भरे बैठी थी और महात्मा उसको अपनी इच्छानुकूल करने के लिए आग्रह करता हुआ खड़ा था। ये सब बातें दयामयी ने दीपक के प्रकाश में देखा और थोड़ी देर में नीचे की बातें सुनीं। 'मैं समस्त सिंधु देश के शाक्तमण्डल का धर्माध्यक्ष हूँ; यदि

तुम मेरी इच्छा की पूर्ति कर दो तो तुम्हारा कल्याण हो; और तुम्हारे जीवन का उद्धार हो जाय। अनेक अबलायें मेरे प्रेम का प्रसाद पाने के लिये तड़पती रहती हैं; किन्तु उनकी इच्छा सफल नहीं होती। मैं तुम्हारे रूप पर मुग्ध हूँ। इसीसे तुम्हारे पास आया हूँ। इस पर तू मान में भरी है और आँसू गिराती है। यह देखकर मुझे आश्चर्य मालूम होता है।' महात्मा ने सीता से कहा।

'मैं पहले ही से भ्रष्ट हो चुकी हूँ; किन्तु अब तक मेरा यह अभिप्राय रहा है कि एक पुरुष के साथ मेरे शरीर का संबंध हो चुका है और जहां तक हो जब तक दूसरे पुरुष का हस्तस्पर्श न होने पावे तब तक मैं पवित्र और पतिव्रता हूँ; किन्तु अब मेरी पवित्रता और पातिव्रत का दुर्ग अभेद्य रहे; यह संभव नहीं है। आज मेरे पातिव्रत का नाश हो रहा है। इसीसे आँखों में आँसू आ रहे हैं। तुम्हारा दोष नहीं है। मेरे भ्रष्ट भाग्य का यह प्रताप है। मैं भ्रष्ट होने और पतितावस्था में मरने के लिये ही जन्मी हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो आकर इस निराधार स्त्री को भ्रष्ट करो। उसके पतिव्रत धर्म का अपहरण करो और उसके सुंदर शरीर को छिन्न-भिन्न कर डालो।' सीता

ने आवेश और उन्माद के वश कहा। दुर्बल सीता निश्चेष्ट होकर भूमिपर लुढ़क पड़ी। इस अचेतनावस्था में उसके शील और सतीत्व का संहार हो गया।

बाहर खड़ी हुई दयामयी के नेत्रों में से अग्नि के कण निकलने लगे। कोपातिशय के कारण उसकी छाती गजों उछलने लगी और उसका शरीर भयंकर रूप से काँपने लगा; किन्तु वह स्त्री-चरित्र में निपुण थी। अपने कोप को संभालकर बिजली की तरह वहाँ से तेजी से चली गई और महात्मा के कमरे में बैठ उसके आने की बाट जोहने लगी। थोड़ी देर में गोपालदास अपने सिर पर वस्त्र रखे वहाँ आ गया और दयामयी को देखकर पूछा—'क्या तुम यहीं हो?'

'हाँ, खास काम के लिये। पर तुम इतनी रात कहाँ गये थे? मैं यहाँ दो घंटे से बैठी हूँ।' दयामयी ने पूछा।

'दयामयी! यह तो तुम जानती हो कि इस शाक्तसदन का सब अधिकार आज से मुझे मिला है और यह शाक्त-सदन अनेक प्रकार के भेद, रहस्य और भूमि के अन्तर्गत गुप्त कमरों से भरा है। मुझे इन सब रहस्यों का ज्ञान होना चाहिये। इस कार्य के लिए मैं रात्रि के एकान्त समय

का लाभ उठाकर शाक्तसदन घूमने और स्त्री-पुरुषों की दशा जाँचने गया था।' महात्मा ने कहा।

'यह बात जाने दो; तुम्हारी सम्मति के अनुसार मदिरा में विष मिलाकर मैंने प्रतिनिधि को पिला दिया है और अब तक उनका प्राण निकल गया होगा। हमलोगों पर कोई शंका न करे और इसका शव तड़के ही जल जाय; इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। मैं अब जाकर अपने कमरे में सोती हूँ।' दयामयी ने महात्मा की व्यभिचार लीला की कुछ चर्चा नहीं किया, और मन का कोप मन में रखकर प्रथम आवश्यक कर्तव्य का निदर्शन किया और महात्मा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

'इसके लिये तुम कुछ भी चिंता न करो; यहाँ पर कितने ही आदमी अपने हैं। इससे किसी प्रकार का कोलाहल होने की सम्भावना नहीं है। सब काम शांति पूर्वक हो जायगा। तुम जाकर सुख से सो जाओ।' महात्मा ने आश्वासन दिया।

दयामयी कुछ अधिक बात न कर अपने कमरे में चली गई। महात्मा अपनी शय्या पर लेटकर ध्यान से आगामी सङ्कट को हटाने का मार्ग मन में ढूँढ़ने लगा।

विचार-ही-विचार में बारह बज गये। तब वह मुख धोकर प्रतिनिधि के कमरे में गया। वहाँ वह प्रतिनिधि अनेक प्रकार के सुख और विलास को भोग कर मृत्यु शय्या पर पड़ा था। मुख वही था, पर बोलने की शक्ति नहीं थी। नेत्र थे पर देखने की शक्ति नहीं थी। नाक थी पर सूँघने की सामर्थ्य न थी। कान थे पर सुनने की शक्ति न थी। हाथ-पाँव आदि शरीर के सब अवयव थे, पर उनमें गति न थी। जड़ शरीर पूर्ववत् था, पर आत्मा प्रयाण कर गया था। महात्मा के मन में आनन्द का आविर्भाव हुआ; परन्तु वह अपने आनन्द को छिपा कर कृत्रिमता से रोते-चिल्लाते बाहर निकला और जिस स्थान पर अभिषेक हुआ था उसी कमरे में शाक्तसदन के सब स्त्री-पुरुषों को एकत्र करके शोक से कहने लगा—'एकनिष्ठ देवी के भक्त स्त्री-पुरुषो! हम लोगों के ऊपर एक महा असह्य प्रसंग आ पड़ा है। महान धर्माध्यक्ष के माननीय प्रतिनिधि गत रात्रि को अत्यन्त मदिरा पान करके अचानक स्वर्गवासी हो गये हैं। अभी मैं प्रणाम करने के लिए उनके कमरे में गया और देखा, तो निर्जीव होकर वह शय्या पर पड़े हैं। अब तक वह इसी अवस्था

में पड़े हैं। योग्य धार्मिक विधि से अग्निसंस्कार करने की तैयारी करो। एक आदमी को करांची भेजकर तार से यह खबर महान् धर्माध्यक्ष को सूचित कर दो।'

शाक्तसदन के आँगन में चन्दन काठ की चिता तैयार करके प्रतिनिधि का शाक्त-भक्तों ने अपनी धर्म-विधि से अग्निदाह किया। एक मास तक मरने के पीछे उत्तर-क्रियाओं को करने के लिए धर्मगुरुओं और दयामयी को आज्ञा देकर दूसरे दिन महात्मा गोपालदास हैदराबाद की ओर जाने को निकला। दयामयी अपने नये अधिकार को संभालने के लिए वहीं रह गई।

महात्मा गोपालदास जिस समय शाक्तसदन से बाहर निकला उस समय एक आश्चर्यजनक घटना हुई। जो साधु आनंदानंद आलमचन्द का पत्र लेकर महात्मा गोपाल दास के पास पाँच सौ रुपए लेने को हैदराबाद आया था, वही शाक्तसदन के दो-तीन आदमियों के साथ एक झाड़ी में बैठा हुआ बातचीत करता दिखाई पड़ा। महात्मा बहुत ही घबड़ा गया। वह अपने मुँह को कपड़े से ढक कर ऊँट पर चढ़कर चलता हुआ। लगभग पाँच या छः गाँव जाने के पश्चात् जब नजर फेरकर देखा तो वह

म्भव नहीं है। लक्ष्मी और ललना पर कौन लोभित नहीं होता! पर, महात्मा गोपालदास के समान निस्पृह और जगत् को तृण समझनेवाला महापुरुष इस प्रकार का उत्तर देवे, इस बात को मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। कदाचित् इस साधु को महात्मा न पहचानता हो; और विश्वास न होने के कारण उन्होंने ऐसी टालटूल की बात कही हो; प्राणनाथ! आप यहीं से एक पत्र लिखें और उसमें एक हजार रुपए भेजने की ताकीद कर दें; इससे महात्मा की सत्यता या असत्यता का शीघ्र निर्णय हो जायगा।' यशोदा ने अपना अभिप्राय प्रकट किया।

'तुम्हारी यह सलाह अच्छी है। मैं अभी महात्मा को एक पत्र लिखता हूँ।' यह कहकर आलमचन्द पत्र लिखने बैठ गये।

'पूज्य महात्मा गोपालदास की सेवा में—

मैं बहुत तंगी में आ गया हूँ। कृपया इस पत्र को पाते ही मेरे रुपयों में से एक हजार रुपए भेज देवें। मेरी ओर से दयामयी से कहना कि इतने रुपए वह भेज दें। हम लोगों का प्रणाम बाँचना। पत्र लिखने में विलम्ब न करना। —दासानुदास आलमचन्द'

इसके नीचे दीवान ने अपना पता भी लिखा। उसी दिन से आलमचन्द पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

अधिक-से-अधिक आठ दिन में इस पत्र का जवाब हैदराबाद से काशी, आ जाना चाहिये था; परन्तु आठ दिन के बदले पन्द्रह दिन बीत गये; किन्तु जवाब न आया। आलमचन्द के मन में चिंता और शंका बढ़ने लगी। उन्होंने यशोदा से कहा—'प्रिये! पत्र लिखे आज १५ दिन हो गये पर महात्मा का न तो जवाब ही आया और न रुपया ही मिला।'

'सम्भव है, कि पत्र देर से पहुँचा हो; या पत्र महात्मा के नाम से था और महात्मा प्रपंच में भाग नहीं लेते; इससे उत्तर न दे सके हों; अतः आप दूसरा पत्र श्रीमती दयामयी के नाम से लिखें और उसकी बाट देखें; अभी यकायक साधु के चरित्र के विषय में कुशंका करना गृहस्थाश्रमियों को योग्य नहीं है।' यशोदा ने कहा।

यह बात आलमचन्द के मन में बैठ गई। उन्होंने दूसरा पत्र श्रीमती दयामयी के नाम लिखा। इसे भी दस दिन बीत गए। पर, जवाब न आया। तीसरा पत्र महात्मा के नाम से आलमचन्द ने रजिस्टर्ड कराके भेजा; वह पत्र लौटकर न आया।

पत्र भेजने और उसके उत्तर का मार्ग देखते एक महीने से अधिक का समय बीत गया। इससे आलमचन्द के मन की शंका अधिक दृढ़ होने लगी। वे मन-ही-मन कहने लगे—'कौन जाने महात्मा गोपालदास का वैकुंठवास ही हो गया हो; और उसके विरह में उनकी साली भी मर गई हो; या पोष्टआफिस की अव्यवस्था के कारण हमारा पत्र ही न पहुँचता हो।' एक दिन रजिस्टर्ड पत्र की रसीद महात्मा गोपालदास के हाथ की मिली। इससे निश्चय हो गया कि महात्मा जीते हैं; पर यह उनकी भूल थी। कुछ समय पश्चात् उनके हस्ताक्षर को देखने से पता चला कि गोपाल-दास का हस्ताक्षर किसी अन्य ने कर दिया है और दस्त-खत भी ठीक-ठीक नहीं बाँचा जा सकता था। इससे आलमचन्द के हृदय में अनेक शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं—'अब क्या करूँ—किसी अपने सगे-सम्बन्धी में विश्वास न कर और बैंक में भी न रखकर छिपे रूप से मैंने अपनी सब सम्पत्ति महात्मा के पास रख दी है। यह बात मैं किससे कहूँ। यदि मैं इस बात को खोलूँ और हैदराबाद में जाकर यह बात प्रकट करूँ, तो लोग मेरी मूर्खता की हँसी उड़ावेंगे। कितने ही लोग तो मेरे को सत्यहीन मानेंगे और

कोर्ट में जाने से भी कोई लाभ नहीं है। मेरे पास महात्मा का लिखा एक पत्र भी नहीं है। यह तो 'लेने गई पूत और खो आई खसम' वाली कहावत बराबर चरितार्थ हो रही है।'

आश्चर्य तो यह है कि महात्मा के उपदेश के अनुसार मैंने हैदराबाद छोड़ते समय सबसे यह कह दिया था कि मैं अपनी संपत्ति अपने साथ ले जा रहा हूँ। अब इस बात को भला कौन सत्य मानेगा ? चारो दिशाओं में विडम्बना-ही-विडम्बना दिखाई पड़ती है। हे जगत्पिता विश्वनाथ ! क्या मेरे भाग्य में यही लिखा था ?' आलमचंद बालक की तरह रोने लगे। पुनः मन-ही-मन कहने लगे—मेरे विचार से महात्मा गोपालदास का वैकुंठवास हो गया। जान पड़ता है, मेरे रजिस्टर्ड पत्र को किसी अन्य ने ही ले लिया है, यह स्पष्ट मालूम पड़ता है। महात्मा अब इस नश्वर जगत् में नहीं हैं ? या शायद महात्मा बीमार हों, और स्वयं सही न कर सके हों, या वह इस प्रपंच में न पड़ते हों और यह पत्र दूसरे के हाथ में ही पड़ गया हो; और उसने इस पत्र को दबा रखा हो या संभव है महात्मा कहीं तीर्थ-यात्रा करने चले गये हों, इसीसे जवाब न आता हो; अच्छा, चलें अब अपने पुराने

नौकर को पत्र लिखें और देखें, महात्मा का क्या समाचार है ?'

तुरत ही आलमचन्द ने अपने पुराने और आज्ञाकारी नौकर को पत्र लिखकर महात्मा का समाचार जानने के लिए एवं पूर्व के भेजे गये पत्र महात्मा को मिले या नहीं आदि समाचार सूचित करने को लिखा। आठ दिन में जवाब आया—'महात्मा के यहाँ से खबर मिली है कि पूर्व पत्र उनको मिले हैं; बीच में महात्माजी द्वारिकाजी तीर्थ-यात्रा करने गये थे; परन्तु आजकल यहीं हैं और स्वस्थ हैं। पहिले से अधिक मोटे और स्वस्थ हैं। महात्मा के कथनानुसार दयामयी आजकल द्वारिका में हैं। आजकल महात्माजी का धर्म-भाव दिन-दिन बढ़ता जाता है। नगर के लोग महात्मा की नित्य नई-नई लीलाएँ देखते हैं और भावुक नर-नारी समाज का महात्मा के ऊपर अधिक भाव, श्रद्धा और विश्वास धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है।' यह पत्र पढ़कर आलमचंद के मन को कुछ संतोष हुआ। वह कहने लगे—'महात्मा जीते हैं और निरंतर हरिनाम में डूबे रहते हैं; श्रीमती दयामयी द्वारिका में हैं; जिससे पत्र का उत्तर नहीं देतीं; जब श्रीमती आ जाँयगीं तो अवश्य रुपए

भेजने का प्रबन्ध करेंगी।' उन्होंने नौकर को पत्र लिखा कि जब दयामयी आ जावें, तो मुझे पत्र-द्वारा अवश्य सूचित करना। और साथ ही महात्मा को भी लिखा—मेरे सुनने में आया है कि दयामयी द्वारिका में हैं। इसीसे आपने पत्र का उत्तर नहीं दिया। जब श्रीमती आवें तो तुरत एक हजार रुपए भेज दीजिएगा।'

दस-पंद्रह दिन के पश्चात् नौकर का उत्तर आया—'आपके अन्तिम पत्र लिखने के पश्चात् दो-तीन रोज श्रीमती दयामयी आईं और यहाँ पाँच दिन रहकर अपना सब सामान लेकर अपने देश को चली गईं। यह सुनने में आता है कि अब वह कभी भी हैदराबाद न आवेंगी।' परन्तु महात्मा की ओर से न तो कोई जवाब ही मिला और न रुपया ही आया। जहाँ पत्र का जवाब तक नहीं मिलता, भला वहाँ से रुपए आने की कौन सी संभावना है? नौकर का यह पत्र आनन्दचंद्र को काल के समान भयानक मालूम होने लगा। उनकी सब आशा, निराशा में परिणत हो गई। एक साधु में विश्वासकर अपनी मूर्खता पर पश्चाताप करते हुये अपने को अभिशाप देने लगे। उनकी मानसिक अवस्था में परिवर्तन हो गया। आनंदानंद ने वर्तमान साधुओं के

दुश्चरित्र के विषय में काशी में जो व्याख्यान दिया था, वह अक्षर-अक्षर सत्य प्रतीत होने लगा ; और हृदय में वह आनंदानंद के निष्कपट स्वभाव एवं सद्भाव की स्तुति करने लगे। उन्होंने यशोदा को बुलाकर अपने मन की सब शंकाएँ कह सुनाईं। सब बात सुनकर यशोदा ने कहा—

'इन सब बातों को सुनकर यही मालूम पड़ता है कि हमलोगों की सब संपत्ति लेकर दयामयी अपने देश को चली गई है। आज वह चली गई और कल महात्मा भी चले जायँ, तो हमलोग ताली ही झँकारते रह जायँ। कोई उपाय करना ही पड़ेगा। यदि हमने अपने हाथ से धन का दान किया होता तो धर्म ही होता, किन्तु यह तो साधु ने ठग लिया है।'

'यह बात सही है कि एक साधु इतनी सरलता से हम लोगों को ठग ले जाय और अपने लोग कुछ न कर सकें यह हमारी आमिल जाति के लिए कलंक की बात होगी। हमलोगों के हैदराबाद गये बिना अन्य कोई उपाय नहीं है। हमलोग मरण-पर्यन्त काशी में रहने के लिए आए थे और आज अचानक काशी त्याग करना पड़ रहा है। हमलोग महापापी जीव हैं। इसीसे भगवान विश्वनाथ

हमें काशी से निकाल रहे हैं। देवता अधम जीवों को अपने पवित्र क्षेत्र में नहीं रहने देते—यह जो सुना जाता था, वह आज प्रत्यक्ष है।' आलमचंद ने अपने हृदय का संताप और शोक प्रकट किया।

'यह अपने दुर्भाग्य की बात है।' यशोदा बाई ने कहा।

इतने ही में एक मनुष्य ने आकर सूचित किया—'सेठजी! धर्मशाला में आपके देश के सिंधु-यात्री आये हैं। उनकी संख्या चार है। दो स्त्रियाँ हैं और दो नौकर हैं। वे आपसे मिलना चाहती हैं।'

इस खबर का लानेवाला आलमचंद की धर्मशाला का रक्षक था। आलमचन्द ने जवाब दिया—'तुम जाओ और उनसे कहो कि हम उनकी सेवा के लिए तैयार हैं।'

स्वदेश के यात्री और उनमें भी स्त्रियों के आगमन की बात सुनकर यशोदा को धर्मशाला में जाकर उनसे मिलने की इच्छा हुई। वह पति की आज्ञा लेकर उनके साथ जाने को तैयार हुई। आलमचन्द और यशोदा ने अपना देश छोड़ा था; किन्तु वेश न छोड़ा था। पति-पत्नी धर्मशाला की ओर गये। वहाँ यात्री स्त्रियों को देखकर पति-पत्नी के मुखपर आनंद की छटा दिखाई पड़ने लगी।

और आई हुई स्त्रियाँ भी प्रसन्न हुईं। ऐसा प्रकट होता था मानों इनका पूर्व परिचय रहा हो।

काशी में दीवान आलमचंद की धर्मशाला में आकर उतरनेवाली यात्री स्त्रियों में एक वृन्दा और दूसरी उनकी धर्मपुत्री अनाथ रोहिणी थी। वे हैदराबाद से चलकर अमृतसर, हरद्वार, पुष्कर, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गोकुल, वृन्दावन और मथुरा आदि तीर्थों की यात्रा करके श्रीविश्वनाथ महादेव का दर्शन एवं गंगा-स्नान करने के लिए काशीक्षेत्र में आई हैं। श्रीमती वृन्दा आलमचंद के धर्मशाला को पहिले ही से जानती थीं। इसी से वहाँ आकर उतरी और अपना उचित प्रबंध करने के लिये आलमचंद को बुलाने के लिये आदमी भेजा। श्रीमती वृन्दा आलमचन्द की स्त्री यशोदा के मामा की लड़की थी और एक प्रकार से बहन लगती थी। एक दूसरे को देखकर सबके मुख-मंडल पर हार्दिक आनंद की छटा दिखाई पड़ने लगी। यशोदा और वृन्दा समान उम्र की थीं। वृन्दा को देखते ही यशोदा ने कहा—'तू यहाँ कहाँ बहन? तू यहाँ धर्म-शाला में क्यों उतरी? तुझे तो मेरे घर में उतरना चाहिये था। क्या तू मेरे घर को दूसरे का घर समझती है? मैं अलग नहीं रहने दूँगी?'

'यशोदा ! तुम अलग घर में रहती हो, यह मैं न जानती थी। मैं समझती थी कि तुम धर्मशाला ही में रहती होगी; इसी से यहाँ आकर उतरी। यहाँ आने पर खबर मिली कि तुम अलग मकान में रहती हो; इसी से मैंने बुलाने के लिये आदमी भेजा था। मेरी भूल केवल इतनी ही है कि मैंने अपना नाम न कहलवाया था। मैं तुम्हारी मेहमान हूँ, और तुम्हारी ओर से आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। इसके लिये तुम्हें अपने मन में कुछ बुरा मानने का कोई कारण नहीं है।' वृन्दा ने कहा।

'कल से धर्मशाला में आकर रहने का विचार हमने भी किया था। बहुधा ऐसा होता है कि हमारे स्वदेश-बंधु आकर हमारे जाने बिना ही चले जाते हैं। इसीसे कभी-कभी आठ-आठ दिन बीत जाता है, हम लोग धर्मशाला में नहीं आते।' यशोदा ने कहा।

'ठीक है, तुम अब मुझे बहनोई के साथ दो बात करने देगी या नहीं ?'

'दो बात की कौन कहे ? बैठो, बावन बातें कर लो; हमें क्या हैदराबाद की तरह रोज-रोज मिलना है कि बात

से तबीयत ऊब गई है। सारा दिन पड़ा है। जितना चाहे पेट भरकर बातें कर लेना।' यशोदा ने विनोदपूर्वक जवाब दिया।

'क्यों दीवान साहब ! आप तो बेचारे हैदराबाद को बिलकुल ही भूल गये। क्या यहाँ काशी में हैदराबाद-जितना आनंद मिलता है ? यहाँ आने पर मुझे आपका एक पत्र मिला था। तबसे फिर कोई समाचार नहीं मिला।' वृन्दा ने आलमचन्द से कहा।

जन्मभूमि तो जन्मभूमि-ही है। काशीपुरी पवित्र क्षेत्र होनेपर भी हैदराबाद की तरह आनंद देनेवाली नहीं, यह स्वाभाविक है; परंतु हम यहाँ आनन्द भोगने नहीं आये हैं; किन्तु इस नश्वर शरीर के उद्धार के लिए आए हैं और यही विचारकर हम अपना दिन सन्तोप से बिता रहे हैं। आज ही कल में तुमको पत्र लिखने का विचार था। पर इतने में भगवान विश्वनाथ ने तुम्हारा साक्षात दर्शन करा दिया। इसके लिए प्रभु का मैं अन्त:करण से आभार मानता हूँ।' आलमचन्द ने अपनी वृद्धावस्था के अनुकूल गंभीरता से जवाब दिया।

'तुम पुरुषों का हृदय कठोर होता है। इससे जहाँ

चाहे रह जा सकते हो। पर इस बेचारी मेरी बहन को अच्छा न लगता होगा। अपने सगे-संबंधी का साथ रहे तो गप-शप में किसी प्रकार दिन भी कट जाय।' वृन्दा ने विनोदपूर्वक कहा।

'बहन! तुम्हारी यह बात ठीक है। पर हम आर्य अबलाओं का यह सिद्धान्त है कि जहाँ पति रहे वहाँ रहकर पति की सेवा करने से ही पत्नी का उद्धार होता है। देखो, सीता ने क्या किया? पति को वनवास हो गया तब स्वयं भी पति के साथ गईं। दमयंती, और द्रौपदी भी अपने पति के साथ वन गईं और पति के दुःखों में भाग लेकर उनको संतुष्ट किया! यह प्रातःस्मरणीया, पति के सहवास से वन में दुःखित न हुई, और यह तो काशी-निवास है। जहाँ मेरा पति हो वहाँ मुझे सब आनन्द-ही-आनन्द है।'

'धन्य बहन! तुम्हारा जन्म धन्य है; पति की सेवा करने का सौभाग्य तुझे प्राप्त है। मेरे दुर्भाग्य ने मेरे इस सौभाग्य को हर लिया है।' यह कहते समय वृन्दा के नेत्रों में आँसू भर आया।

इस अवसर पर अपने पति की उपस्थिति को उचित न समझकर यशोदा ने प्रार्थना किया—'प्राणनाथ! कोई

ब्राह्मण रसोइया को बुलाकर भोजन की व्यवस्था करें तो अच्छा है।'

आलमचन्द अपनी पत्नी का मतलब समझ तुरंत बाहर चले आये। उनके जाने के बाद यशोदा वृन्दा के भग्नहृदय को सान्त्वना देने के लिये कहने लगी—'प्रिय बहन! विधवा अवस्था में पवित्र रहकर पति-प्रेम का, स्मरण मात्र से उपभोग करना नारीजन्म की एक अलौकिक महत्ता है। जीते हुए पति में सभी प्रेम रखती हैं; परन्तु मृतपति में अविचल स्नेह रखकर जीवन को पवित्रता से निबाहना आर्यललनाओं की विशेषता और अलौकिकता है। सजीवन दीपक के ऊपर आत्मार्पण (आहुति) करना पतिङ्गों का गुण देखा जाता है। पर निर्वाण दीपक के ऊपर जीवन-अर्पण करनेवाले पतिङ्गे कहाँ हैं? कहीं नहीं! पति में अविचल और पवित्र प्रेम रखकर जीवन व्यतीत करने का काम केवल आर्यविधवाओं के भाल में लिखा है। विषय-सुख की इच्छा करनेवाली अन्य स्त्रियाँ इस प्रकार करने में असमर्थ हैं; अतः पति में प्रेम रखकर तुम अपने में ही उसे पाने का प्रयत्न करती रहो।'

इसी समय एक अनुचर को साथ लेकर गंगा-स्नान

करने गई हुई रोहिणी, स्नान करके लौट आई। वृन्दा ने उसे आती देखकर कहा—'रोहिणी! यह यशोदाबाई तुम्हारी मौसी है, इसे प्रणाम करो।

रोहिणी ने यशोदा को प्रणाम किया। यशोदा ने वृन्दा से पूछा—'यह रोहिणी कौन है?'

'मेरी पालिता पुत्री।' वृन्दा ने उत्तर दिया।

'बहुत अच्छा—पर···

यशोदा कुछ पूछने जाती थी इतने में आलमचन्द आगये और कहा—'बहन वृन्दा के लिए उचित व्यवस्था कर दी है, अब हम जरा घर से लौट आवें। कल से हमलोग यहीं रहेंगे।'

'अच्छा बहन, तुम घर हो आओ। संध्या-समय पुनः आना, तब दर्शन करने के लिए चला जायगा।' वृन्दा ने कहा।

'अच्छा, मैं दो-तीन घंटे में आऊँगी।'

उसी दिन यशोदा तीसरे पहर धर्मशाला में आई और वृन्दा और रोहिणी को अनेक मंदिरों में लेजाकर दर्शन कराया। आलमचन्द और यशोदा के आतिथ्य-सत्कार को देखकर वृन्दा को पूरा सन्तोष हो गया। चार-पाँच दिन के पश्चात् उसने जाने की आज्ञा माँगी। पर यशोदा के आग्रह करने और शपथ दिलाने पर काशी में एक महीने निवास

करने का वृन्दा ने निश्चय किया। अपनी धर्म-माता का यह निश्चय जान कर रोहिणी के मन में एक प्रकार का अलौकिक आनन्द हुआ। हैदराबाद से चलने के पश्चात् प्रत्येक स्थान में दो-चार, छः या दस दिन से अधिक किसी स्थान में उनका रहना नहीं होता था। इसीसे यद्यपि उसने मोहनलाल को अनेक पत्र लिखे थे, तथापि उसका एक भी उत्तर न पा सकी थी। पर काशी में एक माह रहना निश्चित होने से लिखे हुए पत्र का जवाब मिल सकता है। इस आशा से उस प्रेमातुरा युवती के मन में आनंद हुआ। यह सर्वथा स्वाभाविक भी था। उसने उस दिन मोहनलाल के नाम एक पत्र लिखा; और संध्या-समय दर्शन करने जाते समय लेटरबक्स में छोड़ दिया। आलमचन्द और यशोदा भी इसी धर्मशाला में रहने लगे, और वृन्दा के सहवास से उनके भी दिन आनंद से बीतने लगे।

वृन्दा काशी में खूब दान-धर्म करती थी, और नित्य शङ्कर की पूजा करनेवाले ब्राह्मणों को भोजन कराती थी। धार्मिक यात्रियों का यह स्वाभाविक कार्य होता है। इससे इसमें विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं। विशेष बात जानने की केवल यह थी कि कभी-कभी असं-

दुष्ट, लोभी एवं अकर्मण्य ब्राह्मणों तथा साधुओं के विलक्षण आचरण को देखकर उसके मन में भारत-दुर्दशा का विचार जग उठता था, और इससे वह कभी-कभी शोकातुर हो जाया करती थी। इसी प्रकार एक बार स्वार्थी साधुओं की बात चल पड़ी। यशोदा और वृन्दा दोनों बहनें धर्मशाला के आँगन में बैठी हुई थीं। रोहिणी काशी नगर देखने गई थी। यशोदा ने कहा—'आजकल बहुत कम सच्चे साधु दिखाई पड़ते हैं। इसमें अपने ही लोगों का अधिक दोष है। दान-धर्म करने की यह ऐसी शैली है कि जिससे लोग आलसी और अकर्मण्य बन जाते हैं, और यह स्वाभाविक भी है। खाने को अन्न, पहनने को वस्त्र, रहने के लिए मुफ्त में जगह और बीमार पड़ने पर धार्मिक औषधालयों से दवा मिले, तब भला लोग, उद्योग काहे को करें!'

'बहन! तुम्हारी यह बात ठीक है। पर जो रूढ़ि पड़ गई है उसका त्याग करना बहुत कठिन है।' वृन्दा ने कहा।

'इन रूढ़ियों ने भारतवर्ष का नाश कर दिया है। पर कोई-कोई साधु सच्चे होते हैं। यही सन्तोष की बात है। महात्मा गोपालदास के साथ तुम्हारा अच्छा परिचय होगा। इस गोपालदास की तरह महात्मा अब तक मेरे देखने में कोई

नहीं आया है।' यशोदा ने एक विशेष उद्देश्य से गोपालदास की बात उठाई।

वृन्दा ने इन बातों का कोई उत्तर न देते हुये एक प्रकार का विलक्षण हास्य किया। इस हास्य से यशोदा को यह प्रतीत होने लगा कि गोपालदास महात्मा नहीं, वरन् पापात्मा है। वह अधीरता और आतुरता से पूछने लगी—'बहन ! तुम उत्तर देने के स्थान पर हँसी क्यों ? क्या मेरा यह कहना असत्य जान पड़ता है। यदि तुम्हारा यही अभिप्राय हो तो मुझे शीघ्र बतलाओ। मुझे शङ्का में रखकर अधिक चिंतित न करो।'

'बहन ! जो मनुष्य भला होता है वह सबको भला देखता है। जो दुष्ट होता है वह सबको अच्छा नहीं देखता। लोग साधुओं के ऊपरी भाव को देखकर उसे भला बताते हैं। यदि उनका सब अन्तःकरण साधु होता, तो यह संसार स्वर्ग बन जाता। पर दुःख है कि वस्तुस्थिति इससे नितांत भिन्न है। बाहर से उज्ज्वल और भीतर से मैले हृदयवालों की संख्या अधिक है। इसीसे यह विश्व नरक-रूप हो रहा है। महात्मा गोपालदास के साथ मेरा विशेष परिचय था। पर अन्त में उसका आचरण भ्रष्ट

देखकर मैंने उससे अपना सब सम्बन्ध छोड़ दिया। और अपने घर का आना-जाना भी बंद करवा दिया। महात्मा गोपालदास सब प्रकार के दुराचारों में प्रवीण है। लोभ, परधन-अपहरण, एवं व्यभिचार आदि दुर्गुण जन्म के साथ ही उसमें पैदा हुये हैं। जब मेरे साथ उसकी दुष्ट और कुत्सित वासना सफल न हुई, तो वह हैदराबाद में हमारी निन्दा करने लगा; और मैं यहाँ यात्रा करने आई हूँ तो वह अनेक कुचक्र रच रहा है। यह हमारे आदमियों ने हमें लिखकर बताया है। यह पत्र मुझे आज ही मिला है। यह साधु मन्दिर-धारी और लोक में पूज्य माना जाने वाला वास्तव में शैतान साधु है। मुझे इसका अनुभव हो चुका है। परन्तु तुम्हारे जो भाव हो, वह तुम जानो।' वृन्दा ने विना संकोच सब बात सच-सच कह दिया।

'बहन वृन्दा! क्षमा करना, अपने को भी यह अनुभव मिला है। मैंने केवल तेरा अभिप्राय जानने के लिये यह बात कही थी। तुम तो केवल निंदित की जाने परही छोड़ दी गई हो; पर हम तो इस साधु में विश्वास करके दरिद्र और अपाङ्ग बन गये हैं। जो मन की बात किसीसे कही जाय तो कोई लाभ नहीं; परन्तु हँसी अवश्य है। यदि न कही

जाय तो मन में आग जला करती है और वह दुःख सहा नहीं जाता। बहन! मुझे तो कुछ सूझता ही नहीं।' यशोदा ने यह कहकर अपने मन का भार हलका किया और उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

'यह भयंकर घटना किस प्रकार हुई? अगर और किसीसे नहीं तो मुझसे बताओ, कदाचित् कोई उपाय सूझ पड़े।' वृन्दा ने आतुरता से कहा।

यशोदा ने महात्मा के यहाँ आलमचन्द-द्वारा संपत्ति-रखने की प्रथम बात से लेकर महात्मा की निस्पृहता, डाकुओं का हल्ला, महात्मा की वीरता, पश्चात् गुप्त रीति से संपत्ति रखने की बात, पत्र का जवाब न आना, और दयामयी का स्वदेश में चला जाना आदि सब वृत्तान्त वृन्दा से कह सुनाया। यह वृत्तान्त सुनकर वृन्दा की आँखे फट पड़ीं। उसकी छाती भयंकर रूप से धड़कने लगी। कुछ देर के लिये तो वह अचेत हो गई। इतने ही में आलमचन्द वहाँ आकर बैठ गये। इसका भी वृन्दा को भान न हुआ। अचानक विचार की समाधि से जगकर वह कहने लगी—

'बहन! इस महात्मा ने अपना प्रपंची जाल इस तरह फैला दिया है कि तुम लोग बिलकुल फँस गये हो और वह निर्भय

है। तुम्हारे पास दस्तावेज वगैर: भी कुछ नहीं है जिसके बल से कुछ लाभ की आशा की जा सकती। पर अब उस लाभ की भी आशा नहीं रही; परन्तु जैसा जिसका कार्य है वैसा उसको फल मिलेगा। तुम चिंता न करो; मैं हैदराबाद जाकर इसके लिये यत्न करूँगी। अब तुम पत्र वगैरह कुछ मत लिखना; जब मैं तार भेजूँ तब तुरंत वहाँ आ जाना और जो कुछ मैं कहूँ उसके अनुसार कार्य करना। बहुत संभव है कि तुम्हारी सब संपत्ति मिल जाय। फिर भगवान की जैसी इच्छा।'

'क्या तुमने बहन से सब बात कह डाली है?' आलमचन्द ने पूछा।

'हाँ, मैंने बहन से सब बातें सुन ली हैं; पर दीवान साहब! तुम इतने होशयार और दुनियाँ के अनुभवी होने पर एक साधु के प्रपंच में किस प्रकार फँस गये।' वृन्दा ने आलोचना करते हुए कहा।

'कभी-कभी ऐसी भूल हो ही जाती है। मनुष्य से भूल हो जाना संभव है।' आलमचन्द ने अपनी भूल हृदय से स्वीकार कर ली।

'परन्तु यदि यह सब दौलत मैं आपको पुनः दिला दूँ

तो आप मुझे इसका कौन-सा भाग देंगे।' वृन्दा ने विनोद-पूर्वक कहा।'

'तुम जो माँगोगी, वही दूँगा।' आलमचन्द ने लजाते हुए उत्तर दिया।

'चिन्ता नहीं, कितने ही स्वार्थ साधनेवाले वकील और बैरिस्टरों की तरह मुझे अपनी फीस पहिले ही नहीं लेनी है। पर जिस तरह कितने ही उदार वकील, बैरिस्टर, या सालीसिटर मुकद्दमा जीत जाने के बाद अपना मेहनताना और पुरस्कार लेते हैं, उसी प्रकार मैं भी महात्मा के पास से आपकी सब संपत्ति मिल जाने पर लूँगी।' वृन्दा ने विनोद की सीमा कर दी।

बाहर से रोहिणी आई। शहर से वह अनेक वस्तुएँ खरीद लाई थी। उन वस्तुओं को प्रेम से माता को दिखला कर वह कहने लगी—'माता! ये सब वस्तुएँ तुम्हें पसंद हैं या नहीं।'

'बेटी! मुझे पसंद है या नहीं; इससे कोई अर्थ नहीं। जो तुझे पसन्द है वह मुझे पसन्द है। तुम प्रसन्न रहो—हमें इतना ही चाहिये।' वृन्दा ने प्रेम से उत्तर दिया।

सन्ध्या होने में विशेष देर न थी। इससे सब लोग

देवदर्शन के लिये जाने को तैयार थे। रोहिणी ने कहा—'मा, आज मैं चलते-चलते इतनी थक गई हूँ कि मुझमें चलने की शक्ति नहीं रह गई है। आज मैं दर्शन करने न चलूँगी।

'जैसी तेरी इच्छा'—वृन्दा ने कहा।

आज सवेरे की डॉक से मोहनलाल का पत्र आया था। अब तक एकान्त न पाने से वह पढ़ न सकी थी, अतः जिससे प्रेमी का पत्र पढ़कर उत्तर लिख सके—इसलिए रोहिणी दर्शन करने न गई। सबके चले जाने पर एकांत पाकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया और पत्र निकालकर पढ़ने लगी। पत्र में लिखा था—

'मनोदेवी !

तुम्हारा कृपापत्र मिला। अब तक मुझे पत्र लिखने का अवसर नहीं मिला इससे चित्त में खेद हुआ करता था। जब से तुमने हैदराबाद छोड़ा तब से मैं फिर वहाँ न गया; और जब तक तुम वापस न आ जाओ तब तक जाने का विचार भी नहीं है। प्रियतमा के बिना वह भूमि मुझे सन्तापकारिणी प्रतीत होती है; यह स्वाभाविक है। कुलेली नदी के तटपर बीते हुये अनेक सन्ध्या-समय का स्मरण हुआ करता है। देखें, अब वह सुखद समय पुनः

कब प्राप्त होता है। मैं परीक्षा देने के लिये १५ दिन के बाद बम्बई जाने वाला हूँ। तुम सदृश मनमोहिनी रमणी के लिए बम्बई से क्या-क्या वस्तु लाऊँ वह तुम पत्र में अवश्य लिखना। उचित प्रसंग आने पर परस्पर प्रेम की बात तुम्हारी धर्म-जननी के समक्ष प्रकट करूँगा और अनुमति लूँगा। तुम्हारे बिना मेरा संसार सुखावह नहीं हो सकता। मैं समझता हूँ कि तुम भी ठीक यही समझती होगी।

यहाँ तुम्हारे कराँची से जाने के बाद एक नई बात हुई है। जिस लालचन्द ने आकर तुम्हारा अपमान किया था और तुम्हारे सम्मुख मेरी निंदा करके तुम्हारी आँख में मुझे हल्का करने का यत्न किया था वह लालचन्द आज दो महीने से कहीं गुम हो गया है। उसके गुम होने के अनेक कारण बतलाये जाते हैं। कोई कहता है कि किसी विधवा को लेकर भाग गया है। कोई कहता है कि ऋण का बोझ अधिक बढ़ जाने से देश छोड़कर चला गया है। जितने आदमी हैं, उतनी बातें सुनी जाती हैं। इसमें क्या सच है और क्या झूठ है, यह मेरी समझ में नहीं आता। उसके पिता ने भी खोज किया। पर अब तक उसका कुछ भी पता नहीं मिला। वह घर से तीन-चार हजार का

आभूषण लेकर भागा है। यह लड़का बचपन से ही बदमाशों की सोहबत और दुराचार में पड़कर बिलकुल ही बिगड़ गया है; और इसीसे मुझे उस पर दया आती है। यदि वह मुझे फिर देखने में आवेगा तो उसे अच्छी तरह समझाकर अच्छे रास्ते पर लाने का प्रयत्न करूँगा।

तुम हैदराबाद कब तक आओगी; सो पत्र मे लिखना। कदाचित् तुम पहले आजाओ और मैं बम्बई में रहूँ, इस कारण तुरंत मिलने न आ सकूँ तो बुरा न मानना। मेरा केवल शरीर यहाँ है। पर प्राण तुम्हारे पास ही है। सोते बैठते, चलते, खाते-पीते और पढ़ते हुये मैं तुम्हे एक क्षण भी नहीं भूल सकता। तुम्हारी प्रतिमा मेरे हृदय में स्थापित है। मैं दुर्भाग्यवश कविता की कला से अनभिज्ञ हूँ। इससे किसी प्रकार भी अलंकारिक भाषा में मैं अपने प्रेम को व्यक्त नहीं कर सकता। इसीके साथ मैं अपना नया खींचा हुआ फोटो बुकपोस्ट से भेजता हूँ। उसके पाने का समाचार अवश्य लिखना; और यदि हो सके तो किसी जगह अपना फोटो खिंचा कर मेरे पास भेजना। जब तक प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ न मिले तब तक के लिये वह फोटो ही मनोरंजन का एक साधन हो सकता है। तुम स्नेहवती

और सुख सुन्दरी हो; इस विषय में अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरा स्वास्थ्य तुम्हारे वियोग-जन्य-व्याधि के अतिरिक्त सब प्रकार से अच्छा है और आशा है कि तुम्हारी प्रकृति भी स्वस्थ होगी।

—मोहनलाल'

रोहिणी ने इस पत्र को चार-पाँच बार पढ़ा। पर उसके प्रेमी मन की तृप्ति नहीं हुई। बलात् मन को संयमित करके उसने उस पत्र को कपड़ों के साथ अपने ट्रंक में रख दिया; और उसके उत्तर लिखने की तैयारी करने लगी।

प्राणेश्वर मोहनलाल!—इतना शब्द लिख कर पत्र फाड़ डाला। वह मनोगत कहने लगी—'इसमें फोटो भेजने की बात लिखी है; किन्तु अबतक वह बुकपोस्ट मुझे मिला ही नहीं। यदि यह पत्र और फोटो एक ही दिन एक ही समय भेजे गए होते तो बुकपोस्ट और पत्र दोनों एक साथ ही मिले होते। यह बुकपोस्ट पोस्टल डिपार्टमेन्ट की गलती से कहीं गड़बड़ तो नहीं हो गया है! अथवा पोस्टमैन की भूल से यह परिणाम हुआ है। कुछ समझ नहीं पड़ता। आज उसकी प्रतीक्षा करके कल पत्र लिखूँगी। संभव है, कल सबेरे बुकपोस्ट मिले।

आज यदि मेरे प्रेमी का फोटो मिला होता तो उसके मुखचन्द्र को देखकर मैं चकोरी कितना अधिक आनन्द पाती ! प्रियवस्तु के मिलने में विलम्ब हो रहा है—यह सब मेरे प्रवल दुर्भाग्य का कारण है। इस बुकपोस्ट मे किसी प्रेमी की प्रतिमा है, इसकी उस वेचारे पोष्टमैन को क्या खबर है। कदाचित् वह जानता भी होता कि इसमें चित्र है तब भी प्रणयी के चित्र-वियोग में प्रणयिनी को कितना अधिक कष्ट होता है इसकी कल्पना भी उसे कैसे हो सकती! यह स्वाभाविक है। फोटो देखने से मुझे उतना ही सुख मिलता, जितना मोहनलाल के दर्शन से मिल सकता है। भविष्य में धैर्य-धारण के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।' इस प्रकार अपने को सान्त्वना देती हुई मन को बहलाने के लिए वह कविता पाठ करने लगी।

रात के लगभग आठ बजने के पश्चात् वृन्दा, यशोदा और आलमचन्द दर्शन करके लौटे। प्रेमी के मधुर स्मरण से समय कहाँ और किस प्रकार बीत गया यह अबतक प्रेममुग्धा रोहिणी की समझ में न आया। आँगन में जब वृन्दा और यशोदा के बोलने की आवाज सुनाई पड़ी तब उसे चेत आया। वह झटपट उठकर आँगन में आकर

वृन्दा से पूछने लगी—'माता! आज आने में विलम्ब क्यों हुआ? तेरी राह देखते-देखते आँखों मे छाले पड़ गये।'

'बेटी! एक मन्दिर में रामकथा हो रही थी। कथा सुनने के लिए वहाँ जरा बैठ गई; इसीसे देर हो गई। तू घबड़ा रही होगी यह मैं समझ रही थी। अब दूसरे दिन से देर न होगी।' इस प्रकार प्रेम-पूर्ण उत्तर देकर वह अपने हाथ का बुकपोस्ट रोहिणी को देती हुई कहने लगी—'रोहिणी! यह तेरे नाम का पार्सल आया है। यह रजिष्टर्ड था। रास्ते में पोष्टमैन ने आलमचन्द को दिया है। यह किसने भेजा है?'

'इस पार्सल को किसने भेजा है यह मैं नहीं जानती। खोलकर देखू तो मालूम हो।' रोहिणी जानती थी कि पार्सल किसका है तब भी स्वाभाविक लज्जावश उसने अपनी अज्ञानता प्रकट की।

'अच्छा, मैं कुँए पर स्नान करने जाती हूँ, तू देख ले।' यह कहकर वृन्दा एक साड़ी लेकर स्नान करने चली गई और रोहिणी पैकेट खोलकर प्रणयी मोहनलाल की स्वर्गीय छवि का निरीक्षण करने लगी। इस प्रेममय गुंजन के साथ बाला के मन में भय एवं लज्जा की अनुभूति होने लगी।

वह सोचने लगी—'यह पैकेट मेरी माता के हाथ में कैसे पड़ गया। यह अच्छा नहीं हुआ। यदि वह आकर मुझसे पूछे कि इस पैकेट में क्या था तो मैं क्या उत्तर दूँगी? इस फोटो को छिपाकर झूठा जवाब दूँ? आज यह असत्य किसी प्रकार छिप सकता है। पर यदि कभी यह माता के हाथ में पड़ जाय तो उस समय यह बात अवश्य प्रकट हो जायगी। क्या मैं उससे अपने प्रेम की बात बता दूँ। बताने में कोई बाधा तो नहीं है; परन्तु छबि देखकर माता पूछे कि इस छबि को किसने और क्यों भेजा है? भेजनेवाले से तेरा क्या संबंध है? तो इसका उत्तर मैं क्या दूँगी? मोहन के साथ मेरा भाई-बहन का संबंध नहीं है; और अब तक पतिपत्नी का संबंध भी नहीं हुआ है तो कौन-सा संबंध बताऊँगी? मेरी माता के मन में थोड़ा भी संशय हो जाय तो मेरा अनिष्ट हो सकता है। हे भगवन्! कोई मार्ग नहीं सूझता। तू ही इस निर्दोष बाला की लज्जा रखने का कोई उपाय निकाल दे।'

दूसरे दिन वृन्दा की तबीयत कुछ अस्वस्थ हो गई थी; इससे वह दर्शन करने न गई। रोहिणी ने भी बाहर जाने की अनिच्छा प्रकट की। आलमचन्द और यशोदा अपने

नित्य नियम के अनुसार दर्शन करने के लिए बाहर चले गये। वृन्दा अपने कमरे में खाटपर उठंग कर बैठी थी। और दरवाजे के पास गलीचा बिछाकर रोहिणी शाहलतीफ का काव्य-संग्रह पढ़ अपना मनोरंजन कर रही थी। वृन्दा ने एकान्त देख रोहिणी से पूछा—'रोहिणी! गत दिन बुकपोस्ट किसने और कहाँ से भेजा है और इसमें कौन-सी वस्तु है?'

रोहिणी से झूठा न बोला गया। वह तुरंत उठी और ट्रंक से फोटो निकाल वृन्दा के हाथ में रखकर नीचे नेत्र किये हुए, लज्जा से कहने लगी—'पैकट में यही फोटो करॉची से आया है।'

'यह कौन है, और तुम्हारे पास इसने किस मतबल से इसे भेजा है?' वृन्दा ने फोटो देखकर संशय से पूछा।

'यह युवक आमिल जाति का भूषण है। कालेज का विद्यार्थी है! उसने इस फोटो को क्यों मेरे पास भेजा है, यह तो मैं नहीं जानती; इससे भला क्या उत्तर दूँ।'

'पर इसके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न होने पर यह मनुष्य अपनी फोटो नहीं भेज सकता। तुम्हारा इसके साथ कहाँ का परिचय है?' वृन्दाने दूसरा प्रश्न पूछा।

'अनाथाश्रम में यह बराबर आते थे। वहीं पर इनके साथ परिचय हुआ ; और इनके साथ अब तक मेरा क्या सम्बन्ध है इसे मैं कैसे बताऊँ ? इस सम्बन्ध को किस नाम से पुकारूँ; यह मैं नहीं जानती।' रोहिणी ने कहा।

'मेरे पूछने का आशय यह है कि इसके साथ तुम्हारा भाई-बहन का सम्बन्ध है या कोई अन्य सम्बन्ध है।' वृन्दा ने मार्मिकता से पूछा।

'ना, मातुश्री ! इसके साथ मेरा भाई-बहन का सम्बन्ध नहीं है। कदाचित् मैत्री सम्बन्ध है—ऐसा कहा जाय तो कुछ ठीक जँचता है।' रोहिणी ने मर्म-भरा उत्तर दिया।

'आजकल के सभ्य लोग स्वतंत्रता पूर्वक अपवित्र सम्बन्ध को भी मित्रता के नाम से पुकारते हैं। यह उस मित्रता के अन्तर्गत का कोई भेद तो नहीं है ?' वृन्दा ने अत्यन्त शंकाशील हृदय से पूछा।

'शिव, शिव, मा ! यह तुमने क्या कह दिया ? यह कैसी निर्मूल शंका है। यदि आज तक कभी भी मनसा, वाचा, कर्मणा कुछ भी अनाचार किये होऊँ, तो ईश्वर मुझे इसी क्षण भयङ्कर यातनामय मृत्यु देवे। तुम निश्चिन्त रहो ; अब तक मेरे कौमार्य में धब्बा नहीं लगा है।' रोहिणी ने कहा।

'इसके साथ तेरा कभी प्रेम सम्भाषण हुआ है।' वृंदाने विचित्र ढंग से प्रश्न किया।

'यह नहीं है कि हमनें बातचीत न की हो; मुझे एक दीन, निराश्रया युवती जानकर भी उन्होंने मेरे सिवा अन्य किसी से विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर ली है। मैं भी उन्हें अपना पति वरण करने का वचन दे चुकी हूँ।' रोहिणी ने सत्य बात प्रकट कर दिया।

'इसका नाम क्या है?'

'मोहन लाल।'

'चिन्ता नहीं; यौवन-मदमाती युवतियाँ अज्ञानावस्था में बहुधा ऐसा साहस करती हैं। इससे मैं तुमको कुछ नहीं कहती। तुम्हारे मोहनलाल के विषय में मैं कुछ नहीं जानती। स्त्री को किस प्रकार अपना पति पसन्द करना चाहिये यही आज प्रसङ्ग आ जाने से मैं तुम्हे बतलाना चाहती हूँ और उसीके अनुसार आचरण करने को तुम्हें उपदेश और आज्ञा देती हूँ।'

उपर्युक्त बातें कहकर अनुभवशीला वृन्दा पति के गुणा-वगुण का विवेचन करने लगी—

'यौवन-मद के आते ही तरुण और तरुणी अकेले

रहने में हार्दिक वेदना अनुभव करने लगते हैं। यह लालसा विवाह-सम्बन्ध करनेवाले के साथ अन्त तक निवह जायगी; यह धारणा अधिकाँश लोगों की होती है; परन्तु यह हृदय-वेदना—लालसा का अन्त होते ही विवाहित अवस्था में अन्य हृदय-वेदनाएँ भी आती हैं; इस बात की कल्पना उनके हृदय मे नहीं रहती। अन्य हृदय-वेदनाएँ स्त्री-पुरुप के विचार एवं आचार-भिन्नता से उत्पन्न होती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दोनों का जीवन अमृतमय होने के वदले, विषमय हो जाता है। इसलिए विवाह के पूर्व स्त्री-पुरुप को अपने जीवन-संगी या सहचरी के निर्वाचन में जिस वुद्धि और विवेक की आवश्यकता पड़ती है उसे वताती हूँ।' यह कह कर वृन्दा रोहिणी के मनोभावों का निरीक्षण करती हुई उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

'वड़ों का उपदेश सुनना और पालन करना पुत्र-पुत्री का धर्म है।' रोहिणी ने अपनी अनुमति दी।

वृन्दा कहने लगी—'एक प्रेमी पुरुप जव तक उसकी मनोहारिणी युवती उसके साथ विवाह करने को वचन-वद्ध नहीं हो जाती, सुवर्ण की तरह सुन्दर और अमूल्य रहता है। जव उसकी प्रेमिका उसका प्रेम स्वीकार कर लेती है, तव वह प्रेमी

चाँदी बन जाता है और जब वह प्रेमी, पति रूप में आ जाता है तब वह पीतल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह सब पुरुषों का एक सर्वसाधारण नियम है। इसमें कभी-कभी अपवाद भी देखा जाता है। कितने ही पुरुष ऐसे भी होते हैं जो आरंभ, मध्य और विवाहित अवस्था में स्वर्ण की तरह निर्मल और मनोहर रहते हैं। स्त्री का हृदय पुरुष-परीक्षा की कसौटी है। पुरुष की प्रकृति को जान लेने की उनमें नैसर्गिक शक्ति होती है। उस शक्ति का उपयोग करना प्रत्येक स्त्री का परम कर्तव्य है।

गुणों के अनुसार पति दो प्रकार के होते हैं। वह अच्छा या बुरा पति के नाम से लोक मे विख्यात है। जो अच्छे पति होते हैं, वे सब एक गुण और एक स्वभाव के होते हैं। वे अपनी धर्मपत्नी को जगत् की अन्य सब वस्तुओं से—अपने प्राण से भी अधिक प्रिय मानते हैं और सदा अपनी पत्नी के सुख और संतोष का विचार रखते हैं। वे धन, मान एवं कीर्ति पाने की अभिलाषा करते हैं; पर उनके इन प्रयत्नों में पत्नी के सुख का आशय भी सन्निविष्ट रहता है। ऐसे पति अपनी स्त्री के ऊपर शासन नहीं करते; वे अपने से अपनी पत्नी को न ऊँचा समझते हैं और न

नीचा मानते हैं; किन्तु उसे अपने समान ही समझते हैं। वे अपनी पत्नी के साथ बैठ कर जीवन के सरल एवं गंभीर प्रश्नों पर विचार करते रहते हैं और आलोचना कर दोनों एक विचार निश्चय करते हैं। अच्छा पति उसे कहते हैं, जो अपनी सहधर्मिणी को सुखी करके स्वयं इस विश्व में स्वर्गीय सुखोपभोग करते हैं।

इसके विपरीत—निष्ठुर, पत्नीपीडक, अत्यन्त विनम्र, उन्मत्त, शंकाशील, सुनी हुई बातों पर विश्वास करनेवाले, असंतोषी, लोभी, कृपण, व्यभिचारी, मूर्ख, और निरुद्योगी पुरुष, बुरे पतियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। माता-पिता जिस के हाथ में पुत्री का हाथ रख देते हैं, उस पुरुष के साथ चाहे सुख हो या दुख, पुत्री को संसार-सागर पार करना पड़ता है।

निष्ठुर एवं गर्विष्ठ पति अपने अकेले को ही समस्त परिवार का एकसत्ता राजा मानता है और उसकी अभिलाषा रहती है कि घर के अन्य लोग उसके आधीन रहें। 'प्रेम' शब्द उसके कोष में होता ही नहीं है। जब देखो, उसकी भौंहें चढ़ी रहती हैं। जो पत्नी उससे दबी रहती है उसके लिए वह नर-पशु का अवतार बन जाता है; परंतु

एकांत में रो-रोकर अपने हृदय में जलती हुई असंतोष की अग्नि को शांत करता है। उसका गृह-सुख नरक तुल्य हो जाता है।

दूसरे प्रकार के पति—अति विनीत और निर्बल मन के होते हैं। पुरुष या स्त्री—किस जाति में इनकी गणना की जाय; यह निश्चय नहीं कहा जा सकता। इनकी रूपरेखा पुरुष की तरह होती है; किंतु इनकी आत्मा स्त्री की तरह होती है। वास्तव में इनके शरीर और स्वभाव को एक दूसरे से विपरीत बनाने में प्रकृतिदेवी ने भूल की है। इनके अंग में पर्याप्त बाहुबल और मनोबल होता है; परंतु जब उनके उपयोग का समय आता है तब कभी काम में आते हुए नहीं देखा जाता। ऐसे पति की मानसिक दुर्बलता का बहुत भयानक परिणाम होता है। जिस गृह में पति के रहते हुए स्त्री को सास, ननद या अन्य स्त्रियाँ त्रास देती हैं और वह अपनी पत्नी का पक्ष लेकर उन लोगों से कुछ नहीं बोलता; उस बेचारी पत्नी की दशा दयनीय हो जाती है। पति के जीवित रहते भी वह विधवा की तरह बन जाती है। पुरुषार्थ-हीन पति से विवाह करने की अपेक्षा जीवन भर कुमारी रहना ही स्त्री के लिए अधिक शांति-दायक है।

अनेक स्त्रियाँ यह समझती हैं कि जो पति अपनी स्त्री को अन्य पुरुष के साथ बातचीत करते देखकर उसके प्रति कोई शंका और तिरस्कार का भाव न प्रकट करे, तो उस पति का अपने प्रति यथेष्ठ प्रेम नहीं समझना चाहिये। अपने प्रति पति की शंका-शीलता और द्वेष-बुद्धि जितनी ही अधिक हो उतना ही अधिक उसका प्रेम जानना चाहिये; परंतु वे बेचारी अज्ञान स्त्रियाँ नहीं जानती कि पति के शंकाशील स्वभाव में उनका अपना नाश सन्निविष्ट है। जिसकी प्रकृति शंकाशील होती है, वह स्त्री के साधारण बात मे भी तर्क करने लगता है। यदि कोई उस स्त्री की निंदा करता है, तो वह झट विश्वास कर लेता है और स्त्री को घृणा की दृष्टि से देखता है। शंका-ही-शंका में अविचार के कारण साध्वी स्त्रियाँ आत्महत्या कर डालती हैं। शंकाशील पति को सर्वत्र अपवित्रता एवं अधर्म ही दृष्टि गोचर होता है।

असंतोषी पति को जिस प्रकार अपने को किसी बात से संतोष नहीं होता, उसी प्रकार स्त्री को अनेक प्रकार असंतुष्ट और असुखी करने में भी उसे संतोष नहीं मिलता। स्त्री का कोई भी कार्य उसे संतोष-प्रद नहीं प्रतीत होता। ऐसे पति

के साथ प्राण-हानि का प्रसंग तो नहीं आता ; परन्तु प्रति-
दिन के दुर्व्यवहार से बेचारी स्त्री इतनी दुःखित हो जाती है
कि वह इस प्रकार के सौभाग्य से वैधव्य-जीवन अधिक
पसन्द करती है।

जिस स्त्री को लोभी पति मिलता है उसका पूर्ण दुर्भाग्य
ही समझना चाहिये। जो लोभी पति होता है उसे इस
संसार में धन से बढ़कर अन्य कोई पदार्थ अच्छा ही
नहीं मालूम होता। धन की तुलना में उसे माता-पिता,
भगिनी, पुत्र-पुत्री एवं मित्रादि कोई भी नहीं जँचते। संसार
के सुख-दुःख की भागिनी स्त्री यदि मरण-शय्या पर पड़ी
हो, तो भी उसकी जीवन-रक्षा के लिए कुछ द्रव्य खर्च करने
के लिए उसका जी नहीं चाहता। स्त्री खानपान, वस्त्राभूषण
और आनंद-विनोद का उपभोग जीवन भर नहीं पाती।
अनेक प्रसङ्गों पर यह लोभी मनुष्य अपने स्वार्थ-साधन के
लिये बाहरी उदारता दिखाने का बड़ा प्रयत्न करता है।
उसके हृदय में प्रेम का अंशमात्र भी नहीं रहता और
प्रेम-हीन पति के साथ स्त्री का जीवन व्यर्थ हो जाता है।
प्रेम ही स्त्रियों का जीवन है।

इनके बाद मूर्ख पतियों का नम्बर आता है। बहुत

सी स्त्रियाँ पुरुष के रूप पर मुग्ध हो जाती हैं और उनके गुणावगुण का विचार किये बिना ही उनके साथ विवाहकर संसार सुख भोगना चाहती हैं। भगवान न करे, यदि मूर्ख होने के साथ-ही पुरुप निर्धन भी हो, तब तो उन बेचारी रूप-मुग्धाओं को भर पेट खाने के लिए भी नहीं मिलता; बहुत से मूर्ख पुरुष वंश-परंपरा से धनी होते हैं और उनके धन पर मुग्ध होकर माता-पिता अपनी कन्याओं का विवाह कर देते हैं अथवा कन्या स्वयं ही लोभ में पड़कर उसे पति स्वीकार कर लेती है। धनवान मूर्ख की स्त्री अपने खाने-पीने एवं पहनने आदि में स्वतंत्रता से अपनी सब इच्छा पूरी कर लेती है पर, पति से पत्नी को जो एक प्रकार का स्वर्गीय आनंद मिलता है वह उसे स्वप्न में भी नहीं मिलता। वृक्ष के आधार पर रहना लता का नैसर्गिक स्वभाव है; स्त्री, पुरुष की बुद्धि के आधार पर रहती है; परन्तु मूर्ख पुरुष को स्त्री के ही आधार की आवश्यकता पड़ती है; यहाँ लता ही वृक्ष को आधार देती है। बहुधा स्त्रियों का यह स्वभाव है कि उनका पति चाहे वृद्ध हो, निर्धन हो, अथवा कुरूप हो; वे उनके अवगुणों को सहज ही निभा सकती हैं परन्तु जो पति में अपने से कम

वुद्धि हो तो धीरे-धीरे उनके मन में पति के विषय में तिर-स्कार उत्पन्न हो जाता है, और अंत में इसका भयंकर परिणाम होता है।

अब सबसे निकृष्ट, निरुद्योगी पतियों का नम्बर है। बहुधा लोग अपनी लड़की को धनीपुत्रों से इस आशा पर विवाह देते हैं कि लड़की सुखी होगी और धन-माल की अधिकारिणी होकर भोग-विलास करेगी। पर, अधिकांश धनवानों के लड़के बाप की कमाई खानेवाले निरक्षर और निरुद्योगी होते हैं। ऐसे धनिक-पुत्र तारुण्य में स्वार्थी मित्रों के जाल मे फँस कुमार्ग पर चलने लगते हैं और अनेक प्रकार के व्यसनों में धन का नाश करके भिखारी बन जाते हैं। धन-नाश होते ही धनी-पुत्र किसी भी कला को न जानने के कारण अपना जीवन तक निर्वाह नहीं कर सकते। परन्तु जो निर्धन पति उद्योगी और कलाकुशल हो तो वह किसी प्रयत्न से अपने परिवार का पालन कर लेता है। किन्तु कितने ही निर्धनपुत्र भी जन्म से आलस्य ले आते हैं और ऐसे पुरुषों की पत्नियों के दुःख की सीमा ही नहीं होती। इन सब बातों का विचारकर आलसी, धनवान पति की अपेक्षा उद्योगी, निर्धन पति सहस्रगुना, स्त्री के

लिये लाभकारी है। जिसका पति सांसारिक प्रपंच एवं विद्या में विशेष निपुण होता है वह स्त्री अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सुखी होती है। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

यदि मोहनलाल उद्योगी हो और परिवार के पोषण करने की शक्ति धारण करता हो, तो तू उसे अपना पति स्वीकार कर। उसके पास धन है या नहीं; इसकी चिंता नहीं करनी चाहिये। धनवान को उद्यम नहीं मिलता; परन्तु उद्योगी पुरुष जहाँ जाय वहीं से धन पैदा कर सकता है। अब तक मैंने पति के स्वभाव का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त पति के व्यवसाय पर भी स्त्री का सुख-दुःख बहुत कुछ निर्भर करता है।'

'मातुश्री ! आपका सांसारिक ज्ञान इतना अधिक है! इसकी मुझे कल्पना भी न थी। इस सदुपदेश के लिए मैं आपका जितना ही आभार मानूँ उतना ही कम है। मैं कभी भी आपकी इस शिक्षा से उऋण नहीं हो सकती।' रोहिणी ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा।

कुछ देर के बाद वृन्दा पुनः कहने लगी—'रोहिणी ! कितने ही लोगों की यह धारणा है कि पति के व्यवसाय

से स्त्री के सुख-दुःख का कोई सम्बन्ध नहीं है। स्त्री को पति के साथ बाहर जाना नहीं पड़ता; अतः घर में एक प्रेमी पति ही यथेष्ट होता है। पर, उनकी यह धारणा भ्रम-पूर्ण है। व्यवसाय पुरुष का एक अंग है। व्यवसाय का पुरुष के स्वभाव पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ता है कि पुरुष का स्वभाव उसके व्यवसाय के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। पुरुष के स्वभाव पर पत्नी का सुख-दुःख आश्रित करता है। पति का व्यवसाय स्त्री के आनन्द एवं अवसाद का कारण होता है। व्यवसाय की इतनी बड़ी सत्ता है कि वह मनुष्य की अवस्था एक क्षण में पलट सकता है।

इस विश्व में मनुष्य जाति की आवश्यकता के अनुसार लाखों प्रकार के व्यवसायों का निर्माण हुआ है। अपनी जाति की कन्यायें बहुधा डाक्टर, वकील, राजकर्मचारी और जागीरदार के साथ विवाह करने को आतुर रहती हैं। इससे आजकल जिन व्यवसायों को आदर एवं मान की दृष्टि से देखा जाता है उन्हीं का विवेचन करना चाहती हूँ।

कृषिकर्म सबसे उत्तम है। जो जमींदार केवल भूमि

का स्वामी बनकर बैठा न रहता हो; बल्कि अपनी भूमि की उत्पत्ति बढ़ाने की देख-रेख रखता हो और अपने कृषकों को अंधकार से कृषि में नवीन सुधार कर प्रकाश में लाने का यत्न करता हो वह अवश्य उत्तम पति होता है। इसके विपरीत जो जागीरदार अपनी भूमि या जागीर की देखभाल कभी नहीं करता, वरन् कुछ द्रव्य लेकर उसे दूसरों को दे देता है या उससे जो उपज मिलती है उसीपर संतोष कर उस आय को मौज या आनंद में उड़ा देता है उसकी गणना निरुद्योगी और आलसी पतियों में होती है। पति के साथ भूमि की देखभाल करना स्त्री का परम धर्म है। भूमि की तरह विश्व में कोई सम्पत्ति नहीं है। यदि भूमि की बराबर देखभाल की जाय तो यह कल्पलता हो जाती है।

व्यापार से देश का उद्धार होता है। 'व्यापारे वसति लक्ष्मी।' व्यापार करनेवाला देश का सच्चा उद्धारक कहा जाता है। आजकल के व्यापारी सत्यावलंबी और कर्तव्य-निष्ठ नहीं होते; इसीसे उनके विषय में अनेक बुरी बातें कही जाती हैं। तब भी सच्चे एवं धर्मिष्ठ व्यापारियों की, संख्या इस देश में कम नहीं है। व्यापारी सारा दिन अपना काम-धंधा करके जिस समय अपने घर आता है

और अपनी गृह-लक्ष्मी तथा निर्दोष बाल-बच्चों के सुधाकर के समान शांतिकारक मुखमण्डल का दर्शन करता है वह अपने सारे परिश्रम और थकावट को भूल जाता है। यह सब श्रम वह अपने परिवार के लाभ के लिए ही करता है—इस विचार से उसका हृदय शांत रहता है। व्यापारियों का स्त्री-जाति में अपार प्रेम होता है। स्त्रियों के सुख के लिए वे अपने स्वार्थ का त्याग कर देते हैं। व्यापार करने वालों का अपने परिवार में अखंड अनुराग होता है। कारण यह है कि प्रातः से सन्ध्या तक अविश्रान्त परिश्रम करते हैं और बाजार में अपनी मान-मर्यादा की डर एवं लाज के कारण वेश्यागमन, मदिरापान तथा नाटक आदि प्रतिष्ठा की हानि करनेवाले दुर्व्यसनों से सदा बचे रहने का प्रयत्न करते हैं। इससे गृह के अतिरिक्त उन्हें अन्य विश्राम स्थल ही नहीं रहता। व्यापारियों में एक प्रमाद देखने में आता है। अधिक धन मिलने के लोभ से एवं गाड़ी, घोड़ा, बाग, बँगला बनाने की आशा से दुःसाहस कर बड़ा-बड़ा सट्टा खेलते हैं और कभी-कभी बहुत दरिद्र हो जाते हैं। उसकी स्त्री को चाहिये कि बहुत धन खर्च न करे और सादा जीवन व्यतीत कर पति पर यह सिद्ध कर

देवे कि धन की विपुलता पर ही सुख निर्भर नहीं करता; धन के बन्धन से वह सर्वथा मुक्त और स्वतंत्र है। वास्तविक सुख, सन्तोष में है।

डाक्टर पति अपनी स्त्री और बालकों की बीमारी में अतिशय उपयोगी होते हैं। इससे डाक्टर पति अच्छे कहे जा सकते हैं; परन्तु डाक्टरों का व्यवसाय ऐसा है कि उनको सदा दुःखी मनुष्यों के साथ काम पड़ा करता है और उनके मन में निरंतर औषध तथा शस्त्रप्रयोग आदि के विचार उथल-पुथल किया करते हैं। इससे उनकी प्रकृति स्वभावतः गंभीर होती है। जिस स्त्री का स्वभाव शङ्काशील हो उसे चाहिये कि डाक्टर को कभी भी पतिरूप में वरण न करे।

यदि कोई यह पूछे कि इस विश्व में कौन-सा राष्ट्र अधिक नीतिमान होता है, तो मैं तत्काल यह उत्तर दूँ कि जिस राष्ट्र में वकील और बैरिष्टरों की संख्या अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा कम हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वकील, बैरिष्टर अनीतिमान होते हैं; वरन् आशय यह है कि वकील और बैरिष्टरों का निर्वाह अपने देश-बाँधवों और अड़ोस-पड़ोस की अनीति, एवं दुराचार के आधार पर रहता है। वास्तव में वकील और बैरिष्टर सामाजिक भ्रष्टता के

गौण रूप से उत्पादक और बहुत अंश में इसके पोषक होते हैं। जिस प्रकार स्वस्थ मनुष्यों के लिये डाक्टर अथवा वैद्य की आवश्यकता नहीं होती उसी तरह जिस राष्ट्र में नीति का साम्राज्य विस्तारित हो रहा है, वहाँ वकील, बैरिष्टर, सैनिक और पुलिस की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ इन तीनों—वकील, सैनिक एवं पुलिस की अधिकता होती है, वहाँ अनीति और अनाचार की वृद्धि होती है। आशा है कि समाज भविष्य में उन्नत होकर इतना नीतिमान हो जायगा कि उस समय वकील, बैरिष्टर-सदृश अनीति रोग के उत्पादक और पोषक जन्तुओं का सर्वथा नाश और लोप हो जायगा। परंतु अभी वह भविष्य बहुत दूर दिखाई पड़ता है। वकील, बैरिष्टरों की संख्या इतनी अधिक बढ़ रही है कि उनको अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त मुकदमे नही मिलते जिससे वे लोगों को बहकाकर नया झगड़ा खड़ा कर देते हैं और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अपने व्यवसाय में सफल न होकर देश की राजनीति के नेता बन जिस-तिस प्रकार जनता के सम्मुख प्रकाश में आने का यत्न करते हैं। उनकी इस वाह्य देशभक्ति में बहुधा उनके स्वार्थ-साधन की आशा छिपी रहती है।

ग्रंथकर्ता, राजाश्रित एवं नट आदि में भी अनेक दोष होते हैं। ग्रंथकर्ता की स्त्री को अपने पति से सन्तोष रहता है; पर खाने-पीने का अभाव रहता है। नाम और यश होता है; पर घर में बहुधा कलह रहता है; राजाश्रितों की स्त्रियाँ थोड़ी सुखी रहती हैं। रंगमंच के ऐक्टरों के स्त्रियों की दशा बहुधा खराब रहती है। अतः पतिवरण करने के पूर्व इन सबका विचार करना बहुत आवश्यक है।'

'मातुश्री! आपका यह उपदेश अमूल्य है। मेरा विश्वास है कि मोहनलाल इन सब परीक्षाओं में सहज ही उत्तीर्ण हो सकता है। आपकी अनुमति के बिना यह कार्य होना सम्भव नहीं है। इससे इसके लिये मुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मोहनलाल से परिचय होने पर यदि आपको उसके बर्ताव से पूर्ण सन्तोष हो जाय तब आप इसका अनुमोदन कीजिएगा।' रोहिणी ने आर्यकन्या की शोभा के अनुरूप उत्तर दिया।

'यदि ऐसा है तो मैं तुम्हारे सुख-मार्ग का कंटक नहीं बन सकती।' वृद्ध वृन्दा ने आश्वासन दिया।

काशी में आलमचन्द और यशोदा के साथ वृन्दा और रोहिणी ने लगभग एक मास का समय आनंद से बिता

दिया। इसके पश्चात् वृन्दा ने यशोदा से कलकत्ता की ओर अपने जाने की इच्छा प्रकट की। आलमचन्द और यशोदा ने थोड़े दिनों तक काशी में रहने का बड़ा आग्रह किया। परन्तु वृन्दा के यह कहने पर कि आते समय चार दिन और काशी में ठहरेंगे, निरुपाय होकर उनलोगों ने जाने की अनुमति दे दी। काशी-निवास करते समय स्वदेश और स्वदेश-बंधुओं के प्रति स्नेह उनके मन से निकल नहीं सका था। यह संसार के बंधन और माया की महाविलक्षण, मोहमयी आसक्तिकारिणी एवं चमत्कारिक शक्ति है। इसीको मोह-मुग्धता कहते हैं। परंतु यह मोह निष्कपट और निष्काम होता है। यह त्याज्य नहीं है। कारण—विश्व के अस्तित्व का आधार इस प्रकार विशुद्ध और पवित्र होता है कि स्नेह का बंधन अवश्य रहता है।

१६

रेलकी यात्रा का थोड़ा बहुत अनुभव सबको रहता है। आजकल के युग में विरला ही कोई ऐसा मनुष्य होगा जिसने रेलकी-यात्रा न की हो। हमारे यात्री वृन्दा और रोहिणी सुखपूर्वक हवड़ा स्टेशन पर पहुँच गईं। कलकत्ता की धनाढय विधवा श्रीमती सरलादेवी, जो वृन्दा की परि-

चिंता थी, गाड़ी लेकर स्टेशन पर उसे लेने के लिए आई हुई थी ; क्योंकि अपने आने का समाचार वृन्दा ने उसके पास काशी से तार-द्वारा भेज दिया था। श्रीमती सरलादेवी के मैनेजर रजनीकांत भी स्टेशन पर आये हुए थे। उन्होंने आदर के साथ गाड़ी में बिठाकर उनलोगों को सरलादेवी के भवन में पहुँचा दिया।

एक दिन सरलादेवी के गृह में आदरातिथ्य स्वीकार कर विश्रांति लेने के बाद दूसरे दिन प्रवासियों ने जगन्नाथ-यात्रा का निश्चय किया। कलकत्ते से जगन्नाथ जाने के दो मार्ग हैं। १—जल मार्ग २—स्थलमार्ग। स्थलमार्ग से कुछ लोग रेल से और कुछ बैल गाड़ी से जाते हैं। रेलकी यात्रा में कष्ट का अनुभव करके वृन्दा ने बैलगाड़ी से ही पुरी-यात्रा करने का विचार किया। रजनीकान्त ने तुरत दो बैलगाड़ी भाड़े पर मँगाया। वृन्दा के आग्रह से वह अपनी स्वामिनी की आज्ञा लेकर अपनी पत्नी सुशीला तथा दो शस्त्रधारी संरक्षकों के साथ जगन्नाथ-यात्रा के लिए तैयार हो गये। भोजन कर दो बजे के लगभग यात्रियों ने कलकत्ता छोड़ा और संध्या होते-होते प्रवासी एक गाँव के समीप पहुँचे। उस गाँव के बाद एक विकट

अरण्य से होकर चलना था। रात्रि में उधर से जाना खतरे से खाली न था। इससे उनलोगों ने वहीं पर एक धर्मशाले में अपना डेरा जमाया।

इस धर्मशाला में एक यात्री बहुत पहिले ही से आकर उतरा था। वह देखने में बहुत कंगाल और दीन मालूम होता था। उसका शरीर बहुत दुर्बल था। उसके नेत्रों की चंचलता विचित्र थी। उसके फटे वस्त्र, बढ़ी हुई जटा और दाढ़ी तथा शरीर की अस्तव्यस्तता देखकर भिखारी की कल्पना होती थी।

जिस समय ये सब प्रवासी धर्मशाला में आये, वह कंगाल मनुष्य धर्मशाला के दरवाजे पर बैठा था। उस कंगाल आदमी के आँखों की चमक देखकर रोहिणी के हृदय में अचानक एक भयंकर आघात लगा। उसका सारा शरीर काँप उठा। इस घबड़ाहट का कारण वह समझ न सकी। जब वृन्दा, रोहिणी, सुशीला और रजनीकान्त तथा उनके नौकर वगैरः धर्मशाला में गये तब वह आदमी उठ खड़ा हुआ और लालनेत्र करके मन-ही-मन कहने लगा—'बस, आज ही हमारा शिकार हमारे हाथ में है। यह हमारे हाथ से कदापि छूट नहीं सकता। विजय! विजय!!'

कहता हुआ वह वहाँ से दौड़ते हुए थोड़ी दूर जाकर घने जंगल में अदृश्य हो गया।

धीरे-धीरे रात्रि आ पहुँची। यात्री लोग भोजन करके बातचीत करने लगे। रजनीकान्त को बंगाल और उड़ीसा का पूरा अनुभव था, और वह कितने ही वर्षों से बंगाल में रहते थे। वृन्दा उनसे बंगाली लोगों की रीति-भाँति और बंगाल में देखने-लायक स्थानों के विषय में पूछने लगी। रजनीकांत उसके प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देते थे। संभाषण में रोहिणी और सुशीला भी भाग लेती थीं। इस प्रकार समय आनन्द से बीत रहा था। लगभग दस बजे के सब लोग सोने की तैयारी करने लगे। धर्मशाला के रक्षक ने चारपाई आदि का प्रबन्ध पहले ही से कर रखा था। इससे सब लोग जल्दी ही सो गये। सोने के पूर्व रजनीकान्त ने धर्मशाला का द्वार बंद है या नहीं यह जाँच लिया। दरवाजा बराबर बंद होने से किसी प्रकार के भय या आशंका का प्रयोजन नहीं रह गया। इस प्रदेश में डाकुओं का बड़ा प्राबल्य था और अनेकबार यात्रियों को बहुत भयभीत होना पड़ा था।

मध्यरात्रि का समय था। दिन में ही अरण्य अत्यन्त

भीषण होता है। रात्रि के निविड़ अंधकार से यह इतनी भीषण भयंकरता धारण कर लेता है मानों विश्व का समस्त अन्धकार इसी स्थल पर आकर निवास कर रहा हो; निर्जन अरण्य, रात्रि एवं कृष्णपक्ष की चतुर्दशी; इन सबोंने मिल कर इतनी विस्तृत भयानकता कर दी थी कि इसकी कल्पना—मंद कल्पना भी बंबई या कलकत्ता की बिजली या गैस रोशनी से जगजगाते हुए मार्गों पर चलनेवाले नागरिकों के लिए जिन्होंने जंगल और ग्रामों का एकबार भी अनुभव नहीं किया है कल्पना करना नितान्त असम्भव है। समय शांत था, निशा शांत थी, अरण्य शांत था और वृक्ष के रहनेवाले पशु-पक्षी भी शांत थे। किसी ओर से किसी प्रकार का स्वर नहीं सुनाई पड़ता था।

इसी समय अचानक धर्मशाला के द्वार पर आठ-दस आदमियों की आकृति दीख पड़ी। उनका मुख कैसा था, उनके शरीर का रंग कैसा था, और उन्होंने किस प्रकार के वस्त्र धारण किये थे—यह सब बातें अंधकार की निविड़ता के कारण दिखाई नहीं पड़ती थीं। केवल उनकी बातचीत सुनाई देती थी। उनमें से एक ने कहा—'अरे! तू हमारे मंडल में नया ही आया है इससे दगा-फसाद न

करना। नहीं तो यदि हमलोग पकड़ जायँगे तो पहले तुम्हीं को काल के हवाले करेंगे।'

'मैं दगाबाजी करूँ तो मेरा प्राण भले ही ले लेना, मार डालना; परन्तु तुम हमारी एक शर्त मान लो; इस लूटपाट में जो कुछ माल मिले वह तुम लोगों का है और यदि कोई स्त्री मिले तो वह हमारी है।' दूसरे ने शर्त की।

'अरे! यह आदमी तो बड़ा धनी मालूम होता है। हमें अधिक मिहनत नहीं करना पड़ेगा!' तीसरे ने कहा।

'इस विषय में तुम जरा भी चिन्ता न करना; यात्रा में निकलनेवाली विधवा इतनी बड़ी धनी है कि उसकी दौलत कितनी है, वह स्वय नहीं जानती; कुछ नहीं तो उसके पास पचीस-पचास हजार तो अवश्य ही होंगे। मेरी यह धारणा है। फिर चाहे भाग्य से जो कुछ मिल जावे।'

'हम देर क्यों कर रहे हैं? समय व्यर्थ बीता जा रहा है।'

'धर्मशाला के रखनेवाले को जगाओ।' उनमें से एक ने आज्ञा दी। तुरत ही उस आदमी ने धर्मशाला के द्वार पर थपथपाया। लगभग दस मिनट में धर्मशाला का द्वार खुल गया और वे दसों आदमी धीरे पॉव धर्मशाला के भीतर चले गये। उन लोगों ने दूर ही से देखा कि सब प्रवासी

गाढ़ी निद्रा में सोये हुये हैं और उनके पास पड़ा हुआ एक हरिकेन लालटेन अपने धीमे प्रकाश से कुछ उजाला कर रहा है। यात्री लोग सोये हुये थे। तुरत ही उनका इशारा पाकर दूसरा पुरुष वहाँ आया और उसने अपनी जेब से क्लोरोफार्म की एक शीशी निकालकर क्षण में ही दो स्त्रियों को निद्रा में अचेत कर दिया। दो हृष्ट-पुष्ट आदमियों ने उनको अपनी पीठपर लाद लिया; और बाकी लोगों ने तीन-चार ट्रंकों को उठा लिया। इस प्रकार अपना कार्य करके वे सब धर्मशाला से बाहर निकले, और समीप के अरण्य में प्रवेश कर अदृश्य हो गये। धर्मशाला का रक्षक अपनी जगह पर जाकर सो गया। पर, जान-बूझकर उसने धर्मशाला का दरवाजा खुला ही रहने दिया।

यह सब होते एक या दो घंटे के लगभग बीत गये। अचानक तीसरे यात्री की निद्रा टूटी, और आसपास देखने पर उसे रोहिणी और सुशीला न दिखाई पड़ीं। सामान भी सब-का-सब गायब था। जो स्त्रियाँ गायब हो गई थीं, वे सुशीला और रोहिणी थी, और यह जागने वाली स्त्री वृन्दा थी। वृन्दा घबड़ाकर जोर से चिल्लाने लगी। रजनीकान्त नींद से जग पड़े। कोलाहल से नौकर

भी जगकर गायब हुये सामान और अदृश्य दोनों स्त्रियों को खोजने लगे। रजनीकान्त धर्मशाला को खुला देख सब परिणाम समझ गये कि सर्वनाश हो चुका है।

'रजनीकान्त ! हमारी पुत्री कहाँ है ?' भयभीत होकर वृन्दा ने पूछा।

'मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरी पत्नी सुशीला कहाँ है।' रजनीकान्त ने प्रश्न किया।

'अपनी संदूकें भी नहीं दीख पड़ती।' एक अनुचर ने कहा।

'देखो ! धर्मशाला के बाहर का दरवाजा खुला पड़ा है। प्रतीत होता है कि लुटेरे यहाँ आकर हमलोगों का नाश कर गये। आश्चर्य तो यह है कि सोने के पूर्व हमने बराबर दरवाजे को बंदकर दिया था; इस समय यह दरवाजा खुला है। इसके टूटने का भी कोई चिन्ह नहीं दीख पड़ता।' रजनीकान्त ने कहा।

रुपए पैसे और अन्य माल जाने की मुझे पर्वाह नहीं है। पर मेरी बेटी रोहिणी को लुटेरे क्यों और कहाँ ले गये ? यह मैं नही समझ सकती। क्या अब मेरी रोहिणी नही मिलेगी ? अरे ! मुझ अन्धी की लकड़ी कहाँ है ?

हाय !, इस पैदल भूमि आने की कुबुद्धि मुझे ईश्वर ने क्यों सुझाई ?' वृन्दा ने रोते हुये कहा ।

'बाई साहब ! अब धीरज धारण करो। इस तरह शाक करने से कुछ मिलनेवाला नहीं है। आपकी पुत्री के साथ-ही लुटेरों ने मेरी स्त्री को भी हरण कर लिया है । हम दोनों दुखी हैं । आप अपने नौकरो के साथ यहीं रहे । मैं अपने सशस्त्र नौकरों को साथ लेकर स्त्रियों की खोज में जाता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि रोहिणी और सुशीला के शरीर पर कीमती जेवर थे। इसी लालच से लुटेरे उनको उठा ले गये हैं, और संभव है जंगल में जेवर उतारकर उनको कही पर रोती हुई छोड़ दिये हों।' रजनीकान्त ने यह कहते हुए अपने नौकरों को चलने का इशारा किया ।

'हम तैयार है ?' नौकरों ने साहसपूर्वक कहा ।

'परन्तु भाई ! सभव है इस अवसर पर दुःसाहस करने से तुम्हारे अमूल्य जीवन का नाश हो जाय। इस बात का भी विचार करलो। यदि कहीं लुटेरों की सख्या अधिक हुई तो वे जरूर तुमको मार डालेंगे।' वृन्दा ने कहा ।

'बाई साहब ! आप इसके लिये चिन्ता न करें; आपकी

बहू-बेटी की आबरू से हमलोगों के प्राण का मूल्य अधिक नहीं है। अतः अपने पास पर्याप्त आदमी न होनेपर भी ईश्वर में विश्वास रख, समय को नष्ट न कर हम उनकी खोज के लिए यत्न करते हैं। मैं धर्मशाला के रक्षकों में से एक को साथ ले जाता हूँ। हम सब लोग शस्त्रधारी हैं, चार आदमी चौबीस को मार सकते हैं। ईश्वर पर विश्वास रखकर हमें जाने दो, और चिन्ता को मन से निकाल डालो।' रजनीकांत यह कह रिवाल्वर भरकर चल पड़े। उनके दो नौकर रोशनी लेकर पीछे-पीछे चलने लगे। धर्मशाला का एक रक्षक भी उनके साथ गया।

इन चार आदमियों ने निविड़ अरण्य में प्रवेश किया। लगभग तीन बजे थे और अंधकार भी उसी तरह फैला था। हरीकेन लैम्प का प्रकाश बहुत दूर तक पहुँच नहीं सकता था। इससे रजनीकान्त—'बहन रोहिणी! और प्रिये सुशीला!' कहकर जंगल में आवाज देने लगे। पर इस प्रकार के निःस्तब्ध जंगल में प्रतिध्वनि, और प्रत्याघात के अतिरिक्त कोई परिणाम न हुआ। वे आगे बढ़ते गये। लगभग एक मील जाने के बाद उनको एक दीपक का मन्द प्रकाश दिखाई पड़ा। इससे रजनीकान्त ने अनुमान किया

कि उस स्थान पर डाँकू लुटी हुई स्त्रियों का जेवर उतार रहे हैं। इसी विचार से अपने आदमियों के साथ उसी दिशा में चलने लगे। उस दीपकवाले स्थान में पहुँचने पर एक बड़ा मकान दिखाई पड़ा। पर बाहर से वह खँडहर की तरह मालूम पड़ता था, और उसमें जलता हुआ दीपक दूर से दिखाई पड़ता था। रजनीकान्त ने सोचा कि शायद यह धर्मशाला हो; और जो लुटेरे इधर से गये होंगे, तो रक्षक से पूछने पर उनका समाचार मिलेगा। यह विचार कर उन्होंने मकान के किवाड़ को खटखटाया। लगभग दो मिनट पीछे एक बुड्ढे ने आकर दरवाजा खोला और कर्कश स्वर से पूछा—'क्यों भाई, क्या है? इतनी रात को कहाँ आये हो?'

'इस जङ्गल में यह मकान क्यों बना है।' रजनी ने सवाल किया।

'जी! यह धर्मशाला है।' बुड्ढे ने जवाब दिया।

'हमलोग भी धर्मशाला खोज रहे हैं। हमारे चार-पाँच साथी जिनमे दो स्त्रियाँ भी हैं हमसे आगे निकल आईं। क्या वे यहाँ आई हैं?' रजनी ने मार्मिक प्रश्न किया।

'जी हाँ, कुछ समय पूर्व वे यहीं आकर उतरी

हैं। मैं आपको उनसे मिला दूँगा।' बुड्ढे ने नम्रता पूर्वक कहा।

रजनीकान्त और उनके साथी बिना कोई अधिक सवाल किये ही बुड्ढे के पीछे-पीछे मकान में जाने लगे। वह बुड्ढा उनको लेकर चलता गया। चार-पाँच आँगन और दस-पंद्रह कमरों में जाने पर भी उनमें कोई मनुष्य देखने को नहीं मिला। इससे उनके मन में नाना प्रकार की शंकाएँ और तर्क-वितर्क उठने लगे। वे एक, दूसरे की ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद एक बड़ा आँगन आया, और उसमें बैठे हुए आठ-दस आदमी बात-चीत करते हुए दिखाई पड़े। उन सब आदमियों की आकृति भयंकर थी। रजनी ने समझ लिया कि अपने लोग भी जाल में फँस गये हैं; परन्तु उन्होंने कोई भयदर्शक भाव नहीं दिखाया। आँगन लाँघने के पश्चात् वह बुड्ढा कमरे की सीढ़ी से नीचे उतरने लगा। वह उनको एक भूधरा में ले गया, और वहीं एक कोठरी में बैठने का इशारा किया। यह कोठरी दस हाथ से अधिक लंबी न थी। चारों ओर दीवाल पक्की थी, और उस कमरे में दो चारपाइयाँ पड़ी थीं। एक दीपक जल रहा था। बुड्ढे ने कहा—'साथियों से

तुम्हारे आने का समाचार कहने जाता हूँ। बताओ तुम लोगों को कुछ चाहिये ?'

'हम लोगों को कुछ न चाहिये।' रजनी ने कहा। बुड्ढा चला गया। उसके जाने के बाद अपने आदमियों की ओर देखने पर धर्मशाला का रक्षक भी गायब था। कुछ देर तक रजनी विचार में पड़े थे, अंत मे अपने दो स्वामि-भक्त नौकरों से कहने लगे—'मालूम होता है कि यह धर्म-शाला नहीं है, वरन् कोई भयंकर भेद-भवन है। तुम लोगों का क्या अभिप्राय है।'

'हम लोगों का भी यही विचार है।' नौकरों ने कहा।

'अब अपने अमूल्य समय को नष्ट न कर जो बुरा समय आ गया है, उससे अपने बचने के लिए हमलोग इस मकान की छानबीन करें।' रजनी ने कहा।

'आपका यह विचार स्तुत्य है।' अनुचरों ने कहा।

रंजनी एक-दम उठ खड़ा हुआ; और उस कमरे के दरवाजे पर खड़ा होकर इधर-उधर नजर दौड़ाने लगा।

रजनीकान्त और उनके आदमी जिस कमरे मे आये हुए थे उसके बगल ही में एक दूसरी छोटी-सी कोठरी थी।

उसमें कुछ टूटी-फूटी चीजें भरी थीं। बायीं ओर एक बड़ा कमरा रजनीकान्त को दिखाई पड़ा। ध्यान से देखने पर उस कमरे में दीपक का प्रकाश दिखाई पड़ा। इससे सहज में अनुमान किया जा सकता था कि इसमें आदमी बैठे हुए हैं। इस मकान की हालत और चौक में बैठे हुए आदमियों की आकृति देखकर रजनीकान्त के मन में यह निश्चय हो गया कि हमलोग सचमुच में किसी बड़े बदमाश के जाल में पड़ गये हैं।

वह उस कमरे की ओर बढ़े। उस बड़े कमरे का दरवाजा इतना मजबूत था कि अन्दर की कोई वस्तु दिखलाई न पड़ती थी। बहुत जोर करने पर एक स्थान पर एक छेद में से बाहर से आनेवाले प्रकाश की किरणें दिखलाई पड़ीं। वह तुरत छेद से आँख लगाकर अन्दर की लीला देखने लगे। जो कुछ उसके देखने में आया उससे वह केवल आश्चर्य चकित ही नहीं; किन्तु दिग्मूढ़ और स्तम्भित हो गए। एक हृष्ट-पुष्ट पुरुष उस बड़े कमरे में कुर्सी पर बैठा था। उसके सामने एक गोल मेज पर दो-तीन गिलास और और कई बोतल आदि पड़े थे। उसकी बगल में भयानक मुद्रावाली एक स्त्री बैठी थी। वे मदिरा-पान कर रहे थे।

थोड़ी देर में उनके सामने चार-पाँच आदमी आये और लंबी-लंबी सलामें करके कुर्सी पर बैठ गये।

आने वालों की पोशाक बंगालियों की तरह थी। इनके आते ही दारू का दौड़ चलने लगा, और बोतल-पर-बोतल खतम होने लगे। थोड़ी देर बाद एक लड़की ने आकर सरदार की कुर्सी के सामने एक बड़ा हुक्का रख दिया, और सकुच कर एक कोने मे खड़ी हो गई। इस लड़की को आती देखकर सरदार के मुखमंडल पर एक प्रकार का तिरस्करणीय एवं विलक्षण स्मित दिखलाई पड़ने लगा। उसने लड़की की ओर हाथ उठाकर बंगला भाषा में कुछ कहा; रजनी ने भी उसे सुना; पर बीच में दीवाल इतनी मोटी थी कि उनका अर्थ वह समझ न सका। वह बेचारी लड़की बहुत सकुच गई और भय से थर-थर काँपने लगी। उसकी यह अवस्था देखकर सरदार जोर से हँसने लगा, और पुनः दारू का प्याला पीने लगा।

यह सब लीला देखकर रजनीकान्त का माथा घूमने लगा। 'हाय सुशीला! यह क्या!' बोलते-बोलते वह रुक गया। यह परिस्थिति उसने थोड़ी-ही देर देखी थी कि क्रोध से जलने लगा। अचानक दो पुरुष कोई वस्तु झोली

में रख कर वहाँ लाये, और उसे पास की खाट पर डाल दिया। यह एक अबला थी। उसे देखकर रजनी की आँखों में अँधेरा छा गया और उसके मुँह से यकायक 'बहन रोहिणी! तेरी यह दुर्दशा' उद्गार निकल गया। उसके मुँह से यह शब्द निकलते ही किसीने पीछे से आकर उसके सिर में इतना प्रबल आघात किया कि वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

सुशीला और रोहिणी को उसी जगह छोड़कर बदमाश वहाँ से उठकर अन्यत्र चले गये। दोनों सभ्य सुंदरियाँ महा विपत्ति में पड़ गईं; किन्तु सुशिक्षिता होने से जिस-तिस प्रकार से साहस कर आनेवाली आपत्तियों से बचने की मार्ग-प्रतीक्षा कर रही थीं। थोड़ी ही देर में वहाँ एक पुरुष आया। रोहिणी उसे देखकर पहचान गई। धर्मशाला के द्वार पर जो कंगाल भिखारी देखने में आया था, वह यही था। उस पुरुष ने आते के साथ ही कहा—'रोहिणी! तू मुझे इस वेश में पहचान सकती है या नहीं।'

रोहिणी कुछ जवाब न देकर आँखें फाड़ कर उधर देखने लगी। पर मन में कुछ निश्चय न होने से वह विचार

में पड़ गई। उसे अधिक संशय में न रख उस मनुष्य ने अपनी बनावटी दाढ़ी और जटा को उखाड़कर दूर फेंक दिया, और कहा—'मैं तुम्हारा पुराना आशिक, प्राण-न्यौछावर करनेवाला आशिक—लालचंद हूँ। रोहिणी! रोहिणी! केवल तेरे लिये पाप-मार्ग स्वीकार कर मैंने यह वेश धारण किया है। अब तुम मेरे प्रेम को स्वीकार कर बदले में अपना प्रेमरस चखाओ।'

'ऐसे अपवित्र पुरुष के स्पर्श से अपने शरीर को पतित एवं भ्रष्ट करने की अपेक्षा मैं मरना अधिक पसंद करती हूँ।' रोहिणी ने निर्भयता से कहा।

'यदि आज भी तेरा यही हठ है, तो तेरे जिस शरीर के उपभोग के लिए मैंने देश का त्याग किया; लुटेरों के मंडल का आश्रय लिया; एक भटकते हुए भिखारी का वेश धारण किया; उस आशा को आज मैं बलात्कार से तृप्त करूँगा।' यह कहकर लालचंद रोहिणी के वस्त्र को पकड़ ज्योंही उसके शरीर का स्पर्श करना चाहता था, त्योंही एक तरुण अबला ने पीछे से आकर उसके पेट में कटार घुसेड़ दी और थोड़ी ही देर में दुष्ट लालचंद निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा।

यह भयानक दृश्य देखकर रोहिणी और सुशीला बहुत घबड़ा गईं और उनके हृदय में यह भास होने लगा कि यह राक्षसी कहीं उनको भी न मार डाले। उस नवीन शस्त्र-धारिणी सुंदरी ने इस ढंग से मानों वह उनके मन के भाव को जान गई हो कहने लगी—

'घबड़ाओ नहीं; तुमको पतित होने से बचाने के लिए मैंने इसको मार डाला है। मैं डाकू सरदार की पुत्री हूँ। परन्तु स्त्री होने से मेरा अन्तःकरण मृदु है; अपनी सजातीय अबला पर अत्याचार मैं देख नहीं सकती। तुम्हें मार डालने का डाकुओं ने निश्चय किया है। तुम्हारा जीवन खतरे में था। अतः अब तुम मुझमें विश्वास कर मेरे साथ आओ। मैं तुमको एक गुप्त और निर्भय स्थान में ले चलूंगी और सब बातें समझाकर कहूँगी।'

रोहिणी और सुशीला को उस स्त्री की बातों पर विश्वास हो गया, और वे उसके पीछे-पीछे चलने लगीं। वह उनको एक दूसरे कमरे में ले गई और बोली—'यह मेरा प्राइवेट कमरा है, मैं सरदार की लड़की हूँ इससे यहाँ आने का किसी को साहस न पड़ेगा। तुम अब निर्भय रहो।'

'परन्तु वहन ! तुम इतनी दयालु होकर भी इस स्थान में रह कर दुष्ट पुरुषों के मंडल में जीवन विताना कैसे पसन्द करती हो ?' रोहिणी ने कहा।

'सचमुच तुम्हारी तरह सद्गुणी और सदय स्त्री को इस निर्दय जन-समाज में देखकर अतिशय आश्चर्य होता है। यह राक्षसों के मंडल में देवी का वास कहा जा सकता है।' सुशीला ने कहा।

'मुझे यहाँ का रहना तनिक भी अच्छा नहीं लगता। मैं अपने दुष्ट माता-पिता के पाप-कृत्यों से तंग आ गई हूँ; परन्तु यहाँ से निकलकर कहाँ जाऊँ; इसी विचार में अब तक यहीं पड़ी हूँ। भाग्य में होगा, तभी यहाँ से छूटूँगी।' उस डाँकू की लड़की ने निःश्वास लेकर कहा।

'परन्तु हमलोगों के बचाने में कहीं तुम्हारे पिता का क्रोध तुमपर न आवे और तुम आपत्ति में न पड़ जाओ— हमारे मन में यही चिन्ता हो रही है।' रोहिणी ने कहा।

'इसके लिए आप कुछ चिन्ता न करें। मैं अपने माता-पिता के अत्याचारों से इतनी आजिज आ गई हूँ कि यदि वे इस समय यहाँ आजायँ तो उनको भी इस पिस्तौल की गोली से मारकर नरक-द्वार तक पहुँचा दूँ'—कहती हुई उस डाँकू की

लड़की ने अपनी कमर से भरी हुई छः गोलीवाली पिस्तौल निकालकर दोनों स्त्रियों को दिखाया।

यह बातचीत हो ही रही थी इतने ही में दो आदमियों की धीमी बात-चीत और उनके पैर की आवाज सुनाई पड़ी। मालूम होता था कि उसी कमरे की ओर कोई आ रहा है; परन्तु पल भर में वे दूसरे कमरे की ओर चले गये।

सुशीला मन में अपने स्वामी के विषय में विशेष चिन्तित हो रही थी कि कदाचित् डाँकू हम सब लोगों को लूटकर उन्हें मार न डालें हों। पति के स्मरण से उसके नेत्रों में आँसू भर गये थे। रजनीकान्त, इस समय मूर्छित पड़ा था। यदि सुशीला यह बात जानती होती कि वह भी डाँकू के उसी मकान में फँसे हैं, तो उसकी दशा इससे भी कहीं बुरी हो जाती। वह डाँकू-कन्या से कहने लगी—'बहन! क्या इस स्थान पर कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिस की मदद से हम अबलाएँ इन राक्षसों से लड़ सकें और अपने को बचा लेवें।'

'बहन! तुम धीरज धरो। ईश्वर इनके पापों का फल अवश्य देगा।' डाँकू की लड़की ने कहा।

इतने ही में ऐसा सुनाई पड़ा मानों कोई किसी का

गला दबाता हो, और वह चिल्ला रहा हो, अंत में एक अत्यन्त भीषण चीत्कार तीनों रमणियों के कान में पड़ा; इस चीत्कार की ध्वनि सारे मकान में गूँज उठी; डाँकू की लड़की ने सोचा कि कदाचित् नये फँसे हुए यात्रियों का खून हो गया है। इस शंका से वह उस ओर दौड़ कर गई, और उस कमरे में आई, जहाँ से वह रोहिणी और सुशीला को ले गई थी। वहाँ का दृश्य देख कर उसकी मुखमुद्रा पर शोक और आनंद-मिश्रित मुसकान दिखाई पड़ने लगी। उसके एक नेत्र से शोक और दूसरे से हर्ष के आँसू बहने लगे। उसके मुँह से निकल पड़ा—'अच्छा हुआ, एक राक्षसी से तो जगत को त्राण मिला।'

रजनी ने दरवाजे के छिद्र से जिस कमरे की ओर देखा था, उसमें एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हुए थे। पुरुष का परिचय डाँकू सरदार के नाम से दिया जा चुका है। स्त्री उस सरदार की विवाहिता पत्नी थी और पति के अनु-रूप ही सोलह-कला-सम्पन्न थी। पति से एक भी अवगुण उसमें कम न था। वरन् पति से कितने ही अंशों में वह अधिक थी। मदिरा की मात्रा कुछ अधिक हो जानेपर वह लड़खड़ाती हुई अपने कमरे की ओर गई। मदिरा

अधिक पी गई थी; इससे उसकी हालत बुरी थी। उसके पैर आगे पड़ने की अपेक्षा पीछे ही पड़ते थे। वह हजार यत्न करने पर भी अपनी शय्या तक न पहुँच सकी और लालचन्द की पड़ी हुई लाश पर ठोकर खाकर गिर पड़ी, और उसका गला पकड़ कर निश्चेष्ट और मृतवत् हो गई।

लुटेरों ने यह निश्चय किया कि सुशीला और रोहिणी जिस कमरे में हैं उसे देखना चाहिये। उनको इस बात का गुमान भी न था कि वे स्त्रियाँ वहाँ से निकल गई हैं। तुरत दो डाँकूओं ने जाते ही सरदार की स्त्री और लालचन्द को अंधेरे में दो चादर ओढ़ा दिया और उनकी छातीपर चढ़ कर उनका गला जोर से दबाया। लालचन्द पहले ही मर गया था। इससे वह कुछ हिला डोला नहीं; पर उस स्त्री ने मरते-मरते बहुत चीत्कार किया। उस चांडालिनी का प्राण-पक्षी उड़ गया। इस कार्य की समाप्ति करके अंधकार में उन डाँकुओं ने उनकी खोज करना आरंभ किया। उनके मन में यह निश्चय था कि उन दोनों स्त्रियों के आभूषण उन्हें अवश्य मिलेंगे; पर उनके हाथ में कुछ भी न आया। उन्होंने दीपक जलाया और प्रकाश होनेपर जो कुछ देखा उससे उनका होश-हवाश उड़ गया।

उनमें से एक तो मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा और दूसरा यह समाचार कहने को सरदार के पास दौड़ा। इसी बीच में सरदार की पुत्री अपनी मृत माता को देखकर दोनों अबलाओं के पास गई और यह सब समाचार कह सुनाई। उसने कहा—'तुम्हारे बदले में हमारी दुष्टामाता का वध हुआ है। उसने तुम्हारे लिये जिस कुएँ को खोदा था उसमें वह स्वयं चली गई।' रोहिणी और सुशीला ने इस विघ्न को टालनेवाले भगवान को अन्तःकरण से धन्यवाद दिया।

उधर सरदार इस विचार में बैठा हुआ था कि जिन दो अबलाओं को मारने के लिए हमने लुटेरों को भेजा है वे अब उनकी जेवरों की गठरी लेकर आ रहें होंगे; पर उनमें से एक लुटेरा की रोनी सूरत देखकर उसने समझा कि दाल में जरूर कुछ काला है।

वह डाँकू, सरदार के चरणों पर गिर पड़ा और रोते-रोते कहने लगा—'महाराज, गजब हो गया! जिस कमरे में हमने दोनों स्त्रियों को रखा था वहाँ दो आदमियों को सोते देख यह समझकर कि येही वे स्त्रियाँ हैं उनका गला दबाकर मार डाला। पर पीछे से प्रकाश में देखने

पर उनमें से एक आपकी स्त्री थी और दूसरा अपने मंडल में नया आया हुआ परदेशी जवान लालचंद दिखाई पड़ा। दोनों स्त्रियों का तहखाना या अन्य किसी स्थान में भी कुछ पता नहीं मिल रहा है।'

सरदार कुछ देर तक नीची गर्दन कर विचारता रहा और फिर हाथ में पिस्तौल लेकर उठा। उसने भूधरे के एक-एक कमरे में उन दोनों स्त्रियों को खोजा; पर व्यर्थ हुआ। अन्त में वह अपनी पुत्री के कमरे के सामने आया। उसकी पुत्री द्वार पर खड़ी थी। उससे पूछने पर उत्तर मिला कि उधर कोई नहीं आया है। पुत्री के वचनों में उसे विश्वास था इससे वह अधिक खोज न करके रजनीकान्त और उनके नौकर जिस कमरे में रखे हुए थे, गया। उस कमरे में यह उनको मार डालने के उद्देश्य से गया था; पर आश्चर्य यह कि उस कमरे में भी कोई न दिखाई पड़ा। उनको भी लुटेरा की लड़की अपने कमरे में ले गई थी और वहाँ उन लोगों का रोहिणी और सुशीला से मिलाप करा दिया था। यह अद्भुत घटना देखकर सरदार ने माथा ठोंका और कहा—'निश्चय ही अपने मण्डल में द्रोह और दगा का प्रवेश हुआ है; नहीं तो ऐसे प्रबन्ध

होने पर भी शिकार निकल जाय, और मेरी स्त्री का खून हो जाय ; यह कदापि सम्भव न था। हम इन विश्वास-घातियों को खोजकर उनकी कृतियों का बदला लेंगे'—कहते हुए वह भूधरा में से निकल ऊपर चला आया।

भगवान की लीला विचित्र होती है। इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष परिचय देखने में आया। कौन जाने कहाँ से पचीस बन्दूकधारी सिपाही डाँकू के मकान की ओर आते हुए दिखाई पड़े। मकान का दरवाजा बन्द था। उन्होंने उसको तोड़ डाला। पुलिस को भूधरा में आया देखकर डाँकू की लड़की हर्ष से चिल्ला उठी और उसने कमरे में छिपे हुए आदमियों को बाहर निकलने की आज्ञा दी। वह आनेवाले सिपाहियों मे से एक के गले लिपट गई और उससे कहने लगी—'प्यारे! तुम इतने अच्छे समय से आये हो कि तुम्हारे आने से पाँच प्राणियों की जान बच गई।'

इस बाला का सिपाहियों के नायक के साथ प्रेम-सम्बन्ध था और उसने दो दिन पूर्व ही इस मकान के सब गुप्तस्थानों का पता बता दिया था और पुलिस लाने की उसके साथ व्यवस्था कर रखी थी; परन्तु इस व्यवस्था

का लाभ डाँकुओं के हाथ में फँसे हुए उन यात्रियों को मिल गया। यह ईश्वर की लीला नहीं तो और क्या है? पुलिसवालों को आता देखकर लुटेरों में घबड़ाहट पैदा हो गई। देखते-ही-देखते सरदार दीवाल से कूदकर आत्महत्या करने की चेष्टा करने लगा। पुलिस अफसर ने पहले उसे जीता ही पकड़ने की कोशिश की; पर वह कोशिश सफल न हुई। निरुपाय होकर उसने उसपर गोली चला दी। और गोली पाँव में लगते ही वह गिरकर सिसकारने लगा। मकान की तलाशी लेने पर दस और डाँकू पकड़े गये।

पुलिस के आदमी उन डाँकुओं को धर्मशाले में ले गये। वहाँ धर्मशाला के रक्षक का पता न था। वृन्दा रोती हुई बैठी थी और उसके आदमी उसे ढाढ़स बँधा रहे थे। रोहिणी को देखकर उसका शोक आनन्द के रूप में बदल गया और उसने पुलिस को पुरस्कार देकर खुश किया।

पुलिस ने रजनीकान्त को ढाका की कोर्ट में जाने का आग्रह किया। इससे उन्हें वहाँ जाना पड़ा। जो कुछ घटना हो चुकी थी रजनीकान्त ने अदालत में कह सुनाया और यात्री होने से उनका शीघ्र छुटकारा हो गया। सरदार की पुत्री अपने प्रियतम के साथ जानेवाली थी। इससे उसके

वियोग होने से उसके गुणों को स्मरण कर सुशीला और रोहिणी रोने लगीं। सुशीला ने अपना सोने का कड़ा उसके हाथ में पहना दिया और रोहिणी ने अपनी मोहनमाला उसके गले में डाल दी।

सब लोग अपने निर्धारित स्थान पर जाने के लिए विदा हुए। बिना विघ्न के वृन्दा वगैरः जगन्नाथपुरी पहुँच गईं और एकनिष्ठा और भक्ति से जगन्नाथजी का दर्शन कर अपने नेत्र-तृप्त किये। वहाँ से चलते समय जंगल की विपत्ति का स्मरण कर उन लोगों ने रेल से ही जाने का निश्चय किया। इसके अनुसार वे लोग रेल से ही कलकत्ते आये। वहाँ आते ही अँग्रेजी, बँगाली, और हिन्दी आदि सभी पत्रों में उन डाकुओं का विवरण छपा देखा।

समाचारपत्रों में यह था:—

'जगन्नाथ जानेवाले भू-मार्ग से जगल में डाँकुओं का एक बड़ा समुदाय एक पुराने ऐतिहासिक खँडहर-से मकान में रहता था। बहुत दिनों से पुलिस उनको गिरफ्तार करने की कोशिश में थी; परन्तु चूंकि उनके गुप्तचर, पुलिस की हीलचाल उनको सूचित कर देते थे इससे वे तुरत वहाँ से दूर हट जाते थे, और पुलिस

की सारी कोशिश धूल में मिल जाती थी। परन्तु डाँकुओं के सरदार की पुत्री दयालु, परम गुणवती अंजनी अपने माता-पिता के कुत्सित कृत्यों से तथा अपने अविवाहित जीवन से इतनी तंग आ गई थी कि जिससे उसने अपने एक प्रेमी पुलिस नायक को सब सच्ची खबर छिपे तौर से दे दी, और एक निश्चित समय पर वहाँ आनेको बुलाया, और इसीसे ये सब डाँकू फँस गये। डाँकुओं का सरदार पुलिस की गोली लगने से मर गया था और अन्य डाँकू सब शेसन सुपुर्द हो गये हैं। श्रीमती अंजनी अभी पुलिस नायक के घर में है और थोड़े ही दिनों में उनका विवाह होने वाला है।'

इसके साथ ही रोहिणी इत्यादि के ऊपर आई हुई विपत्ति का विवरण भी पत्रों में था; परन्तु चूंकि इन बातों को पाठक भलीभाँति जानते हैं अतः उनकी पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। पीछे पत्रों में यह प्रकाशित हुआ—'धर्मशाला के रक्षक और भाड़े की गाड़ी पर के आदमी इन लुटेरों के साथ मिले हुए थे, और सरकार उनको गिरफ्तार करने की कोशिश में है।

कलकत्ते में रोहिणी एवं वृन्दा ने १५ दिन विताया।

इस बीच में बंबई से मोहनलाल का एक पत्र आया था। वह परीक्षा देने बंबई गया था।

एक दिन रोहिणी ने वृन्दा से कहा—'मातुश्री! यदि आप बंबई होकर हैदराबाद चलें, तो कैसा अच्छा हो। बंबई देखने की मेरी बड़ी लालसा है।'

वृन्दा ने इस बात का विचार करके जवाब देने को कहा। वृन्दा को श्री जगन्नाथ यात्रा में इतना बड़ा अनुभव प्राप्त हो गया था कि कई वर्ष पर्यन्त पाठशाला और कालेज में अभ्यास करने पर भी उतने अनुभव की छाया भी मिलनी अशक्य थी। श्रीमती सरलादेवी के आग्रह से उन्होंने आठ-दस दिन और भी कलकत्ते में बिताया। रोहिणी को सुशीला तथा रजनीकान्त ने कलकत्ता में जितने दर्शनीय पदार्थ थे सबको दिखलाया। इस बीच में रोहिणी ने दो-तीन बार वृन्दा से बंबई चलने की अपनी इच्छा प्रकट की। परन्तु वृन्दा सतत यात्रा से इतनी श्रान्त हो गई थी कि उसे स्वदेश जाने के अतिरिक्त अन्य कहीं जाने का विचार ही नहीं होता था। इससे उसने रोहिणी से कहा—'पुत्री! अतिशय प्रवास करने से और जगन्नाथ की यात्रा में अचानक विपत्ति में आ पड़ने से मेरी तबीयत शिथिल हो गई है, और अब

इससे अधिक यात्रा का परिश्रम मैं सहन नहीं कर सकती। इस समय हैदराबाद चलती हूँ और अगले साल द्वारिका यात्रा करूँगी और उधर ही से बंबई भी देखती आऊँगी।'

रोहिणी का बंबई जाने में, बम्बई नगर देखना, और साथ ही मोहनलाल से मिलना ये दो कारण थे। दूसरा कारण वह अपनी माता से कह नहीं सकती थी। इससे वह इस उत्तर से निराश हो गई। उसने मोहन को पत्र लिख कर सूचित किया—'बहुत आग्रह करने पर भी मेरी धर्ममाता बंबई आने को राजी नहीं होतीं; हम हैदराबाद जा रही हैं। आप वहीं मिलें।'

दो-तीन दिन में उनके जाने की तैयारी हो गई। वृन्दा और रोहिणी को पहुँचाने के लिये सरलादेवी, सुशीला और रजनीकान्त स्टेशन तक आए थे। स्टेशन आने पर सुशीला ने रोहिणी से कहा—'रोहिणी बहन! तुम तो माया लगा कर जा रही हो। मेरे इतने दिन का आनन्द आज शोक में परिणत हो गया है। 'घास का तापना और परदेशी की प्रीति' वास्तव में बहुत सच है। माया लगाकर वहाँ जाने पर तुम भूल जाओगी।'

'सुशीला बहन! यह संभव नहीं है कि मैं तुम्हें भूलूं

जाऊँ ? हमलोगों के ऊपर तो ऐसा प्रसंग बीत चुका है कि यदि हम एक दूसरे को भूलने का प्रयत्न भी करें, तो नहीं भूल सकतीं। कृपाकर पत्र बराबर लिखा करना; क्योंकि परदेश में पत्र ही से मिला जाता है'—रोहिणी ने उसके चरण छूते हुए कहा।

सरलादेवी और वृन्दा वेटिंगरूम में बैठी हुई बातें कर रही थीं। वृन्दा ने हृदय के सत्यभाव से कहा—'श्रीमती आपने हमारा इतना आदर-सत्कार किया है कि हमलोग आपके उपकार को कभी भूल नहीं सकतीं। मेरी प्रार्थना है कि आप एकबार मुझ गरीब के गाँव पर पधारें और हमारी पर्णकुटी को पवित्र करें। यदि आप यह प्रार्थना स्वीकार करें तो हम अत्यन्त आभारी हों।'

'कुछ दिनों के बाद रजनी और सुशीला बंबई जाने वाले हैं और उस समय मेरा भी बम्बई जाने का विचार है। यदि बन पड़ा, तो हैदराबाद होकर करांची जाऊँगी और आपका आदरातिथ्य भी स्वीकार कर लूगी।' सरला ने अनुमोदन किया।

वहीं से आलमचन्द को मुगलसराय में मिलने के लिए तार दे दिया गया। गाड़ी छूटने में पाँच मिनट बाकी थे।

प्रवासी जाकर सेकंड क्लास में बैठ गये। गाड़ी चली। और वे लोग सुखपूर्वक मुगलसराय पहुँच गये। वहाँ दीवान आलमचन्द और यशोदाबाई उनके स्वागत के लिए पहले ही से तैयार थे। वृन्दा ने उनसे अपनी जगन्नाथ-यात्रा के सङ्कट का उल्लेख किया। आलमचन्द ने काशी में रहने का बड़ा आग्रह किया, पर वृन्दा ने अनेक कारण दिखाकर जाना अस्वीकार किया। विदा होकर वृन्दा और रोहिणी अपनी यात्रा में आगे बढ़ीं।

१७

मनुष्य-स्वभाव का यह एक साधारण नियम है कि स्वदेश से तबीयत ऊब जाने के कारण जब वह दूसरे स्थान में जाता है अथवा किसी प्रयोजन से जब उसे बाहर जाना पड़ता है, तब कुछ समय के पश्चात् उसके मन में स्वदेश के प्रति आकर्षण होने लगता है। और जब स्वदेश जाने का अवसर आता है तब वह पहुँचने के लिए अधीर-सा हो जाता है। वृन्दा की भी यही अवस्था थी। हैदराबाद का बार-बार स्मरण होने से रोहिणी भी बम्बई की बात भूल गई। ज्यों-ज्यों ट्रेन आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों इन यात्रियों की उत्कण्ठा और आतुरता बढ़ती जाती थी। जब ट्रेन

रेवड़ी स्टेशन पर पहुँची तो एक अद्भुत दृश्य वृन्दा के देखने में आया। प्लेटफार्म पर एक चौकी के ऊपर रेशमी गद्दी पर महात्मा गोपालदास बैठा था और उसकी बगल में श्रीमती दयामयी बैठी थी। एक स्त्री महात्मा को पंखा झल रही थी। बहुत से भक्त स्त्री-पुरुष उनको घेरकर चारों ओर बैठे हुए थे। महात्मा ने जल माँगा। चाँदी के लोटे में जल लेकर सेवक ने महात्मा का हाथ धुलाया। धीरे-धीरे अपने आसन से उठकर महात्मा गाड़ी की ओर चला। श्रीमती दयामयी उसके पीछे-पीछे चली। एक सेवक ने चौकी पर से गद्दी उठाकर वृन्दा के डब्बे से लगे हुए सेकण्डक्लास के डब्बे में बिछा दिया। महात्मा उसपर जाकर बैठ गया। श्रीमती दयामयी और दो-तीन स्त्रियाँ भी वहीं बैठ रहीं। ट्रेन चलने लगी। इस डब्बे के दो भाग थे और दोनों के मध्य से आने-जाने का मार्ग था। महात्मा दरवाजा बन्द करना भूल गया। इससे वृन्दा को उनकी बात-चीत सुनने तथा इनकी चर्य्या अवलोकन करने का अच्छा प्रसङ्ग मिल गया। रात हो जाने से महात्मा ने वृन्दा को नहीं देखा।

'महासाध्वी श्रीमती दयामयी! गत दिवस रेवड़ी में

श्रीचक्र के अवसर पर सब सामान अद्वितीय था। यहाँ के शाक्तगुरु बहुत उदार और धर्मानुरागी दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं का संग्रह किया था। विलायती शराब का एक-एक बोतल पाँच-पाँच रुपये का था। मांस भी कोमल बकरे का था। स्त्रियाँ भी बहुत सुन्दरी और तरुणी थीं। मछली भी अपूर्व स्वादिष्ट थी। पञ्च मकार का स्वाद स्वर्गीय था। ऐसी उत्तम तैयारी मैंने कहीं नहीं देखी थी।' महात्मा ने कहा।

'कांचुलीय विधि के समय आपके भाग में जो स्त्री मिली, मेरे अनुमान से रम्भा के समान सुन्दरी थी। उस समय आपको स्वर्ग बहुत ही समीप दीख पड़ा होगा' —दयामयी ने कटाक्ष से कहा।

'हाँ, श्रीमती! तुम्हारे भाग में भी आया हुआ पुरुष सुन्दर और तरुण था। अतः कौन-सा आनन्द तुमको न मिला होगा।' महात्मा ने यथोचित उत्तर दिया।

'मिला अवश्य; पर आपके समान नहीं; स्त्री और पुरुष के स्वभाव में भेद भी तो है।' दयामयी ने कहा।

'यदि तुमने नहीं तो उस पुरुष ने अवश्य तुम्हारे समागम से अतिशय आनन्द-सुख लूटा होगा; क्योंकि बहु-

मूल्य आभूषण और वस्त्र के धारण करने से गतरात्रि में तुम्हारा सौन्दर्य वास्तव में अलौकिक बन गया था। उस स्वरूप में तुम्हे देखकर मैं आश्चर्य चकित हो गया था।' महात्मा ने उसकी प्रशंसा करते हुये कहा।

'और साथ ही यह भी कहो कि इसके बाद ही तुम मुझे भूल भी गये।' दयामयी ने मार्मिकता से कहा।

'दयामयी, तुम इतना व्यङ्ग क्यों करती हो? क्या तुम नहीं जानती कि अपने शाक्तविधि का प्रसङ्ग आये बिना मैं अन्य स्त्रियों को अपनी माता और भगिनी के समान मानता हूँ। तुम क्षणभर में ही क्यों मान, करने लगती हो।' यह कह महात्मा ने अपना प्रेम प्रकट करने के लिए दयामयी के गालपर एक हल्का तमाचा लगाया।

दयामयी कुछ न बोली। उसके मुखपर धिक्कार और तिरस्कार की छाया फैल गई। वृन्दा यह सब कुछ देख रही थी। वह दयामयी के मनोभाव को समझ भी रही थी।

महात्मा ने घड़ी निकाल कर देखा और दयामयी से कहा—'श्रीमती! साढ़े दस बज गये हैं और लगभग एक बजे गाड़ी हैदराबाद पहुँचेगी। तुम्हे सीधे करांची जाना है। इससे आओ, थोड़ा-सा गङ्गाजल इस अन्तिम अवसर पर पी लें।'

'जैसी आपकी इच्छा'।

महात्मा ने सन्दूक से एक बोतल और चाँदी के चार प्याले निकाल लिए। चलती गाड़ी में मदिरा का दौड़ चलने लगा। मदिरा-पात्र हाथ में लेकर महात्मा नीचे लिखा स्तोत्र कहने लगा—

दूध सुरा है दधि सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग का नाम॥
जाति सुरा विद्या सुरा, सुरा विना न जिवाय।
सुधरी, स्वतंत्रता सुरा, जगत सुरा मय भाय॥

इस प्रकार मद्य की प्रंशसा करते हुए महात्मा ने विलायती गंगाजल को अपने उदर में डाल लिया और दयामयी को प्याला थमा दिया। अन्य स्त्रियों ने भी अपनी शक्ति के अनुसार सुरादेवी का सत्कार किया।

महात्मा का यह भ्रष्ट आचरण देख कर वृन्दा के मन में इतना अधिक संताप और क्रोध हुआ कि वह महात्मा की भर्त्सना करने के लिए उद्यत हो गई थी; परन्तु एक नवीन विचार के आ जाने से उसने अपने मन को रोक लिया और आत्मगत कहने लगी—'वृन्दा! अभी तुझे परोपकार के लिए स्वयं एक नाटक खेलना है, जिसका

मुख्य पात्र यह महात्मा है। अभी अपनेको प्रकट करना अनुचित होगा। कुछ भी व्यक्त करने से सब सोची हुई युक्तियाँ धूल में मिल जायँगी।' अश्लील दृश्य से तंग आकर वृन्दा दरवाजा बंदकर अपने आसनपर आकर बैठ गई। पुनः मनोगत कहने लगी—'भारतवर्ष में एक समय घर-घर धर्म का पालन होता था। जाबालि, जैमिनि, गर्ग, पतंजलि, व्यास, शंकराचार्य और बुद्धदेव आदि धर्मोपदेशक—देशोद्धारक को जन्म देने का गौरव केवल भारतभूमि ही को प्राप्त हुआ था; परन्तु आज यह क्या विपरीत अवस्था है? जिन साधुओं और आचार्यों का अधर्मियों को धर्म-मार्ग पर ले जाने तथा अपने पवित्र आचरण के आदर्श से जगत् को पवित्र चरित्र बनाने का परमधर्म था, वे ही आचार्य जब अधर्म मार्ग में विचरण करते हैं तब भला धर्म का पतन क्यों न हो? हे कृष्ण! क्या अभी तुम्हें भारत की अवनति में कुछ न्यूनता दिखाई पड़ती है? क्या यह कम दयनीय और हीन अवस्था है। इस प्रकार विचार करते-करते वृन्दा की आँखों में आँसू आ गए। इतने ही में ट्रेन हैदराबाद स्टेशन पर आ गई। वृन्दा ने अलसाई हुई रोहिणी को जगाया।

ट्रेन खड़ी होते ही महात्मा गोपालदास झटपट उतर कर चला गया। उसे अकेले ही उतरना था और दूसरे उसके साथ कोई सामान भी न था। वृन्दा ने गोपालदास को जाते नहीं देखा। वृन्दा को ले जाने के लिए मुनीमजी तथा अन्य तीन-चार आदमी आये थे। वे लोग गाड़ी में बैठकर गिदूबंदर की ओर चले गये। श्रीमती दयामयी और अन्य स्त्रियाँ करांची की ओर गईं।

दूसरे दिन वृन्दा ने अपने सगे-सम्बन्धी और जान-पहचान वालों के यहाँ प्रसाद वगैरः तीर्थ-यात्रा के चिन्ह स्वरूप भेजवा दिया। इस अवसर पर वह महात्माजी को भी नहीं भूली। उन वस्तुओं के साथ दस रुपए भी महात्माजी के यहाँ उसने भेजवा दिए और भगवान को नैवेद्य चढ़ाने के लिए भी कहला भेजा। इससे महात्मा आनन्द से विह्वल हो उठा। उसने वृन्दा की जो निन्दा की थी, उसके लिए अपने मन में पश्चाताप करने लगा।

उस दिन से वह निन्दा के स्थान पर वृन्दा के गुणों की प्रशंसा करने लगा। दो-चार दिन के बाद वृन्दा ने तीर्थयात्रा के उपलक्ष्य में ब्राह्मण-भोजन कराया और दक्षिणा आदि देकर उनको प्रसन्न किया। महात्मा के मंदिर

में भी पचीस रुपए भिजवा दिए, इससे महात्मा के हर्ष का ठिकाना न रह गया। उसका ध्यान गिदूवंदर के सिंधु-तटस्थ भवन की ओर लग गया। एक बार अपमानित हो चुका था। अब पुनः वृन्दा के भवन में किस प्रकार जावे—इसी विचार में उसका समय बीतने लगा। वृन्दा को अपने हाथ मे लाने की युक्तियाँ वह सोचने-विचारने लगा।

एक ओर महात्मा गोपालदास वृन्दा से मिलने के लिए उत्सुक था और दूसरी ओर श्रीमती वृन्दा की महात्मा से मिलने की उत्कट अभिलाषा थी। दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए अधीर हो रहे थे। पर किस उपाय से सरलता पूर्वक मिलाप हो सकता है—इसका निश्चय दोनों में से कोई भी न कर सका। दोनों के मन में परस्पर मिलने की इतनी आतुरता बढ़ गई थी, मानों दोनों में नायक-नायिका का-सा अनुराग भाव जाग्रत हो गया हो।

महात्मा विचार करते हुये स्वगत कहने लगा—'अब मैं कैसे और किस भाव से वृन्दा के पास जाऊँ। अकेले ही जाऊँ या संकीर्तन दल के साथ जाऊँ। छिप कर जाऊँ या प्रकट रूप से जाऊँ। यदि वृन्दा के सदन में जाने से

दरवान मुझे रोके तब मैं क्या करूँगा? पहले आदमी भेजूँ; पर ऐसा विश्वासी आदमी मिल ही कहाँ सकता है। अपने पार्षद को भेजूँ या क्या करूँ?'

महात्मा जल से विलग हुई मछली की तरह तड़फड़ाने लगा। वह कहने लगा—'यकायक मेरा वहाँ जाना उचित नहीं है। संभव है, वृन्दा अपने घर से मुझे निकाल दे। आजकल मुनीमजी गाँव में नहीं है इससे वृन्दा को अपने अनुकूल करने में अधिक सुविधा है। विलम्ब करना उचित नहीं। शुभस्य शीघ्रं—चाहे जो हो, वृन्दा के सम्मुख जाना चाहिये। सुंदर सुयोग उपस्थित है। अकेला ही कल जाऊँगा। साहस के बिना कोई शुभ कार्य नहीं हो सकता। पुनः आकाश की ओर देखता हुआ वह कहने लगा—'नहीं, वहाँ अकेले जाना ठीक न होगा। वहाँ सिंधुतट पर मुझे अकेला देख कोई मार डाले, तो किसीको पता भी नहीं लग सकता। वृन्दा एक पाषाण-हृदया रमणी है। यदि ऐसा न होता तो अबतक वह मुझे कई बार बुला चुकी होती। मैंने कई बार उसके यहाँ दूध-मिठाई, पूड़ी वगैरह उत्तम-उत्तम प्रसाद खाया है। पर अब तक वह एक बार भी मेरे मंदिर में श्री मदनमूर्ति कृष्ण का दर्शन करने न

आई ! क्या सचमुच वृन्दा का हृदय इतना कठोर है ? एक कोमलाङ्गी के हृदय में विधाता ने इस प्रकार की कठोरता क्यों दी है ? पर नहीं, यह बात नहीं है। वृन्दा रमणी है। सुलभ लज्जा ने उसकी विलासिनी वाणी का द्वार बन्द कर दिया है। मदन की मार से वृन्दा का हृदय फटता रहता है पर लज्जा उसका मुख खुलने नहीं देती।

'हा कृष्ण ! तुमने जब स्त्री-शरीर की रचना की तब उनके शरीर में लज्जा का निर्माण क्यों किया ? क्या लज्जा-विहीन स्त्री उत्पन्न करने की तुम में शक्ति नहीं रही ? यदि ऐसा है तो यह कहा जा सकता है कि तुम सर्वशक्तिमान नहीं हो; बस, बात यही है। वृन्दा लज्जाशीला है। अतः अब मैं ही उसके भवन में जाऊँगा। ईश्वर की माया से महात्मा गोपालदास की विचार-धारा का आदि-अन्त न था। अन्त में उसने यह निश्चय किया—'मैं पत्र न लिखूँगा; आदमी भी न भेजूँगा और वहाँ अकेले जाऊँगा भी नहीं। संकीर्तन-मंडल को लेकर ही वहाँ जाऊँगा। श्रीमती वृन्दा के भवन के सामने ध्यानमग्न होऊँगा और मेरा वह ध्यान शीघ्र भङ्ग न होगा। उस समय मेरा प्रधान पार्षद श्रीमती वृन्दा से कहेगा—'प्रभु गोपालदास ध्यान में लीन हैं और

वे पुनः इस लोक में आवेंगे—यह भी संभव नहीं है। आपके गृह में श्री राधाकृष्ण की युगलमूर्ति के सामने महात्मा के शरीर को ले जाकर हरिनाम सुनाने की इच्छा है।' बस, इस उपाय से यदि वह मुझे अपने मकान में जाने की आज्ञा देगी तब मैं समझ जाऊँगा कि अब भी वृन्दा का मुझमें प्रेम है। एक बार उसके मकान में जाने और उसके साथ बातचीत का प्रसंग मिलते ही मैं उसको अपने अधिकार में कर सकूँगा।' यह निश्चय करने से महात्मा का हृदय कुछ शांत हो गया।

दूसरी ओर श्रीमती वृन्दा भी चिंतासागर में डूब रही थी। उसके मन में यह चिंता उत्पन्न हुई—'दीवान आलमचंद और यशोदा को मैंने आशा दिलाई है कि गोपालदास के पास से उनकी संपत्ति वापस दिला दूँगी; पर महात्मा महालोभिष्ट और दुष्ट पुरुष है। वह संसार में केवल धन ही पहचानता है। धन के लिए वह नर-हत्या करने को तैयार रहता है। इसके माता-पिता, भाई-बहन आप्त गोत्र, तथा मित्र इत्यादि सब धन के आगे तुच्छ हैं। इसका सब धर्म-कर्म लोभ के कारण है। इसकी हरि-सभा धन कमाने की एक दुकान है। श्रीकृष्ण की मूर्ति धन पैदा करने का साधन है।

इसका हरिनाम-जप धनोपार्जन का एक महामंत्र है। इस नरपिशाच के पास से दो लाख की रकम किस प्रकार निकालूँ; इसकी कोई तदबीर मेरे ध्यान में नहीं आती।' वह मनोगत कहने लगी—'क्या मैं इसको अपने रूपजाल में फँसाकर स्वार्थ नहीं सिद्ध कर सकती? रूप-रस-पान की कल्पना से वह उन्मत्त अवश्य हो जायगा; पर उसके पास से वह सब संपत्ति निकाल सकूँगी या नहीं, यह कुछ निश्चय नहीं है। यह वृन्दा अपने पास बैठा कर मधुर मुस-कान और मीठी-बातों से इस कामी और लोभी साधु को अवश्य वश कर सकती है; परन्तु संपत्ति का नाम लेने ही से वह अपना रंग बदल लेगा। जो पापी पैसे के लिए भगवान को भूल गया है उससे इतनी बड़ी संपत्ति किस प्रकार निकाल सकती हूँ। बड़ा कठिन कार्य है!'

कुछ देर वृन्दा विचार में निमग्न थी। पुनः कहने लगी—'मान लिया यह सब कुछ हो जायगा। पर सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि उसके साथ भेंट किस प्रकार होगी। तीर्थयात्रा में जाने के पूर्व उसने मुझसे मिलने का बड़ा प्रयत्न किया और कौशल-जाल फैलाया था। परन्तु मेरे तिरस्कार के आगे उसका एक भी उपाय चल नहीं सका।

इस पापी के देखने से भी मुझे घृणा होती है। इसीसे उसे घर आने से रोक दिया था। अब तो किसी प्रकार काम निकालना ही होगा। पर यह महाधूर्त है और सहज ही जाल में नहीं फँस सकता। मेरे पास आने पर हाव-भाव और नाज-नखरे से संभव है, फँस जाय। पर उसका मोह दिखाना भी मुझे अनुरक्त करने के लिए ही होगा। मुझे भ्रम में डालकर वह मेरा और मेरे गृह का कर्ताधर्ता बनने की इच्छा करता है। मेरे पास से द्रव्य लेना, मेरे वैधव्य तथा सतीत्व का नाश करना ही मेरे घर में उसके आने का मुख्य उद्देश्य है। पहले इस प्रयास मे विफल होने से निंदा करके मुझे कलंकित किया था; परन्तु आजकल मेरी प्रशंसा करता है, इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। वह मुझे मूर्ख बनाकर ठगने की इच्छा रखता है और मैं उसे ठगना चाहती हूँ। भेद केवल यह है कि मेरा हेतु स्तुत्य है और उसका निन्द्य है।'

कुछ देर निश्चेष्ट रहकर वह पुनः बोली—'यदि मैं महात्मा से कपट प्रीति करूँ और शब्दों-द्वारा उसके प्रेम के आंतरिक प्रदेश में पहुँच कर कहूँ—देवर जी! मुझे दो लाख रुपये दीजिये। तब क्या वह मेरे एक या दो बार

कहने मात्र से निकाल कर रुपये दे देगा। कदापि नहीं, इससे उसके मन में अनेक तर्क होंगे। वह सोचेगा कि वृन्दा की आय तीस-चालिस हजार वार्षिक है और उसके कोष में पुष्कल द्रव्य है तिस पर यह लक्ष्मी-पुत्री मेरे पास से इतना रुपया क्यों माँगती है। इस शका के आते ही संभव है, झगड़ा हो जाय और अप्रसन्न होकर महात्मा कहीं चला जाय; तब आलमचंद की संपत्ति पाने का कोई उपाय न रह जायगा। संभव है, वह रुपया देना भी स्वीकार कर ले, तब भी उस रुपए के लिए मुझसे दस्तावेज तो अवश्य लिखाएगा और उससे कोर्ट में जाकर मुझसे सब वसूल कर लेगा। तब इससे लाभ ही क्या होगा।'

वृन्दा कुछ देर तक अपने माथे पर हाथ रखकर सोचती रही। कुछ ठीक मार्ग न सूझ पड़ने से वह निराश होकर स्वतः कहने लगी—'इतनी खटपट करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। मैं स्त्री हूँ। मेरे जीवन का दो-तिहाई बीत चुका है। इससे मुझे इस अवस्था में यह मायाजाल फैलाना और दाँव-पेच खेलना वृथा प्रतीत होता है। मुझे इस संपत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे अपनी संपत्ति मे से दो लाख आलमचंद और यशोदा को दे देना ही ठीक होगा।'

परन्तु थोड़ी ही देर के बाद वृन्दा का यह विचार बदल गया और वह बोल उठी—'नहीं, नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। मैं आलमचन्द से प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। इससे जिस तरह हो, महात्मा के पास से मुझे उनकी संपत्ति निकालनी ही होगी। यदि मै अपनी संपत्ति में से इतने रुपए यशोदा को दे दूँ; तो मेरी बुद्धि की महत्ता ही क्या रह जायगी। स्त्री का चरित्र अगम्य होता है। यदि स्त्री होकर मैं इस पुरुष के पास से हराम की संपत्ति न निकाल लूँ; तो इस जीने की अपेक्षा मेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है। दूसरे यह साधु मेरी प्रतिष्ठा का परम शत्रु है। इस शत्रु को यदि दण्ड न दे सकूँ तो मेरे नारी-जीवन को धिक्कार है। यदि मैं इस दुष्ट, दंभी, कामी, कपट-पटु और लोभिष्ट साधु के पास से अपने हाथ आलमचन्द की सम्पत्ति को पुनः वापस न ले लूँ तो मुझे शतसः धिक्कार है। उससे एक बार मिलने की आवश्यकता है। एक बार वह हमारे घर आजाय तो सब झगड़ा मिट सकता है। उसे बुलाना ठीक नहीं है। नहीं तो वह घमंड से सातवें आसमान पर चढ़ जायगा। वह स्वयं मेरे द्वार पर आवे और अपना सिर पटके, तब ठीक है।'

श्रीमती वृन्दा की चिंता का ओर-छोर न था। वह सोचते-सोचते अचेत हो गई। अचानक वह बोल उठी—'बस, यही उपाय उचित है। सीधी उँगली घी नहीं निकलता।'

१८

महात्मा गोपालदास की हरिसभा में बाजे आदि की धूम चौकड़ी दिखाई पड़ती थी। चारों ओर यह बात फैल गई थी कि प्रभु गोपालदास के हृदय में महासंकीर्तन की अभिलाषा उत्पन्न हुई है। आसपास के गाँवों से आकर बड़े-बड़े साधु इकट्ठे होने लगे। लगभग पाँचसौ साधू इकट्ठे होकर जिस समय नाचने लगे उस समय पृथ्वी भूकम्प की तरह काँपने लगी।

महात्मा गोपालदास उत्तमोत्तम वस्त्र पहने था। भक्तों ने रेशमी वस्त्र और पुष्पमाला आदि से महात्मा के शरीर का शृङ्गार किया। श्रीमुख की शोभावृद्धि तथा स्वधर्म के चिन्हस्वरूप भक्तों की दी हुई अर्धप्रफुल्ल चंपक पुष्प की माला महात्मा के गले में हाथी के सूँड़ की तरह झूलने लगी। इस प्रकार सुसज्जित होकर महात्मा कीर्तन-मंडली के मध्य में खड़ा होकर भक्ति पूर्वक नाचने लगा। वास्तव में महात्मा एक बड़ा नृत्यक था। आज वह इतने भाव से

नृत्य कर रहा था कि पेत्तकों को गन्धर्व-कन्या की तरह प्रतीत होता था। दर्शक कह रहे थे कि महात्मा सच्चे साधु हैं; स्वर्ग से उतर आये हैं; मायावश मानव-शरीर धारण किये हैं।

इस प्रकार नाचती और गाती हुई संकीर्तन मंडली सिंधु तट पर श्रीमती वृन्दा के भवन के सामने जा पहुँची। और वहाँ भयंकर भाव से नाच और गान होने लगा। बड़े-बड़े साधु कूद-कूद कर नाच रहे थे। इससे थोड़ी ही देर में वृन्दा के दरवाजे पर की मिट्टी खुद गई। ऐसा नाच न किसी ने कभी देखा था और न सुना था। वृन्दा अटारी पर बैठी निमेषशून्य लोचन से यह सब तमाशा देख रही थी। वह मन-ही-मन कहने लगी—'यह क्या ? आज इस नृत्य और संगीत का भाव नवीन दिखाई पड़ता है। इसके समान सतेज और सरस गान पूर्व में लोक ने कभी भी न देखा होगा। पहले तो हमारे मकान के सामने कभी भी संकीर्तन नहीं हुआ था। अच्छा, इसमें महात्मा गोपालदास भी हैं! ठीक है, गोपालदास स्वार्थ के बिना कोई कार्य नहीं करता। क्या वह मुझसे मिलने के लिए आतुर हो रहा है। सम्भव है, मैं बुलाऊँ; इसी आशा से नाच रहा हो। मैं

कदापि न बुलाऊँगी; चाहे नाचते-नाचते यह मर ही क्यों न जाय। उसकी इच्छा हो तो वह स्वयं आवे। मैं उसका सत्कार करूँगी। उसने मेरा भेजा प्रसाद और दक्षिणा ले ली है। अब यहाँ आने में क्यों अचकचा रहा है। चाहे वह चला जाय, पर मैं उसे हर्गिज न बुलाऊँगी।'

वृन्दा के घर के सामने जनता की इतनी ठसाठस भीड़ हो गई थी कि उसमें गोपालदास दिखाई न पड़ता था। पर वृन्दा ने समझ लिया कि आज का प्रधान नर्तक और गायक महात्मा के अतिरिक्त और कोई न था। महात्मा की मनोहर मूर्ति देखने के लिए वृन्दा लालायित हो रही थी। वृन्दा को देखने की बात तो दूर रही, भीड़ के कारण महात्मा अटारी की ओर भी नहीं देख सकता था। अपने उद्देश्य को सफल होते न देखकर उसने प्रधान पार्षद को कुछ सङ्केत किया। प्रधान पार्षद बोला—'भक्तजनों, यहाँ से सब लोग दूर हट जाओ। प्रभु के हृदय में भक्तिभाव का अत्यन्त आवेश आया है। एकबार वह स्वयं अकेले ही नाच और गान करेंगे।' इससे सब दर्शक हट गये। मैदान साफ हो गया। गोपाल की नजर बिल्ली की तरह अटारी पर पड़ी। उसी ओर दृष्टि लगाकर वह नाचता

हुआ पीछे हटने लगा और फिर अटारी की ओर बढ़ने लगा। योगी की तरह निपुण प्रतीत होता था। वह भयङ्कर वेग से नाच रहा था और श्रीकृष्ण के नाम का उच्चारण करता हुआ गायन कर रहा था। यह सब वाह्य आडम्बर था; उसकी अन्तर्दृष्टि तो अटारी की ओर लगी थी। परन्तु वहाँ वृन्दा उसे दीख न पड़ी। कुञ्ज-वन दिखाई पड़ा पर कृष्ण कहाँ थे? पूर्णमासी की निशा का नीलनभोमण्डल तो महात्मा ने देखा; परन्तु शरच्चन्द्र न दिखाई पड़ा।

जब महात्मा अटारी की ओर बढ़ने लगा, वृन्दा वहाँ से खिसक कर परदे की आड़ में हो गई और वहीं से महात्मा की नवीन चेष्टाओं को देखने लगी। महात्मा वृन्दा को न देख सका। वृन्दा हँसकर मन-ही-मन बोली—'वाह, वाह! आज महात्मा वास्तव में दूलह बना है। वर्षा की शोभा भी कुछ कम नहीं है। अरे, यह वारबार अटारी की ओर क्यों देखता है? यह कल्पना होती है कि यदि बुलाऊँ तो घर में तुरत चला आवेगा। पर नहीं, मैं न बुलाऊँगी; देखूँ यह क्या-क्या चेष्टायें करता है।'

महात्मा नाचते-गाते शिथिल पड़ गया। जब वृन्दा के देखने की उसकी आशा लुप्त होने लगी तब वह भगवद्

ध्यान में लीन होने की कृत्रिम चेष्टा करने लगा। मार्ग के जिस भाग मे कंकड़ पत्थर न थे, भूमि समतल और कुछ रेतीली थी, उसी भाग में कृत्रिम मूर्च्छित होने की तैयारी करने लगा। थोड़ी ही देर में वह झट से मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। गिरते समय महात्मा ने अपने शरीर की पूरी सँभाल रखते हुए भूमि का आश्रय लिया था। उसकी इस चालाकी को वृन्दा बराबर समझ रही थी। उसके गिरने के कौशल को देखकर वृन्दा को कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। यह एक बहुश्रुत और अनेक गुण-शालिनी रमणी थी। वह मन-ही-मन हँस रही थी।

वृन्दा विचार करने लगी—'इतने दिन के पीछे आज अचानक मेरे घर के सामने महात्मा गोपालदास के मन में यह भगवद्भावना का आवेग क्यों हुआ? इसमें इसका कोई स्वार्थ अवश्य है। मालूम होता है कि इसकी मेरे घर में आने की प्रबल इच्छा है और इसीसे यह ढोंगी अपना सिर पटक रहा है; तो क्या ध्यान भंग होने पर इसे बुलाऊँ? नहीं, कदापि नहीं। इसे बुलाने में महा दोष है! महा पाप है।' महात्मा के ध्यान मग्न होते ही ढोल, तासे और हजारो कंठ से हरिनाम की ध्वनि होने लगी।

प्रधान पार्षद् अपने स्वामी के पास बैठ कर पंखा डुलाने लगा। महात्मा को ध्यान मुक्त होने में जितना समय लगना चाहिये था, उससे कहीं अधिक समय बीत गया और महात्मा का ध्यान न टूटा।

प्रधान पार्षद् ने सबसे कहा—'देखो, प्रभु का शरीर कितना ठंढा पड़ गया है। प्रभु का प्राण, वैकुंठधाम चला गया है। यदि समीप में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के सामने प्रभु को शीघ्र न ले जाया जायगा तो प्रभु के जीने की विशेष आशा नहीं है। इससे अब विलंब करना उचित नहीं है। प्राण के अभाव में यह निर्जीव शरीर सड़ जायगा तो प्रभु का प्राण बैकुंठ से आने पर सड़े शरीर में पुनः प्रवेश न करेगा। समीप में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के सामने प्रभु को ले चलो।'

भक्त लोगों ने श्रीमती वृन्दा की हवेली की ओर उँगली का संकेत कर एक स्वर से कहा—'इस समीप की हवेली में राधाकृष्ण की युगल मूर्ति विराजमान है!'

'हाँ, हाँ! ठीक याद दिलाया। प्रभु की चिन्ता में मैं तो इस बात को भूल ही गया था। मैं गृह स्वामिनी के पास से आज्ञा ले आता हूँ। जब तक आज्ञा मिलती है तब तक

तुम लोग प्रभु की देख-रेख करना।' यह कहकर प्रधान पार्षद् ने द्वारपाल से प्रार्थना की और गृहस्वामिनी से आज्ञा माँगी। द्वारपाल ने एक दासी-द्वारा वह सन्देश वृन्दा के पास भिजवा दिया।

यह सन्देश पाते ही श्रीमती वृन्दा ने अपनी एक सुशिक्षिता दासी द्वारा गृह-प्रवेश की आज्ञा भेज दी। भक्त लोग महात्मा के शरीर को झोली में उठाकर वृन्दा के गृह में ले गये। कुछ दिनों से महात्मा को इस घर में घूमने-फिरने का अवसर नहीं मिला था। जिस सुख के लिए महात्मा अत्यन्त आतुर और अधीर होकर सारा दिन सिंधु-तट पर चक्कर मारा करता था, वह महान् सुख आज अज्ञानावस्था या सज्ञानावस्था में यकायक मिल जाने से महात्मा को स्वर्ग प्राप्ति का सुख भास होने लगा। श्रीराधाकृष्ण की मूर्ति के समक्ष प्रभु का शरीर रखा गया और भक्त लोग विकट ध्वनि से गाने लगे।

रजनी का आगमन हो रहा था। वृन्दा ने हवेली में चारों ओर दीपक का प्रकाश करने के लिए सेवकों को आज्ञा दी। भीतर-बाहर चारों ओर दीपावली की तरह प्रकाश फैल गया। सारी हवेली ज्योतिर्मय बन गई। पश्चात्

वृन्दा अपने शृंगार कार्य में लगी। पैंतालिस वर्ष की विधवा वनिता का शृंगार करना एक आश्चर्य की बात हो सकती है। पर इसमें कुछ भेद अवश्य होगा। विधवा स्त्री कदापि किनारदार धोती नहीं पहनती। वृन्दा ने ढाका के मलमल की जरी की कोरवाली बारीक साड़ी पहन ली, और विचित्र रंग के कमखाब की तंग चोली कस लिया। साथ ही गले में प्रफुल्ल एवं अर्ध प्रफुल्ल कुसुमों की माला धारण किया। इसी प्रकार समस्त शरीर में पुष्प का शृंगार कर लिया। धीरे-धीरे विधवा वृन्दा पुष्पमयी वृन्दा बन गई। उसके बाद सुहासिनी और सुधाहासिनी सखियों ने इत्र आदि सुगंधित द्रव्य उसके शरीर पर लगा दिया। दाहने हाथ में हाथी दाँत का एक सुन्दर पंखा और बाँयें हाथ में फ्रांस की बनी हुई रमणीमोहन रूमाल लेकर वृन्दा अपने शृंगार सदन से बाहर निकली। समालोचक पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं कि यह सुगंधित द्रव्य, यह पंखा एवं रूमाल आदि विलासी वस्तुओं को आधी उम्र बीती हुई विधवा ने क्यों धारण किया? यह सब वस्तुयें श्रीराधाकृष्ण की सेवा के लिये संग्रह की गई थीं। देव-सेवा के पश्चात् भक्तों को प्रसाद मिलता है। प्रसाद पाने

के अधिकारी केवल भक्तजन ही होते हैं। इससे अधिकारिणी वृन्दा ने अपने कर्तव्य धर्म का पालन किया और हम उसे दोषभागिनी नहीं कह सकते।

दासियाँ सोलहो शृंगार से भूषित होकर हाथ में दीपक लेकर आगे-आगे चलती हुई वृन्दा को मार्ग दिखा रही थीं। दो सहेलियाँ उज्ज्वल चादर हाथ में लेकर उसके बगल से चल रहीं थी और दो उसके पीछे-पीछे जा रही थीं। प्रफुल्ल मुखचन्द्र की ज्योति से, विविधवर्ण के पुष्पदलों की आभा से एवं सुन्दर सुशोभित वस्त्रों से दीपक के प्रकाश में वृन्दा की रूप-छटा का अद्भुत रंग दिखाई पड़ता था। ऐसा भास होता था मानों रूपराशि लेकर उर्वशी अर्जुन को छलने जा रही हो।

इस समय वृन्दा की अवस्था कितनी अनुमान की जा सकती है। पैंतालिस वर्ष की उम्र सुनकर वह क्रुद्ध हो जाती है। यदि देखने की शक्ति आँखों में हो आप भली प्रकार वृन्दा के शरीर की ओर देख लें; गुलाबदल को मात करने वाले वृन्दा के दोनों गुलाबी कपोल दीपक के प्रकाश में किस प्रकार चमक रहे हैं। उसके कर्णावलम्बी नेत्र आज कैसे अनुरागपूर्ण दिखाई पड़ते हैं। कंचुकी में पुष्पमाला से

ढके हुये पीनपयोधर की शोभा मादक और मनोहारिणी जान पड़ती है और पुष्पवेणीमण्डित कृष्णा नागिनी के समान उसके केश कलाप क्या ही शोभा दिखा रहे हैं। आज जुही, चम्पा, चमेली, गुलाब की मालाओं से विभूषित वृन्दा वास्तव में पुष्पदलवासिनी पुष्प-महिषी बन गई है। उधर देखो, मदोन्मत्त गजराज की तरह झूलती हुई वृन्दा किस प्रकार धीमे पग से चल रही है। उसकी वाणी से आज अमृत बरस रहा है और उसके हास्य में सौदामिनी की चमक दृष्टिगोचर होती है। आँखें खंजन की तरह रमणीय हैं। आज वास्तव में वह तरुणी हो गई है।

'स्वामिनी नीचे आ रही हैं'—यह समाचार मिलते ही नीचे खलबली पड़ गई। साधारण दर्शक और कितने ही भक्तजन श्रीमती वृन्दा के आगमन की सूचना पाकर तुरत ही वहाँ से बाहर चले गये। केवल प्रधान पार्षद और कुछ खास भक्तलोग महात्मा गोपालदास के शरीर के पास बैठे रह गये। वृन्दा को पास आती हुई जानकर महात्मा ने अपनी श्वाँस को रोका और पुनः पहले की तरह चेतनहीन बन गया। वृन्दा गोपालदास के समीप बैठकर पंखा झलने एवं रमणीमोहन रूमाल से उसके मुखके ऊपर

का स्वेद पोंछने लगी। महात्मा का शरीर पुलकित होकर थर-थर काँपने लगा। उसकी श्वास जोर-जोर से चलने लगी। यह देखकर प्रधान पार्षद बोल उठा—'प्रभु का प्राण शरीर में पुनः सञ्चार कर रहा है।'

महात्मा गोपालदास नहीं चाहता था कि वह शीघ्र चैतन्य अवस्था में आ जाय। इससे वह अपनी श्वास पुनः अवरुद्ध करने का यत्न करने लगा। जब तक वृन्दा न आई थी तब तक वह धीरे-धीरे श्वास लेता और निकालता था। पर इस समय तो चतुरा वृन्दा सम्मुख बैठी हुई थी, और श्वास लेने से वह उसके दम्भ को जान जायगी—इस भय से उसने अपनी श्वास को एक दम रोक लिया। कुछ ही समय में इस बलात् श्वासावरोध के कारण महात्मा के शरीर में अपार कष्ट और वेदना का आघात होने लगा।

वृन्दा महात्मा के हिलने-डुलने की ओर दृष्टि रखती हुई प्रधान पार्षद से बात-चीत करने लगी। उसने पूछा—'ध्यान भंग होने के बाद महात्मा कौन-सी वस्तु का पारण करते हैं।'

'एकदम कुछ नहीं; वह अति सामान्य वस्तु है।' प्रधान पार्षद ने अस्पष्ट उत्तर दिया।

'शरीर के चैतन्य रखने के लिए तो कुछ-न-कुछ

अवश्य खाना पड़ता है। कहिये तो चीनी के शरबत का बन्दोबस्त कर रखूँ।' वृन्दा ने कहा।

'नहीं, नहीं, शरबत को तो प्रभु विलास की वस्तु मानते हैं; इसे वह स्वीकार न करेंगे।' पार्षद ने कहा।

'कहिये, मट्ठे का प्रबन्ध कर दूँ।' वृन्दा ने पुनः पूछा।

'मट्ठा खाने का यह अवसर नहीं है। थोड़ा गरमा-गरम दूध हो तो काम चल सकता है। अधिक कष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं।' पार्षद ने नम्रता से कहा।

'लली, सुनो! थोड़ा गरम दूध का बन्दोबस्त कर रखो।' वृन्दा ने अपनी मुख्य दासी से कहा।

'इस प्रकार के दूध का प्रबन्ध करना ठीक नहीं।' प्रधान पार्षद बीच ही में बोल उठा।

'कहो, किस प्रकार का दूध चाहिये। महात्मा की सेवा करने से मुझे बंचित न करो।' वृन्दा ने अनुरोध-पूर्वक प्रार्थना की।

'काली गाय के दूध के सिवा महात्मा की सेवा हो नहीं सकती; किन्तु दूध कुछ अधिक होना चाहिये। महात्माजी तो थोड़ा-सा दूध पियेंगे। पर, पाँच सेर दूध का प्रबन्ध होना चाहिये।' पार्षद ने कहा।

एक ओर यह बात-चीत चल रही थी और दूसरी ओर श्वास के अतिशय रुन्धन से महात्मा का पेट फूल रहा था। 'मैं मरा जाता हूँ अब दुःख नहीं सहा जाता'—मन में कहकर महात्मा ने वृन्दा के नाक-कान और कंधे पर अपनी श्वास का प्रवाह छोड़ना आरंभ किया।

महात्मा के मन में अभी अधिक देर तक अचेत अवस्था मे रहने की इच्छा थी, पर विवश होकर उसे सचेत होना पड़ा। वह नीचे मुँह करके उठ बैठा। उसके मुख की दुर्गन्ध से आजिज आकर वृन्दा ने नाक-भौंह सिकोड़ कर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। प्रधान पार्षद् बोल उठा—'प्रभु का प्राण पुनः घट में आ गया है। महाराज सजीव हो रहे हैं।' साथ ही वृन्दा भी बोल उठी—'अरे जल्दी तासा और ढोल बजाओ। देर क्यों करते हो। सबलोग उठ कर श्रीराधाकृष्ण के नाम का घोष करो।'

श्रीमती वृन्दा की आज्ञानुसार सबलोग गगनभेदी स्वर से राधाकृष्ण, राधाकृष्ण, उच्चारण करने लगे। भोग लगाने के लिए पाँच सेर दूध दासी ने लाकर महात्मा के आगे रख दिया। पहले तो महात्मा ने दो-चार बार—'मैं नहीं खाऊँगा; मुझसे कुछ खाया न जायगा'—इस प्रकार

कहा; पर अन्त में दूध के पात्र में मुँह लगाया। प्रधान पार्षद ने अपने हाथ में दूध का पात्र ले लिया। उसमें से आधा दूध तो महात्मा के कंठ के नीचे उतर गया। तब वह पात्र से अपना मुँह हटाने लगा। तत्काल प्रधान पार्षद ने कहा—'प्रभो, अभी आपके उदर में दूध का एक कण मात्र भी नहीं गया; थोड़ा और पी लीजिए।' भक्तजनों का अनादर न कर सकने के कारण महात्मा ने पुनः थोड़ा और दूध पिया और कहा—'अब तुम यह प्रसाद बाँट दो।'

दूध के पात्र को खूब ऊँचा उठाकर ज्योंही पार्षद उसमें अपना मुँह लगाना चाहता था, त्योंही अन्य भक्त चिल्ला उठे—'हम लोग प्रभु के भक्त हैं और प्रसाद पाने के समान अधिकारी हैं।' दूध को वृन्दा न देख सके इसलिए पार्षद ने पात्र को ऊपर उठा लिया था; परन्तु वह उसकी इस चालाकी को ताड़ गई थी।

रात में लगभग नौ बजे थे। महात्मा की आज्ञा पाकर सब भक्त लोग अपने-अपने घर चले गये। केवल प्रधान पार्षद और महात्मा तथा दो सखियों के साथ वृन्दा वहाँ रह गई थी। अब वृन्दा और महात्मा में प्रकृति और पुरुष की तरह बातचीत होने लगी।

हाथ में पंखा लेकर महात्मा को वायु डुलाती हुई वृन्दा ने मधुर स्वर से कहा—'देवरजी! आज आपको बहुत कष्ट हुआ है। ऊपर के कोठे पर खूब खुली हवा आ रही है। कहिये तो वहीं चलूँ।'

यह मधुर बात सुनकर गोपालदास की वाचाशक्ति लुप्त हो गई। इससे वह कुछ उत्तर न दे सका। उत्तर न देने का कारण था। उसे इस समय अपने शरीर का कुछ ज्ञान ही न रह गया था। सुस्वरमय कंठ से 'देवरजी' सम्बोधन को सुनकर महात्मा कितनी ही देर तक चिंतासागर में निमग्न हो गया। वह अपने मन में विचार करने लगा—'मैं कितने भ्रम में पड़ गया था। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ! इतने दिनों तक बिलकुल अन्धा बन गया था। पहले यह समझ नहीं सका कि वृन्दा के हृदय-कमल में प्रेम का इतना बड़ा प्रगाढ़ रस भरा है। मेरी धारणा सत्य थी। भय और लज्जा के कारण श्रीमती वृन्दा का मुख कमल इतने दिनों तक विकसित नहीं हुआ था। यदि यह भेद मैं पहले ही जान गया होता तो अब तक मैं वृन्दा के साथ कितनी ही बार प्रेम-सुख का अनुभव कर लिए होता। हा, अफसोस! मैं भ्रमिष्ट हो गया था। उन्माद के वश हो गया था।

अब समझ में आया है कि वृन्दा का मुझसे प्रेम है। यदि इसका मुझ में अनुराग न होता तो जब मैं ध्यानमग्न था, यह अपने हाथ से पंखा डुलाकर मुझे वायु क्यों पहुँचाती? उस समय मैं अचेत था और तिस पर वृन्दा निष्कामभाव से अपनी रेशमी रूमाल से मेरे मुख का स्वेद पोंछती थी। यदि मुझ में इसका बाह्य या कृत्रिम प्रेम होता, अथवा स्वार्थमय स्नेह होता तो मेरी अचेतनावस्था में वृन्दा कदापि मेरा पसीना न पोंछती। आश्चर्य तो यह है कि उस समय वृन्दा के पास उसकी दो सहचरियाँ भी थीं और उनके हाथ से पंखा न डुलवाकर उसने अपने कोमल हाथों को ही कष्ट दिया। क्या यह परम विशुद्ध और स्वर्गीय-प्रेम का लक्षण नहीं है?' इस प्रकार विचार करता-करता वह अगाध चिंता-सागर के तल में डूबने-उतराने लगा।

अपने प्रश्न के उत्तर में विलंब देखकर श्रीमती वृन्दा ने पुनः सुस्वर से कहा—'देवरजी! आप कुछ जवाब क्यों नहीं देते? मुझ पर अप्रसन्न तो नहीं हो गये?'

पुनः वृन्दा की वाणी को सुनकर महात्मा का कंठ रुँध गया। वह विह्वल हो तड़फड़ाने लगा और उत्तर न दे सका। कुछ ठहर कर महात्मा ने कहा—'नहीं, मैं अप्रसन्न नहीं हूँ।

प्रभु के इस असंलग्न उत्तर तथा उत्तर के अभाव को देखकर प्रधान पार्षद् ने कहा—'अहा ! महात्मा का भ्रमर मन अब भी श्रीराधाकृष्ण के पादपद्मों का मधुकर पान कर रहा है। इस तरह जब ही महात्मा की आत्मा पुनः आती है तभी प्रभु की दशा ऐसी हो जाती है। हे प्रभु ! इस दास के ऊपर कृपा करके अभी कुछ काल तक और भी इस पापी लोक में पाप का उद्धार करने के लिये निवास कीजिये। इतना शीघ्र श्रीहरि के पद-कमल में लीन न होइये।'

महात्मा की निद्रा टूटी। उसकी प्रकृति स्वस्थ हुई। 'बड़ी बहू ! तुम क्या सोचती हो। मेरा मन अभी तक मृत्युलोक में नहीं था।' महात्मा ने कहा।

'महाराज ! यदि आप इस मृत्युलोक से चले जाँयगे तो यह दास कहाँ जायगा ?' पार्षद् ने कहा।

'मेरे प्यारे देवरजी ! आप सत्य में महासाधु हैं'—वृन्दा ने कटाक्ष का प्रहार किया।

प्रेम-रस में डूब जाने से महात्मा का कंठ रुँध गया और उसके शरीर का समस्त संचित ज्ञान लुप्त होने लगा।

'महाराज का प्राण पुनः वैकुंठ में चला गया।' प्रधान पार्षद ने भय दिखाते हुए कहा।

'इनका प्राण बार-बार वैकुंठ में चला जाया करता है; इसमें आश्चर्य ही क्या है? क्या यह कोई मनुष्य हैं? इनकी गणना देव-कोटि में है। देवरजी को एक बार हरि-कीर्तन सुनाओ। कदाचित् हरिनाम सुनकर यह जग उठें।' वृन्दा ने कटाक्षमय द्व्यर्थक वाक्य का उच्चारण किया।

पार्षद, वृन्दा की आज्ञानुसार अकेला ही ढोल बजा कर भजन करने लगा। वृन्दा चुप रही। एक के बाद एक करके तीन भजन समाप्त हो गये। तब उस ढोंगी का विकार दूर हुआ। महात्मा उठकर बैठ गया। उसके शरीर में वृन्दा के साथ बातचीत करने की शक्ति का अविर्भाव हो गया।

बुद्धिमती वृन्दा मन में कहने लगी—जो हुआ सो अच्छा हुआ। उसने 'देवर' संबोधन का त्याग करके कहा—'मुझे मालूम होता है आपको अधिक कष्ट हुआ। चलिए, ऊपर की अटारी पर चलकर बैठें।'

'मुझे भला कष्ट काहे का है? मेरे हृदय और नेत्र के सम्मुख श्रीराधाकृष्ण की मूर्ति विद्यमान है। मैं बराबर उनके पदसरोज को देखा करता हूँ, और स्नेह-वश गद्‌गद् हुआ करता हूँ। मेरा आनन्द इस समय दसगुना बढ़ गया है।' महात्मा ने दंभ का आश्रय लेकर कहा।

'आप सचमुच साधु पुरुष हैं। आप, निःस्वार्थ ही भूमि-का भार उतारने को जन्म धारण किये हैं, आप मनुष्य नहीं, देवता हैं।' वृन्दा ने कहा।

'ऐसी बात मत कहो। मैं क्षुद्र व्यक्ति हूँ। ये मेरे आँख, कान, नाक, होठ, जीभ और दाँत सब अवयव वर्तमान हैं। मेरे शरीर मे रक्त, मांस, अस्थि, एवं मज्जा इत्यादि का अस्तित्व है। बड़ी बहू, मुझे देवता न कहो।' महात्मा ने निरभिमानता दिखलाई।

अचानक किसी पदार्थ के गिरने की आवाज सुनाई पड़ी। महात्मा गोपालदास ने देखा तो दोनों सखियों के हाथ से गिरे हुए चँवर की यह आवाज थी। दोनों सखियाँ दूसरी ओर मुँह करके खड़ी थीं और एक, दूसरे का मुँह देख कर हँस रही थी। वृन्दा ने उनकी ओर देख कर कहा—'भला देखो तो सही; इन निर्लज्जाओं को हँसने का रोग हो गया है। इतनी हँसी कहाँ से आ रही है'—यह कहती हुई वृन्दा स्वयं भी हँस पड़ी।

ये अभी छोटी उम्र की युवतियाँ हैं। हँसना, एवं खेलना इनका नित्य का काम है। अब तुम लोग मुझे हरि-पद-कमल का ध्यान करने दो।' महात्मा ने वृन्दा से कहा।

'तो क्या आप इस स्थान में रात्रि-वास करेंगे ?' वृन्दा ने कहा।

'हाँ, इस युगल मूर्ति के सामने पद्मासन बैठ कर मेरा जप करने का विचार है।' महात्मा ने कहा।

महात्मा के वहाँ आधीरात तक रहने की बात सुन कर वृन्दा घबड़ाई। उसने कहा—'एक पहर रात बीतने के पश्चात् मंदिर का द्वार तो बंद हो जाता है।'

'तब मैं अपने ही मंदिर में जाकर जप करूँगा।' महात्मा ने क्षीण स्वर में कहा।

'प्यारे देवर जी ! कल संध्या समय अवश्य इस दासी की पर्णकुटी पर आना। इस अबला की याद रहेगी न !' वृन्दा ने मोहास्त्र का प्रयोग किया।

'श्री राधाकृष्ण ! श्री राधाकृष्ण ! मैं तुमको भूल जाऊँगा ? अरे मन, गोविन्द कह। तुम्हारे भवन में राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति है और उनके पद पंकज में मेरा मन निरंतर निरत रहता है। यह शरीर इस स्वर्ग-सदन से दूर भले ही रहे परन्तु प्राण दूर नहीं रह सकता।' महात्मा ने चतुरता से उत्तर दिया।

महात्मा धीरे-धीरे उठकर वहां से चला गया। थोड़ी

ही देर में वह लौट आया और बोला—'बड़ी बहू ! एक खास बात पूछना मैं भूल गया। तुम्हारे दीवानजी का क्या समाचार है ? क्या वह बीमार हैं ?'

'देवरजी ! इस बात में एक बड़ा भेद छिपा है और खास कर इसी बात को कहने के लिए मैं आपको कल संध्या समय आने का आग्रह कर रही हूँ। इस विषय पर मैं कल आप से बातचीत करूँगी।' वृन्दा ने बला टालने की कोशिश की।

'कल सूर्यास्त होते ही मैं यहाँ आऊँगा'—कहकर महात्मा वायु-वेग से चला गया।

वृन्दा अटारी पर गई और सिंधु के जलकल-पूर्ण सुख समीरण के आनन्द का उपभोग लेती हुई सितार के स्वर के साथ अपने स्वर को मिलाकर संगीत गाने लगी—

कहाँ लौं राखें हिय मन धीर !

सुनहु मधुप अपने इन नयनन अनदेखे बलवीर।
घर आँगन न सुहात रैन दिन बिसरे भोजन नीर ॥
दहत देह चन्दन इन्धन है अरु वह मलय समीर।
पुनि-पुनि उहै सुरति आवति, चित चितवत यमुना तीर ॥
सूरदास कैसे विसरत है, सुन्दर श्याम शरीर।

इतने ही समय में रोहिणी वहाँ भोजन करके आ पहुँची। सन्ध्याकाल से अबतक महात्मा की अगम्य लीला का अवलोकन कर रही थी। आते ही उसने वृन्दा से पूछा—'माताजी ! यह विलक्षण साधु कौन है ?'

'इसे हैदराबाद के लोग महात्मा गोपालदास के नाम से पुकारते हैं। यह बड़ा महात्मा है। इच्छा होते ही यह जीते ही जी वैकुण्ठधाम को चला जाता है।' वृन्दा ने गम्भीर मुख से विनोदात्मक एवं कटाक्षमय उत्तर दिया।

'मातु श्री ! मुझे इसका सारा कार्य विलक्षण दिखता है। न जाने किस कारण—मेरे मन में इसके विषय में तिरस्कार उत्पन्न होता है। इसकी लम्बी टीका और मधुरी वाणी से तो मुझे यह कहावत—'ठाठ तिलक अरु मधुरी बानी, दगाबाज़ की यही निशानी—' याद आती है तुम्हारा विचार जैसा हो; यह मैंने अपना विचार प्रकट किया है। इसके विपरीत यदि बाह्य दिखावट की तरह इसका अन्तःकरण भी पवित्र हो तो यह दूसरी बात है। पर मेरे मन में यह बात बैठती नहीं।' रोहिणी ने अपना अभिप्राय निष्कपटता से प्रकट किया।

'अहा ! हा !! हा !!! निःसर्ग का कितना अद्भुत और अगम्य

प्रभाव होता है। पापी अपने पापी हृदय को वाह्य धार्मिकता के वस्त्र से ढाँकने का प्रयत्न करता है पर पाप छिपाये नहीं छिपता। रोहिणी! यह अभिप्राय या भाव तुम्हारे हृदय में ईश्वर की प्रेरणा से ही प्रकट हुआ है। यह महात्मा साधु नहीं, किन्तु शैतान है; जब हम लोग काशी में थे तो बहन यशोदा एक साधू के विषय में बात करती थी; वह तुम्हें स्मरण है या नहीं।' वृन्दा ने पूछा।

'नहीं, मैं उस समय वहाँ न थी; परन्तु एक बार तुम्हारी उनकी बातचीत में इस साधु का नाम सुना था।' रोहिणी ने कहा।

'अच्छा, तुम इस बात को नहीं जानती तो तुम्हें उसके जानने की कोई आवश्यकता भी नहीं है।' वृन्दा ने बात को दबाने की चेष्टा करते हुए कहा।

'यह तो ठीक है। पर मातुश्री! जब आप इस साधु को शैतान कहती हैं और इसके सब दुष्कर्मों को जानती हैं तब आप इसे अपने घर में आने और धूमचौकड़ी मचाने क्यों देती हैं।' रोहिणी ने उचित शंका की।

'पुत्री! इसमें एक भेद है। जब तुम यह भेद जान जाओगी तब तुम स्वयं यह कहोगी कि जो इस प्रकार

न किया जाता तो परमार्थ सिद्धि के लिए अन्य कोई उपाय ही नहीं था। तुम इस समय एक पत्र आलमचन्द के नाम लिख दो। उसमें उनको स्त्री सहित एक मास में हैदराबाद आने को लिख दो और मेरा प्रणाम भी लिख देना। जा, यह काम करके सो जा।' वृन्दा ने कहा।

माता की आज्ञानुसार रोहिणी वहाँ से उठकर अपने कमरे में गई और दीवान आलमचंद के नाम से एक पत्र लिखा; इस पत्र के लिखने के पश्चात् उसने मोहनलाल को भी एक पत्र लिखा।

वृन्दा ने अटारी पर एक-दो गीत गाकर वैधव्य-वह्नि से जलते हुए हृदय को शांत करने की चेष्टा की। अन्त में संगीत से तंग आकर सितार को एक कोने में रख वह अपने शयन-गृह में जाकर शय्या पर लेट गई; परन्तु उसकी आँखों में नींद न आई—कल निश्चित समय पर महात्मा आवेगा तो उसे अपने ऊपर अनुरक्त करने के लिए मैं क्या-क्या प्रयत्न करूँगी। मैंने जो जाल इसके लिये बिछाया है उसमें किस प्रकार इसे फँसाकर दुर्दशा करूँ—इन्हीं सब विचारों में रात्रि का सब समय बीत गया।

सुबह नित्य की तरह वृन्दा को जगी न देखकर एक

दासी ने उसे जगाया। उसने देखा तो घड़ी में सात बजे थे। दासी ने कहा—'एक युवक आपसे मिलने आया है।'

'उसे बाहर वाले बड़े कमरे में बैठा'—वृन्दा ने कहा।

१९

लगभग एक घंटे में स्नान, ध्यान आदि नित्य कर्म से निवृत्त होकर वृन्दा श्वेत वस्त्र पहनकर नीचे मिलने को गई। वहाँ उसे सादे वस्त्रों से भूषित एक सुंदर तरुण कोच के ऊपर बैठा हुआ दिखाई पड़ा। इस तरुण को देखते ही वह किसी विगत बात की याद करने लगी। तरुण को उसने कहीं देखा है—ऐसा उसे भास होता था; परन्तु कहाँ और किस प्रसंग पर देखा है यह उसे याद न पड़ता था। इससे वह विचार में पड़ गई। कुछ स्मरण आजाने से उसके मुख पर हर्ष की छटा दिखाई पड़ने लगी। उसने उस तरुण से विवेक एवं नम्रता से पूछा—'भाई! मुझसे मिलने को तुम ही आये हो?'

'क्या श्रीमती वृन्दा आप ही हैं?' तरुण ने पूछा।

'हाँ।' वृन्दा ने कहा।

तरुण ने उठकर उसको प्रणाम किया। वृन्दा ने उसे कुर्सी पर बैठाते हुए पूछा—'तुम कहाँ से आते हो?'

'हैदराबाद से।' तरुण ने कहा।

'मेरी धारणा के अनुसार तुम हैदराबाद के निवासी और आमिल जाति के नर-रत्न हो। सत्य है न?'

'हाँ, श्रीमती का अनुमान सत्य है।' तरुण ने कहा।

'तुम्हारा नाम मोहनलाल है?' श्रीमती ने धीमे स्वर से पूछा।

'जी हाँ; पर मेरा नाम आपको कहाँ और किस प्रकार ज्ञात हुआ; इसकी कल्पना भी मैं नहीं कर सकता; जहाँ तक मुझे याद है आज से पूर्व कभी भी आपसे मिलने का मुझे अवसर नहीं प्राप्त हुआ था।' तरुण ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

यह तरुण पाठकों का सुपरिचित रोहिणी का भावी रमण मोहनलाल है।

'हम एक दूसरे से पूर्व न कभी मिले थे और न देखे थे, यह तुम्हारा कहना सत्य है; किन्तु मैंने तुम्हारा फोटो देखा है और उसीके आधार पर पहचानने में मुझे सफलता मिली है।' वृन्दा ने गंभीरता से उत्तर दिया।

फोटो का नाम सुनते ही मोहनलाल ने शर्म से मुँह नीचा कर लिया। जिस समय रोहिणी बनारस में थी उस समय के भेजे हुए अपने फोटो की स्मृति उसे हो आई।

उस प्रसंग से वृन्दा अवश्य रोहिणी के साथ, मेरे प्रेम-सम्बन्ध की बात जान गई होगीं; यह कल्पना मन में उठते ही वह लज्जित हो गया। ऐसे प्रसंग पर लज्जा का आना स्वाभाविक ही था।

'मोहनलाल! तुम्हारी लज्जा का कारण मैं जान गई हूँ; पर इसमें शरमाने की कोई बात नहीं है। कारण यह कि अब तक तुमने किसी प्रकार धर्म का उल्लंघन नहीं किया है—यह बात भी मेरे जानने से बाहर नहीं है। योग्य अवस्था में स्त्री-पुरुष का परस्पर स्नेह संबंध होता देखा जाता है, यह प्रकृति का नियम है। इसी नियम के अनुसार तुम प्रेम मार्ग में दौड़ रहे हो। इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है। विधि पूर्वक विवाह होने के पूर्व अयोग्य बर्ताव न करना धर्म है और इस धर्म का तुमने यथार्थ पालन किया है। अतः यह स्तुत्य है।' वृन्दा ने अनुकूल बात कहकर मोहनलाल को निर्भय और संकोचरहित करने का प्रयत्न किया।

'आप स्त्री होकर भी इतने उदात्त और उदार स्वभाव की हैं, यह मैं नहीं जानता था और इसीसे मेरे मन में अनेक प्रकार के भय और सशय उत्पन्न होते थे। आपकी बातों को सुनकर अब वे निर्मूल हो गये हैं। मुझे विश्वास

होता है कि हमारी आशा सफल होगी।' मोहनलाल ने वृन्दा के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए कहा।

वृन्दा और मोहनलाल के बीच यह बात चल ही रही थी कि इतने में रोहिणी उस बैठक के दरवाजे तक आई; परन्तु अचानक मोहनलाल के ऊपर दृष्टि पड़ते ही वह वहीं पर ठमक गई। मोहन की नजर दरवाजे के प्रतिकूल थी। इससे उसकी दृष्टि रोहिणी पर न पड़ सकी। हिन्दू कुमारियों का यह स्वभाव होता है कि अपने माता या भाई-बहन के देखते हुए वे अपने प्रिय सखा के साथ दृष्टि-मिलन या बातचीत बहुधा नहीं करतीं। रोहिणी अबतक कुमारी थी। इससे माता के सम्मुख मोहन के समीप जाने के लिए उसे साहस न हुआ। स्त्री-स्वभाव के अनुसार अपनी आकांक्षा को न दबा सकने के कारण वह वहीं एक ओर गुपचुप खड़ी होकर अपनी माता और मोहनलाल की बात सुनने लगी। रोहिणी की यह सब क्रिया एक सेकंड में हो गई।

'मोहनलाल! तुम विद्वान और विचारशील युवक हो; अतः संसार का यह नियम अवश्य जानते होगे कि शुभ कार्य में सहस्र विघ्न आ उपस्थित होते हैं। इससे तुम्हारी शुभाशा निर्विघ्न संपूर्ण और फलीभूत होगी या नहीं, यह

मैं निश्चय पूर्वक नहीं कह सकती।' वृन्दा ने कुछ संदिग्ध और नैराश्यपूर्ण उत्तर दिया।

यह सुनकर मोहनलाल के मुखपर नैराश्य का रंग स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। तथापि अपनी निराशा को दबाकर वह गंभीरता से बोला—'श्रीमती! इस कार्य में कौन-कौन-से विघ्नों के आने की संभावना है; यह कृपाकर मुझे बतला दें; यदि भावी विघ्नों का मुझे ज्ञान हो जाय तो सम्भव है कि यथाशक्ति मैं उनके प्रतीकार का प्रयत्न कर सकूँ।'

'ये विघ्न इस प्रकार के हैं कि पूर्व से उनका प्रतीकार करना व्यर्थ है। जब समुचित अवसर आवेगा तो एक क्षणमात्र में ही उनका प्रतीकार हो सकता है और हम सबकी इच्छा पूर्ण हो सकती है।' वृन्दा ने कहा।

'क्या उन विघ्नों के नाम बताने मे आपको कुछ बाधा है!' मोहनलाल ने आतुरता से पूछा।

'बाधा तो कोई नहीं है; परन्तु उनके बतला देने से तुम्हारे हृदय में निराशा का आघात लगेगा और यदि उससे कोई विपरीत परिणाम हो तो मेरी रोहिणी का जीवन विषमय हो सकता है। इसीसे मैं उन भेदों को प्रकट नहीं करना चाहती।' वृन्दा ने योग्य कारण बतलाया।

'रोहिणी इस समय यहाँ नहीं है और मैं इस भेद को उससे न खोलने का आपको वचन देता हूँ। यदि मेरी बातों पर आपको विश्वास हो तो अपने मन के भेद की बातें मुझे बताने की कृपा करें।' मोहनलाल ने विनीत भाव से प्रार्थना की।

'यदि तुम्हारा ऐसा आग्रह है तो मैं तुम्हारी इच्छा का अनादर नहीं करना चाहती; पर रोहिणी से इस बात के न कहने की अपनी प्रतिज्ञा को भूल न जाना। सुनो, मैं धनाढ्य हूँ और अपने प्रबल दुर्भाग्य के कारण विधवा हूँ। कुछ दुष्टों ने मेरे धन को पाने की लालसा से मुझसे अनुचित प्रेम संबंध करने का प्रयत्न किया था और जब उनकी यह दुष्ट वासना पूरी न हुई और मैं अपने धर्म में स्थिर रहकर पतिव्रत से विचलित न हुई, तब समाज और जाति में सभ्य गिने जानेवाले उन्हीं दुष्टों ने अनेक प्रकार से मेरी निंदा करके और मिथ्या एवं कल्पित अपराधों का आरोप करके मुझे जाति से वहिष्कृत कर दिया है। अतः एक जाति बहिष्कृत विधवा की पुत्री के साथ तुम विवाह कर सकोगे या नहीं, यह सबसे पहला विघ्न है।' वृन्दा ने निराशाजनक एक दीर्घ निःश्वास लेकर अपनी कथा कह सुनाई।

'यह संसार इतना विलक्षण है कि वह सत्य को मिथ्या

और मिथ्या को सत्य मान लेता है; परन्तु यदि हम संसार के महापुरुषों और जगद्वन्द्य स्त्रियों के विषय में विचार करें तो यह दिखाई पड़ता है कि उनमें से सच्चे व्यक्ति भी सुख करते हुए दुःख में पड़े और भविष्य में बहुत बड़े ज्ञानी बन गये। संपत्ति खोजते समय उन्होंने विपत्ति में ही सन्मार्ग ढूढ़ लिया था, और स्तुति से नहीं वरन् उनकी निन्दा के ही कारण उनके नाम का अधिक विस्तार हुआ। इससे लोकनिन्दा से निराश होकर स्वयं अपने को तुच्छ मानने का कोई कारण नहीं है। जब सती सीता के विषय में जनता कुशंका लाने से नहीं चूकी तब हम सदृश साधारण मनुष्यों की कौन बात है। अस्तु, मेरे पिता अपनी जाति के अग्रसर हैं और इससे उनके द्वारा प्रयत्न करके जाति के झगड़े का किसी तरह अन्त कर सकूँगा। पर यदि यह विघ्न टल जाय, तब पुनः कोई दूसरा विघ्न तो न उपस्थित होगा।' मोहनलाल ने आशापूर्ण हृदय से प्रश्न किया।

'दूसरा विघ्न इससे अधिक प्रबल है। जिस रोहिणी से तुम्हारा स्नेह लगा है और जिसके प्रेमोपभोग के लिए तुम इतने अधिक आतुर होकर अधीर बन रहे हो; वह मेरी अपनी लड़की नहीं है; किन्तु मेरी पालिता पुत्री है। इतना

मैं जानती हूँ कि यह लड़की अपनी जाति की है। परन्तु इसके माता-पिता के नाम और इसके कुल की प्रतिष्ठा आदि से मैं अज्ञात हूँ। जब तक यह छिपा भेद न खुल जाय तब तक इसका विवाह किस प्रकार हो सकता है, यह तुम स्वयं विचार सकते हो। पहले ही से मेरे नाम के विरुद्ध जाति में आग सुलग रही है और उसमें यह कार्य करने पर जब दुष्ट जन यह आक्षेप करेंगे कि रोहिणी हमारी जाति की कन्या नहीं है तब इसे सिद्ध करने के लिए अपने पास कोई प्रमाण नहीं है। जबतक अपने हाथ में इस बात का प्रमाण न आ जावे; तब तक इसका विवाह किसी प्रकार भी संभव नहीं है। इससे जाति-बंधन टूट जायगा। मैं अपनी जाति में विक्षोभ नहीं उत्पन्न करना चाहती। इसमें तुम्हारा अपना विचार क्या है? वह मुझे बतला दो। तुम सुशील और विचारशील पुरुष हो; अतः इस प्रकार का साहस करना उचित न समझोगे। प्रत्येक कार्य को भलीभाँति विचार कर करने ही में मान और प्रतिष्ठा है। विवाह-बंधन तो जीवन पर्यंत का संबंध है।' वृन्दा ने दीर्घदर्शी की तरह भावी संकट को दिखाया।

वास्तव में यह एक विकट प्रश्न था। इसे सुनकर

मोहनलाल गंभीर विचार में पड़ गया। कुछ देर चुप रह कर कहने लगा—'मेरे निज का अभिप्राय तो यह है कि चाहे जिस कुल की हो, पर यदि स्त्री रत्नरूप हो तो पुरुष को उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि स्त्री सुशीला, सती, सच्चरित्रा हो तो वह अकुलीन हो ही नहीं सकती। यदि मैं स्वतंत्र होता तो आपके बताये हुए इस विघ्न की चिन्ता न करता। पर मेरे माता-पिता पुराने विचार के हैं। इससे वे लोग यह विवाह स्वीकार न करें, यह स्वाभाविक है। साथ ही मैं अपने माता-पिता के मन को दुखाकर स्वतंत्रता से विवाह कर लूँ; यह भी उचित नहीं है। अतः रोहिणी के कुल एवं माता-पिता का नाम व पता मिले बिना काम नहीं चल सकता। श्रीमती ! यह मैं निश्चय पूर्वक आपसे कह देना चाहता हूँ कि यदि रोहिणी के कुल इत्यादि का पता मिल जायगा और इसके साथ मेरा संबंध होगा तब तो ठीक है; अन्यथा मैं किसी अन्य स्त्री के साथ विवाह कर संसार-बंधन में न पड़ूँगा।'

'इस निश्चय के लिए मैं तुमको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और मेरा यह आशीर्वाद है कि भगवान तुम्हें सफल और यशस्वी करें।' वृन्दा ने कहा।

दरवाजे के पास बाहर-भाग में खड़ी हुई रोहिणी के हृदय में मोहनलाल के प्रथम निर्णय को सुनकर कुछ निराशा का आघात हुआ था पर अन्य स्त्री के साथ विवाह न करने की उसकी प्रतिज्ञा को सुनकर पुनः उसका हृदय-कमल आशा-किरणों के स्पर्श से प्रफुल्ल हो उठा। मन-ही-मन वह मोहनलाल की प्रशंसा करने लगी। मोहनलाल के साथ बातचीत करने की उसकी इच्छा हुई; परन्तु भीतर जाने का कोई व्याज उसे सुझाई न पड़ता था। अन्त में वह कमरे में जाकर वृन्दा से बोली—'मातुश्री! आज आप चाय पीने ऊपर क्यों न आईं। चाय तो ठंढी पड़ गई होगी।'

'पुत्री! जा, चाय यहीं ले आ। तेरा सखा मोहनलाल आया है। इसके लिए भी लेती आना।' वृन्दा ने कहा।

इसपर रोहिणी ने ऐसा भाव दिखाया मानों उसने अब तक मोहनलाल को देखा ही न था। वह लजाती हुई मोहन-लाल से पूछने लगी—'बंबई से कब आये। मैंने आपके पास भेजने के लिए कल रात में एक पत्र लिखा था और आज डॉक में छोड़ने वाली थी। आपने अपने आने की कोई सूचना भी न दी और ऐसे ही चले आये।'

'परीक्षा समाप्त होने पर दो हफ्ते तक बंबई में रहने का मेरा विचार था। पर वहाँ बरसात बहुत अधिक गिर रही थी और मेरी प्रकृति भी कुछ अस्वस्थ थी—इससे बिना कुछ सूचना दिये ही चला आया।' मोहनलाल ने कहा।

'आपको यहाँ आये कितने दिन हुए?' रोहिणी ने पूछा।

'कल शाम को हैदराबाद आया हूँ।' मोहन ने उत्तर दिया।

'परीक्षा में सफलता की आशा तो अवश्य होगी।'

'परीक्षा का परिणाम आने ही वाला है। मैंने प्रश्न पत्र तो यथोचित रूप से किये हैं। उत्तीर्ण होने की पूरी-पूरी आशा है। पर सब कुछ भगवान के हाथ है।' मोहन ने नम्रता से कहा।

'अच्छा, आप बैठें; तब तक मैं चाय ले आती हूँ'—कह कर रोहिणी शीघ्रता से चली गई।

अनुरागवती स्त्रियों के मन में अपने हाथ से बनाये हुए पदार्थों को अपने प्रियतम को खिलाने में कितना हर्ष होता है इसकी कल्पना स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। पुरुष इसकी कल्पना कदापि नहीं कर सकते। उनमें यह कल्पना शक्ति होती ही नहीं। रोहिणी शीघ्र ही चाय को गरम कर केटली, चाँदी का प्याला और पूरी का डब्बा और चाँदी

की दो छोटी-छोटी थालियाँ एक दासी से लिवाकर नीचे के कमरे में गई। माता और मोहन की थाली में पूरी रख कर एवं प्याले में चाय भरकर वह चुपचाप वहीं खड़ी हो गई।

'तू भी बैठ जा।' वृन्दा ने रोहिणी से चाय पीने को कहा।

'तुम्हें यदि किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी तो कौन लावेगा। मैं चाय बाद में पी लूँगी।' रोहिणी ने कहा।

वृन्दा स्त्री थी। वह रोहिणी का भाव समझ गई, और फिर आग्रह नहीं किया। मोहनलाल को अपनी प्रेयसी की दी हुई चाय में, अमृत का स्वाद मिला।

मैंने चाय में बहुत थोड़ी चीनी मिलाई है; यदि आपको अधिक मीठा रुचता हो तो चीनी लाऊँ।' रोहिणी ने कहा।

'नहीं, चाय में इतना ही मीठा यथेष्ट है। तुम्हारी पूरी का स्वाद तो बहुत अच्छा है।' मोहनलाल ने उत्तर दिया।

'मेरी रोहिणी रसोई बनाने में बड़ी कुशल है। इसके बनाये हुये दो-चार खास पदार्थ खा लो तो प्रसन्न हो जाओ। रोहिणी! आज तू रसोई बनाना। मोहनलाल भोजन करेगा।' वृन्दा ने साधारण बातचीत में भोजन करने का आग्रह किया।

'आज क्षमा करें। घर पर कहा नहीं है। इससे मेरी इन्तजार में माँ वैठी रहेगीं। फिर कभी भोजन कर लूँगा।' मोहनलाल ने कहा।

दोनों ओर से अपनी प्रशंसा सुनकर मुग्धा रोहिणी शर्मा गई। मोहनलाल ने वृन्दा को लक्ष्य कर कहा—'मैं आज से अपनी भावी सुखाशा की प्रतिष्ठा आरंभ करता हूँ और आपसे वारवार मिलता रहूँगा। आज मैं जाने की आज्ञा चाहता हूँ।'

'अवश्य आना, इस घर को अपना ही समझना।' विवेकपूर्वक वृन्दा ने कहा।

मोहनलाल रोहिणी को प्रेमदृष्टि से देखता हुआ चला गया। उसके जाने के वाद वृन्दा ने रोहिणी से कहा—'पुत्री! पति तो तूने अमूल्य हीरा की तरह खोज लिया है; जो तेरे भाग्य से सब विघ्न टल जायँ और तू इस पति को पा जाय तो तेरी तरह भाग्यशालिनी कोई भी न होगी।'

'यदि माता का आशीर्वाद है तो पुत्री अवश्य भाग्यशालिनी होगी।' रोहिणी ने नीचे मुँहकर संक्षेप में उत्तर दिया।

वृन्दा उठकर चली गई, और रोहिणी भावी सुख के विचार में मग्न होकर वहीं वैठी रही।

२०

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार संध्या समय महात्मा गोपालदास हरिनाम का जप करता हुआ श्रीमती वृन्दा के महालय में अटारी के एक उच्चासन पर बैठ गया। इस समय उसके मुख पर उदासीनता छाई हुई थी। मुख की कान्ति मलिन हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी बड़ी आपदा में पड़ गया हो। नीचे मुख करके वह भजन करने लगा। वृन्दा महात्मा के मलिन मुख को देख कर विचार करने लगी—आज यह नया ढंग कैसा है! मन में हँसती हुई उसने महात्मा से पूछा—'देवरजी! आज आप इतने उदास क्यों दिखाई पड़ते हैं?'

महात्मा ने भजन गाते हुए गंभीर भाव से उत्तर दिया—'बड़ी बहू! आज यहाँ आते समय मार्ग में एक बहुत दुखद समाचार सुनने में आया है, जिससे चित्त इतना दुःखी और व्याकुल हो गया है कि कुछ कहा ही नहीं जाता।'

'देवरजी! वह कौन सा समाचार है; बताओ तो सही।' वृन्दा ने सहानुभूति दिखाते हुए पूछा।

'वह समाचार कहने योग्य नहीं है। उसका स्मरण होने से मेरा हृदय फटा जाता है। आह! वह एक महापुरुष-

श्लोक और प्रातःस्मरणीय पुरुष था। अब ऐसा महापुरुष इस पापी संसार में जन्म नहीं लेगा।' यह कहकर महात्मा हरिनाम जपता हुआ चादर से मुँह ढक कर रोने लगा।

'प्यारे देवरजी! आपको इस प्रकार रोते देखकर मुझे भी रुलाई आती है; जो बात हो उसे भेद न रखकर झटपट प्रकट कर दो।' वृन्दा ने शोकपूर्ण हृदय से आग्रह किया।

'प्यारी बहू! इस महादुःख की बात मैं किस प्रकार तुम्हें सुनाऊँ। हा राधारमण! क्या तूने बड़ी बहू को समाचार सुनाने के लिए मुझे ही दूत-रूप से भेजा है? हा! यशोदानंदन! क्या मेरे भाग्य में आज यही लिखा था! क्या इस शोक समाचार का विष श्रीमती के कान में मुझे ही छोड़ना पड़ेगा।' इस प्रकार कहकर महात्मा पुनः वस्त्र से मुँह ढककर सिसक सिसक रोने लगा।

'देवरजी! आप इस तरह शाकातुर न हों। आपको चिंतित देखकर मेरा प्राण व्याकुल हो रहा है। यदि आप वह समाचार मुझे शीघ्र न सुना देंगे तो मैं समझूँगी कि आप मुझसे भेद-भाव रखते हैं। इतना अधिक मत रोओ। शांत हो जाओ; मनुष्य को तो सदा जीवन भर रोना ही है।' वृन्दा ने हाव-भाव एवं कटाक्ष से कहा।

'बड़ी बहू ! क्या कहूँ ? आज यहाँ आते समय मार्ग में सुना है कि तुम्हारे मुनीमजी इस संसार को त्याग कर परलोकवासी हो गये हैं ।' यह शब्द उच्चारण करते ही हा ! हा ! करता, महात्मा वृन्दा की जाँघ पर गिर पड़ा, और तुरत ही मूर्छित-सा हो गया । बुद्धिमती वृन्दा ने मन में विकट रूप से हँसकर—'हाय हाय ! यह क्या हो गया ?' कहती हुई महात्मा के मस्तक को उठाकर अपनी जाँघ पर रख लिया ।

मूर्छा में पड़ा हुआ महात्मा स्वगत कहने लगा—'इस अवस्था में मुझे अद्वितीय और स्वर्गीय सुख मिलता है । इसकी मुझे स्वप्न में भी कल्पना न थी । मुझे अपनी बुद्धि-मत्ता पर अहंकार था । पर, वह गर्व मिथ्या था । श्रीमती वृन्दा का मुझपर इतना स्नेह है और वह मेरे साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध रखने की इच्छा करती है—यह रहस्य आजतक मैं समझ न सका था । मैं कितना बड़ा मूर्ख हूँ ।'

वृन्दा-द्वारा कुछ देर तक पंखा डुलाये जाने एवं मुख पर जल छिड़कने के पश्चात् महात्मा की मूर्च्छा भंग हुई । होश में आ और जीभ निकालकर कुछ लज्जित-सा होकर महात्मा ने वृन्दा की जाँघ पर से अपना सिर खींच लिया और चिहुँक कर बोला—'हैं ! यह क्या ? तुम इतना कष्ट

क्यों कर रही हो बड़ी बहू ? मुझे अब इस संसार में अधिक रहने की लालसा नहीं है। श्रीराधाकृष्ण के पद-पंकज में मन को स्थिर कर मरने में ही मेरा कल्याण है।'

'देवरजी! यह तुम क्या कहते हो ? ऐसी अशुभ बात न कहो। अब केवल आप ही हमारे संरक्षक हैं।' वृन्दा ने आँसू गिराते हुए बड़ी मोहकता के साथ कहा।

यह 'संरक्षक' शब्द गोपालदास के कानों द्वारा हृदय में उतर कर अमृत की वर्षा करने लगा। उसने कहा—'जबसे मैंने मुनीमजी के मरने का समाचार सुना है तबसे मैं अपने को भूल गया हूँ। मुनीमजी एक बड़े सज्जन पुरुष थे। उनका इस प्रकार स्वर्गवास हो जायगा; यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। सब भगवान की लीला है। हे राधा-वल्लभ! मुझ पापी को शीघ्र अपने चरणों में बुलालो।' इस अवसर पर मुनीमजी के अनेक गुणों को सुनाकर और उनके सम्बन्ध की अनेक बातें कहकर महात्मा बड़े जोर से रोने लगा। इस प्रसंग पर वृन्दा भी साँस तोड़-तोड़ कर रोने लगी। कुछ देर के बाद दोनों का रोना पीटना बंद हुआ।

'बड़ी बहू! यह दुर्घटना कब और किस प्रकार हुई ?' महात्मा ने आँखों से आँसू पोछते हुए पूछा।

'यह शोक समाचार मिले आज तीन दिन हुए। इसे सुनकर मेरे हृदय में ऐसा आघात लगा कि मैं एक दिन भी अब इस पापी संसार में रहना नहीं चाहती।' वृन्दा ने रोते हुए कहा।

'ऐसा करना उचित नहीं है। तुमने श्रीराधाकृष्ण की युगलमूर्ति स्थापित की है। तुम उनकी सेवा में अपना जीवन लगा दो। अच्छा, बड़ी बहू, मुनीमजी ने किस स्थान में इस नश्वर शरीर का त्याग किया।' महात्मा ने आश्वासन देते हुए पूछा।

'वृन्दावन धाम में।' वृन्दा ने कहा।

'यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?' महात्मा ने पूछा।

'मैं यात्रा में थी। उसी समय मुनीमजी की बीमारी का तार वहाँ गया था, और इसीसे बंबई जाने का विचार त्याग कर मैं यहाँ चली आई, और स्वास्थ-सुधार के लिए मैंने उनको तीर्थ मे जाने की सलाह दी। मेरी बात मान कर वह वृन्दावन चले गये, और वहीं तीन-चार दिन के बाद उनका शरीरान्त हुआ। मुनीमजी को भयंकर उदर रोग था और उसीने अंत में उनका प्राण ले लिया।' यह वृत्तान्त कहकर वृन्दा रोने लगी।

'क्या इनके मरने का समाचार रजिष्ट्री-पत्र से आया था ?' महात्मा ने पूछा ।

'नही, साधारण लिफाफे में था ।' वृन्दा ने उत्तर दिया ।

'वह पत्र किसके हाथ का लिखा था । किसी परिचित आदमी ने लिखा था या अनजान ने भेजा था ।' महात्मा ने उलट-पलट कर अनेक प्रश्न किए ।

'मुनीमजी के साथ जो आदमी गये थे। उन्हीं में से एक ने भेजा है । पत्र अरबी-सिंधी लिपि में लिखा था और मैं लिखनेवाले के अक्षर को भलीभांति पहचानती हूँ । अभी मैं लाकर उस पत्र को दिखाती हूँ ।' यह कहकर वृन्दा दूसरे कमरे में चली गई और हीरे जड़े हाथी दाँत के एक डब्बे को उठा लाई । उसमें से एक पत्र निकाल कर महात्मा के हाथ में रख दिया । महात्मा ने पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ा । लिफाफे के ऊपर का पता और उस पर की हुई वृन्दा की मुहर की परीक्षा करके कहा—'हाँ, ठीक है, अहा हा ! हे मधुसूदन !'

'देखो, देवरजी ! अब इस संसार में रहने की बिलकुल मेरी इच्छा नही है । पहले मैं यहाँ से सब तीर्थों में जाऊँगी, और अन्त में सदा के लिए वृन्दावन धाम में

निवास करूँगी। यहाँ पर राधाकृष्ण की सेवा है, इसे आप जानें; अब भाई, सारा भार आपके सिर पर आ पड़ा है।' वृन्दा ने अपनी वैराग्य वृत्ति को प्रकट किया।

'बड़ी-बहू! इतना अधिक दुःख न करो। शांत हो जाओ। एकदम इतना आतुर होना अच्छा नहीं है।' महात्मा ने आश्वासन दिया।

'नहीं, देवरजी! अब इस संसार में मेरा मन एक पल मात्र भी नहीं लगता। यही परामर्श करने के लिये मैंने इतने आग्रह व अनुरोध से बुलाया है। क्या आप मेरी प्रार्थना स्वीकार न करेंगे?' वृन्दा ने आश्चर्य दिखाते हुए पूछा।

'मैं तुम्हारी प्रार्थना का अनादर करूँ! 'न भूतो न भविष्यति'—ऐसा न कभी हुआ है और न भविष्य में होने की सम्भावना है। बड़ी बहू! बताओ, तुम इस समय मुझसे कौन-सा काम कराना चाहती हो। मैं अपने प्राणों का बलिदान करके भी तुम्हारा कल्याण कर सकता हूँ।' महात्मा ने उदारता दिखाने में कुछ कमी न होने दी।

'मेरी जागीर, जमींदारी, तथा अन्य संपत्ति की व्यवस्था का भार आप अपने ऊपर ले लें।' वृन्दा ने कहा।

'देखो, बड़ी बहू! मैं अब सांसारिक प्रपंचों में नहीं

पड़ना चाहता। अब मेरा जितना आयुष्य अवशेष है उतने दिन केवल हरिनाम-कीर्तन में बिताने का मेरा संकल्प है।' महात्मा ने निस्पृहता दिखाते हुए कहा।

कुछ देर चुप रहकर निःश्वास लेती हुई वृन्दा कहने लगी—'हाय! मेरा कोई न रहा! अब मेरी क्या दशा होगी। आपके अतिरिक्त मेरा कोई निस्पृह और सच्चा हितैषी पुरुष दिखाई नहीं पड़ता। कार्य-कुशल होने के साथ ही आपकी तरह धार्मिक एवं सत्यावलंबी पुरुष इस देश में दूसरा एक भी मिल नहीं सकता। मेरी इच्छा है कि अपनी सब सम्पत्ति और जागीर श्रीराधाकृष्ण को समर्पित कर आपके नाम चढ़ा दूँ, और आप मेरे मंदिर के स्वामी की तरह रहें। मेरे निर्वाह के लिए आप महीने में केवल एक सौ रुपये भेजते रहें। इतना ही पर्याप्त होगा। इससे मेरा जीवन आनंद और सुख से बीत जायगा।' वृन्दा ने महात्मा को भावी-सुख-विलास का प्रलोभन दिखाया।

'केवल सौ रुपये ही क्यों? तुम्हारी इच्छा हो तो पाँच सौ रुपए लेती रहना।' यहाँ महात्मा अति उदार बन गया।

'नही, नहीं, इतने अधिक रुपए की मुझे आवश्यकता

नहीं है; तीर्थयात्रा और जीवन-निर्वाह के लिए एक सौ रुपए पर्याप्त हैं।' वृन्दा ने सन्तोष प्रकट किया।

'सब मिलाकर तुम्हारी आय कितनी है?' महात्मा ने उत्सुकता से पूछा।

'कम-से-कम पचास हजार वार्षिक की आय तो होगी ही।' वृन्दा ने कहा।

'कोष में भी कुछ नकद रुपए अवश्य होंगे'।

'देवरजी! भला, मैं आपसे कुछ छिपा सकती हूँ। मेरी तिजोरी में लगभग साढ़े तीन लाख रुपए नकद हैं और दो लाख के जवाहरात होंगे। मकान तथा वस्त्रादि इनके अतिरिक्त हैं। यह सब आपको दे देने की मेरी प्रबल अभिलाषा है।' वृन्दा ने कहा।

'बड़ी बहू! मुझे लोभ मत दिखाओ। मैं रुपए का स्पर्श भी नहीं करता और उसे आँख से देखता भी नहीं। पार्थिव विषय के साथ मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है।' महात्मा ने निस्पृहता दिखाते हुए कानों को उँगली से बन्द कर लिया।

'तब संसार-बन्धन से छूटने का मेरे लिए उपाय ही क्या है?' वृन्दा ने दुःखपूर्ण एवं कारुणिक शब्दों में कहा।

'अभी इतनी आतुरता से वृन्दावन जाने की क्या आव-

श्यकता है? अभी तुम्हारी अवस्था कुछ विशेष अधिक नहीं हो गई है। कुछ दिन यहीं रहो और श्रीकृष्ण की सेवा करो। हरिप्रेम सीखो। रास पंचाध्यायी सुनो; तन, मन, धन से भलीभाँति वैष्णवों की सेवा करो; हरिनाम का जपकरो; इससे इसी स्थान में तुम्हारी मुक्ति हो जायगी। वैष्णव पुरुष मात्र श्रीकृष्ण हैं और वैष्णव स्त्री मात्र सभी गोपी हैं— यह भावना अपने हृदय में धारण करो। यदि तुम्हारे मन में प्रीति हो तो वैष्णवों के लिए सारी पृथ्वी ही वृन्दावन है। इसके पश्चात् यदि विशिष्ट वृन्दावन नगर में जाने की तुम्हारी इच्छा होवे तो वैसा ही करना।' महात्मा ने वैष्णव तत्त्व का गूढ़ विवेचन किया।

इसके उत्तर में चतुरा वृन्दा मनमोहक हावभाव और मदन विलासिनी चेष्टाएँ करके बोली—'देवरजी! अब विशिष्ट वृन्दावन के अतिरिक्त अन्य स्थान में रहने के लिए मेरा मन स्वीकार नहीं करता। इसीसे सब सम्पत्ति त्याग कर वृन्दावन निवास के लिए मैं जाने को तैयार हूँ। अब मैं वृन्दावन निवास की आशा किस प्रकार त्याग सकती हूँ। कृपाकर आप हमारे इस पुण्य कार्य में बाधा न डालिए। वृन्दावन जाने की व्यवस्था मैंने कर ली है।

आप हमारी संपत्ति का भार अपने ऊपर ले लें; बस, हमारी सब चिन्ताएँ मिट जायँ।'

'मैं सदा सम्पत्ति से अलिप्त और विरक्त रहता हूँ; पर हाँ, मैं एक दूसरा उपयुक्त और विश्वसनीय आदमी इस कार्य के लिए निर्वाचित करूँगा जिसे तुम अपनी संपत्ति की व्यवस्था सौंप देना।' गोपालदास ने नम्र शब्दों में संपत्ति से अपनी अलिप्तता का भाव व्यक्त किया।

'मैं आपसे यह पहले ही कह चुकी हूँ कि यदि कोई योग्य व्यक्ति इस कार्य के लिए मिल जाय तभी काम चल सकता है। पर, देवरजी! आपकी तरह धार्मिक और भक्त शिरोमणि किसी दूसरे पुरुष का इस पृथ्वी पर मिलना असंभव है। मेरा विश्वास केवल आप ही में है।' वृन्दा ने हाथ जोड़कर अनुनय किया।

'हे हरि! रक्षा करो। बड़ी बहू! मैं एक अधम कीट, पापी पतिज्ञा हूँ। तुम मेरी इतनी प्रशंसा न करो।' महात्मा ने कहा।

'मैं निरुपाय हूँ। आपके विना मेरी कोई गति नहीं है।' वृन्दा ने कहा।

'मैं केवल हरिनाम का जप जानता हूँ। इसके अति-

रिक्त और कुछ नहीं जानता। इसलिए इतनी बड़ी संम्पत्ति का भार कैसे सँभाल सकता हूँ। साथ ही रुपया को न देखने और न स्पर्श करने की मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है। अतः मैं निरुपाय और विवश हूँ।'

'देवरजी! आपको इसमें स्वयं कुछ परिश्रम नहीं करना है। मैं सब संपत्ति आपके नाम कोर्ट में रजिस्ट्री करा दूँगी और साढ़े तीन लाख नकद रुपए भी आपके नाम जमा कर दूँगी। यदि आप रुपया स्पर्श नहीं करते तो अपने किसी विश्वसनीय आदमी को कोष की चाभी दे देना; और किसी योग्य आदमी को रखकर अपना प्रबन्ध करना। देखो, देवरजी! मैंने दस्तावेज लिखा कर रख छोड़ा है। केवल उसपर आपका नाम लिखना बाकी है। बताओ, अब आप मुझे मारोगे या जिलाओगे।' वृन्दा ने अपना अन्तिम बाण चलाया।

'हैं, हैं, यह क्या कहती हो? वह दस्तावेज कहाँ है? हे हरि! मेरा संसार बेड़ा पार करो।' महात्मा आनन्द से गद्गद होकर दस्तावेज देखने की अपनी उत्सुकता को न रोक सका।

वृन्दा ने हाथी दाँत की पेटी में से दस्तावेज निकालकर

महात्मा के हाथ पर रख दिया। उसे देखकर महात्मा चमक उठा। उसकी छाती फूल उठी और अपनेको इतनी बड़ी संपत्ति का स्वामी होते देखकर हर्ष से इतना विह्वल हो गया कि उसके मुख से एक शब्द भी न निकला। थोड़ी देर के बाद चित्त को स्वस्थ कर वह बोला—'बड़ी बहू ! तुम मुझे नरक में ढकेल रही हो। ऐसा मत करो; मुझे क्षमा करो।'

'देवरजी ! यदि तुम अब आना-कानी करोगे तो तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध है। तुम्हें मेरी प्रार्थना मान्य करनी पड़ेगी। मैं तुम्हें सहज में यों ही छोड़नेवाली नहीं हूँ।' वृन्दा ने कटाक्ष करते हुए कहा।

'बहुत अच्छा, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर सारा भार मैं अपने सिर पर लेता हूँ। पर, यह सब काम मुझे नौकर रखकर चलाना पड़ेगा। इससे यदि किसी प्रकार की हानि होगी तब मैं उसका उत्तरदायी न होऊँगा।'

'क्या आपको मेरे व्यवहार में अविश्वास है। मैं स्पष्ट शब्दों में लिख दूँगी कि आप हानि के उत्तरदाता नहीं होंगे। मेरी मृत्यु के बाद सब संपत्ति आप ही की होगी। इससे लाभ या हानि का प्रश्न नहीं रह जाता।' वृन्दा ने हँसकर कहा।

'छि. छिः यह संपत्ति-मेरी होगी। बड़ी बहू ! यह तुम क्या कहती हो ? तुम नहीं जानती कि मैं धन-संपत्ति को तुच्छ समझता हूँ।' यह कहते समय महात्मा की जीभ लोभ से चटचटाने लगी।

'अरे मैं भूल गई। एक बात तुमको ध्यान में रखना होगा। मेरी दो तरुण सखियाँ हैं। उन दोनों के सँभालने का भार तुम्हारे सिर पर पड़ेगा है।' वृन्दा ने कामुक महात्मा को एक नवीन प्रलोभन दिया।

'यह क्या ? यह तो एक सहज एवं सरल कार्य है। उनको मैं वैष्णव-प्रेम का पाठ पढ़ाऊँगा, और वैष्णवों की सेवा करने का मार्ग सिखाऊँगा।' महात्माने कहा।

'मेरी एक पालिता तरुण पुत्री है।'

'उसको भी वैष्णव-धर्म की दीक्षा देकर वैष्णव-सेविका बनाऊँगा।'

'मेरी एक पालतू बिल्ली है।'

'उसके लिए कौन-सी चिन्ता है। बिल्ली को निरामिष-भोजी बनाकर सदा अपने पास रखूँगा। श्रीकृष्ण का पवित्र नाम कानों में पड़ते ही वह मुक्त हो जायगी।'

'मेरा एक और अनुरोध है। बीच-बीच में वृन्दावन

आकर तुम्हें मुझे दर्शन देना होगा। साधु-दर्शन मुझे बहुत प्रिय है। इससे तुमको वर्ष में पाँच-छः बार वृन्दावन आना पड़ेगा। वृन्दा निरंतर साधु-दर्शन की भूखी है।'

'मेरी भी इच्छा है; वृन्दावन में बिहार करने की किस की इच्छा नहीं है।'

वृन्दावन में आपसे मैं प्रेमशास्त्र का अभ्यास करने-वाली हूँ। यह मैंने निश्चित कर लिया है।'

वृन्दा की इस अन्तिम बात से महात्मा का शरीर रोमांचित हो उठा। वह भग्नस्वर से कहने लगा—'सब राधारमण की इच्छा है। हे दीनबन्धु! अब तुम मुझे वृन्दावन ले चलो।' यह कहकर वृन्दा के मन की परीक्षा करने के उद्देश्य से उसने कहा—'बड़ी बहू! मैं आज जाना चाहता हूँ। कल पुनः आ जाऊँगा।'

'परंतु मेरा आपसे एक और अनुरोध है। आज आप रात यहीं व्यतीत करें। श्रीराधाकृष्ण के भोग की सब सामग्री तैयार है। कल प्रातःकाल दस्तावेज की रजिष्ट्री कराना निश्चित है। करांची से वाधूमल वकील और हाईकोर्ट के रजिष्ट्रार कल प्रातःकाल यहीं आवेंगे, और दस्तावेज को तीन दिन में लिख डालेंगे। कृपा कर आप यहीं विश्राम करें।'

'ना, ना, आज क्षमा करो। कल प्रातः मैं आ जाऊँगा।'

'यह क्यों? क्या आज की रात यहाँ रहने से आपकी पत्नी नाराज होंगी, या आपके प्रेम-रस में कमी पड़ेगी।'

यह सुनकर महात्मा का शरीर पुलकित हो उठा। वह स्वगत कहने लगा—'वृन्दा आसक्त हो गई है। अवश्य अनुरक्त हो गई है।' पश्चात् वृन्दा को उद्देश्य कर कहा—'अच्छा, बड़ी बहू! तुम्हारी इच्छानुसार मैं रात को यहीं निवास करूँगा। हरिप्रेम-प्रसंग में अंधकारमयी निशाकाल बिता दूँगा।'

षोड़शोपचार से महात्मा ने भोजन किया। इसके बाद बाहर की बैठक में उसके शयन की व्यवस्था की गई। वृन्दा ऊपर के कमरे में सांकल लगाकर सो गई।

रात में महात्मा को नींद न आई। वह तड़फड़ाने लगा। इतने विशाल भवन में रात्रि के गंभीर समय में थोड़ी भी आवाज सुनने पर महात्मा को वृन्दा के आने का भास होता था। बिल्लियों की खड़खड़ाहट को सुनकर महात्मा वृन्दा के पग-सञ्चालन की ध्वनि समझता था। वह अपने मन मे कहता—'बस, वृन्दा के पाँव की चाप सुनाई पड़ती है। मालूम होता है कि अब वह यहीं आ रही है।'

इस प्रकार आशा और निराशा के युद्ध में कुछ समय बीत जाने के बाद महात्मा पुनः स्वगत कहने लगा—'आज वृन्दा ने मुझे अपने यहाँ क्यों बुलाया है ? यदि इसका मुझमें प्रेम न होता तो काहे को बुलाती ! अच्छा, मान लिया कि इसका मेरे प्रति प्रेम है तो यह क्या ? प्रेम का जो मूल लक्षण है वह कहाँ दिखाई पड़ता है ! पर, उसका प्रेम है अवश्य। यदि ऐसा न होता तो यह पचास हजार वार्षिक आय की जागीर, साढ़े तीन लाख रुपए नकद और दूसरी वस्तुएँ मुझे देने को क्यों तैयार होती ? हे जीव ! जो समझ ; दस्तावेज में किसी प्रकार की गलती न रहने पावे—इसीसे करांची से वकील और रजिष्ट्रार को बुलाने का इसने पहले ही से प्रबन्ध कर रखा है। वृन्दा मुझपर कितनी मोहित हो गई है। वृन्दावन-वासिनी होने पर वह मुझे किसी प्रकार छोड़ ही नहीं सकती।'

इन कल्पित विचारों से—मनोराज्य की आशा से आनंदित होकर रात्रि के गंभीर समय में अकेला महात्मा पुलकित होकर स्मित हास्य करने लगा। भावी ऐश्वर्य की कल्पना कर वह मन-ही-मन मनमोदक खाने लगा—'दस्तावेज लिख जाने के दूसरे दिन से मैं इस जागीर का प्रबन्ध

करना आरंभ करूँगा। सुना है, कितने ही गाँवों में चार आने बीघे जमीन काश्त करने को दी गई है, उसे मैं एक रुपया बीघा पर दूँगा। ऐसा करने से वार्षिक आय एक लाख के लगभग हो जायगी। नकद साढ़े तीन लाख को छूने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। ऋण के नाम पर मैं किसीको एक कौड़ी भी न दूँगा। इस नकद रुपए का सरकारी प्रामिसरी नोट खरीद कर सुरक्षित कर लूँगा। इसी प्रकार मनोराज्य की कल्पना करते-करते महात्मा निद्रा की गोद में जा पड़ा।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रभात में जल्दी उठकर भजन गाते-गाते महात्मा सिंधु-स्नान करने के लिए चला। उसने किसी नौकर से कुछ कहा न था; किन्तु दो नौकर—तेल, तौलिया, धोती और गोपी चंदन इत्यादि लेकर उसके साथ जाने को तैयार हो गये। यह देखकर महात्मा आश्चर्य में पड़ गया और उनसे पूछा—'तुम लोग मेरे साथ क्यों आ रहे हो?'

दोनों नौकरों ने जवाब दिया—'हम आपके सेवक हैं। आप हमारे माँ-बाप हैं।'

यह बातचीत चल रही थी कि इतने ही में सफेद

दाढ़ीवाला लंबा बुड्ढा द्वारपाल वहाँ दौड़ता आया और महात्मा के चरणों में दंड-प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा—'कृपानाथ! मेरी रक्षा करो। मुझे शरण में रख लो।'

'मेरे पाँव को छोड़ दो और बताओ क्या हुआ है?' महात्मा ने विशेष आश्चर्य से पूछा।

'कृपानाथ! यदि आप हमारे घोरतम अपराध को क्षमा न करेंगे तो हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे। करुणेश! क्षमा करो। इस दासानुदास के अपराध को मन से निकाल दो।' बुड्ढे ने कहा।

यह वृद्ध पुरुष वृन्दा का द्वारपाल था; परन्तु अब सब नौकरों का सरदार बनाया गया था। कुछ महीने पहले इसी द्वारपाल ने महात्मा को वृन्दा की हवेली में जाने से रोका था और बोलने से भी मना किया था। उसने सुना है कि महात्मा अबसे इस घर के कर्ता-धर्ता हो गये हैं। इस कारण यदि महात्मा के राज्यकाल में अपनी नौकरी कायम रहे, उसने महात्मा के चरणों में अपने मस्तक को रख दिया।

महात्मा यकायक गम्भीर विचार में पड़ गया। वह मन में सोचने लगा—'यह क्या? अभी तो दस्तावेज

रजिष्ट्री भी नहीं हुआ। दस्तावेज पर अभी वृन्दा का हस्ताक्षर भी नहीं हुआ है। वृन्दा ने अभी यह सारी सम्पत्ति मुझे सौंपी भी नहीं और इस संपत्ति की व्यवस्था का भार मैंने अपने सिर पर लिया भी नहीं है; तिस पर भी ये नौकर-चाकर अभीसे मेरे हुक्म के गुलाम बन गये हैं। सेवकों की तरह काम कर रहे हैं और बिना कहे मेरी इच्छा को जानने की चेष्टा कर रहे हैं। इससे साफ प्रकट होता है—'अबसे मेरे देवरजी, इस मकान के अकेले मालिक हैं और मैं वृन्दावन-वास करनेवाली हूँ'—इस प्रकार वृन्दा ने रात में अपने सब नौकरों को कह दिया है। इस तरह के तर्क-तरङ्ग को छोड़, दृढ़ भावना कर महा गम्भीर-भाव से महात्मा ने उस वृद्ध द्वारपाल को उद्देश्य कर कहा—'कोई चिंता नहीं। मेरे पाँव को छोड़ दो और उठकर बैठ जाओ। मुझसे किसी प्रकार की हानि की आशङ्का न करो। तुम्हारे अपराध को मैं अन्तःकरण से क्षमा करता हूँ।'

द्वारपाल ने महात्मा का चरण छोड़ दिया और महात्मा को दीर्घजीवी होने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करने लगा।

गम्भीर भाव से महात्मा सिंधुस्नान करने के लिए चला और वह बुड्ढा द्वारपाल उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

महात्मा ने देखा कि द्वारपाल पीछे-पीछे आ रहा है उसने कहा—'मेरे साथ आने की कोई आवश्यकता नहीं है, जाओ और द्वार पर बैठकर रक्षा करो।'

'जैसी आपकी आज्ञा। आप अकेले सिन्धु स्नान करने जाते थे। इससे मैं आपके अंगरक्षक की तरह पीछे-पीछे आ रहा था।' द्वारपाल ने अपने आने का कारण बतलाया।

'मेरे अंगरक्षक और प्राणरक्षक—सर्वव्यापक, निराकार, निरंजन, भगवान श्रीकृष्ण हैं। मेरी रक्षा का विचार छोड़ कर तुम हवेली की रक्षा में अपना मन लगाओ। एक साधारण वस्तु भी घरमें से न जाने पावे, और चोरी चकारी न होने पावे; इसका बराबर ध्यान रखना।' महात्मा ने आज्ञा देते हुए कहा।

'जैसी कृपानाथ की आज्ञा'—कह द्वारपाल ने एक लंबा सलाम करके अपना रास्ता लिया।

महात्मा गोपालदास सिंधु-तट पर पहुँच गया। वह जल में उतरता जाता था और मुँह से हरि-हरि, गंगा-गंगा, और यमुना-यमुना कह रहा था, एवं सिन्धु के बालू को अपने कपाल और छाती के ऊपर मसल रहा था, इतने में

हीरा मालिन हाथ में फूलों की डाली लेकर वहाँ आई और महात्मा के चरणों में मस्तक नवाकर उसने प्रणाम किया।

'तुम कौन हो ?' महात्मा ने पूछा।

'मैं श्रीमती वृन्दा की मालिन हूँ।'

'अहा हा ! तुम्हारा फूल कितना सुन्दर और सुगन्धित है। वास्तव में यह फूल श्रीराधाकृष्ण की सेवा के योग्य है। क्या फूल मुझे दोगी ? मेरे मन्दिर में आकर पैसे ले जाना।' महात्मा ने कहा।

'महाराज ! आप यह क्या बात करते हैं। यह फूल स्वामिनी का था। अब यह फूल आपका है। यह पुष्पमाला भी आपकी है; डाली भी आपकी है, जिस वृक्ष में यह फूल लगा था, वह वृक्ष भी आपका है। फूल का बगीचा भी आपका ही है और मैं स्वयं भी आपकी हूँ। मैं आप-ही के अन्न से पोषित हूँ।' वाचाल मालिन ने महात्मा के हृदय को गद्गद करने के लिए यह सब कहा।

'श्रीमती वृन्दा के घर में तू कितने दिन से फूल देती है।' महात्मा ने पूछा।

'मेरे दादा कहते थे कि हमारी सात पीढ़ी से इस मकान में फूल दिया जाता है। मैं छोटी थी, तभी से अपने

दादा के साथ श्रीमती को पुष्प देने आती थी। उसके पश्चात् मैं अपने बाप के साथ आती थी ; और उनके स्वर्ग-वासी होने के बादसे मैं कितने ही वर्षों से स्वयं अकेली फूल देने आती हूँ ; परन्तु अब मेरी उम्र अधिक हो गई है और शरीर में निर्बलता बढ़ गई है; इसीसे अब प्रति-दिन फूल ले आने में असमर्थ हूँ। अब बहुधा हमारी पुत्री फूल देने को आवेगी। अभी वह बच्ची है। दूध का दाँत भी नहीं टूटा है और गली-कूचों में जाने से घबड़ाती है। अभी इसी महीने में सत्रहवाँ वर्ष लगा है। इससे कभी-कभी मैं उसके साथ आ जाती हूँ।' मालिन ने एक बात के उत्तर में सत्तर बातें सुना दीं।

'क्या आज भी तुम्हारी लड़की तुम्हारे साथ आई है? इतनी अधिक अवस्था हो जाने पर तू इतना कष्ट क्यों उठाती है? यह तो तरुण छोकड़ियों से भी काम चल सकता है, समझी।' महात्मा ने रस लेते हुए ब्रह्मगीत सुनाया।

'अरे, बाप रे बाप! भला मैं ऐसा कर सकती हूँ! आज आप हमारे राजा हैं। यदि हमारी लड़की आती और कुछ अटपट कह देती तो इससे हमारी जीविका ही चली जाती। मेरी लड़की बड़ी शर्मालू है। किसीके साथ

बातचीत करने में लजाती है।' मालिन, बेटी की प्रशंसा करने लगी।

'लज्जा स्त्रियों का परम भूषण है। अहा हा! तुम्हारी पुत्री को मैं हरिकथा सिखाऊँगा। हरिप्रेम का पाठ बताऊँगा और दोनों का रस चखाऊँगा। तुम अपनी तरुण छोकरी को मेरे पास अवश्य भेजना।'

'लड़की का सारा भार अब मैं आपके ऊपर छोड़ती हूँ। आप हमारे स्वामी हैं। आप हमारे महाराजाधिराज हैं। आप हमारी लड़की को जो कुछ सिखावें और पढ़ावेंगे वह बहुत खुशी से सीखेगी और पढ़ेगी। अब मुझे कितने दिन जीना ही है। मरते समय उस लड़की को आपके हाथ में सौंप जाने का मेरा विचार है।' चालाक मालिन ने चपलता पूर्वक उत्तर दिया।

'यह गजरा किसके हाथ का बना हुआ है? गजरा गजब का सुन्दर है!' महात्मा ने कहा।

'आजकल मै स्वयं कुछ कामकाज नहीं करती; वही मेरी लड़की करती है। पुष्प रचना की कला में मेरी पुत्री निपुण है, और यह गजरा भी उसीके कोमल हाथों से बना है।' मालिन ने कहा।

'भगवान तेरी पुत्री को दीर्घजीवी बनावें; उसके हाथ की गुंथी यह पुष्पमाला और उसके कोमल हाथ का बनाया यह गजरा मैं श्री भगवान को चढ़ाऊँगा।'

'परन्तु महाराज! मेरी यह प्यारी लड़की, अधिक दिन तक जीवी न रहेगी। इसका मुझे पूरा विश्वास है। उसका केशकलाप नितंब तक पहुँच रहा है। उसके शरीर का वर्ण, सुवर्ण को मात करता है। उसके नेत्र कानों तक फैल गये हैं। उसकी भृकुटी को देखकर धनुष भी लजा जाता है। नासिका पतली है और अधिक क्या कहूँ। उसके जीने की आशा नहीं है। यह लड़की मुझे रुलाने के लिए ही मेरे पेट से जन्मी है।' यह कहकर मालिन रोने लगी।

'बुड्ढी, रो मत! तू अपनी लड़की के लिए कुछ भी चिन्ता न कर। मेरे सहवास से उसकी सद्गति होगी।' महात्मा ने अलौकिक भावयुक्त आश्वासन दिया।

'मैं अपने दुर्भाग्य की बात क्या सुनाऊँ, महाराज! मेरी छाती फटी जाती है। जिसके साथ उसका विवाह किया था, पूरे तीन दिन भी न बीते थे कि इतने ही में मेरी पुत्री विधवा हो गई। बस उसी समय से वह पुष्पों की रक्षा करती है; पुष्प तोड़ती है; पुष्प-माला गूँथती है

और पुष्प-गुच्छ बनाती है। इसके अतिरिक्त वह कुछ करती ही नहीं। कुछ बोलती भी नहीं, और दूसरे कुछ जानती भी नहीं है।' यह कहकर मालिन पुनः रोने लगी।

'अब मत रोओ! कहता हूँ कि शोक न करो। इस लड़की के लिए तुम्हें जरा भी चिन्ता न करना चाहिये। तेरे मुख से उसकी मति-गति जो सुनने में आती है उससे जाना जाता है कि वह शीघ्र ही हरिसेवा-कार्य में निपुण हो सकती है। अब वक्त हो गया है। मैं स्नान कर लूँ। तू डाली सहित फूल यहीं रख दे; जाना हो तो चली जा।'

इसके पश्चात् विचारों में तल्लीन महात्मा सिंधु में स्नान के लिए पैठा। मालिन हाथ जोड़ प्रणाम कर चली गई। परन्तु घर जाने की अपेक्षा वह वहीं थोड़ी दूर हटकर नदी-तट पर ही बैठ रही।

प्रतिदिन महात्मा के सिंधु स्नान में जितना समय लगता था उससे आज अधिक विलंब हो गया। पूजा, जप, तप, तिलक एवं स्तोत्र-पाठ आदि मांगलिक कार्य करते-करते लगभग आठ बज गए। स्नान करके 'राधाकृष्ण' का नाम जपता हुआ महात्मा श्रीमती की हवेली में जाने के लिए शीघ्रता से तटपर आया; परन्तु वहाँ पर कितने ही लोगों

की बड़ी भीड़ जमा हुई देखकर आश्चर्य से उसकी आँखें फट पड़ीं। नाइन, दूधवाली, मोदी, कुँभार, तेली, तंबोली, धोबी, लुहार आदि अनेक लोग वहाँ जमा हुए थे। महात्मा को देखकर सब लोगों ने दण्ड-प्रणाम किया, और सब एक स्वर से बोल उठे—'महात्मा की जय। महात्मा गोपाल-दास की जय।'

महात्मा ने पहले ही की तरह गंभीरता से पूछा—'तुम सब लोग कौन हो और यहाँ किस लिए इकट्ठा हुए हो।'

'गरीबपरवर! हमलोग आपकी प्रजा हैं। जब भूख लगती है तो लड़के अपने पिता के पास आते हैं।' सब लोगों ने एक स्वर से उत्तर दिया।

इस भीड़ का गूढ़ मर्म समझ कर महात्मा ने कहा—'तुम सब लोग निश्चिन्त एवं निर्भय रहो; मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा।'

भगवान का नाम जपते हुए महात्मा थोड़ा आगे बढ़ा, और उसके पीछे-पीछे लगभग बीसों आदमियों का दल चलने लगा। बीच-बीच में महात्मा के जयजयकार की ध्वनि होती रहती थी और कितने ही ब्राह्मण संस्कृत-श्लोक से महात्मा की स्तुति कर रहे थे।

इन अद्भुत लीलाओं को देखकर महात्मा दिग्मूढ़ हो गया। इस घटना का पूरा रहस्य वह स्वयं न जान सका। इससे लोगों को वह कौन-सा जवाब दे। केवल इतना ही—'तुम्हारी कोई हानि न होगी, तुम्हारा भला ही होगा। भगवान तुम्हारी रक्षा करें'—इत्यादि साधारण वाक्य वह बोलता जाता था। अपनी कही हुई बातें यथावसर और योग्य हैं या नहीं—इस शङ्का से किसी-किसी समय उसके मन में कँपकँपी हो जाती थी। हृदय काँप उठता था।

महात्मा गोपालदास आज महाभयङ्कर सङ्कट में आ पड़ा था। प्रिय वाचक! कभी आप भी ऐसे भयानक सङ्कट में पड़े हैं? पचास हजार वर्ष की आयवाली जमींदारी और नकद साढ़े तीन लाख रुपए क्षणमात्र में किसी को मिले हैं? जिसे अचानक इतनी बड़ी सम्पत्ति मिली होगी, वही गोपालदास के चित्त की चंचलता, विकलता, विक्षिप्तता और उन्मत्तता का कारण अनुमान कर सकता है। सुख-सागर में स्नान करते भी महात्मा को आज कितना कष्ट हुआ इसका अनुमान भोगी के बिना अन्य कोई नही कर सकता।

महात्मा अपने मन में विचार करने लगा—'वृन्दा के

पास इतनी बड़ी सम्पत्ति और शासन-शक्ति है यह अब-तक मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। इसका इतना विशाल ऐश्वर्य, विपुल-प्रभाव और अतुल यश की वार्ता मैं जानता ही न था। वृन्दा ऐसी सुशीला, लक्ष्मी स्वरूपिणी, गुणवती, परोपकार व्रत-धारिणी और सद्बुद्धि-सम्पन्ना है, इस रहस्य से मैं अज्ञात था।' वह फिर हृदय में पुलकित होकर विचारने लगा—'वृन्दा, मुझे इतने मान की दृष्टि से देखती है। वह मेरे सिवा किसी दूसरे को अपना हितचिंतक नहीं समझती; उसकी संपत्ति की देख-रेख करनेवाला कोई योग्य पुरुष न मिलने से ही तो वह मुझे नहीं चाहती ? नहीं, नहीं; उसकी प्रीति अकारण, निष्काम और अकृत्रिम है। आँख की प्रीति मुख देखने की प्रीति और नेत्र का प्यार तो शास्त्र में एक प्रकार का है। कोई कारण न होने से एक अबला, परपुरुष को देखे और उसी क्षण से उससे प्रेम करने लगे—क्या यह सचमुच सत्य हो सकता है ? वृन्दा का मुझपर अकारण भी प्रेम हो सकता है और सकारण भी हो सकता है।

उसका यह प्रेम सकारण और अकारण दोनों हो सकता है, और इसीसे उसका प्रेम उतना बलवान और

प्रबल है। पहले-ही-पहल देखने पर वृन्दा का मुझपर अनुराग हुआ, और उसके पश्चात् इस अकारण प्रेम के साथ ही सकारण प्रेम का संयोग हुआ। वृन्दा को मैंने ठीक जाल में फँसाया। अब वह जरा भी निकलने के लिए हीलचाल नहीं कर सकती। वृन्दा अपने ही प्रेम-जाल में फँस गई है। आज मैं भी एक कौशल करूँ ? उससे जा कर कहूँ—'बड़ी बहू ! आज मुझसे इस मकान में किसी प्रकार भी रहा नहीं जाता। मुझे एक आवश्यक काम है। आज मैं जाता हूँ और अवकाश पाने पर पुनः आऊँगा।' यह कहने के साथ वह मुझे रहने के लिये कितना आग्रह-अनुरोध करती है—यही देखना है। मैं जाने के लिए जितना ही आग्रह करूँगा, उतना ही अधिक श्रीमती वृन्दा मुझे रखने के लिए आग्रह करेगी, और मेरा हाथ पकड़ कर कहेगी—'देवरजी ! आप अब जा नहीं सकते।' इस प्रकार विचार करते-करते महात्मा यकायक अपने आप हँस पड़ा। पुनः हँसी को रोककर मन में कहने लगा—'जो होना होगा वह होगा। पर अभीसे वृन्दा को इस प्रकार फँसाना है कि जिससे उसे इधर-उधर करने की थोड़ी भी शक्ति न रह जाय।'

ज्योंही महात्मा वृन्दा की ड्योढ़ी पर आया त्योंही सब

द्वारपालों ने उठकर उसे नमस्कार किया। उसके पीछे दूसरे कितने लोगों ने नमस्कार-प्रणाम आदि करके महात्मा का आशीर्वाद लिया। गंभीरता से सबको अभिवादन करके और किसीकी ओर विशेष देखे विना धीरे-धीरे महात्मा अकेला ही ऊपर की अटारी पर गया। वृन्दा इस समय प्रातः-पूजा करने में निमग्न थी। महात्मा को आता देख वह बोल उठी—'आइये देवरजी! इस आसन पर वैठिये!'

'मुझे अधिक देर तक बैठने की फुरसत नहीं है। एक बहुत आवश्यक काम है।'

'आज भोजन आपको यहीं करना होगा। शाम को यह सब संपत्ति और नकद देने के लिए दस्तावेज-रजिष्ट्री होने वाला है। उस समय दस्तखत करने के लिए आपकी उपस्थिति आवश्यक है। रजिष्ट्रार चार बजे के बाद आवेंगे। इससे यदि आप चले जायेंगे तो यह सब काम किस प्रकार हो सकेगा।' वृन्दा ने महात्मा से रुकने के लिए आग्रह किया।

'परन्तु आज मुझे एक बहुत आवश्यक काम है। इसी लिए मैं जाने की अनुमति माँगता हूँ; पुनः अवकाश पाते ही आ जाऊँगा।'

'नही, देवरजी! यह कदापि नही होने पावेगा। आप

का वह काम इस काम से अधिक आवश्यक नहीं है। यदि आप फिर जाने का आग्रह करेंगे तो आप मुझे मरी हुई देखेंगे।' हावभाव से वृन्दा ने पुनः आग्रह किया।

'बड़ी बहू! तुम्हारा इतना अधिक हठ अच्छा नहीं है। तुम मेरे काम की महत्ता नहीं जानती हो; आज एक बड़ा भारी काम मुझे करना है, और इसीसे उसके लिये मेरा इतना बड़ा आग्रह है।' महात्मा जाने के लिये हठ करने लगा।

'अच्छा, देवरजी! मैं आपका हाथ पकड़े खड़ी हूँ और देखती हूँ कि किस प्रकार आप हाथ छुड़ाकर जा सकते हैं।' यह कहने के साथ ही वृन्दा ने महात्मा का हाथ पकड़ लिया।

इस समय महात्मा एकबार वृन्दा को, और पुनः आकाश की ओर आँख फाड़कर देखने लगा। महात्मा के मन में संशय उत्पन्न हुआ कि—'स्वर्ग इस पृथ्वी पर है या आकाश में। मनुष्य मर जाने के बाद यह स्वर्ग पाता है, और इस पृथ्वीतल पर स्वर्ग-सुख को मनुष्य सचेत अवस्था में ही भोग कर सकता है। अस्तु; इससे उत्तम स्वर्ग कहाँ है? पृथ्वी पर, या आकाश में? वह असल स्वर्ग कहाँ है? नीचे या ऊपर?' इत्यादि शंकाएँ एक के बाद एक मन में

आने से महात्मा कुछ देर पृथ्वी और आकाश की ओर ध्यान से देखता रहा।

पृथ्वी और आकाश की ओर सकारण देखने के पश्चात् विजयी महात्मा महा आनंदित होकर मन में कहने लगा—'मेरी जो धारणा थी, वह सब ठीक है। मेरी धारणा कभी असत्य नहीं हुई, न होगी। आज समस्त संसार आकर देखे कि वृन्दा-सदृश बुद्धिमती स्त्री मेरे कपट-जाल में फँस गई या नहीं ? मेरी धारणा अक्षरशः सत्य है। यह मेरी बुद्धि का अगम्य प्रभाव ही कहा जा सकता है !'

मन में इस प्रकार का विचार करके अपनी विजय पर पुलकित होकर महात्मा ने वृन्दा से कहा—'बड़ी बहू ! यदि तुम्हारा इतना अधिक आग्रह है तो मैं रह जाऊँगा। मेरे काम के बिगड़ जाने की पूरी संभावना होने पर भी मैं तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार कर, भूलूँगा नहीं।'

'आज ही सब सम्पत्ति आपके नाम पर चढ़ाकर मैं आज रात की मेल ट्रेन से वृन्दावन की ओर चली जाऊँगी। मैंने जिन-जिन स्थानों में नक़द रुपया, मणि-मुक्ता, और सोना-चाँदी इत्यादि रखा है, उन सब गुप्त स्थानों को मैं आज आपको दिखा देना चाहती हूँ।' वृन्दा ने कहा।

वृन्दा अपने दाहिने हाथ में महात्मा का दाहिना हाथ पकड़े हुए बैठी थी। इस समय महात्मा का बायाँ हाथ छूटा था। उसने बायीं उँगली कान में खोंस ली, और दाहिने कन्धे को जरा ऊँचा करके माथा को थोड़ा नत करके दाहिने कान को भी ढकने का प्रयत्न किया, और जीभ को दाँतों से दबा लिया।

महात्मा के इस रूप को देखकर कोई उसके आन्तरिक भाव को जान सकता है? पहले नकद रुपए की बात सुनकर महात्मा का मन चञ्चल हो गया; और बाद मणि-मुक्ता, सोना-चाँदी आदि की बात सुनकर महात्मा कान में उँगली खोंसे, और जीभ को दाँतों से दबाये बिना नहीं रह सका।

बुद्धिमती वृन्दा उसका यह भाव समझ गई। महात्मा से वह कहने लगी—'अरे मैं भूल गई। इन सब वस्तुओं का नाम ले लिया; पर चिंता नहीं। देवरजी! आपको इन वस्तुओं को देखने का अवसर न आवे; इसलिए आपके किसी विश्वासपात्र कर्मचारी को जवाहिरात आदि गिनकर और उनकी सूची तैयार कर सब उसके हाथ सौंप दिया जायगा।'

महात्मा ने कान में से उँगली निकालकर और जीभ

को अपने दाँतों से अलग करके कहा—'बड़ी बहू ! अभी मेरा मन बहुत खराब हो गया था। मुझे ऐसा भास होता था कि मानो धन-संपत्ति की आग से मेरा शरीर जला जा रहा है। मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हारी संपत्ति की व्यवस्था का भार उठाने में समर्थ नहीं हूँ।'

'देवरजी ! आप घड़ी-घड़ी यह रङ्ग क्यों बदलते हैं? अब मैं आपसे अधिक कुछ कहने की इच्छा नहीं करती। यदि आप स्वयं मेरी संपत्ति की व्यवस्था अपने सिर पर नहीं लेवेंगे तो आज आपकी आँख के सामने प्राण देकर, मैं अपने अधम नारि-जन्म का अन्त कर दूँगी।' वृन्दा ने स्त्री जाति का अन्तिम अस्त्र फेंका।

'बड़ी बहू ! कृपा करके ऐसा साहस कभी न करना; ऐसी बात फिर कभी न कहना। ऐसे दुष्ट विचार को मन में स्थान न दो। यदि तुम अपने प्राण दे दोगी तो मैं भी अपने इस पापी प्राण को तज दूँगा। बड़ी बहू ! इस प्रकार रोओ मत। मैं तुम्हारी आज्ञा के अनुसार ही चलूँगा।' महात्मा ने कहा।

पहले वृन्दा ने ही महात्मा का दाहिना हाथ पकड़ा था। पर, अब महात्मा ने वृन्दा का बायाँ हाथ अपने बायें हाथ

में पकड़ लिया, और सहानुभूति दिखाते हुये कहने लगा—'बड़ी बहू ! मेरे ऊपर दया करके रोना बन्द करो।'

इस प्रकार वृन्दा और महात्मा गोपालदास एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बैठे थे; इतने ही में एक दासी एक पत्र लेकर आई। दोनों के हाथ छूठ गये, और दासी ने वृन्दा के हाथ में पत्र दे दिया। वृन्दा ने लिफाफा फाड़ कर पढ़ा और चिन्तातुर मुद्रा से कहने लगी—'यह पत्र रजिष्ट्रार का है, वह लिखते हैं कि कल से एक मास तक कोर्ट बन्द रहेगा। अतः एक महीने तक दस्तावेज-रजिष्ट्री नही हो सकता। इसीसे मैं नहीं आ सका। कोर्ट खुलते ही यह काम कर डालूँगा।'

पत्र सिन्ध देश में प्रचलित अरबी-सिंधी भाषा में लिखा था, इससे महात्मा अत्यन्त आतुर होने पर भी उस पत्र को पढ़ नहीं सका, और उसके मुखमण्डल पर एक बार ही निराशा और निस्फलता की छटा दृष्टिगोचर होने लगी। वृन्दा ने उसके मुख को देखकर उसके मनोभाव की कल्पना कर लिया और आश्वासन के ढंग से कहने लगी—'देवरजी ! मैं अभागिनी हूँ। वृन्दावन-निवास का सुख अभी हमारे भाग्य में नहीं लिखा है। यदि ऐसा नहीं होता

तो यह कोर्ट क्यों बन्द हो जाता। सरकार भी मेरी दुश्मन हो गई है। मालूम पड़ता है, विवश होकर एक मास तक इसी नरक-निवास में बिताना पड़ेगा।'

'चिन्ता न करो। एक महीना का समय बीत जायगा। अब आज कोई काम नहीं है, अतः मैं चला जाऊँ तो कोई हर्ज तो नहीं है ? जब तुम बुलाओगी तो आकर उपस्थित हो जाऊँगा।' महात्मा ने कहा।

'भोजन करके जाना।' वृन्दा ने कहा।

दोपहर को भोजन करके महात्मा अपने घर की ओर जाने के लिए निकला। यद्यपि वृन्दा के वचन में उसका पूर्ण विश्वास था, फिर भी धन-संपत्ति के मिलने में अचानक विलम्ब होने से उसके मुख से यह उद्गार निकल ही तो पड़ा—'यह हमारी किस्मत आज क्यों बदल गई ?'

२१

महात्मा की साली दयामयी आजकल शाक्तसदन में रहती है। वह वहाँ की स्त्री अधिकारिणी है। उसीपर वहाँ का सब उत्तरदायित्व है। हमलोग शाक्तसदन को कुछ समय से भूल गये हैं। आइये, वहाँ के कार्यकलापों का अवलोकन करें।

विगत प्रकरण की घटना को बीते तीन-चार दिन हो गये थे। वर्षा ऋतु का समय था। करांची से शाक्तसदन की ओर जाने के मार्ग में एक भीषण अरण्य था, वर्षा की झड़ी लग रही थी, और बादलों के गरजने के साथ ही चपला की चमक भी जारी थी। इस जंगल में सिंह-व्याघ्र और भालू की विपुलता न होने पर भी रात्रि मे वहाँ कोई दिखाई न पड़ता था। उनकी आवाज भी नहीं सुनाई पड़ती थी। वृष्टि से बचने के लिए वे गुफाओं और कोटरों में छिप गये थे। केवल जल-वृष्टि जन्य भूमिपर का आघात और बादलों के गरजने की भयंकर ध्वनि सुनाई पड़ती थी। रात्रि के समय आज उस मार्ग से दो यात्री जाते हुए दिखाई पड़ते थे। अचानक बिजली का अधिक प्रकोप बढ़ जाने से दोनों व्यक्ति एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गये, और आपस में बातचीत करने लगे—'भाई! इस भयंकर समय में आपका साथ हो जाने से मुझमे साहस आ गया है; नहीं तो आज मैं घबड़ा कर मर गया होता।' प्रथम यात्री ने कहा।

'इस समय ऐसे कुमार्ग से यात्रा में निकले हो; यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। ऐसे समय यात्रा करने की क्या आवश्यकता थी?' दूसरे ने पूछा।

'भाई, गरीब का जीवन ही बुरा है। जहाँ धन है वहाँ खानेवाले नहीं हैं और जहाँ खानेवाले हैं वहाँ धन नहीं है—का मसला है। धनियों के घर लड़के ही नही होते और मुझ सदृश कंगालों के घर लड़के-लड़कियों की सेना आ गई है। इसीसे इस अधम पेट के लिए चार पैसे मिलने की आशा से इस दुर्दिन में काम करना पड़ता है। गरीबों के सहायक, दीनबंधु, जगदाधार ईश्वर हैं। यहाँ से सोममियाणी जाते हुए मार्ग में शाक्तसदन नाम का एक मकान आता है और वहाँ पोष्ट से पत्र पहुँचाने का सरकारी प्रबन्ध नहीं है। जब कभी कोई पत्र वहाँ ले जाने की आवश्यकता होती है तब वह पत्र करांची में एक गृहस्थ के यहाँ आता है और फिर मुझ-सरीखे खोफिया-द्वारा शाक्तसदन में पहुँचा दिया जाता है। आज भी शाक्तसदन में पहुँचाने के लिए मुझे एक पत्र मिला है। इस कार्य के लिए मुझे दस रुपए मिलेंगे। तीन-चार दिन के श्रम के लिए दस रुपए मिलना मुझ दरिद्र के लिए सोने की लंका मिलने के समान है। इतने रुपए से हमारे पाँच प्राणियों का एक महीने तक अच्छी तरह निर्वाह हो सकता है। कुसमय में मेरी यात्रा का यही कारण है।' प्रथम यात्री ने अपनी कारुणिक दशा का वर्णन करते हुए आहभरी साँस ली।

'भाई, तुम्हारा कहना अक्षरशः सत्य है। गरीब आदमी को इतना परिश्रम करने पर भी खाने के लिए निश्चिन्तता से रोटी नही मिलती। धनियों के यहाँ अच्छे-अच्छे पकान्न भी फेंके जाते हैं। अच्छा, यहाँ से शाक्तसदन कितनी दूर है? मेरा विचार भी वहीं पर जाने का है।' दूसरे ने कहा।

'यदि यह पानी की झड़ी बंद हो जाय और हम लोग साधारण गति से चलें तो सात-आठ गाँव लाँघ जाने के बाद चार-पाँच घंटे मे वहाँ पहुँच जायँगे।'

'अभी सारी रात पड़ी है। यदि हम लोग आधीरात या उसके बाद पहुँच जायँगे तो क्या हम लोगों को वहाँ आश्रय मिल सकता है?'

'शाक्तसदन में किसी समय भी आश्रय मिल सकता है। रात मे, यात्री साधुओं की तम्बूरे के तार के साथ भजन की ललकार तीन बजे रात तक जारी रहती है। वहाँ पर किसीको जगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'

दोनों यात्री इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि उतने ही समय में विजली की भयंकर कड़कड़ाहट हुई, और विजली का गिरना उन्हे मालूम हुआ। जिस वृक्ष के नीचे वे खड़े थे, वहीं पर विजली गिरी। पहला यात्री ठीक पेड़

के तने के पास खड़ा था इससे वह बिजली उसी पर गिरी, और वह तुरत मर गया। दूसरा प्रवासी उससे कुछ दूर पर खड़ा था, इससे वह बच गया। गरीब आदमी की मृत्यु पर पश्चाताप करते हुए, विधि की निर्दयता पर वह कहने लगा—'अरे क्रूर विधाता! यह तेरा कैसा अन्याय है। इस बेचारे दीन को तूने जंगल ही में मार डाला। इससे तुझे क्या लाभ हुआ? बेचारा अगाध परिश्रम कर मृत्युमुख में उद्यत हो, अपनी स्त्री और बालबच्चों का प्रेम से पालन करता था। उसकी यह दुर्दशा! अफसोस! क्या तेरे यहाँ यही न्याय है। यह बेचारा मर ही गया। पर निराधार अवस्था में पड़ी हुई स्त्री और बालकों की क्या दशा होगी? उनका पालन कौन करेगा? अरे! रे! आशातुरा अबला—अपने पति, तथा बालक—अपने पिता के आगमन की आतुरता से बाट जोहते होंगे। अच्छा, जो होना था वह हो चुका। अब तो आगे चलना ही उचित है।'

इस प्रकार निश्चय कर एक बार पुनः उसने मृत यात्री पर दृष्टिपात किया। अँधेरे में कुछ दिखाई न पड़ता था। इतने ही मे बिजली चमकी। उसके क्षणिक प्रकाश से उसने देखा कि उस यात्री का शरीर जल गया है। थोड़ी

दूर पर पड़ी हुई उसकी छड़ी पर नजर गई। छड़ी उठाते ही उसके एक छोर पर कपड़े में बँधा हुआ एक पत्र दिखाई पड़ा। पत्र को खोल कर उसने हाथ में ले लिया, और बिजली के प्रकाश में उसने ऊपर का सिरनामा पढ़ा। वह इस प्रकार था—श्रीमती दयामयी शाक्तसदन की अधिष्ठात्री। शाक्तसदन।

पानी का वेग कुछ कम हो चला था; किन्तु बिजली का चमकना पाँच-पाँच दस-दस मिनट पर अभी जारी था। बिजली बहुधा ऊँचे पदार्थ पर गिरती है। यह बात वह प्रवासी जानता था और वृक्ष पर वज्रपात का प्रत्यक्ष प्रमाण उसे मिल भी चुका था। अतः वह वृक्षों से दूर खुली जगह से होकर चलने लगा। रात में तीसरे पहर के आरम्भ होने के थोड़ी ही देर बाद वह शाक्तसदन के हद में पहुँच गया।

किसी अज्ञात मनुष्य को आया हुआ जानकर दरवान ने पूछा—'इतनी रात को कौन आया है?'

'करांची से शाक्तसदन को पत्र लाया हूँ।' यात्री ने कहा।'

'यह आवाज तो उस गुप्तचर की नहीं है। उसकी आवाज हम भली भाँति समझते हैं।' दरवान ने कहा।

'मैं वह गुप्तचर नहीं हूँ। बल्कि उसके बदले में आने वाला दूसरा व्यक्ति हूँ।'

'पहले हमारे पास आओ।' दरवान ने कहा।

वह यात्री दरवान के पास गया और उसे पत्र दिखाया। विश्वास हो जाने पर अधिक पूछताछ न करके दरवान ने कहा—'अभी इस समय हमारी चारपाई पर सो जाओ। अभी कुछ रात बाकी है। अधिष्ठात्री सो गई हैं। हम उनको इस समय जगा नहीं सकते। तुम सबेरे मिल लेना।'

पैदल चलने से यात्री श्रान्त हो गया था। उसे दयामयी से उस समय मिलने की स्वयं इच्छा न थी। द्वारपाल की बात मानकर उसकी खाट पर सो गया, और थोड़ी देर में निद्रा का रस लेने लगा। प्रातः जब वह सोकर उठा तो वहाँ एक दूसरा दरवान बैठा दिखाई पड़ा। रात वाले दरवान की बदली हो गई थी। वृष्टि बन्द हो गई थी। आकाश निरभ्र और स्वच्छ था। दरवान ने उससे कहा—'श्रीमती दयामयी को तुम्हारे आने का समाचार कह दिया है। तुम नित्य कर्म से शीघ्र मुक्त हो जाओ। शीघ्र ही वहाँ पर तुम्हारी बुलाहट होगी।'

वह यात्री शौच, मुखशुद्धि और स्नान आदि से निवृत्त होकर दयामयी के आज्ञा की प्रतीक्षा करते बैठा रहा।

❀ ❀ ❀

प्रातःकाल! लोकोत्तर और स्वर्गीय प्रभात था। आकाश निरभ्र था। सूर्य भगवान प्रकाशमान थे। शाक्तसदन के उपासक स्त्री-पुरुष स्नान और नित्यकर्म करने में व्यस्त थे। देवी के मंदिर में घंटानाद और देवी-भक्तों के उपसना-स्तोत्र की गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ रही थीं। श्रीमती दया-मयी अपने शृंगार-गृह में मखमल मढ़े हुए एक कोमल कोच पर बैठी थी। कमरा बर्गाकार था। चारों ओर दीवाल में बड़े-बड़े आइने टँगे हुए थे। दीवाल से सटा हुआ एक ड्रेसिङ्ग मेज रखा था। उसके ऊपर कुसुम-मालती, जवाकुसुम और कौन्तलीन आदि सुगंधित तैल, लाइमजूस, कान्ति-क्रीम एवं बेसलिन आदि केश और मुख को सुन्दर बनानेवाली वस्तुओं की शीशियाँ रखी थीं। ब्रश और कंघी भी पड़ी थी। एक डिश में दन्तमंजन और दाँत साफ करने का ब्रश भी दिखाई पड़ता था। भूमि के ऊपर कालीन बिछा था। उसके ऊपर रेशम की गद्दी वाली चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। आमने-सामने दीवाल से सटी हुई

ड्रेसिङ्ग मेज के सामने दो गद्देदार कोच भी पड़े हुए थे। दयामयी इस समय कोचपर बैठी हुई थी, और सामने दर्पण में अपनी सुंदरता को देखकर स्वयं मोहासक्त और पुलकित हो रही थी। वह शृङ्गार कर चुकी थी। इस समय वह सफेद रेशमी जरी की कोरवाली साड़ी पारसियों की तरह पहने थी। उसने सिरपर की साड़ी को बाल में एक पिन से खोंस लिया था, और माँग पर के बालों को यूरोपियन महिलाओं की तरह बनाए हुए थी। कंठ में हुस्न आरा एवं उँगलियों में हीरा जड़ित अँगूठी उसकी शोभा को बढ़ा रही थीं। हीरे का नाक-फूल तो उसकी नासिका पर अजब शोभा बरसा रहा था। दयामयी ने एकदासी को बुलाकर कहा—'देख जो गुप्तचर करांची से पत्र लेकर आया है उसे बुला ला।'

'स्वामिनी की जो आज्ञा'—कहकर दासी वहाँ से चली गई, और थोड़ी ही देर बाद उस प्रवासी को लाकर दयामयी के कमरे में उपस्थित कर दिया। पुनः बाहर चली गई। कमरे में केवल दयामयी और प्रवासी रह गये।

'पत्र लेकर तुम्हीं आये हो?' दयामयी ने उस गुप्तचर से आश्चर्य चकित मुद्रा से पूछा।

'हाँ, यही पत्र है।' कहकर उसने पत्र को दयामयी के
नल हाथों में रख दिया।

पत्र का लिफाफा रात्रि में बरसात के पानी से भींग
ा था, और भूमि में पड़े रहने के कारण उसपर मिट्टी
धब्बे पड़ गये थे। लिफाफे को फाड़ती हुई दयामयी ने
शंकित मुद्रा से पूछा—'जो गुप्तचर यहाँ सदा आता था
ह कहाँ है? और तुम कैसे आये? लिफाफे पर यह
ब्बे कैसे पड़े हैं?'

'मैं गुप्तचर नहीं हूँ। मैं एक धर्म जिज्ञासु हूँ। आपके
शाक्तधर्म की और इस शाक्तसदन की करांची में कितने
ही कुलीन गृहस्थों के मुख से अत्यन्त प्रसंशा सुनकर मुझे
शाक्तसदन देखने की इच्छा हुई, और मैं इधर आ रहा था
कि गतरात्रि में मार्ग में मुझे एक गुप्तचर मिला जो यह पत्र
लेकर यहीं आ रहा था, वर्षा अधिक हो रही थी और
विजली की चमक एवं कड़कड़ाहट बारबार होती थी, इस-
से हमलोग एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गये। गुप्तचर अपने
आने का उद्देश्य बतला रहा था; इतने ही में विजली उस
पेड़ पर गिरी और वह बेचारा गरीब आदमी मर गया।
यह पत्र उसकी छड़ी के छोर पर बँधा था। इसलिए मैं उस

पत्र को लेता आया।' प्रवासी ने सच-सच अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया।

यात्री अपना वृत्तान्त सुना रहा था और दयामयी उस पत्र को पढ़ने में लगी हुई थी। प्रवासी की बात का उसे ध्यान नहीं था। पत्र में लिखा था—'प्राणाधिक प्रेम भोगिनी, स्नेहयोगिनी और विश्वविपत्ति-वियोगिनी, शाक्त सदनाधिष्ठात्री, श्रीमती दयामयी के पद पंकज में—सविनय निवेदन है कि यहाँ गिढुचन्दर में रहने वाली अतुल धन की स्वामिनी, जागीरदार विधवा वृन्दा मेरे कपट-जाल में इस प्रकार फँस गई है कि वह अपनी सब स्थावर और जंगम संपत्ति मुझे देने के लिए तैयार हो गई है। एक महीने में वह सब मेरे नाम रजिस्ट्री हो जायगा, और फिर तो यह तेरा गोपालदास एक राजा की बराबरी करने लगेगा। जो दौलत हम लोगों को आलमचन्द से मिली है उस संपत्ति का इसके आगे कुछ भी मूल्य नहीं है। यदि इस आनन्द-प्रसंग में भाग लेना हो तो शीघ्र हैदराबाद सज-धज कर आओ। तुम्हारे संग-बिना यह हर्ष-प्रसंग मुझे विष-समान भासित होगा।

तुम्हारा प्रेमी, भ्रमर—महात्मा गोपालदास'

यह पत्र पढ़ते ही दयामयी के हृदय में तिरस्कार का भाव उत्पन्न हुआ; किन्तु अपने भावों को न व्यक्त होने दे कर आगन्तुक से उसने पूछा—'महाशय! अबतक मैं आपको गुप्तचर समझती थी। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें। आप किस धर्म के जिज्ञासु हैं, कहाँ के निवासी हैं, शाक्तसदन में किस जिज्ञासा से आये हैं, कृपा करके बतलावें। अरे! आप वहाँ खड़े क्यों हैं? आइये, इधर कुर्सी पर बैठ जाइये।'

'महाशया! मेरे गृह में अतुल सम्पत्ति है। अतः संसार की साधारण चिन्ताओं से मैं मुक्त हूँ। परन्तु स्त्री और कुटुम्ब के नाश हो जाने से तथा दूसरा विवाह न करने की इच्छा के कारण एक विलक्षण पिशाचिनी चिन्ता मेरे हृदय में आज कितने ही वर्षों से पीड़ा दे रही है। चिन्ता यह है कि मैं अपनी सारी संपत्ति किसी एक धर्म-संस्था के नाम लिख देना चाहता हूँ; परन्तु सर्वोत्तम धर्मसंस्था कौन-सी है, इसका मैं निश्चय नहीं कर सका। अबतक मैंने आर्यावर्त के सब तीर्थों में भ्रमण किया है। केवल देवी कामाक्षा के मन्दिर के अतिरिक्त धर्म का वास्तविक सत्य-लक्षण मुझे कहीं देखने को नहीं मिला। यहाँ

धार्मिक सत्य की कितनी योग्यता है, शाक्तधर्म का क्या तत्त्व है, और इससे जन-समाज को क्या लाभ है आदि बातें जानने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। यदि आप मेरी धर्म-तृष्णा को शान्त कर दें तो बड़ी कृपा हो।' यात्री ने कहा।

यात्री के शरीर की आकृति, सौन्दर्य और वाक्चातुर्य ने दयामयी के मनको अपनी ओर आकर्षित कर लिया, और उसकी अतुल धन-संपत्ति का नाम सुनकर उसका मन लोभ से चञ्चल हो उठा। वह अपने हाव-भाव और कटाक्ष के जाल को विस्तारित करती हुई कहने लगी—'चतुर प्रवासी! यदि आपकी इच्छा हो तो जबतक चाहें आनन्द से इस शाक्तसदन में रहें, और यहाँ के धर्मतत्त्वों का अवलोकन और अभ्यास करें। जब कामाक्षा देवी के धर्मलक्षणों से आपको सन्तोष हो गया है, तो इस स्थान में आपको अधिक सन्तोष मिलेगा; इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। अतिथि ईश्वर तुल्य होते हैं। अतः हम सब—तन-मन एवं धन से सेवा करेंगी, और अपना मनुष्य-जन्म सफल करेंगी; परन्तु अब तक आपने अपने देश एवं नाम का परिचय हमें नहीं दिया। मैं किस नाम से आपको पुकार कर अपनी जिह्वा को भाग्यशालिनी"

'मैं गुजरात में काठियावाड़ प्रदेश के भावनगर का निवासी हूँ। जाति का औदीच्य ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम चन्द्रशङ्कर है।' यात्री ने अपना परिचय देते हुए कहा।

'कितना मनोहर और पवित्र नाम है। शाक्तधर्म को इतना पवित्र नाम बड़े भाग्य से मिल सकता है। चन्द्र निशा का पति है, और शाक्तधर्म की सब विधियाँ निशाकाल ही में होती हैं। इससे यह पर्याय सहचर है। शङ्कर तो साक्षात् महादेव हैं। शाक्तधर्म का उपदेश देवी ने पहले-पहल महादेव को ही दिया था। वह शाक्तों के परम देव हैं। आपके नामोच्चारण और सेवा से हमारी मुक्ति हो जायगी। आपके उत्तम नाम का उच्चारण करके हम आपका बहुत उपकार मानेंगी।' दयामयी ने व्याकरण की नई पद्धति से अर्थ का विस्तार किया।

'मेरे स्वर्गवासी पिता एक सच्चे देवी-भक्त और काठियावाड़ शाक्तमण्डल के एक मुख्य नेता थे। मैंने उनके साथ दो-चार बार श्रीचक्र की विधि को देखा था। परन्तु उनके स्वर्गवासी होने के पीछे मेरी जाति के कितने ही लोगों ने मुझे विवश कर वैष्णव धर्म की दीक्षा दिलवा कर 'अहिंसा परमो धर्मः' का उपासक बना दिया।' मैं

नाम से वैष्णव हूँ; पर उस धर्म के तत्त्व मुझे सन्तोष न दे सके। इससे इस विश्व मे—भारतवर्ष में—अतिशय सुखदायक और सन्तोषप्रद धर्म क्या है; इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर उस धर्म को स्वीकार करने तथा उसकी उन्नति के लिये अपनी सारी संपत्ति लगाने का निश्चय करके मैं प्रवास में निकला हूँ। मुझे यहाँ सन्तोष मिल सकता है या नहीं; यही देखना है।' चन्द्रशङ्कर ने कहा।

'महामाया देवी, आपके हृदय में इस स्थान में अवश्य सन्तोष देंगी। आप निश्चिन्त होकर देवी में श्रद्धा और विश्वास रखें। शाक्तधर्म के विश्वव्यापक तत्त्वों को मैं आपको अवकाश के समय समझा दूँगी। पर, अब जलपान का समय हो गया है; आप जलपान कर लें।' दयामयी ने मधुर एवं विनम्र शब्दों में कहा।

दयामयी की आज्ञानुसार दासी जलपान का प्रबन्ध करने लगी। वहाँ आकर एक आदमी फोल्डिंग टेबुल रख गया। दूसरे सेवक ने आकर अलग-अलग खाद्यपदार्थों से भरी रकाबी, चीनी और दूध का पात्र, चम्मच, चाय, किटली आदि को मेज पर सजाकर रख दिया।

दयामयी कोचपर से उठकर कुर्सीपर बैठ गई, और

मेजपर के पदार्थों को देखती हुई बोली—'आइये, अब शुरू करें; आपके पिता श्रीशाक्तधर्म के स्तम्भ थे और आपने उनके साथ श्रीचक्र आदि विधियों का उपभोग कर ही लिया है। इससे इन पदार्थों के खाने में आपको कोई इन्कार न होगा। यह लोफ और डबलब्रेड स्वयं मैंने करांची से मँगाया था। मक्खन यहीं बनता है। अंडे हमारी पालतू मुर्गी के हैं; और यह मिठाई का डिब्बा विलायत से पैक होकर आया है। प्रात.काल पावरोटी, मक्खन, अंडा और मिठाई का जलपान करके चाय पीने से शरीर स्वस्थ रहता है।

'कृपया आप मुझे क्षमा करें; मैं अपने पिता के साथ श्रीचक्र के विलास-प्रसंग पर बाल्यावस्था में गया था। परन्तु बालक होने से यह पदार्थ खाने का मुझे अवसर नहीं मिला था। जबसे मैं समझदार हुआ हूँ तभीसे वैष्णव धर्म का पालन करता हूँ। इसीसे मैं यह पदार्थ नहीं खाता; यह स्वाभाविक है। इस वैष्णव धर्म का आचार-विचार मेरे हाड़-मांस में इस दृढ़ता से प्रवेश कर गया है कि अल्पकाल में वह निकल नहीं सकता। मैं इन पदार्थों का अधर्म जानकर नहीं तिरस्कार करता। पर, स्वाभाविक रीति से मेरा मन इन पदार्थों को अंगीकार ही नहीं करता।

दिया। उसकी रूमाल में मनोरमा नाम का सेण्ट लगाया। पश्चात् पलङ्ग के ऊपर मखमल की तकिया पर उठँगकर अभिनय करती हुई बैठ गई; और मनमोहक मृदुवाणी से चन्द्रशंकर को उद्देश्य कर कहने लगी—'प्रिय अतिथि! एक धर्म-सदन में इस सांसारिक वैभव को देखकर आपके मन में कदाचित् आश्चर्य होता होगा; परन्तु वैभव और विलास के इन साधनों को रखने में हमारा क्या उद्देश्य छिपा हुआ है? यदि यह आप जान जायँगे तो अवश्य ही आप अपना जीवन हमारे धर्म के लिये अर्पण करने को तैयार हो जायंगे।'

'कृपाकर आप इस उदात्त आशय को बतलाने का अमूल्य प्रसङ्ग इस जिज्ञासु को प्राप्त होने दें। मैं केवल धर्म के इसी आशय से जन्मभूमि और गृह आदि का त्याग करके यात्रा का परिश्रम उठा रहा हूँ। चंद्रशंकर ने अपनी जिज्ञासा-निवृत्ति के लिये प्रार्थना की।

सब धर्मों का यह एक सर्वमान्य एवं विश्वव्यापक सिद्धान्त है कि—'परोपकाराय सतां विभूतयः'—साधुओं की विभूति केवल परोपकार के लिए है। मुक्तकंठ से परोपकार की महिमा सब धर्म गाते हैं और परोपकार सब धर्मों में पाया जाता है। सब धर्म यह कहते हैं कि तन, मन एवं

धन से परोपकार करना ही मनुष्य जीवन की परम सार्थकता है। परन्तु प्रश्न यह होता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार यथार्थ परोपकार किया जाता है या नहीं। मेरे देखने में केवल शाक्तधर्म के सिवा अन्य कोई भी धर्म परोपकार के सूक्ष्म तत्त्वों को समझता ही नहीं। यदि ऐसा नहीं होता तो अन्य सब धर्मों में परोपकार की हानि करने वाले कितने ही नीति तत्त्वों का पालन नहीं किया जाता। एक ओर वे कहते हैं कि—तन, मन एवं धन से परोपकार करो, और दूसरी ओर वे ही उपदेश देते हैं कि यदि स्त्री के शरीर से परपुरुष का स्पर्श हो जाय तो उस स्त्री के सतीत्व का नाश हो जाता है, और वह स्त्री नरक की अधिकारिणी बन जाती है। पुरुष भी यदि अन्य स्त्री का सहवास करे तो वह भी व्यभिचारी गिना जाता है और पातकी माना जाता है। यह कितना परस्पर विरोधी सिद्धान्त है। जब शारीरिक परोपकार पाप के नाम से पुकारा है तब शरीर-सेवा से परोपकार सिद्धि कौन करेगा और कैसे सिद्ध हो सकेगा? इसका आप स्वयं विचार कर लें। इस विश्व में विषयानन्द के समान कोई भी आनन्द नहीं है। वेदान्तमतवादियों ने भी विषयानन्द को ब्रह्मानन्द के नाम से प्रति-

पादन किया है। पंचदशी के रचयिता और शंकराचार्य की गद्दी पर बैठने वाले विद्यारण्य सरस्वती ने भी विषयानन्द की महिमा का उल्लेख किया है। अपने और पराये में लेशमात्र भी भेद न मानना चाहिये। कोई भी स्त्री या पुरुष अपने को एक दूसरे के समर्पित कर दे, अभेद और एकता के सिद्धान्त को सत्य कर दिखावे; सर्वं खल्विदं ब्रह्म; इस महावाक्य की सत्यता सिद्ध कर दे—यही शाक्तधर्म का आशय है। विषयानन्द को विशेष आनन्ददायक बनाने के लिये यह विलास, वैभव का साधन शाक्तमन्दिर में रखा जाता है। शाक्तधर्म में स्त्री-पुरुष, उच्च-नीच और गुणाव-गुण का भेद नहीं। यदि कोई भी विश्वव्यापक धर्म इस पृथ्वीतल पर है तो वह केवल शाक्तधर्म है। इसके अतिरिक्त जितने अन्य धर्म हैं वे धर्म नहीं, वरन् पाखंड हैं, और उनका खण्ड-खण्ड करके नाश करना चाहिये। इस जगत् में जबतक जीना है तबतक सुख से जीवन व्यतीत करे; ऋण करके भी घी-केला खावे और यथेच्छ विहार करे; इस प्रकार प्राण को सब प्रकार से सुखी रखना ही शाक्तधर्म का विशिष्ट उद्देश्य है।' दयामयी ने अमृतमयी वाणी से चन्द्रशङ्कर की धर्म-जिज्ञासा को तृप्त करने का प्रयास किया।

दयामयी के तत्त्वज्ञान को सुनकर चंद्रशंकर स्तब्ध रह गया। वह मन में कहने लगा—'भारतवर्ष में शास्त्रों का जबसे इतना विचित्र अर्थ एवं उसीके आधार पर अनीति का प्रचार होने लगा, तभीसे अवनति का श्रीगणेश हुआ है। अब शाक्तों के सिद्धांतों का विशेष रहस्य देखने को मिलेगा। हे मन! शांत रह।' इस प्रकार विचार करके उसने दयामयी से कहा—'श्रीमती महाशया! आपके इस गूढ़ और देव दुर्लभ तत्त्वज्ञान को सुनकर मेरे मन में संतोष और समानता का सञ्चार होने लगा है; परन्तु एक शंका है। स्त्री-पुरुष के यथेष्ट सम्बंध को मैं धर्म नहीं मान सकता। परनारी-गमन और परपुरुष-प्रेम यह सदा से पाप माना जाता है। इस विषय में आपका क्या अभिप्राय है।'

'आपके इस संशय को दूर करना बहुत सरल है। 'यह मेरी पत्नी' 'यह मेरा पति'—यह भावना संकुचित हृदय की है। 'यह मेरा है' 'यह दूसरे का है'—यह धारणा ओछे हृदय की होती है। जो उदार चरित्र स्त्री-पुरुष हैं वे वसुधा को अपने कुटुम्ब की तरह देखते हैं। इससे भी आगे बढ़कर आप अपने सर्वमान्य भगवद्गीता में भगवान

कृष्ण के वाक्यों को देखिये । तब इस प्रकार का समर्थन आपको प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा । महाबाहु अर्जुन जब अपने आप्त गोत्र के साथ युद्ध करने में संकोच करने लगे तब उस समय भगवान कृष्ण ने कहा—'यह आत्मा काटी नहीं जा सकती, जलती नहीं, सूखती नहीं, यह नित्य, व्यापक, स्थिर, अचल और सनातन है ।' स्त्री-पुरुष—ये शारीरिक अशाश्वत भेद हैं। आत्मा में नारीत्व और पुरुषत्व नहीं है । इससे इनके शारीरिक-सम्बन्ध करने से आत्मा नहीं भ्रष्ट होती, और इसे कोई भी भ्रष्ट नहीं कर सकता । 'न हन्यति न हन्यते'—इस वाक्य का यही तत्त्व है । भिन्न-भिन्न इंद्रिय समूह अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में प्रवृत्त रहें; इससे आत्मा को किसी प्रकार की बाधा नहीं होती । स्त्री-पुरुष का भेद भुलानेवाला, आत्मा की अलिप्तता सिद्ध करनेवाला, एकता का मार्ग बताने वाला और आनन्द-परमानन्द में निमग्न रहने वाला केवल शाक्तधर्म है । इससे इस संसार और परलोक में सुख पाने अथवा कर्म मुक्त होकर अविचल मुक्ति पाने की आपकी इच्छा हो तो पलमात्र भी विलम्ब किये बिना इस शाक्तधर्म को स्वीकार कर लें; हृदय की चिन्ता एवं मल का त्याग करें; और इस प्रकार आत्मो-

न्नति के मार्ग पर अग्रसर हों।' दयामयी ने वेदान्त तत्त्व का मनस्वी अर्थ गंभीरता से प्रतिपादित किया।

'आपका यह तत्त्व यथार्थ है। इस विषय में अब मेरे मन में कुछ भी संशय नहीं रह गया है; परन्तु कृपया, यह बताइये कि क्या मांसादि भक्षण में जीव-हिंसा नहीं है?' चन्द्रशङ्कर ने नम्रता से पूछा।

'मैं जो उत्तर दे चुकी हूँ उसीसे यह प्रश्न भी निर्णीत हो जाता है। जिन पशुओं का मांस खाया जाता है उनमें भी आत्मा होती है। अतः 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'— शरीर के नाश होनेपर आत्मा का नाश नहीं होता; क्योंकि आत्मा अमर है। इस गीता वाक्य के आधार पर हिंसा करना चाहिये या नहीं; यह प्रश्न स्वतः प्रमाणित हो जाता है।'

यद्यपि चन्द्रशङ्कर में दयामयी के विपरीत सिद्धान्तों का खण्डन करने की शक्ति और क्षमता थी, पर उसने खण्डन करना उचित न समझकर हाँ में हाँ मिलाने के धर्म को स्वीकार किया। इससे विवाद का अन्त हो गया। दयामयी अपनी चातुर्यपूर्ण बात का यह सुन्दर परिणाम और चन्द्रशङ्कर को मूक देखकर मन-ही-मन आत्म-प्रसंशा करने लगी—'महात्मा वृन्दा को अपने अनुकूल कर लक्षा-

धिपति होने की कोशिश कर रहे हैं और इस पक्षी को जाल में फँसाकर मुझे भी अतुल धन-सम्पत्ति प्राप्त करने का प्रसंग आया है। महात्मा को भी यह मालूम हो जायगा कि मैं किसी प्रकार भी बुद्धि में उनसे कम नहीं हूँ, वरन् अधिक ही हूँ। महात्मा नगर में रहकर धन प्राप्त करते हैं; किन्तु मैं जंगल में मंगल करती हूँ।'

'अब मैं रसोई बनाने जाता हूँ। और बातें फिर आपसे कर लूँगा।' चन्द्रशङ्कर ने कहा।

इसी समय सीता दयामयी के शयनगृह में आई और अधिष्ठात्री को उद्देश्य कर कहने लगी—'स्वामिनि ! भोजन में अभी थोड़ा विलम्ब है, आप किस स्थान पर भोजन करेंगी। जैसी आज्ञा हो वहाँ बैठने की व्यवस्था कर दूँ।'

'मैं शृङ्गारगृह में भोजन करूँगी। पर, सीता ! मेरे भोजन की व्यवस्था किसी दूसरे को सौंप कर तू हमारे इस अतिथि की सेवा में हाजिर रह। यह किसी दूसरे के हाथ का बनाया नहीं खाते। इससे इनकी जरूरत की वस्तुएँ भांडार से लेकर किसी स्वच्छ स्थान में पकाने का प्रबन्ध कर दे। जब तक यह भोजन करें तब तक इनकी सेवा में तत्पर

रहना। किसी बात में त्रुटि न होने पावे; इसकी बराबर सँभाल रखना।' दयामयी ने सीता को आज्ञा दी।

'जो आज्ञा।' सीता ने कहा।

सीता चंद्रशंकर को लेकर वहाँ से चली। मार्ग में अनेक प्रकार के विचार उसके मन में उठने लगे—'यह यात्री शाक्तसदन में आकर भी अपने हाथ से रसोई पकाने को तैयार है और यहाँ की विधि का निषेध करनेवाले का दयामयी स्वयं इतना सत्कार कर रही हैं इसका क्या कारण है ? इसकी आकृति देखकर विशेप पूज्य भाव उत्पन्न होता है और मेरे मनकी संदिग्धता और चपलता कुछ दूर होती जा रही है। यदि यह देव है तो इस दैत्यसदन में किसलिये आया है। अब तक किसी धर्मात्मा को यहाँ आते नहीं देखा है। आज यह कैसी नवीनता है। यहाँ तो जो कोई भी आता है वह आते ही मद्यपान कर अपनी थकावट मिटाता है, और परनारी-प्रेम-भोग से अपना पुरुष जन्म सार्थक करता है। विधि और निषेध माननें वालों को आश्रय देने की सख्त मनाही होने पर आज उन्हीं नियमों को अधिष्ठात्री क्यों भङ्ग कर रही हैं, इसकी कल्पना भी मैं नहीं कर सकती। इसमें कोई भेद अवश्य है। युक्ति से इस भेद को जाननें का प्रयत्न मैं करूँगी।'

सीता और चन्द्रशंकर दोनों नीचे के आँगन में आये। वहाँ एक स्वच्छ कोठरी दिखाकर सीता ने चन्द्रशंकर से कहा—'यह कोठरी आपको पसंद है?'

"हाँ, ठीक है; सर्व सामान मँगा दो'—चन्द्रशंकर ने कहा।

भोजन का सामान आजाने पर चन्द्रशंकर रसोई बनाने लगा। इधर-उधर देखकर सीता ने उससे पूछा—'महाशय! आप यहाँ किसलिए और क्यों पधारे हैं।

'केवल धर्म-जिज्ञासा को तृप्त करने के लिये।' चंद्रशंकर ने उत्तर दिया।

'आपकी धर्म जिज्ञासा इस शाक्तसदन में अवश्य तृप्त होगी।' सीता ने व्यंग पूर्वक कहा।

चंद्रशंकर लगभग समस्त भारतवर्ष में यात्रा किये था। उसे अनेक प्रकार के मनुष्यों से मिलने का प्रसंग आया था। इससे वह सीता के भाव को तत्काल समझ गया। इस शाक्तसदन में स्त्री होने पर भी इसके मन में शाक्तधर्म के प्रति तिरस्कार दिखाई पड़ता है—ऐसी शंका उसके मन में उदित हुई। चन्द्रशङ्कर ने नम्रतापूर्वक पूछा—'बाई, तुम कौन हो? अधिष्ठात्री बाई के साथ तुम्हारा क्या संबंध है?'

'इस शाक्तसदन मे जो कोई आता है उन सबका

और मेरी अधिष्ठात्री बाई का सेवक और स्वामी का संबंध रहता है। मैं समझती हूँ कि आप भी श्रीमती के सेवक होने के लिये यहाँ आये हैं। परन्तु आप किस वर्ग के सेवक होना चाहते हैं; इसका निर्णय हो जाय तो ठीक है।' सीता ने हसित मुद्रा से कहा।

'क्या यहाँ सेवक के दो वर्ग है? शाक्तधर्म में एकता का सिद्धांत व्यापक होने पर भी यह द्वैत-भाव कहाँ से आया?' चंद्रशंकर ने आश्चर्य से पूछा।

'आपके इस उत्तर से मैं यह अनुमान कर सकती हूँ कि इस विषय में अभी आपके लिए कुछ निश्चित नहीं हुआ है। इसका निर्णय करने का अधिकार अधिष्ठात्री को है। इस विषय में मैं कुछ कह नहीं सकती। किसी अज्ञात व्यक्ति के सम्मुख शाक्तसदन का भेद खोलनेवाला दण्डित होता है। यहाँ कुछ दिन रहने पर धीरे-धीरे सब बात आप ही प्रकट हो जायँगी।' सीता ने कहा।

चन्द्रशंकर के मन में उत्सुकता उत्पन्न करने वाला सीता का उद्देश्य सफल हो गया। चन्द्रशंकर ने आतुरता से पूछा—'क्या किसी प्रकार भी यहाँ का भेद नहीं बता सकती हो?'

'मैं निरुपाय हूँ।' सीता ने उदासीनता प्रकट की।

'सीता! तुम्हारे मन में यह शङ्का हो रही है कि कदाचित् तुम्हारी बात मैं दयामयी से कह दूँ तो तुम्हें भयङ्कर दण्ड भोगना पड़े। पर, तुम विश्वास रखो; मैं इतना नीच नहीं हूँ कि अपने में विश्वास करनेवाले के साथ विश्वासघात करूँ। यदि तुम्हें मेरे वचनों में विश्वास हो तो यह भेद मुझे बता दो; यदि विश्वास न हो तो एक अक्षर भी मत कहो।' चंद्रशंकर ने गंभीरता से कहा।

'यदि आप ऐसा कहते हैं तो मैं भी आपको बतला देना चाहती हूँ कि शाक्तसदन में कितने ही मनुष्य गुप्तचर का काम करते हैं और यदि कोई व्यक्ति यहाँ के भेदों के जानने की इच्छा से आया मालूम पड़ता है तो उसे छिप कर मार डालते हैं। मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या आपको मेरी बातों में विश्वास है?' सीता ने प्रतिप्रश्न किया।

'तुम्हारी बातोंपर पूरा विश्वास है।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'यदि ऐसा है तो मैं आपके चरणों में इतनी प्रार्थना करती हूँ कि अपनी धर्म-जिज्ञासा को तृप्त करने की आशा से इस शाक्तधर्म को भूलकर भी कभी स्वीकार न करें। यह धर्म-जिज्ञासा को तृप्त करने, धर्मोन्नति करने एवं धर्म का पोषण करने का स्थान नहीं है, वरन् जिस स्थान पर

धर्म में कलंक लगता है और अंत में निर्दयता से धर्म की हत्या की जाती है, वह नरक-स्थान यही शाक्तसदन है। धर्म-जिज्ञासा नहीं; किन्तु पाप-जिज्ञासा और कुत्सित कृति करने की यदि आपकी इच्छा हो तो यहाँ प्रत्येक प्रकार का पाप तैयार है। द्यूत, मद्यपान, व्यभिचार, असत्यभाषण, धर्मद्रोह, चोरी एवं हत्या इन सबकी यहाँ अत्यन्त प्रचुरता है। आपकी प्रत्येक पाप-वासना यहाँ सरलता के तृप्त हो सकती है।' सीता ने कहा।

'क्या इतना भयंकर स्थान है?' चंद्रशंकर ने पूछा।

'मेरे इतने थोड़े और निर्बल शब्दों से उसकी भयंकरता का अनुमान करना असम्भव है। यदि आप कुछ दिन यहाँ रहेंगे तो उन्हे मैं आपको प्रत्यक्ष दिखा दूँगी।'

'पर, जानकर इतने भयंकर स्थान मे तुम क्यों रहती हो।'

'यह मेरे दुर्भाग्य की कृपा है। मेरा कौमार्य बाल्यावस्था में ही भंग हो गया था।' यह शब्द कहते ही सीता की आँखों से अश्रु की धारा वहने लगी।

चंद्रशंकर के हृदय में एक बड़ा आघात लगा। उसकी आँखों से भी आँसू गिरने लगे। परस्पर हृदयभाव की एकता होने से सीता के मन में चंद्रशंकर के प्रति एक दूसरे

ही प्रकार का भाव उदय हुआ। परन्तु अपना भाव प्रकट करने का उचित अवसर न देखकर वह चुप रह गई।

चंद्रशंकर ने कहा—'सीता वाई! तुम इस शाक्तसदन में कैसे आई हो? किस जाति के माता-पिता की पुत्री हो?'

'मेरी कर्म-कथा बहुत विलक्षण है। आप सदृश सज्जन से सत्य बतलाने में किसी प्रकार की अस्वीकृति नहीं हो सकती, सुनिये—

सीता अपनी जीवन कथा कहने जा रही थी, इतने ही में वहाँ एक दूसरी स्त्री को आती देखकर उसकी जिह्वा रुक गई। वह स्त्री आते ही सीता से बोली—'महाशया दयामयी बुला रही हैं; शीघ्र चलो।'

सीता तुरत उस स्त्री के साथ चली गई। रसोई तैयार हो गई। चंद्रशंकर भोजन करके तृप्त हो गया। इतने में एक आदमी ने आकर उससे विनयपूर्वक कहा—'अतिथि महोदय! आपके रहने के लिए एक अलग कमरा ठीक किया गया है। आप वहाँ चलें और आराम करें। आपकी चरण-सेवा के लिए सीता वाई ने मुझे भेजा है।'

'चलो'—कह कर चंद्रशंकर उस आदमी के साथ एक बड़े और सजे-सजाये कमरे में गया। उस कमरे की शोभा

देखकर वह स्तब्ध रह गया। पश्चात् वहीं एक मृदुकोच पर वह लेट कर सोचने-विचारने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀

'सीता! उस कुर्सी पर बैठ जा; और मैं जो कहूँ, उसे ध्यान से सुन।' अपने शयनगृह में प्रवेश करती हुई सीता से दयामयी ने कहा।

आज्ञानुसार सीता के कुर्सी पर बैठ जाने पर दयामयी ने कहा—'सीता! शाक्तसदन की सब स्त्रियों से तुझपर मेरा अधिक विश्वास है। आज मैं तुझे एक गुप्त कार्य करने की आज्ञा देती हूँ; मुझे विश्वास है कि तू मेरे इस विश्वास का दुरुपयोग न करेगी।'

'अधिष्ठात्री के विश्वास का दुरुपयोग कर अपने मृत्यु को बुलाने की मेरी इच्छा नहीं है। अभी मैं अपने जीवन से इतनी आजिज नहीं आ गई हूँ।' सीता ने कहा।

'शाबास! तेरी सरीखी योग्य सबला स्त्री के अनुरूप ही यह कथन है। सुन, कल प्रभात में मेरा यहाँ से जाने का विचार है। मैं एक आवश्यक कार्य से हैदराबाद जाती हूँ और वहाँ पन्द्रह-बीस दिन रहनेवाली हूँ। मेरी अनुपस्थिति में यहाँ का प्रबन्ध करने के लिए मैं सारी

अधिकार तुझे दे जाना चाहती हूँ। सब लोग तेरी आज्ञा में रहेंगे और जो कुछ तू कहेगी वही करेंगे।' दयामयी ने विश्वास दिलाते हुए कहा।

'आप मेरा इतना गौरव बढ़ा रही हैं इसके लिए मैं अन्त:करण से आपका आभार मानती हूँ।'

'पर इस अधिकार के साथ ही तुझे एक दूसरा खास काम भी करना है; समझी ?' दयामयी ने गम्भीरता से कहा।

'वह कौन काम है ? मुझसे हो सकेगा या नहीं ! ऐसा तो नहीं है कि मुझसे हो ही न सके।' सीता ने कहा।

'चञ्चल, स्वरूपवती और वाचाल वनिता संसार में ऐसा कौन काम है जो नहीं कर सकती ? अन्य लोक में हो तो भगवती जानें।' दयामयी ने स्त्री-शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा।

'यदि आपका ऐसा विश्वास है तो भगवती एवं आप की कृपा से उस कार्य को यह दासी प्रतिपादित करेगी।' सीता ने कहा।

'कार्य यह है कि जिस अतिथि का सेवा-भार मैंने तुझे सौंपा है, वह हम लोगों का सुवर्णमृग है। ऐसा करना चाहिये जिससे वह अपने इस अखाड़े से निकलकर न जा सके। वह किसी प्रकार भी यहाँ से भाग न जावे, इसकी

बराबर देख-भाल रखना । उसके खान-पान, निद्रा, बात-चीत तथा विनोद आदि की यथार्थ व्यवस्था करती रहना ; जिससे शाक्तधर्म के तत्त्वों के प्रति उसका विशेष प्रेम बढ़े। यदि वह तेरे यौवन-कुसुम का भोगी-भ्रमर बनने की इच्छा करे तो उसे अपने यौवन-रस का सप्रेम पान करने देना और अन्य प्रकार से उसे आकृष्ट कर अनुरक्त करना । तू स्त्री-चरित्र और मोहनमन्त्र की विद्या में कुशल है । अतः तुझसे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है ।' दयामयी ने कहा ।

'इसमें लेशमात्र भी न्यूनता न होने पावेगी ।' सीता ने हृदय में घृणा होने पर भी बाहर से अनुराग दिखाते हुए कहा।

'पर जब तक यह दीक्षा लेकर शाक्तधर्म का उपासक न बन जाय तब तक अपने भेदोंमें से एक भी भेद इसके जानने में न आने देना । इसका बराबर ध्यान रखना; इसे बाहर ही तक रखना; सदन के गुह्य एवं आन्तरिक भाग में कदापि न ले जाना ।'

'आपने इस सूचना के देने का व्यर्थ ही परिश्रम किया । इस शाक्तसदन का भेद तो देव भी नहीं जान सकते, भला यह बेचारा बुद्धू क्या जानेगा ?' सीता ने कहा ।

'शाबास ! यदि सब शाक्तधर्मोपासिका सुन्दरियाँ तेरी

ही तरह चालाक और चपल हों तो थोड़े ही दिनों में सारा संसार शाक्तधर्म में चला आवे। अच्छा, चलो भगवती चाहेंगी तो वह समय भी एक दिन आ जायगा। पर, मेरी अनुपस्थिति में, जब तक तू सामयिक अधिष्ठात्री की तरह मेरे आसन पर रहे, तब तक तू अपना साधारण वस्त्र उतार मेरे सुन्दर वस्त्रों एवं अलंकारों को धारण करना।' यह कहकर दयामयी ने अपने तिजोरी की चाभी सीता को दे दी।

'पर आपका वस्त्र मुझे किस लिए धारण करना होगा।' सीता ने नम्रता से पूछा।

'यह गौरव बढ़ाने का साधन है और पुरुष को प्रेम-युद्ध में पराजित करने का सहायक आयुध (अस्त्र) है। वस्त्रा-लंकार से स्त्री के स्वाभाविक सौन्दर्य की वृद्धि होती है, और थोड़ा प्रेम करनेवाला पुरुष उसमें अधिक आसक्त हो जाता है। एक कवि ने कहा है—

'एक नूर आदमी हजार नूर कपड़ा।
लाख नूर टीपटाप कोटि नूर नखरा।'

'देवि! यह सब मैं आपके कथनानुसार ही करूँगी; परन्तु यदि आप रंज न मानें तो एक निवेदन करने की मेरी इच्छा है।' सीता ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा।

'विना किसी संकोच तू अपनी शंका मुझे बतला दे। वह शंका यदि अनुचित भी होगी, तब भी मैं क्षमा कर दूँगी।' दयामयी ने उत्साहित करते हुए कहा।

'शंका यह है कि जिस अतिथि को मुग्ध करने के लिए आप आज्ञा देती हैं उसमें मैं किसी प्रकार की विशेषता नहीं देखती। केवल इतना ही है कि वह सबल और तेजस्वी है। इसके पास धन नहीं है और आजकल की सभ्यता भी नहीं है। तिसपर भी आप इसके रूप पर क्यों मुग्ध हैं?'

'सीता! अभी तू संसार के विषयों से अनभिज्ञ है; इसलिए ऐसी शंका कर रही है। सबल और स्वस्थ शरीर-पुरुष के ये दोनों गुण स्त्री के हृदय को आकृष्ट करने के मुख्य कारण होते हैं। कोई भी स्त्री पुरुष के इन गुणों पर लुब्ध हो जाती है। ये गुण इसके पास हैं। अतः इसपर दृष्टि स्वतः न पड़ जाय यह संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त उसीके कथनानुसार यह आदमी अत्यन्त धनशाली भी है, और सन्तानहीन होने से जो धर्म, सब धर्मों से श्रेष्ठ इसे दिखाई पड़ेगा, उस धर्म की वृद्धि के लिए यह अपनी अगाध संपत्ति देनेवाला है। इसलिए शाक्तधर्म की श्रेष्ठता इसे सम्यक् रूप से बतलाना। शाक्तसदन के लाभ के लिए

इसकी संपत्ति लेना—इसे मूर्ख बनाने का यही मेरा मुख्य उद्देश्य है। अब तो तेरी शंका दूर हो गई होगी।' दयामयी ने किंचित् हसित मुद्रा से कहा।

'परन्तु इसमें धनशाली होने का कोई लक्षण नहीं दीख पड़ता। पाँव से चलकर करांची से आया है; हाथ से पकाकर खाता है। इन सबको कुलीनता की निशानी कैसे कह सकते हैं?' सीता ने दूसरा संशय प्रकट किया।

'वास्तव में धनवान पुरुष ऐसे ही होते हैं। इसे जंगल-मार्ग से यात्रा करनी थी। यदि कहीं सुंदर वेश-रचना रहती तो संभव था यह लूट लिया जाता। तू निरी मूर्ख ही रही। आजकल फैशन रखनेवाले जवानों को तू धनवान न समझना। दरिद्री और धनवान की कल्पना करते समय—भरा उछलता नहीं—यह कहावत सदा याद रखना। मैंने तुझे बतला दिया है कि इसके धन से हमलोग मौज करेंगे। मेरी, आज्ञा-पालन करने में तेरा भी लाभ है।' दयामयी ने अपने अनुभव को बताते हुए सीता की शंका का समाधान किया।

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।' सीता ने कहा।

'चिरजीवी हो।' दयामयी ने आशीर्वाद दिया।

तुरत ही दयामयी सभागृह में गई और वहाँ शाक्तसदन

के सब स्त्री-पुरुषों को एकत्रित कर बोली—'मैं एक आवश्यक कार्य से कल सुबह बाहर जाऊँगी। जबतक मैं वापस न आऊँ यहाँ की सामयिक अधिष्ठात्री सीता रहेगी। इसलिए मेरी आज्ञानुसार उसकी आज्ञा का पालन करना; उसके कहे अनुसार सब काम करना। यहाँ का नियम तो सब लोग जानते ही हो। उस विषय में कुछ अधिक कहना मैं आवश्यक नहीं समझती।'

'हम सब उनकी आज्ञा में रहेंगी'—सब लोगों ने अपनी संमति प्रकट की। वहाँ से दयामयी अतिथि के कमरे में गई। चंद्रशंकर पलँग पर बैठा हुआ था। वह उसके पास बैठकर कहने लगी—'मैं कल बाहर जानेवाली हूँ। वहाँ दस-पंद्रह दिन रहना है। मैंने अपना सब अधिकार सीता बाई को दे दिया है। वह आपकी यथोचित सेवा करेगी। आपकी जबतक इच्छा हो, यहीं रहें। यह सदन आपका है। मेरा अनुरोध है कि यदि आप मेरे आने तक यहीं रहें तो मुझपर बड़ी कृपा होगी।'

'बहुत अच्छा; पर जहाँ तक हो, शीघ्र दर्शन दीजिएगा। आपकी अनुपस्थिति में पंद्रह दिन से अधिक मुझसे न रहा जायगा।' चंद्रशंकर ने कहा।

'यथाशक्ति पंद्रह दिन के भीतर ही आऊँगी। पर, कदाचित् पाँच-सात दिन अधिक लग जाँय तब भी कृपया रुके रहिएगा। मुझसे मिले बिना कदापि न जाइएगा।

'तथास्तु।' चन्द्रशंकर ने कहा।

दूसरे दिन प्रभात में एक तेज चलनेवाली साँड़िनी पर सवार होकर दयामयी करांची की तरफ रवाना हुई।

* * * *

शाक्तसदन का सब अधिकार उस दिन सीता के हाथ में था। उसे किसी का भय न था। वह निर्भय थी। अब वह किसीके साथ बातचीत कर सकती थी। उसके ऊपर देखरेख रखने का अधिकार किसीको न था। वह दयामयी को सदन के बाहर पहुँचाकर लौटी और चारों ओर सतर्क दृष्टि से देखकर चन्द्रशंकर के कमरे में गई और प्रसन्नता दिखाती हुई बोली—'इस समय तो पाप टल गया और शैतान की मौसी चली गई। अब हमलोगों को एकांत में बातचीत करने एवं भेदों को देखने का समुचित अवसर मिल सकता है।'

'दयामयी यहाँ का सब अधिकार तुमको दे गई है यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'सचमुच मुझपर उसका पूरा विश्वास है। इसीका यह परिणाम है। मुझे खुशामद करने की सब कलाएँ आती हैं। दयामयी खुदामद की चेरी है। इससे इतने थोड़े समय में सब अधिकार मुझे दे देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसने एक बार मुझसे कहा था—'सीता, मेरे मरने के पीछे तू इस शाक्तसदन की अधिष्ठात्री हो जाय—इसकी व्यवस्था मैं कर जाऊँगी।'

'खुशामद करना भी तो पाप है। जान-बूझकर तुम यह पाप क्यों करती हो?'

'मान लिया कि खुशामद पाप है। पर, वह साधारण कोटि का पाप है। एक महाघोरतम पाप की यातना से बचने के लिये मैंने इस पाप को स्वीकार किया है। यदि दो शब्द झूठ बोलने से किसीके प्राण की रक्षा हो जाय तो वह झूठ बोलना असत्य-भाषण की तरह पाप नहीं माना जाता। मेरा यह भेद तुम धीरे-धीरे जान जाओगे।' सीता ने कहा।

इतने ही में एक दासी वहाँ चाय और जलपान लेकर आई। आज के जलपान में अण्डा और पावरोटी के बदले पूड़ी और मुरब्बे आदि वस्तुओं को देखकर चन्द्रशंकर ने पूछा—'आज जलपान का यह रङ्ग यकायक कैसे बदल गया?'

दासी को चले जाने की आज्ञा देकर सीता ने कहा—'मैं निषिद्ध पदार्थों का आहार पसन्द नहीं करती। पर विवश होकर यहाँ खाना पड़ता है। तुम उन वस्तुओं को नहीं खाते, इससे मैंने रसोइया को प्रस्तुत वस्तुएँ बनाने के लिये कह दिया था। इनको खाने में तुम्हें किसी प्रकार की असुविधा तो न होनी चाहिये।'

'यदि परहेज हो भी तो इस समय उसे दूर रखना होगा।' यह कहकर चन्द्रशंकर जलपान करने लगा। सीता ने कहा—'अब अपने हाथ भोजन बनाने के प्रपञ्च की क्या आवश्यकता है? तुम्हारे लिये पका भोजन आ जायगा और हम लोग साथ ही भोजन करेंगे।'

'अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा।'

'तुम हमारी अधिष्ठात्री बाई के संमुख धर्मात्मा बने थे; और दूसरे के हाथ की बनी रसोई को स्पर्श करने में भी पाप समझते थे। पर, क्या कारण है कि अब तुरत मेरे साथ दूसरे का पकाया हुआ भोजन करने के लिए तैयार हो गये।' सीता ने मुस्कुराते हुए कहा।

'कारण यह कि तुम्हारी अधिष्ठात्री की अपेक्षा तुम्हारे में अधिक माधुर्य और आकर्षण है।'

'यह तो तुम मुझे खुश करने और आसमान पर चढ़ाने की बातें कर रहे हो। इसका असल कारण मुझे कुछ दूसरा ही भासित होता है।' सीता ने विनोदात्मक विवाद उपस्थित किया।

'यदि तुम्हारा यही विश्वास है तो यही सही। पर, उस कारण में जो हमारा भेद छिपा हुआ है, उसे मैं तुमसे अभी नहीं बतला सकता। उचित समय पर वह स्वतः प्रकट हो जायगा।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'बहुत ठीक।'

'परन्तु सीता, तुम अपनी जो कर्मकथा सुनाने वाली थीं उसे अब सुनाओ।' चन्द्रशङ्कर ने स्मरण दिलाया।

सीता ने आदि से अन्त तक अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी नर्मभरी कर्मकथा कह सुनाई। उसके कारुणिक जीवन की कथा सुनकर चन्द्रशङ्कर के हृदय में बड़ा शोक हुआ और वह आश्वासन देते हुये कहने लगा—'सीता मनुष्य के भाग्य में जो लिखा होता है वह कदापि टल नहीं सकता। विधि का लिखा कभी मिथ्या नहीं होता। जो होना था वह हो गया। अब इसके लिए शोक करना व्यर्थ है। तुमने जान-बूझकर अबतक कोई पापकर्म नहीं किया है।

इसलिए मेरे विचार से तुम निरपराध और पवित्र हो। यदि मुझसे हो सकेगा तो भविष्य में मैं तुम्हें सुखी करने का प्रयत्न करूँगा।'

'सज्जन सुहृद! मुझे सुखी बनाने की शक्ति ईश्वर में भी नहीं है। तुम तो एक साधारण मनुष्य हो। मेरे सुख की बात जाने दो। मैं दुख में पली हूँ और दुख ही में मरूँगी। पतित हो चुकी हूँ और पतितावस्था में ही प्राण त्यागूँगी।' सीता ने शोक से निःश्वास लेते हुए कहा।

'नहीं, नहीं, तुम पतित नहीं हो। जो व्यक्ति अपनी इच्छा से भ्रष्ट होता है वह पतित माना जाता है। यदि तुम अपने को पतित मानती हो तब भी यह भ्रष्टता की दाग मिट सकती है। वेश्याओं को भी मुक्ति मिलती है, तो क्या तुम्हें सद्‌गति न मिलेगी? अब तुम अपना जीवन सुधारो और पवित्र बनाओ।' साथ ही प्रभु-भजन में जीवन के शेष दिन बिताओ। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।' चन्द्रशङ्कर ने आश्वासन देते हुए कहा।

'इस यमसदन में पवित्रता धारण ही नहीं की जा सकती। चाण्डालों के घर में पवित्रता है; वेश्याओं के गृह में पुनीतता है। पर, इस शाक्तसदन से पवित्रता सौ योजन

दूर है। भगवद्भजन में मेरा स्वाभाविक स्नेह नहीं था। यदि दुष्ट लालचन्द मुझे दगा न दिये होता, तो मेरी यह दुर्दशा कदापि न होती। पति-सेवा करके 'सती' नाम से प्रसिद्ध होने की मेरी प्रबल इच्छा थी। परन्तु वह लालसा विफल हुई और आज मैं व्यभिचारिणी वेश्या के नाम से पुकारी जाने योग्य हूँ। नदी मे गिरकर मैं मरी नहीं; बल्कि जीती बच गई—यह मेरा दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?'

इस प्रकार पश्चात्ताप करती हुई वह मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ी। मूर्छा में उसे भास हुआ मानों किसी देव या देवरूप किसी पुरुष की गोदी में सिर रखकर वह सो रही है; और गर्मी अधिक होने के कारण वह देव पुरुष उसे पंखा डुलाता हुआ पास में खड़ी हुई एक दासी से अपनी अंजलि मे जल लेकर उसके मुख पर छिड़क रहा है। कुछ देर बाद मूर्छा से जगकर सीता ने देखा तो उसका सिर चन्द्रशंकर की जाँघ पर पड़ा है और पंखा झलता हुआ वह दासी के हाथ से जल लेकर उसके मुख पर छींटा मार रहा है। सीता, सचेत तो हुई; पर अभी उन्माद में थी। उसने चन्द्रशंकर से पूछा—'क्या तुम देव हो?'

'नहीं, मैं मनुष्य हूँ।'

'स्त्री या पुरुष ?'

'पुरुष ।'

'यदि पुरुष हो तो प्रकृति को साथ रखो और यदि तुम स्त्री हो तो यहाँ से भाग जाओ। कारण, यह राक्षसों की राजधानी है।' यह कहती हुई सीता पुनः अचेत हो गई। इससे शाक्तसदन में भयानक घबड़ाहट फैल गई।

२२

आलमचन्द और यशोदा को काशी से आये आज तीन-चार दिन बीत गये थे। पर, उनके आने की गाँव में कोई खबर न थी। वृन्दा ने उनको अपने घर में छिपा रखा था। महात्मा गोपालदास नित्य वहाँ एक बार आता था, पर आलमचंद के आगमन की बात उसे सर्वथा अज्ञात थी। दीवान आलमचन्द के नौकर तक भी अपने सेठ-सेठानी के हैदराबाद आने की बात नहीं जानते थे।

दोपहर का समय था। एक प्राइवेट कमरे में यशोदा, वृन्दा और दीवान आलमचन्द बैठे हुए थे। आलमचन्द ने कहा—'श्रीमती! हमें यहाँ छिपा रखने में आपका क्या उद्देश्य है—यह अब तक हम समझ नहीं सके। स्टेशन ही से आप हमें गुप्त रूप से यहाँ ले आईं और तभीसे

घर के बाहर नहीं निकलने देतीं। हम लोग एक तरह से मुरझा रहे हैं।'

'सचमुच बहन! घर जाने की मेरी बहुत इच्छा होती है। हैदराबाद आने पर भी हम घर न जा सकें, यह हमारा प्रबल दुर्भाग्य है।' यशोदा ने कहा।

'धैर्य धरो; शांत रहो; जिस कार्य के लिए आपलोग आये हैं; वह कार्य, यदि आप अभी प्रकट हो जाँय तो दस मिनट में विनष्ट हो जायगा। अपना कार्य सिद्ध हो जाने पर प्रतिदिन गाड़ी में बैठकर हैदराबाद नगर में दिन में दस बार चक्कर लगाते रहना। उस समय आपका हाथ पकड़ने वाला कोई न रहेगा।' वृन्दा ने आश्वासन के ढँग पर कहा।

'अभी तो कार्यसिद्धि का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ता। महात्मा रोज आता है और चला जाता है, परन्तु हमारे विषय मे आपलोगों के बीच कोई बात होती नहीं सुनाई पड़ती।' यशोदा ने चिन्तित मन से कहा।

'अब तक आपलोग अपने विषय में कोई खास बात न सुने हों इससे आपको निराश न होना चाहिये।' वृन्दा ने कहा।

'यह क्यों? क्या बिना कुछ बातचीत किये ही महात्मा

हमारी संपत्ति हमें सुपुर्द कर देगा। माँगे बिना तो माँ दूध भी नहीं पिलाती; फिर महात्मा पराई संपत्ति को हाथ में पाकर भला किस प्रकार छोड़ेगा! यह मैं नहीं समझ सकता।' आलमचन्द ने उदासीनता से पूछा।

'माँगे बिना कोई कुछ नहीं देता—यह जगत का सर्व-व्यापक नियम है। किन्तु प्रत्येक नियम में अपवाद होता है। उसी प्रकार यहाँ भी नियम का अपवाद अद्भुत दीख पड़ता है। महात्मा गोपालदास स्वयं अपने हाथ से राजी-खुशी के साथ एवं क्षमा-याचना करके तुम्हारी संपत्ति तुमको दे देवे; तब वृन्दा की अलौकिक बुद्धि की प्रशंसा करना। साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।' वृन्दा ने मार्मिक बात का उद्घाटन आरंभ किया।

'जो तुम्हारी इच्छा। अभी हमारी अवस्था ठीक उस नौका की तरह है जो भरी नदी में डूब रही हो। आलम-चन्द ने संदिग्धतासूचक वचन कहा।

'बहन, क्या तुम्हारा मन मेरे वचनों में विश्वास नहीं करता, क्या तुम्हें मेरे कामों में संशय हो रहा है? मुझमें विश्वास रखो। ईश्वर सब भला करेंगे।' वृन्दा ने कुछ दुखितभाव से कहा।

'बहन, हमारी बातों पर रुष्ट न होना। तुम्हें जो उचित समझ पड़े वही करो। हमारी स्थिति पागलों की-सी हो गई है। हमारे कहने-सुनने का कुछ ठिकाना नहीं रह गया है। जिसका धन चला जाता है उसका ईमान भी चला जाता है। अतः हमें क्षमा करना।' यशोदा ने मन में उमड़े दुःख को सँभालते हुये कहा।

'चिंता नहीं; मुझमें विश्वास रखकर जितने दिन मैं कहूँ उतने दिन तुम इस स्थान में छिपे रहो। आज महात्मा आनेवाला है। तुम लोग पास वाले कमरे में बैठकर हमारी बातचीत सुनो। संभव है, भविष्य में होने वाले परिणाम की कुछ मन्द कल्पना का भास इससे तुम्हें मिल सके।' वृन्दा ने कहा।

'जैसी इच्छा।' यशोदा ने सहमति प्रकट की।

यह बातचीत चल रही थी कि इतने ही में एक सेवक ने आकर महात्मा गोपालदास के आने की सूचना दी। पत्नी सहित आलमचन्द दूसरे कमरे में चले गये। थोड़ी ही देर बाद महात्मा का आगमन हुआ। आज वह अकेला न था; अपने साथ में वह एक शृंगार-मण्डित स्त्री को भी लाया था।

'आओ, आओ, श्रीमती दयामयी! आज आपने

कैसे कृपा की ? मैंने तो यह सुना था कि आप अपनी जन्मभूमि को चली गई हैं और फिर यहाँ आनेवाली भी नहीं हैं। अचानक आपको आज यहाँ देखकर यह प्रतीत होता है जैसे अमावस्या की रात्रि में पूर्णचन्द्र का उदय हुआ हो। हैदराबाद की भूमि को पवित्र करने का क्या कारण है ?' वृन्दा ने बहुत भावपूर्वक प्रश्न किया।

'कुछ भावुक स्त्रियों ने महात्माश्री से मुझे एकबार बुलाने का आग्रह किया था। महात्मा ने मुझे आने को लिखा और मैं चली आई। श्रीमती वृन्दा ! तुम्हारे दर्शन के लिए कुछ दिनों से मेरा मन तड़प रहा था। चलो, जीते-जी एकबार तुमसे भेंट तो हो गई। तबीयत तो ठीक है न ?' दयामयी ने विवेकपूर्ण उत्तर दिया।

'भगवान श्रीकृष्ण और आप जैसी साध्वी सुन्दरियों की कृपा से सब कुशल है। मेरी भी आपसे मिलने की बड़ी साध थी, और उस लालसा को आज पूर्ण हुआ देखकर मेरा मन आनन्द से उमड़ रहा है। आपको मेरा एक परोपकार कार्य करना है। आपके आजाने से वह अवश्य सफल होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।' वृन्दा ने बड़े विनम्रभाव से कहा।

'तुम्हारे समान एक परम वैष्णवी के कार्य में मैं सहायता कर सकूँ, भला ऐसी मेरी भाग्य कहाँ! तुम जो मुझे इतनी योग्य समझ रही हो इसका मैं तुम्हारा आभार मानती हूँ और प्रसन्नता से तुम्हारी सेवा करने को तैयार हूँ।' दयामयी ने मर्म को न समझकर सरलता से कहा।

'इसका नाम दयामयी है और परोपकार के लिए प्राण अर्पण करना इसका नित्य स्वभाव है।' महात्मा ने दयामयी की प्रशंसा करते हुए वृन्दा से कहा।

'महात्मा की साली महात्मा की ही तरह कलाविदा होंगी।' वृन्दा ने अत्यन्त गंभीर और मार्मिक कटाक्ष किया।

'वास्तव में मेरे ऊपर महात्माजी का जो इतना अनुग्रह है वह सब इनकी सज्जनता है।' दयामयी ने कहा।

'अच्छा, श्रीमती दयामयी! मेरी तरह विधवा होकर भी आप सौभाग्यवती सुन्दरियों के समान शृङ्गार-मण्डित हैं और आपने अपने शरीर को मनोहर बनाया है—इसका क्या कारण है?' वृन्दा ने विकट प्रश्न किया।

दयामयी तत्काल इसका उत्तर न दे सकी। वह विचार कर कहने लगी—'श्रीमती वृन्दा! तुम्हारे इस प्रश्न को सुनकर मैं आश्चर्य से दिग्मूढ़ हो गई। मेरे स्तब्ध और चुप

होने का कारण यह नहीं था कि इस शृङ्गार करने के समर्थन की मुझमें शक्ति न थी; किन्तु वैष्णवधर्म के गुप्त रहस्य को जाननेवाली एक वैष्णवी इस प्रश्न को क्यों और किस कारण से पूछती है, इसी पर रह-रह मुझे आश्चर्य हो रहा है। अपने वैष्णवधर्म के अनुसार छैल-छबीले श्रीनटवरलाल कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण अपने पति होते हैं, और वह अजर-अमर और शाश्वत हैं। इस संसार के क्षणभंगुर देहधारी पुरुष पति की मृत्यु होने पर स्त्रियों का सौभाग्यसिंदूर कभी नहीं मिटता। अपना सौभाग्य शाश्वत और अविचल है। इसीसे लोग मुझे 'सदा-सौभाग्यवती' के नाम से पुकारते हैं।'

दयामयी ने तत्त्वानुसार अर्थ करके अन्त में 'सदा-सौभाग्यवती' की सुन्दर आलोचना की। वृन्दा इसपर मन्द-मन्द मुस्कुराने लगी। सदा-सौभाग्यवती वेश्या को कहते हैं; यह वह भली प्रकार जानती थी। वह अपने मन में कहने लगी—'सचमुच में आजकल की कितनी ही वैष्णवी स्त्रियाँ 'सदा-सौभाग्यवती' कही जानेवाली ऐसी ही अधम हैं। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।' पुनः उसने दयामयी से कहा—'अब आज से अपनी भूल सुधारकर मैं आपको 'सदा-सौभाग्यवती' कहकर पुकारूँगी।'

'धन्यवाद। पर साथ ही मेरा यह भी उपदेश है कि तुम भी आज से सौभाग्यवती का शृङ्गार धारण करना आरंभ करो।' दयामयी ने उपदेश देते हुए कहा।

'मै केवल लोकनिन्दा के भय से इस कार्य को नहीं करती। अन्यथा मुझे स्वयं इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है।' वृन्दा ने कहा।

'बस, इस लोकनिंदा के भय एवं अंधरूढ़ियों ने अपने देश की उन्नति को अवरुद्ध कर दिया है। जब लोगों को अपनी रूढ़ियों के समर्थन में कुछ व्यावहारिक प्रमाण नहीं मिलते तब 'यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयं' कहकर अपने तर्क की पुष्टि करते हैं। पर, उनका यह कुतर्क है। जब तक हमलोग रूढ़िबन्धन को तोड़कर निरंकुशता और स्वतंत्रता से नहीं आचरण करेंगी तबतक अपने देश और समाज के उन्नति की आशा कदापि नहीं हो सकती।' दयामयी ने कहा।

दयामयी को मूर्ख और उन्मत्त जानकर वृन्दा इस विषय में कुछ अधिक कहना उचित न समझ कर एवं विषयान्तर करने के उद्देश्य से यकायक चिहुँक कर कहने लगी—'पर, श्रीमती! इन विवादों में आपका योग्य आदर-

सत्कार करना तो मैं भूल ही गई। आप जरा बैठ जायँ। मैं अभी आई।' कहकर वह पास के कमरे में चली गई।

'बेचारी बहुत भोली है।' दयामयी ने एकान्त जानकर महात्मा से धीमेस्वर में वृन्दा के विषय में अपना अभिप्राय कहा।

'यदि भोली न होती तो हमारे कपट-जाल में कैसे आती। इस प्रकार के भोले मनुष्यों की संख्या हिन्दुस्तान में अधिक है, और हमारा इसीमें लाभ है। यदि सभी आदमी चतुर होते तो हमलोग भी अकाल पीड़ितों की तरह बन जाते।' महात्मा ने कहा।

'पर इसकी सब संपत्ति हमारे हाथ में कब आनेवाली है। इस हवेली में वैभव-विलास-भोगने के लिए मेरा मन आतुर होकर तड़फड़ा रहा है।'

'समय आने पर यह वैभव अपने अधिकार में आ जायगा। जिस दिन इस संपत्ति का स्वामित्व अपने को मिलेगा उस दिन तुम्हारे साथ विलास-भोग करने की अभिलाषा से ही मैंने तुमको खासकर यहाँ बुलाया है। अभी अधीर होने की कोई बात नहीं हैं।' इस प्रकार कहता हुआ महात्मा दयामयी का अधरामृत पान करने लगा।

'थोड़ी ही देर बाद श्रीमती वृन्दा लौट आई। पर, इस

समय वह अकेली न थी। उसके साथ मोहनलाल था। वृन्दा ने मोहन से कहा—'देखो, मैं ऐसी ही मोहनमाला और चूड़ी अपनी रोहिणी के लिए बनाने को कह रही थी।'

'जरा उतरवाकर हमें दिखा दो।' मोहनलाल ने कहा।

'दयामयी! अपनी मोहनमाला और मोती की चूड़ी कृपया जरा उतार दीजिए; इसी नमूने का भूषण मुझे रोहिणी के लिए बनवाना है।' वृन्दा ने प्रार्थनापूर्वक कहा।

'श्रीमती! उतारकर दे दो।' महात्मा ने कहा।

दयामयी ने बिना कुछ कहे अपनी मोहनमाला और चूड़ी उतारकर दे दी। उन वस्तुओं को हाथ में लेकर मोहन-लाल ने कहा—'यदि ये वस्तुएँ आपको दो-चार दिन के बाद मिलें तो कोई हर्ज तो न होगा। नमूने के लिए सोनार को इन्हें दिखाना होगा, तभी वह ठीक बना सकेगा।'

'कोई चिंता नहीं, आवश्यक हो तो आठ दिन रखना। पर, देखना चूड़ी की मोती कहीं टूट न जाय; इसकी सँभाल रखना। कार्य होने पर श्रीमती वृन्दा को दे देना; मैं इनके पास से ले लूँगी।' दयामयी ने आंतरिक इच्छा न होने पर भी वाह्य उदारता और शिष्टाचार दिखाने में कोर-कसर न की।

इसके पश्चात् यहाँ-वहाँ की अनेक बातें चलने लगीं।

इतने ही में दो दासियाँ एक थाल में चाँदी के कटोरे में दूध लेकर आईं। वृन्दा ने एक कटोरा उठाकर महात्मा को दिया, दूसरा दयामयी को और तीसरा मोहनलाल को दिया। चौथा कटोरा अपने हाथ में लेकर उसने महात्मा को संबोधित करके कहा—'महात्माजी! अरे भूल हो गई। मेरे प्यारे देवरजी! आपको यह केसरिया दूध बहुत प्रिय लगता है। उस दिन समाधि टूटने पर आपने जो दूध पिया था, वही दूध खास करके मैंने आज तैयार कराया है। कृपा करके आप पी लो।'

'बड़ी बहू! तुम्हारी इस भक्ति को देखकर मेरा चित्त अतिशय प्रसन्न है। श्रीकृष्ण तुम्हारी सब आशा सफल करें और तुम गोलोक में निवास करने के अधिकारिणी होओ।' यह कहते हुए महात्मा दूध गटगटा गया।

'श्रीमती! तुम्हारे कटोरे का दूध) सादा है। ऐसा क्यों? यह पंक्ति भेद काहे?' तीव्रदृष्टिवाली दयामयी ने वृन्दा के कटोरे का दूध देखकर कहा।

'श्रीमती! मेरे कटोरे का दूध सादा न था। यह कोको था। मुझे निरा दूध नहीं पचता। इससे मैं सदा कोको मिलाकर पीती हूँ।' वन्दा ने कहा।

वृन्दा ने यह संतोष-कारक उत्तर दिया तो अवश्य; पर, उसके केसरिया दूध न पीने का यह उद्देश्य न था। जब से वह कलकत्ता में विधवा सरलादेवी का आचार-विचार देख आई है तभीसे कठिन वैधव्यव्रत-पालन का उसने निश्चय किया था। सहसा कामोद्दीपक और स्वादिष्ट-भोज्य तथा पेय-पदार्थ का वह सेवन न करती थी।

दूध पीने और ताम्बूल सेवन के पीछे मण्डली विलग हुई। दयामयी और महात्मा गाड़ी में बैठकर हैदराबाद की ओर गये। उनके जाने के पश्चात् वृन्दा ने मोहनलाल से महात्मा की सब बातें कहकर उसे अपना विश्वस्त बना लिया। इन सब बातों को सुनकर मोहन आश्चर्यचकित होकर बोला—'श्रीमती, क्षमा कीजिये। इस महात्मा और इसकी तरह आजकल के साधुओं के विषय में हम-सरीखे लोगों को बड़ा तिरस्कार होता है। आपके मकान में इस महात्मा नामधारी को आते देखकर दो-चार बार मेरे मन में आपके सदाचार की शुद्धता के विषय में अनेक कुशंकाएँ होती थीं; परन्तु आज आपके इस भेद को खोल देने से वे शंकाएँ निर्मूल हो गईं, और आपके पवित्र उद्देश्य के लिए आपको धन्यवाद दिये विना अब मुझसे नहीं रहा जाता।'

'अच्छा अब यह बातें जाने दो। पंद्रह दिन के बाद हमें पूरा नाटक खेलना होगा, और उस दिन मैं जो कुछ कहूँ उसके अनुसार कार्य तुम्हें करना पड़ेगा। अभी यह बात किसीसे न कहना।' वृन्दा ने कहा।

'इस समय मैं आपसे जाने की आज्ञा लेने आया हूँ। करांची से एक अँग्रेजी-सिंधी समाचार पत्र निकलता है। उसके पूर्व सम्पादक के परलोकवासी हो जाने से वह जगह खाली है। यद्यपि गवर्नमेन्ट सर्विस से इसकी तनखाह कम है; परन्तु समाचार-पत्रों से देश सेवा होती है। इसीसे इस व्यवसाय को मैं अधिक पसन्द करता हूँ। अतः रुचि के अनुकूल होने से मैंने इसे स्वीकार कर लिया है। कल प्रातःकाल मुझे करांची जाना है। अस्तु उस दिन मैं किस प्रकार उपस्थित रह सकता हूँ ?' मोहनलाल ने कठिनाई दिखाते हुए कहा।

'यह काम बहुत सुंदर है। समाचार-पत्रों से हमलोगों को भी लाभ है, और तुम्हारे सम्पादक होने से हमलोग जो इच्छा करेंगे वह कर सकेंगे। अच्छा, अधिक नहीं तो जब मैं तार भेजूँ तो दो-एक दिन के लिए तुम्हें यहाँ आना पड़ेगा। इसके लिए तुम मुझे अपना वचन दो।' वृन्दा ने कहा।

'मैं अवश्य आऊँगा।' मोहनलाल ने कहा।

'यह मोहनमाला और चूड़ी, तुम अपने पास रखो। महात्मा या दयामयी को ये चीजें पुनः नहीं देनी हैं। उचित अवसर पर इनके असल स्वामी को दिया जायगा।' वृन्दा ने कहा।

'जो आज्ञा' कहकर मोहनलाल रोहिणी से मिलने नीचे चला गया। वृन्दा ने आलमचंद और यशोदा को बाहर बुलाकर पूछा—'तुमलोगों ने कुछ देखा या नहीं ?'

'महात्मा की साली मेरे आभूषणों को पहन कर आई थी। उसे देखा और तुमलोगों की बातें भी सुनीं।' यशोदा ने कहा।

'इस कुलटा को यहाँ आई देख मेरा क्रोध अधिक बढ़ गया था। अब देखें, भविष्य में क्या-क्या होता है। हमारे हृदय में कुछ आशा का अंकुर उद्भव हो रहा है।' आलमचंद ने प्रसन्नवदन होकर कहा।

२३

जिस समय की यह घटना वर्णन की जा रही है उस समय सिंध में विद्या-विषयक अनेक सुधार हो चुके थे और उसके फलस्वरूप सिंधप्रान्त के करांची, हैदराबाद एवं शिकारपुर आदि नगरों में सिंधी और अँग्रेजी भाषा में कितने ही समाचार-पत्र तथा मासिक पत्रिकाएँ निकल रही थीं। करांची से अँग्रेजी और सिंधी-

भाषा में निकलनेवाला 'सिंधजर्नल' तथा हैदराबाद का 'प्रभात' ये दो ही पत्र अधिक प्रसिद्ध थे। उनकी प्रतिष्ठा जनता तथा सरकार में अच्छी तरह बैठ गई थी। प्रतिष्ठा का मूल कारण यह था कि इन दोनों पत्रों में राजकीय और सामाजिक विषयों की निष्पक्षपात और द्वेष-रहित आलोचना होती थी, और दोनों पत्रों के सम्पादक अद्वितीय विद्वान और न्याय-बुद्धिशाली थे। उनकी लेखनी से कदापि असत्य या अन्याययुक्त शब्द पत्र में नहीं निकलते थे। दोनों पत्रों के संपादक थोड़े ही दिनों के अन्तर पर अचानक स्वर्गवासी हो गये। लोगों ने समझा अब दोनों पत्रों का भी अन्त हो गया। अनेक अंशों में उनकी यह आशंका ठीक भी थी। परन्तु ईश्वर अपना कार्य करता ही रहता है। इससे 'प्रभात' को तुरत ही एक संपादक मिल गया। परन्तु 'सिंधजर्नल' को न मिल सका। इसी समय मोहनलाल बंबई से बी० ए० पास कर चुका था, और उसकी विद्वत्ता तथा चरित्र के विषय में सिंध-कालेज के प्रोफेसर साहेबसिंह चन्दासिंह साहनी अच्छी धारणा रखते थे। इससे उन्होंने मोहनलाल से इस पत्र का संपादक बनने का आग्रह किया, और मोहनलाल अपनी

अभिरुचि के अनुसार व्यवसाय होने से इस पद को स्वीकार कर लिया।

मोहनलाल 'सिंध-जर्नल' आफिस में गया। प्रो० साहनी वहाँ बैठे हुए थे। उन्होंने मोहनलाल से कहा—'यह संपादक का आसन है। बस, आज अभी से संपादकीय कार्य आरंभ करो।'

'गुरुवर! आप जो मुझे इतना मान दे रहे हैं, उसके लिए मैं आपका—एक दीन छात्र—अन्तःकरण से आभार मानता हूँ। परन्तु इस आसन पर बैठने के पूर्व मुझे एक प्रार्थना करनी है। आशा है, आप सुनकर अप्रसन्न न होंगे।'

'खुशी से कहो।' प्रो० साहनी ने कहा।

'यह सिंध-जर्नल एक प्रतिष्ठित समाचार-पत्र है। जनता में इसका अच्छा प्रभाव है। इससे एक बात के लिए मै अभीसे स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ, जिससे आपस में किसी प्रकार का मनोमालिन्य संभव न हो सके। कारण यह कि समाचार-पत्रों के सम्पादक और न्यायाधीश दोनों के कर्तव्य एक होते हैं। अतः मुझे इस कार्य में पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। किसी समय किसी विषय में स्वामी की ओर से मुझपर दबाव न पड़ना चाहिये। जिस दिन

हमारी इस स्वतंत्रता में बाधा पड़ेगी उस दिन विवश होकर मैं इस पद से अलग हो जाऊँगा।' मोहनलाल ने अपने अंतःकरण का भाव व्यक्त किया।

'इस प्रकार का कोई दबाव कभी भी तुम पर न डालने का मैं बचन देता हूँ। मेरी ओर से तुम किसी प्रकार का संशय न करो।' पत्र के स्वामी ने तुरत ही कहा।

'मि० मोहनलाल! तुम्हारी शंका अब निवृत्त हो गई। पर मैं एक हितैपी की तरह तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि आजकल भारतवर्ष में सर्वत्र अशांति और असन्तोष फैला हुआ है और राजकीय वातावरण अत्यन्त दूषित हो गया है। इससे जो राजकीय लेख तुम्हे लिखना हो उसे थोड़ा सँभाल कर लिखना; स्वतंत्रता और सत्यशीलता कभी न छोड़ना; व्याख्याताओं की तरह उद्दण्ड और उच्छृंखल न हो जाना। यद्यपि तुम्हारी तरह शांत और विवेकी पुरुष को यह उपदेश देने की आवश्यकता न थी; किन्तु मैंने स्वामी की ओर से कर्तव्य का पालन किया है।' प्रो० साहनी ने प्रेम और ममत्वपूर्ण उपदेश देते हुए कहा।

'गुरुवर! आपका उपदेश शिरोधार्य है। इंगलैंड के प्रमुख राज्य-संचालक, समाचार-पत्रकार और लेखकों के

विषय में जहाँ अपने देश के लिए एक ओर उच्च-धारणा और विचार रखते हैं, वहीं भारतवर्ष में प्रेस-ऐक्ट ऐसे अमानुषिक नियम बनाकर यहाँ के प्रेसों की स्वतंत्रता में बाधा डालते हैं। लार्ड मार्ले ने पत्रकारों और ग्रन्थकारों को उद्देश्य कर कहा था—'अपना राज्य और अपनी भाषा दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्र की एकता में जो बाधाएँ हैं उनमें भाषा की तरह बलवान बन्धन दूसरा कोई नहीं है। देश के जितने बड़े-बड़े लेखक हो गए हैं वे अन्य पराक्रमी, वीरों और योद्धाओं की तरह इस साम्राज्य-भवन को दृढ़ करने में समान सहायक हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य इस बात को स्वीकार करता है कि वर्तमान समय में मुद्रण-कला; विचार एवं सार्वजनिक कर्तव्य की मूलभूमि है; और जगत के व्यवहार एवं ज्ञान का संपादन करने के लिए मुख्य द्वार यही है। मुद्रण से ही भाषा और भाषा पर ही वर्तमान पत्र और ग्रन्थ दोनों आश्रित हैं।' जिस प्रकार यह सिद्धान्त अँग्रेजी राज्य के लिए सत्य है, उसी प्रकार अन्य सब राष्ट्रों के लिए भी सत्य हो सकता है। वरन् यह नियम तो भारतवर्ष के लिए अधिक उपयोगी जान पड़ता है। यहाँ छापेखानों की स्वतंत्रता अत्यन्त आवश्यक है।'

'प्रिय मोहनलाल ! तुम्हारा कहना अक्षर-अक्षर सत्य है। ग्रन्थकर्ता और पत्र-पत्रिका के संपादक राष्ट्र के गुरु हैं। यह गुरु-शिष्य का संबन्ध १९ वीं शताब्दि के मध्य से अँग्रेजी राज्य के आगमन के साथ हुआ है। इसके साथ जाति और धर्म का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पत्र के संपादक और ग्रन्थकार अन्य लोगों की अपेक्षा विशेष विचारशील और बुद्धिमान होते हैं। उन्हें सब प्रकार का ज्ञान रहता है। निरपेक्ष होते हैं। वे जो कुछ लिखते हैं सत्य और लोकहित का ध्यान रख कर लिखते हैं। यह बहुधा सब लोग स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार गुरुवर्ग के प्रति शिष्य की पूज्यबुद्धि होती है वैसी ही पूज्यबुद्धि, पत्र-संपादकों और ग्रन्थकारों के विषय में सामान्यतः बहुजनसमाज की होती है। पत्र-पत्रिकाओं का पढ़ना गुरु-उपदेश लेने के कार्य के समान लोक में आवश्यक और पवित्र माना जाता है। तुम्हारे विचार उत्तम हैं। आशा करता हूँ कि तुम्हारी लेखनी से 'सिंध-जर्नल' की कीर्ति में अवश्य वृद्धि होगी। मैं कोई बड़ा विद्वान नहीं हूँ; पर अनुभव से सारासार विचार करने की शक्ति ईश्वर की कृपा से मुझे प्राप्त हुई है। यह पत्र अर्धसाप्ताहिक है। परसों इसका अंक निकलेगा।

इसके लिए अग्रलेख स्वयं लिख डालो तो अच्छा हो।' पत्र के स्वामी ने कहा।

'आज मैं जाना चाहता हूँ। अवकाश के समय कालेज रेजिडेन्सी मे आकर बराबर मिलते रहना।' प्रो० साहनी ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

'मै अवश्य आऊँगा। समय पर आपके सलाह की आवश्यकता पड़ेगी ही।' मोहन ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

नवीन सभ्यता के अनुसार शेकहैन्ड करके प्रोफेसर साहब चले गये। पत्र के स्वामी ने मोहनलाल के रहने एवं खाने-पीने की सब उचित व्यवस्था कर दी।

❀ ❀ ❀ ❀

मोहनलाल को करांची मे सम्पादकीय भार लिए आठ दिन हो गये थे। उस दिन प्रभात मे वह अपने आफिस में पत्र के लिए एक लेख लिखने बैठा था कि इतने ही में चपरासी ने आकर उसके सामने एक विजिटिंग कार्ड रख दिया। कार्ड के ऊपर का नाम पढ़कर आगन्तुक को बुलाने के लिए चपरासी को उसने आज्ञा दी। चपरासी आगन्तुक को आफिस में बुला लाया।

'क्यों मि० बाधूमल, इतने सुबह आने की क्या आव-

श्यकता पड़ी, आप घबड़ाये हुए क्यों दिखाई पड़ते हैं ?' मोहनलाल ने पूछा।

'श्रीमती वृन्दा की पालिता पुत्री हमारे यहाँ परसों आई थी, और दो-चार दिन यहाँ रहकर उसे हैदराबाद वापस जाना था। इतने में अचानक विगत रात्रि वह हमारे बँगलेमें से हरण कर ली गई। मुझे रात को तीन बजे यह सूचना मिली, और तबसे मैंने उसकी बहुत खोज-ढूँढ़ की। पर, अब तक कोई अनुसन्धान न मिला। देखो, यह उसका फोटोग्राफ है। इसका ब्लाक बनवाकर कल के अंक में प्रकाशित कर दो, और उसके साथ ही यह भी विज्ञापन कर दो कि जो कोई इस लड़की का पता लगा देगा उसे पाँच हजार रूपये पुरस्कार दिये जाँयगे। मैं उसकी खोज में निरन्तर लगा हूँ। तुम अपने हिसाब का बिल हमारे यहाँ भेज देना। अब मैं जा रहा हूँ।' यह कह-कर बाधूमल तुरत वहाँ से चले गये।

वृन्दा की पालिता पुत्री का नाम सुनकर मोहनलाल एकदम घबड़ा गया; परन्तु अपने शोक को दबाकर उसने बाधूमल के सामने गंभीरता धारण कर ली। उसने उनके जाने के बाद फोटो निकालकर देखा। हाथ से होल्डर गिर

पड़ी। शरीर शिथिल हो गया, और फोटो देखते-देखते वह मूर्छित होकर नीचे गिर पड़ा।

कुछ देर के बाद जब उसकी मूर्छा टूटी तब वह उठा और हाथ में फोटो लेकर आँसू बहाते हुए स्वगत कहने लगा—'रोहिणी! चिन्ता न करना। तुम्हारे साथ अत्याचार करनेवाले से इस अक्षम्य अपराध का बदला मैं अवश्य लूँगा।'

आवेश में आकर वह उतावली से जूता और टोपी पहन कर आफिस के बाहर चला गया।

२४

मूर्च्छा से जगकर सीता ने शाक्तसदन के शक्ति-उपासक स्त्री-पुरुषों को एकत्रित कर कहा—'विगत रात्रि में मुझपर दारुण संकट आनेवाला था; किन्तु वह विघ्न इतने ही से टल गया और महाकाली की कृपा से मेरे प्राण की रक्षा हो गई। देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा है—'तुम इस संकट, विनाश और नूतन जीवन-प्राप्ति के उत्सव में शक्ति-भक्तों को अपने धर्म-तत्त्वानुरूप भोजन और मद्य से तृप्त करो। अन्यथा यह संकट पुनः उपस्थित होगा और तुम्हारा प्राण लेकर ही जायगा।' इसलिये आज मैं तुम सब लोगों को अपने जातीय धन से मद्य और मांस-द्वारा तृप्त

करने का विचार करती हूँ। सब तैयारी कर रखो। संध्या-समय यह समारम्भ मनाया जायगा; जिससे रात्रि में सब लोग सुख से विश्रांति ले सकें।'

अधिष्ठात्री की यह आज्ञा पाकर भण्डारी ने सब आवश्यक सामान निकाल कर रख दिया। शाक्तसदन में भोजन समारंभ की खूब तैयारी होने लगी। संध्या होते ही देवी का विधिवत् पूजन हुआ; और बाद मदिरा-पान आरंभ हुआ। मदिरा का भंडार अधिष्ठात्री के अधिकार में होने से किसी प्रकार की कृपणता न होने पाई। सीता ने मद्य के बोतलों को इतनी अधिक संख्या में मँगाया था कि उसकी गंध से शाक्त स्त्री-पुरुष उन्मत्त हो उठे। मदिरापान के पश्चात् लोगों ने यथेष्ट रूप से मांस-भक्षण किया। नशे के कारण सब लोग इतने प्रमत्त हो गये कि उनमें शुद्ध बोलने की शक्ति तक न रह गई। द्वारपालों को भी इस उत्सव में भाग लेना पड़ा था। अतः शाक्तसदन में एक भी मनुष्य इससे न बच सका। सब-के-सब भोजन करने के बाद जैसे-तैसे लुढ़कते हुए अपने-अपने शयनस्थान में जाकर सो गये। चारों ओर शांति और निस्तब्धता छा गई। केवल सीता और चन्द्रशङ्कर होश में थे।

चंद्रशंकर ने तो मद्य-मांस का स्पर्श तक नहीं किया था; किन्तु सीता को विवश होकर उसमें नाममात्र के लिए भाग लेना पड़ा था। चारों ओर सन्नाटा हो जाने के बाद चंद्रशंकर जब दयामयी के कमरे में भोजन करने को बैठा, उस समय सीता ने कहा—'आज का यह समारंभ मैंने किस हेतु से किया है, क्या इसकी कल्पना कर सकते हो?'

'मैं ठीक कल्पना तो किसी प्रकार भी नहीं कर सकता। पर, समझता हूँ कि तुम्हारे शाक्तसदन के किसी नियम के अनुसार यह उत्सव मनाया गया है।' चंद्रशंकर ने कहा।

'तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं है। समारंभ को मैंने एक विशेष उद्देश्य से किया है। इस शाक्तसदन का बाह्य-भाग रमणीय होने पर भी इसका आंतरिक स्वरूप कितना और कैसा भयंकर है, यह प्रत्यक्ष तुम्हे दिखाने के लिये मुझे आज यह योजना करनी पड़ी है। इस भेद को बताते हुए यदि कोई मुझे देख ले और यह बात दयामयी या गोपाल-दास जान लेवें तो उसी समय मेरी हत्या कर डालेंगे। यह निश्चित है। इसीसे मैंने इन सबको अचेत किया है। कल सुबह नौ बजे के पूर्व इस मद्य की निद्रा से कोई जग नहीं सकता। कारण कि मदिरा में एक बहुत तीव्र मादक पदार्थ

मैंने मिला दिया है। अब थोड़ी देर बाद शाक्तसदन के गुप्त भाग में ले चलूँगी और वहीं संसार के नाना प्रकार के नरकों का दर्शन कराऊँगी। भोजन करके यह काला वस्त्र पहन लो तब तक मैं अपने कमरे से वस्त्र बदल कर आती हूँ।' सीता ने कहा।

'सीता! मेरे कारण तुम्हें यह परिश्रम करना पड़ रहा है। इसके लिये मैं तुम्हारा अत्यन्त आभारी हूँ। इन सब उपकारों के बदले मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ और क्या कर सकता हूँ—यही विचार मेरे मन में उठा करता है।' चंद्रशंकर ने कहा।

'इसका विचार अभी करने की आवश्यकता नहीं है। जब इसका उचित प्रसङ्ग आवेगा तो मैं अपने श्रम का पुरस्कार स्वयं माँग लूँगी, और मेरा यह विश्वास है कि तुम उसे अवश्य मुझे दे सकोगे।' यह कह सीता वस्त्र बदलने दूसरे कमरे में चली गई। भोजन कर चंद्रशंकर काले वस्त्र को पहन सीता की बाट जोहता बैठा रहा। थोड़े ही समय में सीता भी काले रंग का पुरुष वेश धारण कर आई और एक हरीकेन लैम्प जलाकर चंद्रशंकर से बोली—'चलो उठो, अब विलंब करने का कोई कारण नहीं है। हमलोगों को इस समय किसी का भय नहीं है।'

चंद्रशंकर तैयार था। अपने कमरे का ताला बंदकर चंद्रशंकर को साथ ले, सीता आंगन में गई। वहाँ से वह शाक्तसदन की ओर चली। ताला खोलकर भीतर से सीकड़ चढ़ाकर हरीकेन के मंदप्रकाश से अंधकार को हटाती हुई वह आगे-आगे चलने लगी। पहले वह शाक्तसदन के उस भाग में गई, जहाँ गोपालदास के पदवीदान का उत्सव मनाया गया था। उसने उस उत्सव का वर्णन किया। इधर-उधर देखकर सीता ने भूमि के एक गुप्त द्वार को खोला। भूगर्भ में उतरने के लिये सीढ़ियाँ दिखाई पड़ीं। दोनों नीचे उतर गये। लगभग सौ सीढ़ी उतरने के बाद दोनों भूगर्भ मे चलने लगे। वहाँ एक सुंदर इमारत में कोठरियों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ीं। इनमें मजबूत ताले बंद किये गये थे। सीता ने आलमारी से चाभियों का एक झब्बा निकाला और ताला खोलकर एक कोठरी में पैठ गई। इसमें बेड़ियाँ, हथकड़ियाँ, हथौड़े आदि वस्तुएँ दिखाई पड़ीं। चंद्रशंकर ने पूछा—'एक भयङ्कर कारागार की तरह ये वस्तुएँ इस मंदिर में किस कारण रखी गई हैं।'

'यह शाक्तसदन भी एक भयंकर कारागार है। जब कोई स्त्री या पुरुष शाक्तधर्म की आज्ञा अथवा रुढ़ि का

अनादर कर भागने का प्रयत्न करता है, तो वह इसी स्थान पर कैद कर दिया जाता है, और उस समय इन साधनों का उपयोग होता है। सरकारी कैदखाने से तो दण्ड की अवधि समाप्त होने पर अपराधी मुक्त कर दिया जाता है। पर, इस कारागृह में स्त्री या पुरुष अपराधी निर्णीत होने पर मरण-पर्यन्त मुक्ति नहीं पाता। यही इस कारागृह की विशेषता है। जब इसमें कोई बंदी यातना से मर जाता है तब वह यहीं एक बड़े खड्ढे में डाल दिया जाता है।' सीता ने कहा।

वहाँ से निकल कर वे दूसरे कमरे में गये। वहाँ जीवित मनुष्य को नाना प्रकार की यंत्रणाओं—मरण-तुल्य वेदनाओं को देने के लिए कितने ही यंत्र संग्रह करके रखे हुए थे। उनका परिचय देती हुई सीता कहने लगी—'लोग मृत्यु को महाभयंकर और दुखद मानते हैं। पर, इन यंत्रों-जैसी भयंकरता मृत्यु में भी नहीं होती। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। देखो, इस यंत्र के बीच मे अपराधी को बैठाकर यंत्र चला देने से पहले उसका आधा हाथ, आधा पाँव और अंत में नाक और सिर आपस में जुड़कर काँप उठते हैं, और अपराधी असह्य यातना भोगकर मृत्यु की शरण में चला

जाता है। इस दूसरे यंत्र में मनुष्य को रख कर यंत्र चलाते ही उसका सब चमड़ा उखड़ जाता है और उस अपराधी के शरीर से निकले हुए रक्त को शाक्तलोग आनंद से अमृतपान करते हैं। उधर देखो, इस पात्र में रुधिर इकट्ठा होता है। इस तीसरे यंत्र में चारों ओर कीलें जड़ी हैं। इसके बीच में ज्योंही मनुष्य रखा जाता है, त्योंही यंत्र की चारों दीवाले उसके शरीर से चिपक जाती हैं और ऊपर से मुद्गर की तरह चोट होती है। इन दीवारों में स्प्रिंग लगे रहने से खीलें उसे छेदती हैं और पुनः निकल जाया करती हैं। शाक्तों का उपभोग्य वस्तु वह बेचारा मानवप्राणी बड़ी नरक यातना पाता है। इनसे भयंकर अन्य यंत्र हैं। पर उनके वर्णन में विशेष समय लगेगा। ये सब यंत्र अपराधी को दंड देने के लिए संग्रह किए गये हैं।' इस प्रकार यंत्रों का परिचय देती हुई सीता चन्द्रशंकर को तीसरे कमरे में ले गई।

'बस; पशुता, निर्दयता और क्रूरता की यहाँ सीमा हो गई। बस करो, सीता! बस करो! अब इस राक्षसीय आगार को अधिक बार देखने की मेरी इच्छा नहीं करती।' चन्द्रशंकर ने आँखे बन्द किये हुए कहा।

'जब तुमने इतना परिश्रम खास करके इन भेदों को जानने के लिए उठाया है तब बराबर देखते चलो। यह अवसर सदा नहीं मिल सकता।' सीता ने कहा।

वे लोग चौथे कमरे में गये। यह कमरा नाना प्रकार के असंख्य शस्त्रास्त्रों से भरा था। चंद्रशंकर ने पूछा—'इतने अधिक शस्त्रास्त्र रखने का क्या कारण है?'

'शाक्तसदन को लूटने के लिए कितने ही लोग आते हैं, उस समय यहाँ के लोगों के प्राण तथा सदन के धन-माल की रक्षा के लिए इन शस्त्रास्त्रों का उपयोग होता है। लाइसेन्स न रहने के कारण इन शस्त्रास्त्रों को इस प्रकार गुप्त स्थान में रखा गया है। इस कमरे के नीचे सब चोरी का माल रखा गया है। पर, उसे देखने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके बादवाले दो-तीन कमरे देखने योग्य हैं।' यह कहकर सीता चंद्रशंकर को दूसरे कमरे में ले गई।

यह पहले कमरे की अपेक्षा दूना बड़ा था। इसमें पर्दे से ढके हुए छः-सात खाट पड़े थे, और प्रत्येक खाट के पास एक बालटी, एक थाली, दो लोटे, चमच आदि वस्तुएँ पड़ी थीं। इन्हें देखकर अस्पताल का स्मरण हो जाता था। कमरे के बीच में एक पाषाण-शिला रखी हुई थी।

'इस अस्पताल के और सो भी इस भूगर्भ में बनाने का क्या कारण है ?' चन्द्रशंकर ने पूछा।

'यह अस्पताल नहीं है। किन्तु महाभयङ्कर हत्यागार है।' सीता ने कहा।

'यह कैसे ?' चन्द्रशङ्कर ने आश्चर्य से पूछा।

'ऐसा है कि हिन्दुस्तान के अधिकाँश प्रांतों में शाक्त-धर्म का गुप्त रूप से कुलीन जातियो में व्यापक प्रचार है। इससे उन जातियों में जो विधवाएँ अनाचार तथा व्यभि-चार के योग से गर्भवती हो जाती हैं वे जनसमाज में अपनी कुलीनता की प्रतिष्ठा बचाने तथा अपकीर्ति को छिपाने के लिए गर्भपात कराने हिंगुला माता की यात्रा के बहाने से अथवा अन्य कोई कारण बताकर इस सदन में आती हैं। जो दो-तीन महीने का गर्भ होता है तब तो वे इस स्थान में गिराकर निवृत्त हो जाती हैं। पर, कितनी ही स्त्रियाँ पूर्णगर्भा रहती हैं और बच्चा जनने पर उसे इस शिला पर पटककर मार डालती हैं। शाक्तसदन की स्थापना होने के समय से अबतक लाखों बालकों की हत्या हुई होगी। अभी यहाँ दो स्त्रियाँ आई हुई थीं। आज छः दिन हुए, अपने पुत्र और पुत्री का देवी को बलिदान देकर राक्षसों

की इस राजधानी को छोड़कर चली गईं। यदि कोई स्त्री यहाँ आज रहती तो तुम्हें आने का साहस न पड़ता। इन स्त्रियों से उनके पापकर्म छिपाने के बदले में उनसे अच्छी रकम ली जाती है। इससे इस सदन को हजारों रुपये वार्षिक आय होती है। यदि कोई अबला प्रसव-काल में मर जाती है तो वह यहीं भूगर्भ में सदा के लिये दफना दी जाती है, और उसके मरण की खबर उसके सगे-संबन्धियों को भेज दी जाती है। यहाँ यह नियम है कि प्रसूति-सेवा या उसके मरण में जो व्यय पड़ता है वह उसके संबन्धियों को देना पड़ता है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो ये लोग उस स्त्री के कुकर्म को भलीभाँति प्रकाशित करके उसकी अपकीर्ति फैलाते हैं। इसीसे उनके कुटुंबी सदन की माँग के अनुसार भेज देते हैं और सदन को पर्याप्त आमदनी होती है।' यह कह सीता चंद्रशंकर को उस गर्त पर ले गई जहाँ मृतक अपराधी दफन किये जाते थे। उस गर्त का मुख इतना लंबा था कि एक मनुष्य सीधे उसमें खड़ा जा सकता था। गर्त का मुख चारों ओर पत्थर की पटिया से ढँका हुआ था। उसके ढँकन को उलटकर सीता ने कहा—'जो अपराधी स्त्री या पुरुष वेदना-यंत्रों से मार डाले जाते

हैं या जो विधवा स्त्रियाँ प्रसूतिकाल में मर जाती हैं उन सबके शव को अपने उदर में पचा लेनेवाला यह गर्त है। यह इतना अधिक गहरा है कि इसकी दुर्गंध इतने ऊपर बहुत मुश्किल से पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य कितने ही गुप्त स्थान हैं। पर, उन्हे देखने की कोई आवश्यकता नहीं हैं।'

'मेरा भी यही अभिप्राय है। भला क्या समय होगा।' चन्द्रशंकर ने पूछा। सीता ने घड़ी निकाल कर देखा और कहा—'दो बजने में दस मिनट हैं, कहो तो बाहर चलें; कारण, किसी सशक्त पुरुष का नशा उतर जाय और वह हमें यहाँ से निकलते देख ले तो बहुत भयंकर परिणाम होने की संभावना है।'

पश्चात् दोनों बाहर निकले। सीता ने भूगर्भ का गुप्त द्वार बंद कर दिया। दोनों दयामयी के शयनगृह में गये। चंद्रशंकर एक कुर्सी पर बैठ गया और सीता वस्त्र बदल कर पलंग पर लेट गई। बात करते-करते सीता की आँख लग गई। चन्द्रशंकर ने कौतुक से मेज का दराज खींच लिया। उसमे एक पत्र पड़ा था। यह वही गोपालदास का भेजा दयामयी वाला पत्र था। उसमें आलमचन्द की संपत्ति के

विषय में निर्देश था। समय पर उपयोग के लिए चन्द्रशंकर ने पत्र को जेब में रख लिया।

निशा बीतगई। प्रभात हुआ। अभी सीता शय्या से न उठी थी। एक दासी ने शयनगृह में आकर उसे जगाया और कहा—'अपने मंडल के चार मनुष्य एक तरुण स्त्री को अचेत अवस्था में लाये हैं और उसे आपके अधिकार में देकर लौट जाना चाहते हैं।'

'चलो, मैं आई'—कहकर सीता मुँह धोकर नीचे गई। चन्द्रशंकर को देखकर द्वारपाल हिचके और मूर्छित तरुणी को एक कोठरी में रखकर आगन्तुकोंमें से एक ने सीता से कहा—'महात्मा गोपालदास की आज्ञा से हम-लोग इस बाला को हरण कर लाये हैं और आपको इसका प्रबंध करने की आज्ञा मिली है।'

'आज्ञानुसार सब व्यवस्था की जायगी'—सीता ने व्यथित हृदय से कहा।

तरुणी को लानेवाले सब आदमी चले गये। मूर्च्छित स्त्री के मुख पर से वस्त्र हटाकर सीता ने जो मुख देखा तो वह आश्चर्य से दिग्मूढ़ हो गई। इस बाला के मुख को देख चंद्रशंकर भी पाषाण प्रतिमा बन गया।

मूर्छित युवती के सोने और औषधोपचार आदि की व्यवस्था करने के पीछे सीता चन्द्रशङ्कर को लेकर अपने कमरे में आई और एक दीर्घ निःश्वास लेकर बोली—'देखा आपने महात्माश्री के पाप को! इस बेचारी निर्दोष बाला का जन्म यहीं विनष्ट हो जायगा। अरे रे! परमेश्वर के न्याय का मरण हो गया क्या? वह ऐसे भयङ्कर पापियों को वज्र गिराकर या सर्पदंश कराकर क्यों नही मार डालता! वह ऐसे भयानक अत्याचारों को कैसे सहन कर रहा है यह मैं नहीं समझ सकती। अब इस शाक्तसदन—संसार के प्रत्यक्ष नरकस्थान—के निवास से मेरा मन ऊब गया है। पर, मेरा छूटना असंभव है।' यह कह सरल-हृदया सीता हिचकियाँ ले-लेकर रोने लगी।

चन्द्रशङ्कर के हृदयस्थ-कोप की ज्वाला सीमा पर पहुँच गई। सीता का उद्गार सुनकर वह बोल उठा—'सीता, यदि इस नरक से निकलने की तुम्हारी इच्छा हो तो इसी क्षण हमलोग यहाँ से पलायन कर सकते हैं। इस समय शाक्तसदन का सब अधिकार तुम्हारे हाथ में होने से तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। इस बाला को भी हम साथ लेते चलेंगे।'

'भूल है, भयङ्कर भूल है, ऐसा विचार मत करना। शाक्त-सदन का सब अधिकार मेरे हाथ में रहने पर भी मेरे रंग-ढङ्ग और काम पर किसी की देख-रेख न रहे, यह तुम भूल कर भी न सोचना। गुप्तरूप से दयामयी यहीं के कितने ही पुराने पापियों को मुझपर छिपी-दृष्टि रखने की आज्ञा दे गई होगी। तुम्हें न जाने देने के लिए वह मुझे आज्ञा दे गई है। यहाँ से करांची तक के निर्जन मार्ग में भी शाक्तसदन के गुप्तचर इधर-उधर तलाश करते फिरते हैं। यदि हमारे भागने का समाचार उन्हें मिल जाय तो वे हमें मारे विना कदापि न छोड़ेंगे। ऐसे साहस के कार्य को पीछे सोचना। कोई ऐसा उपाय सोचकर निकालो कि हम निर्विघ्न निकल जायँ और जीते रहकर इन पापियों को कुकर्म का फल चखा सकें।' सीता ने कहा।

'मुझे यहाँ से न जाने देने की आज्ञा केवल तुम्हें दी गई है। किसी प्रकार मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा दो तो करांची जाकर वहाँ से तुम्हारे छुटकारे का साधन मै ला सकूँ। ईश्वर चाहेगा तो दस-बारह दिन में इस नरकागार से सदा के लिए मुक्ति मिल जायगी।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'यह संभव है; पर तुम्हे यहाँ से जाने देने की मेरी

इच्छा नहीं है। कारण कि राक्षसों के इस आगार में केवल तुम्हारे साथ बातचीत करने से मेरे हृदय को शांति मिलती है और आन्तरिक दुःख भूल जाता है। तुम्हारे वियोग से मुझे असह्य दुःख होगा।' सीता ने स्नेहपूर्वक कहा।

'यदि कोई अपना विश्वासी मनुष्य हो तो यहीं से हम लोग सरकार की मदद मँगा सकते हैं। पर, यहाँ पर कोई ऐसा आदमी नहीं दीखता। शक्ति उपासकों मे विश्वास रखना अपने मुख से यमराज को आवाहन करना है। मेरे गये बिना किसी प्रकार भी काम नही बन सकता। इससे अपने हृदय को कड़ा कर मुझे जाने की आज्ञा दो।' चन्द्र-शङ्कर ने नम्रतापूर्वक कहा।

कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् सीता मलिन-मुख से बोली—'अच्छा, तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं तुम्हें जाने की अनुमति देती हूँ। यहाँ के लोगों को तुम्हारे जाने का कोई बनावटी कारण मुझे बताना पड़ेगा। इसका प्रबंध मैं कर लूँगी। जाने के पहले तुम्हें पन्द्रह दिन के भीतर लौट आने का वचन देना होगा। उतने समय मे यदि तुम न आओगे तो तुम्हारी तो कोई हानि न होगी। पर, मैं निराशा से आत्महत्या कर अपना प्राण त्याग दूँगी। कारण,

इस नरक में अधिक दिनों तक रहकर जीने की मेरी इच्छा नहीं है। यदि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति दया का कुछ भी अंश हो और परोपकार बुद्धि का निवास हो तो अवश्य मेरा छुटकारा करना। मुझे भूल न जाना; आँखों से ओझल होने पर हृदय से दूर हो जाने की कहावत सच न कर दिखाना। तुम धार्मिक हो। इससे अधिक मैं क्या कह सकती हूँ।'

'मेरी बातों में तुम किसी प्रकार की आशङ्का या अविश्वास मत रखना। तुम अभी मेरे वास्तविक जीवन को नहीं जानतीं। इसीसे यह शङ्का तुम्हारे मन में उत्पन्न हो रही है। जब तुम मेरा वृत्तांत जान लोगी तो इस अपने कुतर्क के लिए तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मेरा वृत्तांत समय पर तुम्हें मालूम हो जायगा। इस समय मैं केवल धर्मपूर्वक तुम्हें यह बतला देना चाहता हूँ कि परोपकार ही मेरा परमधर्म है और उसीमें मैं अपना नश्वर शरीर समर्पित किये हूँ। मेरे हाथ से जबतक तुम्हारा छुटकारा और इस नवागंतुक निर्दोष बाला का उद्धार न हो जायगा तब तक मैं क्षणमात्र के लिए चैन से न बैठूँगा। पंद्रह दिन की अवधि तो अधिक है। ईश्वर चाहेंगे तो आठ दिन के भीतर पानियों

को वधस्थान पर जाना होगा और धर्मात्माओं को बन्धन से मुक्ति मिलेगी।' चन्द्रशङ्कर ने आश्वासन देते हुए कहा।

'तुम्हारे वचनों में मेरा पूर्ण विश्वास है। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि इस परोपकार-कार्य में वह तुम्हारी सहायता करे।' सीता ने गद्गद कण्ठ से कहा।

'यहाँ से मेरा जाना कब होगा।' चन्द्रशङ्कर ने पूछा।

'कल प्रभात में जाना। आज मैं सवारी वगैरः का प्रबन्ध कर रखती हूँ। तुम्हारे जाने की बात मुझे सबको बतलानी होगी।' सीता ने कहा।

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' चन्द्रशंकर ने कहा।

❀ ❀ ❀

रात को सब शाक्त स्त्री-पुरुषों को सभागृह में बुलाकर सीता ने कहा—'यहाँ पर शाक्तधर्म की दीक्षा लेने के लिए आये हुए महाशय चन्द्रशंकर दीक्षा समारम्भ में व्यय करने के लिए पाँच हजार रुपया ले आने के लिए कल प्रभात में करांची जानेवाले हैं; और मैंने जाने के लिए आज्ञा दे दी है। वह आठ-दस दिन में आ जायँगे। इस उत्सव का समारम्भ बड़ी धूम से होगा, और सबको पूर्ण आनन्द मिलेगा। बताओ, तुम सब लोगों की क्या इच्छा है?'

'आपकी इच्छा हमारी इच्छा है। इस आनन्द की आशा से इनको जाने की कौन नहीं आज्ञा देगा!' सब लोगोंने एक स्वर से कहा।

पञ्चमकार के स्वादोपभोग के लिए निरन्तर चुपचाप बैठनेवाले पामर प्राणियों के मुख से इसके अतिरिक्त अन्य उन्नत उत्तर की क्या आशा रक्खी जा सकती है। इस अनुकूल उत्तर से सीता आनंदित हुई। बाहर आकर उसने चन्द्रशंकर के यात्रा की तैयारी के लिए अपने सेवकों को आज्ञा दी।

रात में भोजन करने के पश्चात् सीता और चंद्रशंकर इधर-उधर की बातें करते हुए बैठे थे। अचानक चंद्रशंकर ने कहा—'सीता! आजतक एक प्रकार से मैंने संसार से अपना मन हटा लिया था। इस कारण, कभी भी किसी स्त्री पर मेरा मन आसक्त नहीं हुआ था। पर, आज न जाने किस कारण से मेरे मन में कुछ आकर्षण हो रहा है। मेरा मन तुम्हें छोड़ते हुए अटक रहा है। मैं नहीं कह सकता; किस कारण, तुम्हारे सहवास से मेरा मन आनंद का अनुभव करता है और तुम्हारा वियोग अतिशय दुःखद प्रतीत होता है। मेरे इस कथन से तुम यह न

समझना कि तुम्हारे प्रति कोई कुत्सित विकार मेरे हृदय में उद्भव हो रहा है। विकार कैसा है, यह मैं स्वयं नहीं जानता। केवल मन आकृष्ट होता है। इतना ही मैं कह सकता हूँ।'

'तुम्हारा मन किसी भी कारण से मेरे प्रति आकर्षित होता हो, यह मेरा सौभाग्य है। इससे मुझे प्रबल आशा होती है कि अवश्य ही तुम्हारे श्रेष्ठ हाथ से मेरा उद्धार होगा।' सीता ने मार्मिकता से कहा।

इसके वाद दोनों जाकर अपने-अपने शयनगृह में लेट गये। पलंग पर लेटी हुई सीता स्वगत विचार करने लगी—'वयस्क पुत्र को अपनी जननी के साथ भी एकान्तवास नहीं करना चाहिये। यह धर्माज्ञा वहुत उचित है। मेरे विचार के अनुसार चंद्रशंकर का मन आकर्षित हो रहा है। यह हमारे एकान्त-निवास का ही परिणाम प्रतीत होता है। कंचन और कामिनी के स्पर्श से वड़े-वड़े मुनियों का मन चंचल हो जाता है। भला इस वेचारे चन्द्र की क्या कथा है? ऐसा तो नहीं है कि यह अपनी कोई दूसरी इच्छा तृप्त करने के लिए यहाँ से जाना चाहता हो। पर, यह संभव नहीं हैं। कारण, अपनी इच्छा के तृप्त करने के लिए इसे शाक्तसदन में सव साधन भरे पड़े हैं, और मुझे दयामयी ने इसे

सब प्रकार से संतुष्ट करने के लिए कठोर आज्ञा दी है। इससे यदि यह अपनी इच्छा व्यक्त करे तो मुझे इसकी इच्छा के आधीन होना पड़े। पर नहीं, यहाँ अधिक दिन रहने से भ्रष्टहोने के भय से यह यहाँ से निकलकर मुझे अपनी धर्मपत्नी बनाने का विचार कर रहा है। इसीसे मुझे छुड़ाने के जोखम को अपने सिर उठाने को उद्यत है। यदि यही बात है तो कोई बुरा नहीं। एक गृहस्थ की धर्मपत्नी के पद को पाकर संसार-सुख भोगने और प्रतिष्ठा-पूर्वक जीवन को सार्थक करने में लाभ-ही-लाभ है; हानि नहीं है। चाहे भविष्य में जो हो।' इस प्रकार के विचारों के कारण चित्त उद्विग्न होने से उसे नींद न आई और वह सितार लेकर गाने लगी—

कहत कोउ परदेसी की बात।

मन्दिर अरध अवधि हरि बदि गयो हरि अहार चलि जात।
अजया भख अनुसारत नाहीं कैसे को दिवस सिरात॥
ससिरिपु वरस भानुरिपु जुगसम हररिपु कीन्हों घात।
वेद नखत ग्रह जोरि अरध करि सोइ बनत अब खात॥
मघ पंचम लै गयो साँवरो तातें जिय अकुलात।
सूरश्याम बिनु विकल विरहिनी कर मींजत पछितात॥

रात्रि निःस्तब्ध और आसपास का प्रदेश जनशून्य होने से यह संगीत-ध्वनि चारों ओर फैल गई। चन्द्र अपनी शय्या पर जगा हुआ बैठा था, और संगीत के भाव को समझकर चकित हो रहा था। वह मनोगत कहने लगा—'यह संगीत मुझे उद्देश्य कर गाया जा रहा है। इसका मन मेरे में आसक्त है। अच्छा, एकबार अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इसका छुटकारा अवश्य करा दिया जाय। पीछे जो होना होगा वह होगा। अभीसे ऐसे विचारों को हृदय में स्थान देने का अवसर नहीं है।'

चन्द्रशंकर रात में देर तक जगा था। उषःकाल में उसे मीठी नींद आ गई। सीता के जगाने पर वह शय्या से उठ शौच, स्नान आदि नित्य कर्म से मुक्त हुआ और जलपान कर बाहर निकला। द्वारपर घोड़ा ग्रीवा हिलाता हुआ पृथ्वी पर पदाघात करता अपने सवार की बाट जोह रहा था। जाते समय सीता ने सौ रुपये मार्ग-व्यय के लिये दिया और आनाकानी किये बिना चंद्रशङ्कर ने उसे लेकर घोड़े को एड़ लगाया। जबतक वह दिखाई पड़ता था तबतक सीता शाक्तसदन के द्वारपर खड़ी एकटक उसे देखती रही। आँख से ओझल हो जानेपर वह अपने कमरे में आकर

नित्यकर्म में प्रवृत्त हुई। इतने ही में एक दासी ने आकर खबर दी—'जो तरुणी यहाँ लाई गई है उसने रात बड़ी खराब हालत में काटी है। अब उसके मुखपर मृत्यु का स्पष्ट चिन्ह दिखाई पड़ता है। आप चलकर स्वयं देख लें।'

सीता नई चिंता में पड़ गई। जिस निर्दोष बाला को छुड़ाने के लिए चन्द्र की उत्कट अभिलाषा थी उसकी इस भयंकर स्थिति को सुनकर सीता का आधा प्राण उड़ गया। वह झट दासी के साथ उस बाला के कमरे में गई और उसकी दशा देखकर हताश और भयभीत हो गई। उस बाला का जीवन घड़ी-पल पर आ बना था। कुछ देर उसे ध्यान से देखने के बाद अपनी बुद्धि के अनुसार सीता नवीन-नवीन उपचार करने लगी।

२५

'क्यों हरीसिंह! मेरा बताया काम ठीक-ठीक हो गया; हरिणी हाथ में आ गई। उसे किस स्थान में रखा?' महात्मा गोपालदास ने ललाट पर हाथ फेरते हुए पूछा।

'हमारे हाथ में हरिणी न आवे यह कैसे हो सकता है! आपकी आज्ञा पाते ही मैं अपने साथियों को लेकर बाघूमल के बँगले पर पहुँचा। रात में सोने के लिए लड़की

निचले हिस्से में आई हुई थी। क्लोरोफार्म सुँघाकर उस बेचारी को अचेत कर दिया। उसे ऊँटपर रखकर शाक्त-सदन मे आपकी अमानत सीता बाई के हाथ में सौंप आया। अब हम पर कृपा होनी चाहिये।' हरीसिंह ने कहा।

इस समय एक प्रहर रात्रि बीत गई थी। गोपालदास रेशमी-शय्या पर पाँव-पर-पाँव धरे लेटा हुआ था। उसके पास ही आरामकुर्सी पर एक बारीक वस्त्र पहने दयामयी बैठी हुई थी।

'इस काम में कितने आदमी लगे हुए थे।' महात्मा ने पूछा।

'आठ आदमी।' हरीसिंह ने जवाब दिया।

'दयामयी! इस अपने आज्ञाकारी सेवक को पाँच सौ रुपये दो।'

दयामयी ने तिजोरी से पाँच सौ रुपयों का नोट निकालकर हरीसिंह के हाथ में रख दिया।

· 'क्यों अब तो तुम प्रसन्न हो?' महात्मा ने पूछा।

'हमें पूरा सन्तोष है। मैं ईश्वर से विनय करता हूँ कि आपको वह चिरायु करे, जिससे आप हमें ऐसे ही काम देते रहें।' हरीसिंह ने कहा।

'तुम्हारी भावना फलीभूत हो।' महात्मा ने कहा।

'अब हम पञ्जाब जाना चाहते है।' हरीसिंह ने कहा।

'खुशी से जाओ। लौटने पर मुझसे मिलते जाना। हो सकेगा तो तुम्हारे लिए एक-आध काम ठीक रक्खूँगा।' महात्मा ने कहा।

हरीसिंह के चले जाने पर कमरे को बन्दकर दयामयी ने पूछा—'प्रियतम ! शाक्तसदन में किस हरिणी को भेजा है। मुझे इसकी कोई खबर ही न थी। क्या अब मुझसे भी भेदभाव रखने लगे ?'

'कार्य के निर्विघ्न समाप्त हो जाने पर यह बात तुमसे कहनेवाला था। इतने ही में हरीसिंह आ गया। यदि तुमसे भेदभाव रखने का मेरा विचार होता तो तुम्हारे सामने हरीसिंह से बात ही क्यों करता। यह हरिणी दूसरी नहीं; वृन्दा की पुत्री रोहिणी है।' महात्मा ने कहा।

'रोहिणी को इस प्रकार हरण करने का क्या कारण है ?' दयामयी ने आश्चर्य से पूछा।

इतनी सर्वगुणसम्पन्ना होने पर, इस एक साधारण कार्य का कारण तुम न समझ सकीं—यह मुझे बहुत आश्चर्य मालूम होता है।' महात्मा ने कहा।

'इस समय तो मेरी बुद्धि मारी गई है। कहना हो तो शीघ्र कहो। मुझे तरसाओ मत।' दयामयी ने स्त्री चरित्र का प्रयोग किया।

'मेरी बुद्धि का प्रभाव देखो। जब से वृन्दा ने अपनी संपत्ति देने का वचन दिया तभी से मेरे मन में यह संचारित हो रहा था कि रोहिणी के रहते सब संपत्ति कदापि मेरे अधिकार मे नहीं आ सकती। रोहिणी के विवाह आदि मे खर्च होने से असल रकम में कमी हो जायगी। इस प्रकार सब विघ्नों का मूलकारण रोहिणी थी। इसे अपने मार्ग से निकाल देने से भय का कोई कारण नहीं रह जायगा। इस उद्देश्य से इस काँटे को दूर करने के लिए मैं कुछ समय से अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ दिन तो निराशा ही में बीते। थोड़े दिन हुए रोहिणी करांची जाने को तैयार हुई। मुझे अपनी आशा के सफल होने के लक्षण दिखाई पड़े। मैंने हरीसिंह के साथ सब प्रबन्ध कर लिया। बताओ, इस कार्य में तुम्हें मेरी दीर्घदर्शिता दिखाई पड़ती है या नहीं।'

'सचमुच, चाणक्य को, लोग उसकी बुद्धि के लिए प्रशंसा करते हैं। परन्तु यह बुद्धि तो चाणक्य में न थी। आप

में एक विशेषता है। चाणक्य केवल बुद्धिविहारी था आप तो बुद्धिविहारी के साथ ही वनिता-विहारी भी हैं।' दयामयी ने कहा।

'वास्तव में बात यही है। मैंने एक कंकड़ से दो पक्षी मारे हैं। एक तो रोहिणी यहाँ से सदा के लिए दूर कर दी गई; इससे सब संपत्ति पाने का मार्ग निर्विघ्न हो गया। दूसरे वह शाक्तसदन में अपने अधिकार में है; इस प्रकार योग्य शाक्त-भक्त को एक अनाघ्रात नवप्रफुल्लपुष्प की सुगंधि का यथेष्ट उपभोग मिल सकता है। यदि वह हमारी इच्छा के अनुसार चलेगी तो जीती रहकर भगवती का प्रसाद खाती रहेगी। अन्यथा इसका अस्तित्व मिटाने ही में कितना विलम्ब लग सकता है।' महात्मा ने कहा।

अनाघ्रात नवप्रफुल्लपुष्प का यथेच्छ उपभोग मिल सके—यह कान में पड़ते ही दयामयी के मुखपर एक तिरस्कार का भाव फैल गया। पर उसे व्यक्त करने का अवसर न देख वह विष के घूंट को पी गई और बाहर से आनंद और अनुमोदन का भाव दिखाती हुई कहने लगी—'एक पंथ दो काज' का नाम यही है। धन्य हैं आप और धन्य है आपकी विशाल दीर्घदर्शिता।' कुछ देर विचार कर वह

बोली—'पर, इससे शायद एक दूसरा अनिवार्य विघ्न उपस्थित हो जावे। मेरे मन में यह शंका हो रही है।'

'वह क्या?' महात्मा ने आतुरता से पूछा।

'यह कि जब से रोहिणी के अदृश्य होने का समाचार वृन्दा को मालूम हुआ है उसकी बड़ी दयनीय अवस्था हो गई है। दो-तीन दिन से उसने अन्न-त्याग दिया है और उसकी मानसिक एवं शारीरिक व्याधि दिन-दिन बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। इससे सब संपत्ति को तुम्हारे नाम लिखे जानेके पूर्व ही यदि वृन्दा का प्राण कहीं निकल जाय तो एक फूटी कौड़ी भी अपने हाथ नही आ सकती। इसका भी विचार आपने कुछ किया है या नही?' दयामयी ने कहा।

'तुम्हारी यह कल्पना सत्य है। पर, मैंने वृन्दा को इस संसार की असारता तथा माया-ममता की असत्यता के विषय में उपदेश देने का कार्य जारी रखा है। इससे उस का मन शान्त हो जायगा। वह पहले ही से विरक्त है। अब पुत्री के वियोग से विरक्ति में अधिक वृद्धि होगी। वह अपनी सब संपत्ति मुझे लिखकर थोड़े ही दिनों में वृन्दावन चली जायगी।' महात्मा ने कहा।

'देवी तुम्हारी यह आशा पूर्ण करें।' दयामयी ने कहा।

रात्रि में जिस समय महात्मा वृन्दा की संपत्ति स्वाहा करने का विचार कर रहा था उस समय वृन्दा का शोक सीमापर पहुँच चुका था। वह रोहिणी का नाम जपती हुई भवन में चारो ओर भ्रमिष्ठ की नाईं घूमती फिरती थी। यशोदा और आलमचन्द उसकी यह अवस्था देख घबड़ा गये थे। उनलोगों ने वृन्दा के मनको शान्त करने का अथक श्रम किया; पर सब व्यर्थ हुआ। वास्तव में उसका स्नेह संसार से उठ गया था। उन्मादिनी की तरह वह बकती फिरती थी। वृन्दा मूर्च्छित होकर शय्या में पड़ी थी। रात में लगभग दो बजे दरवान ने आकर कहा—'करांची से मोहनलाल आये हैं और वह श्रीमती से मिलना चाहते हैं।'

'जाओ, शीघ्र ऊपर बुला लाओ'—यशोदा ने कहा।

मोहनलाल आया और वृन्दा की दयनीय दशा देखकर गम्भीर विचार में पड़ गया। वृन्दा को होश मे लाने का यत्न किया जाने लगा। होश में आते ही मोहन को अपने पास बैठा हुआ देखकर आशातुर नेत्रों से उसने पूछा—'क्यों मोहन! मेरी रोहिणी का कुछ पता चला।'

'रोहिणी का ठीक समाचार मिला है। आठ दिन में मैं उसे बाधूमल के साथ यहाँ लाऊँगा। पर, यह समाचार

अभी किसीपर प्रकट न होना चाहिये; और महात्मा गोपालदास को अपने जाल में अधिक-से-अधिक फँसाने का प्रयत्न जारी रखना चाहिये। सुबह की ट्रेन से मैं वापस जाऊँगा और कल शाम को उस स्थान पर जाया जायगा, जहाँ लुटेरों ने रोहिणी को छिपा रखा है।' मोहनलाल ने कहा।

'मोहन! क्या तुम सच कह रहे हो? मेरे हृदय को आश्वासन देने के लिए मिथ्या प्रलोभन तो नहीं दे रहे हो!' वृन्दा ने सशंकित मनसे पूछा।

'मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह धर्मपूर्वक अक्षर-अक्षर सत्य है। आप मेरी बातों में किंचित् भी संशय न करें।' मोहनलाल ने कहा।

'मोहनलाल! यदि रोहिणी को तुम खोज लाओगे तो रोहिणी और साथ ही मेरी यह सब संपत्ति तुम्हारी होगी। अब मैं रोहिणी तुमको दे चुकी।' वृन्दा ने कहा।

मोहनलाल बिना कुछ उत्तर दिये दूसरे कमरे मे जाकर सो गया। प्रभात में पाँच बजते ही महात्माश्री अपने शिष्यों के साथ वृन्दा की हवेली के पास आकर वैराग-दर्शक-पद्य बार-बार दुहराने लगा। जब वह हवेली में गया तब वृन्दा

की मुख-मुद्रा पर शोक के बदले आनन्द की छटा दिखाई पड़ी। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि यह सब उसके वैराग्य-उपदेश का परिणाम है। वृन्दा ने और दिनों की अपेक्षा उसका विशेष आदर-सत्कार किया। इससे महात्मा, वृन्दा की समस्त संपत्ति अपने हाथ में समझने लगा।

२६

शाक्तमण्डल से चलकर चन्द्रशंकर बिना किसी विघ्न-बाधा के करांची आ पहुँचा। वह सीधे पुलिस-कमिश्नर के आफिस की ओर चला गया; और वहाँ दीवाल पर रोहिणी का फोटोग्राफ के साथ विज्ञापन टँगा हुआ दिखाई पड़ा। पुलिस-कमिश्नर से मिलकर उसने रोहिणी के पता के साथ उसकी भयंकर स्थिति का भी वर्णन किया। पुलिस अफसर ने मि० बाधूमल को बुलाकर सब बातें कह दीं। मोहनलाल जो बाधूमल के साथ ही आया था रोहिणी को शाक्तसदन से मुक्त करने के लिए तुरत तत्पर हो गया; और पुलिस अफसर से इसके लिये सहायता की प्रार्थना करने लगा। बाधूमल ने कहा—'पता मिल गया है तो अब रोहिणी भी मिलेगी। हमें अधिक आतुर होने की आवश्यकता नहीं है।'

'मि० वाघूमल ! तुम्हारा कहना सत्य है। यदि रोहिणी के पता पाने की खबर किसी प्रकार बाहर फैल जाय तो तुम रोहिणी को कदापि जीती हुई नहीं पा सकते। यदि हमारे कहे अनुसार कार्य करो तो इससे विजय और सफलता दोनों मिल सकती हैं।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'तुम्हारा क्या उपदेश है।' मोहनलाल ने पूछा।

'मैं लम्बी यात्रा से थक गया हूँ और आज नित्यकर्म भी नहीं कर सका। कृपाकर मुझे अपने घर ले चलो। वहीं पर इन पापियों को किस प्रकार दण्ड दिया जाय यह मैं कहूँगा। यह कार्य इस प्रकार करना चाहिये कि वह कहीं विफल न हो सके।' चन्द्रशंकर ने कहा।

यह सुनकर वाघूमल उसे लेकर अपने बँगले पर आये और उसके स्नान एवं खान-पान की सब उचित व्यवस्था कर दी। मोहनलाल भी उसके साथ ही था। भोजनादि से चन्द्र-शंकर के निवृत्त होने पर तीनों आदमी सलाह करने बैठे। वाघूमल ने कहा—'भाई चन्द्रशंकर ! तुम क्या सलाह देते हो। रोहिणी के छुटकारे के लिये कौन उपाय किया जाय ?'

'इस कार्य में अब अधिक विलम्ब न होता तो अच्छा था।' मोहनलाल ने कहा।

'इस समय जिस स्थान में रोहिणी रखी गई है उसकी भयंकरता की आप कल्पना नहीं कर सकते। रेनाल्ड की 'आलस्टेच्यू' उपन्यास में भयंकर घटनाओं का वर्णन एवं रोमन कैथलिक धर्म में (Inqisition) इनकिजिशन का इतिहास आपने पढ़ा होगा। उनमें वर्णित दृश्यों को आप शाक्तसदन में देख सकते हैं। शाक्तसदन में जो स्त्री-पुरुष स्वेच्छा या बलात्कार से आ जाते हैं उन्हें या तो उस धर्म को स्वीकार करना पड़ता है या अपना प्राण खोना पड़ता है। ऐसा कठिन उसका नियम है। इससे यदि रोहिणी के ले आने का हमारा प्रयत्न उस सदन के किसी घूमते-फिरते जासूस को मालूम हो जाय तो हमारी सब युक्तियाँ धूल में मिल सकती हैं और रोहिणी का जीवन भी संकट में पड़ जायगा। उसे वे दुष्ट हटा देंगे। इससे वहाँ जाने की तैयारी सुदृढ़ और गुप्त होनी चाहिये। शक्ति से अधिक कौशल की आवश्यकता है।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'पर यह सब समाचार तुम्हें कैसे मालूम हुआ? रोहिणी के वहाँ जाने की बात तुम्हें कैसे ज्ञात हुई?' बाधूमल ने जरा गंभीरता से पूछा।

इसके उत्तर में चन्द्रशंकर ने अपनी सारी कथा कह

सुनाई। वह शाक्तसदन में किस उद्देश्य से और किस प्रकार गया था; रोहिणी के हरण में महात्मा गोपालदास का कितना हाथ था और वह महात्मा, साधु नहीं; बल्कि शैतान है। इत्यादि बातें जो अबतक हो गई थीं, उसने कह सुनाईं। इन बातों को सुनकर वाघूमल और मोहनलाल के क्रोध और आश्चर्य की सीमा ही न रह गई।

'अब रोहिणी को किसी अन्य आपत्ति में न पड़ना पड़े और वह जीती हुई कुशल पूर्वक हमारे हाथ में आ जाय इसके लिए तुम कौन-सा मार्ग अवलंबन करना चाहते हो।' मोहनलाल ने आतुरता से पूछा।

'यहाँ से हथियारबन्द पुलिस के कम-से-कम दस-बारह सिपाही हों; पर उन्हें सादी पोशाक में हिंगुल माता के यात्रियों की तरह जाना चाहिये। जिसमें उन्हें कोई पुलिस का आदमी न समझ सके। हमलोग एक दिन पहले यहाँ से शाक्तसदन में पहुँच जावें और वहाँ से आने की पूरी तैयारी कर रखें और जब यह पुलिस की सहायता पहुँच जाय तो निर्विघ्न रोहिणी को लेकर लौट आएँ। रोहिणी के मिलने का पता हैदराबाद और गिदूबंदर में न फैलने पावे तो बहुत ही अच्छा होगा। अन्यथा महात्मा

गोपालदास कहीं निकल भागे तो उस पापी को अपने पाप की सजा ही नहीं मिल सकती।' चन्द्रशङ्कर ने कहा।

'यह सलाह उत्तम है। मैं ऐसी ही व्यवस्था करता हूँ।' बाधूमल ने कहा।

यह बातचीत चल रही थी कि इतने ही में गिदूबंदर से तार आया। उसमें लिखा था कि रोहिणी के वियोग से श्रीमती वृन्दा की हालत दिन-दिन खराब हो रही है। तार पढ़कर बाधूमल ने मोहनलाल से कहा—'मि० मोहनलाल! तुम आज शाम की ट्रेन से चले जाओ और वृन्दा से मिलकर सब बातें समझा दो। देखना, यह समाचार फैलने न पावे। जब तक कल तुम यहाँ वापस आओगे तब तक मैं सब तैयारी कर रखूँगा और हमलोग तुरत शाक्तसदन की ओर चल निकलेंगे।'

'बहुत अच्छा'—कहकर मोहनलाल वहाँ से उठकर बाहर चला गया।

मोहनलाल ने वृन्दा के पास अपने कर्तव्य को जिस दक्षता और चतुरता से सम्पादित किया, उसे पाठक पूर्व प्रकरण में पढ़ चुके हैं। दूसरे दिन दोपहर को मोहनलाल करांची वापस आ गया।

घूबामल धनवान, प्रपंचकला निपुण, प्रतिष्ठित वकील और सरकार दरबार में अधिक मान्य थे। इससे एक दिन में उन्होंने सन्ध्या होते-होते यात्रा की सब तैयारी कर ली। उन्होंने मोहनलाल से कहा—'यह रिवाल्वर और छुरी वगैरः अपने साथ रख लो। मार्ग विकट होने से प्राण-रक्षा के लिए इन साधनो की आवश्यकता है। हमलोग चन्द्र-शंकर को पहचानते नहीं है। इससे इसमें पूरा विश्वास रखना ठीक नहीं है। मैंने भी रिवाल्वर ले लिया है। एक ऊँटपर हम चन्द्रशंकर के साथ बैठेंगे और दूसरे ऊँट पर तुम सिपाही के साथ बैठकर चलना। प्रभु का नाम लेकर साहस से मार्ग में प्रयाण करना चाहिये।'

'तुम्हारी इस दीर्घदृष्टि के लिए अनेक धन्यवाद देता हूँ।' मोहनलाल ने कहा।

'यहाँ से दो मील की दूरी पर पाँच पुलिस सिपाही आगे से जाकर हमलोगों की बाट जोहते होंगे और वे लोग इतनी दूरीपर हमारे पीछे-पीछे चलेंगे जिससे बुलाने पर हमारी आवाज सुन सकें। पन्द्रह सिपाही कल बाद में आवेंगे। इस विषय में मैंने चन्द्रशंकर को कुछ नहीं बतलाया है।' बाघूमल ने कहा।

'इस सावधानी के लिये सचमुच में तुम्हारी बुद्धि की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।' मोहनलाल ने कहा।

सूर्यास्त हो गया था। वे लोग ऊँटपर चढ़कर शाक-सदन की ओर चले। वाधूमल के कथनानुसार दो मीलपर पाँच पुलिस के सिपाही मिले। वे भी ऊँटपर जा रहे थे और यात्रियों की तरह दिखाई पड़ते थे। वाधूमल ने इशारे से उनसे बातें करलीं; और सब मिलकर आगे चलने लगे। इसके बाद कुछ देर तक कोई नई घटना नहीं हुई। रात्रि का अन्धकार बढ़ रहा था। शीतलवायु चलने से वाधूमल को कुछ सरदी मालूम होने लगी। आधी रात बीत गई थी। रात्रि का तीसरा प्रहर आरम्भ हुआ था। साथ में ब्रान्डी की बोतल थी। ऊँट से उतरकर वाधूमल ने ब्रान्डी पिया और तीनों आदमी विश्रान्ति लेने लगे। इस तरह लगभग आध या पौन घंटा बीत गया। वे लोग ऊँटपर बैठने की तैयारी करने लगे। इतने ही में अन्धकार में से सन-सन करती दो गोलियाँ आईं और इन यात्रियों के सिरपर से होकर निकल गईं। वाधूमल ने कहा—'मोहनलाल! तैयार रहो। कोई दगा है या डाकू आ पहुँचे हैं।'

'चिन्ता नहीं; ईश्वर हमारा सहायक है।' मोहन ने कहा।

दोनों ने अपने हाथ में पिस्तौल ले ली और दूसरी गोली बाहर से आने की प्रतीक्षा करने लगे। गोली आने के बदले तीन कृष्णवस्त्रधारी मनुष्य उनके सामने आकर खड़े हो गये। उनमे से एक ने कड़ककर कहा—'तुम जिस कार्य के लिए शाक्तसदन में जाते हो वह कदापि सिद्ध न होगा। चलो, मरने के लिए तैयार हो जाओ। देवी कालिका आज तुम्हारे रक्तपान से तृप्त होने को लालायित हैं।'

'पर, तुम लोग कौन हो और हम लोग शाक्तसदन में अमुक कार्य के लिए जा रहे हैं—यह तुम किस प्रकार जानते हो?' बाधूमल ने साहस कर प्रश्न किया।

'शरीफ बदमाशो! हम तुमको बराबर पहचानते हैं। कदाचित् हम तुमको नहीं पहचानते, पर जिस समय हम लोग रोहिणी को उठाकर शाक्तसदन मे ले गये उस समय इस बदमाश को हमने वहाँ देखा था। यही चांडाल शाक्त-सदन मे रहकर और वहाँ का अन्न खाकर शाक्तों को निर्मूल करने के लिये तैयार हुआ है। यह सब हम जान चुके हैं।' उस अज्ञात व्यक्ति ने चन्द्रशंकर की ओर इशारा करके कहा।

'अन्धकार में हम एक दूसरे को देख नहीं सकते;

ऐसी दशा में अमुक व्यक्ति को तुमने शाक्तसदन में देखा है—यह किस आधार पर कहते हो ?' बाधूमल ने कहा।

'तुम जिस समय करांची से चले हो उसी समय हम लोगों ने तुम सबोंको देखा था। तुम्हारी रक्षा के लिये पाँच पुलिस के आदमी छिपे वेश में तुम्हारे साथ थे और पन्द्रह पुलिसवाले कल आनेवाले हैं। यह भी हम जानते हैं।' उस आगन्तुक पुरुष ने भीषणता से कहा।

बाधूमल, मोहनलाल और चन्द्रशंकर यह सुनकर आश्चर्य में डूब गये। अपना भेद इतना अधिक इन लोगों को किस प्रकार मालूम हो गया इसकी कल्पना भी उन्हे न हो सकी। उन्हें निर्वाक देखकर अज्ञात पुरुष फिर कहने लगा—'तुम लोगोंमें से करांची का एक बहुत प्रतिष्ठित वकील है। शाक्तसदन का प्रभाव कितना है वह तुम्हें अभी मालूम हो जायगा। तुम लोग हमारे हाथ से बच नहीं सकते। मै बतला देना चाहता हूँ कि जो पन्द्रह सिपाही तुम्हारी सहायता के लिए आनेवाले हैं उन्हींमें से एक ने मुझे यह खबर दी है। कारण यह कि गुप्तरीति से वह शाक्तसदन से तनख्वाह पाता है और हमारा जासूस है। बस, अब तुम लोग मरने के लिये तैयार हो जाओ।'

अन्धकार के कारण एक दूसरे का मुख नहीं दिखलाई पड़ता था। परन्तु उनका आकर मालूम होता था। वे अज्ञातपुरुष इन यात्रियों को शस्त्रहीन और भीरु समझ कर कुछ बेपरवाह से हो गये थे। उनकी इस लापरवाही का लाभ उठाकर बाघूमल तथा मोहनलाल ने अपनी रिवाल्वर से गोली छोड़कर उनमें से दो को तो वहीं धूल चटा दिया और भागते हुए तीसरे व्यक्ति को चन्द्रशंकर ने पकड़ लिया।

इस प्रकार इन लोगों को विलम्ब होते देखकर पुलिस के सिपाही जो आगे बढ़ गये थे इनकी खोज में पीछे लौट आये और वहाँ आकर जो कुछ देखा सुना उससे वे चकित हो गये। मोमबत्ती के प्रकाश में देखने पर गोली खाये हुए आदमी मरे पाये गये। तीसरे व्यक्ति को सिपाहियों के सुपुर्द कर बाघूमल ने कहा—'इसे तुम दो-तीन आदमी करांची ले जाओ और जिस आदमी ने बेईमानी से हमारा भेद खोला है उसे पकड़ कर कमिश्नर को दे देना।' यह कहकर बाघूमल अपने साथियों के साथ शाक्तसदन की ओर बढ़े।

बाघूमल वगैरः को मार्ग में कोई दूसरा विघ्न नहीं पड़ा। वे लोग कुशलपूर्वक शाक्तसदन के द्वार पर पहुँच गये। बाघूमल और मोहनलाल को बाहर ही छोड़ कर चन्द्रशंकर

अकेले ही सदन के भीतर गया। उस समय सीता अपने कमरे में बैठी हुई एक पुस्तक पढ़ रही थी। चन्द्रशङ्कर के आगमन का समाचार पाते ही वह आदरपूर्वक उसे अपने कमरे में ले गई। कमरे में प्रवेश करते ही उसने पूछा—'क्यों निर्दिष्ट काम सफलता पूर्वक कर लिया ?'

'यह सब मैं तुमको एकान्त में बतलाऊँगा। हमारे साथ दो गृहस्थ हैं। उनके रहने और खानपान की व्यवस्था करो। तुम्हारी और रोहिणी की तबीयत कैसी है ?' चन्द्रशङ्कर ने पूछा।

'रोहिणी की तबीयत जैसी है वह तुम स्वयं चलकर देख लो। मैं पहले अतिथियों के विश्राम की व्यवस्था कर दूँ।' यह कहकर चन्द्रशंकर को साथ लेकर सीता बाहर आई और अनुचरों को बुलाकर बाधूमल और मोहनलाल के निवास आदि का बन्दोबस्त करने की आज्ञा दी। जल-पान के पश्चात् चन्द्रशंकर सीता के साथ रोहिणी के कमरे में गया; और उसकी वाह्य आकृति देखकर दिग्मूढ़ बन गया। रोहिणी शय्या पर अचेतावस्था में पड़ी थी। आँखें खुली हुई थीं और पलकें रह-रह कर गिर रही थीं, जिससे प्रतीत होता था कि अभी वह जीवित है। उसका शरीर निर्बल,

शुष्क, निस्तेज और गतिहीन हो गया था। इस दशा को देखकर दयालु चन्द्रशंकर के नेत्रों से आँसू गिरने लगे।

'क्यों तुम्हें इसका रंग-ढंग कैसा दिखाई पड़ता है?' सीता ने पूछा।

'दशा तो बहुत भयंकर बिगड़ी हुई मालूम देती है। यह अधिक दिनों तक जीवन धारण कर सकेगी; ऐसा तो नहीं प्रतीत होता। पर, ईश्वर सबका रक्षक है।' चन्द्रशंकर ने उदासीनता से कहा।

'अभी मेरे हाथ में अनेक उपाय हैं और मैं उनका उपयोग करूँगी।' सीता ने आश्वासन देते हुए कहा।

'यदि रोहिणी किसी प्रकार जीवित बच सके तो बहुत उत्तम हो; नहीं तो इन दुष्टों के लिए जितना जाल बिछा रखा गया है वह सब व्यर्थ चला जायगा, और अपने मन की आशा मन में ही रह जायगी।' चन्द्रशंकर ने उदास मन से कहा।

'पर, एक बात मैं कहना तुमसे भूल ही गई। सन्निपात में रोहिणी किसी मोहनलाल का नाम बारबार लेती थी और उसके विषय में अनेक प्रलाप इसके मुख से निकलते थे। जिससे प्रकट होता है कि मोहनलाल इस बाला का

प्राणाधिक प्रियतम है। इस समय यदि मोहनलाल उसके पास होता तो इस रोग की शाँति बहुत सम्भव थी। पर, इतना सुंदर सुयोग कहाँ मिलता है ?' सीता ने कहा।

'चिंता नहीं; परमेश्वर बड़ा दयालु है। मोहनलाल मेरे साथ आया है। परन्तु इस बाला से उसे मिलाने के लिए तुम्हें कोई व्यवस्था करनी पड़ेगी।' चंद्रशंकर ने कहा।

'इसमें कोई बाधा न पड़ेगी। मोहनलाल करांची का शाक्तमतावलंबी एक डाक्टर है और रोहिणी का उपचार करने यहाँ आया है—यही कहकर उसे यहाँ रोहिणी के पास ले आओ। डाक्टर की तरह वेशभूषा और कार्य-पटुता भली प्रकार सिखला देना।' सीता ने कहा।

दोपहर के बाद डाक्टर की तरह मोहनलाल रोहिणी के कमरे में लाया गया। उसकी दशा देखकर डाक्टर—मोहनलाल—ने कहा—'इस बाला का रोग इस प्रकार का है कि इस कमरे में यदि कुछ भी शोरगुल हुआ तो तुरत ही रोग के बढ़ने की संभावना है। इससे तुम सब लोग बाहर चले जाओ और मुझे अकेले ही उपचार करने दो।'

जो स्त्री-पुरुष रोहिणी की सेवा-सुश्रुषा के लिए वहाँ रुके हुये थे, वे डाक्टर और सीता की आज्ञानुसार बाहर

बाहर चले गये। केवल सीता और मोहनलाल उस कमरे में रह गये थे। मोहन ने अपने जेब से एक शीशी निकाली और सीता से कहा—'मैं जिस पत्र का सम्पादक हूँ, उस में विज्ञापन देने के लिये इस दवा की शीशी बंबई के किसी डाक्टर ने भेजी थी। उसमें इसके गुणों का जो वर्णन किया गया है, यदि वह सच हो तो अवश्य ही रोहिणी की अवस्था में सुधार संभव है।

'इस दवा का नाम क्या है?' सीता ने पूछा।

'बादशाही यांकुती।' मोहनलाल ने कहा।

भगवान का नाम लेकर मोहनलाल ने उस शीशी की कुछ दवा रोहिणी को पिलाई और उसका परिणाम देखने के लिए पलंग के पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया। लगभग आध घंटे के बाद रोहिणी की नाड़ी कुछ गरम और तीव्र मालूम पड़ी। इससे उसके मन में आशा का उदय हुआ। संध्या तक रोहिणी की प्रकृति में सुधार दिखाई पड़ने लगा। कमजोरी बहुत बढ़ गई थी; परन्तु पास मे बैठे हुए आदमी को पहचानने और कुछ बोलने की शक्ति उसमें आ गई थी। उसने मोहनलाल को पहचाना और हर्ष के आँसू उसके नेत्रों से बहने लगे।

'रोहिणी ! अब अधिक मत रोओ । ईश्वर चाहेगा तो कल प्रातःकाल तक तुम स्वस्थ हो जाओगी । अब चिन्ता एवं भय करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।' मोहनलाल ने आशा दिलाते हुए कहा ।

'पर, प्रियतम ! क्या इस कारागार से कभी मेरा उद्धार हो सकेगा ?' रोहिणी ने अत्यन्त मंदस्वर से यह शब्द कहा ।

'प्रिये ! चिन्ता न करो । ईश्वर ने हमें यहाँ भेजा है । यदि कोई नया विघ्न न खड़ा हो जाय तो कल प्रभात में तुम्हारे उद्धार की पूर्ण व्यवस्था हो जायगी । केवल एक रात्रि और बितानी है ।' मोहनलाल ने कहा ।

'हाय ! एक रात्रि भी बैरिन हो गई, और वह युग के समान बीतेगी ।' रोहिणी ने सिसकते हुए कहा ।

'प्रिये ! शांत हो जाओ । मैं तुम्हारे-पास हूँ । इससे भय करने का कोई कारण नहीं । अधिक बोलने या रोने से सन्निपात के बढ़ने की आशंका है ।' मोहनलाल ने कहा ।

'तुम्हारी आज्ञा मुझे मान्य है'—कहकर रोहिणी सोने का यत्न करने लगी । पर, नींद न आ सकी । इससे मोहन-लाल ने ब्रान्डी मंगाकर एक मात्रा उसे पिला दिया जिसके योग से वह सो गई ।

सीता ने मोहनलाल से कहा—'अब रोहिणी को नींद आ रही है। तुम भोजन कर विश्राम करो। मैं यहाँ बैठी हूँ।'

मोहनलाल और वाघूमल साथ ही भोजन कर अपने वस्त्रों में पिस्तौल को रख कमरे का दरवाजा भली-भाँति बंदकर लेट गये और पवन की शीतल मंद लहरियों के स्पर्श से निद्रा की गोद में जा पड़े।

मध्यरात्रि में चार बजे के लगभग शाक्तसदन के सिंह-द्वार पर चंद्रशंकर ने जाकर देखा तो अबतक करांची से आनेवाले सिपाही नहीं आये थे। उनके आने का कोई चिन्ह भी न दिखाई पड़ने से उसके मन में अनेक कुशंकाएँ पैदा होने लगीं। वह चिन्तित हृदय से रोहिणी के कमरे में आया। सीता वहाँ बैठी हुई उसकी बाट देख रही थी।

'क्यों, वे लोग आये?' सीता ने आतुरता से पूछा।

'अभी उनका कुछ पता नहीं है।' चंद्रशंकर ने कहा।

'वे आ तो अवश्य रहे हैं, पर कहीं पहचान न लिये जायँ यह शंका हमारे मन में हो रही है। उनके आने पर यदि यहाँ के लोगों को जरा भी शंका हुई तो सबसे पहले वे रोहिणी को मार डालेंगे। उद्देश्य यह है कि रोहिणी किसी प्रकार मरे नहीं। अतः इस समय इसी क्षण एक

अन्य युक्ति करने की मुझे अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होती है।' सीता ने कहा।

'वह कौन-सा उपाय है?' चंद्रशंकर ने पूछा।

'वह यह है कि इस समय जिस-जिस कमरे में यहाँ के शाक्त स्त्री-पुरुष सोये हैं उनमें बाहर से ताला बंदकर दिया जाय। कमरे की सब खिड़कियाँ लोहे के मजबूत छड़ों से बंद हैं। इससे उन्हें बाहर निकलने का मार्ग मिल नहीं सकता, और थोड़े-बहुत आदमी जो बाहर हैं, उन्हें हम सहज ही में आक्रान्त कर लेंगे।'

'यह युक्ति बड़ी सुन्दर है।' चंद्रशंकर ने अनुमोदन किया। दोनों पहले उस कमरे में आये जहाँ ताले वगैरः रखे गये थे। वहाँ से मजबूत ताले लेकर उन्होंने झटपट सब दरवाजे बन्द कर दिये। सब स्त्री-पुरुष गाढ़ी निद्रा में थे। अब वे कारागृह में पड़ गये।

उषःकाल का मन्द प्रकाश रात्रि बीतने की सूचना देने लगा। इतने ही में शाक्तसदन के सिंहद्वार पर से बजते हुए घंटे की आवाज भय की सूचना देने लगी। शाक्तसदन के स्त्री-पुरुष यह घंटानाद सुनकर जग पड़े और बाहर निकलने के लिए इधर-उधर दौड़ने-चिल्लाने लगे। पर, दर-

वाजा बाहर से बंद होने के कारण उनका प्रयत्न सफल न हो सका। प्रत्येक कमरे से 'विश्वासघात, सर्वनाश' आदि विलक्षण चीत्कार सुनाई पड़ता था। बाधूमल और मोहनलाल अपने कमरे में जगकर बैठे थे। वे सब लोग बाहर आँगन में आए। पुलिस के सिपाही द्वारपर पहुँच कर भीतर आने का प्रयत्न कर रहे थे; परन्तु दरवाजेपर के तीन प्रहरी उन्हें आने से रोककर घंटा बजा रहे थे। भीतर से कोई सहायता न मिलनेपर, वे प्रहरी प्राण पर आकर पुलिस पर गोली चलाने लगे। पुलिसवालों ने भी गोली का जवाब गोली से दिया। पुलिस का एक आदमी मरा और तीन प्रहरी मारे गये। पश्चात् वे सदन के भीतर प्रवेश किये और वहाँ पर बाधूमल को पहचान कर, सबने आदर-पूर्वक सलाम किया। पुलिस के अफसर ने कहा—'आपने भय की जितनी बात बतलाई थी उतनी बात यहाँ नहीं है।'

'आप लोगों के आनेके पूर्व हमने सब आदमियों को कैद कर रखा है। इसीसे इतना कम परिश्रम करना पड़ा। अन्यथा इस सदन में प्रवेश करना महाभयंकर था।' यह कहकर चन्द्रशंकर ने शाक्त स्त्री-पुरुषों को कमरे में बंद करने की सब बातें कह सुनाईं।

सीता और चंद्रशंकर को उनकी दीर्घदृष्टि और कार्य पटुता के लिए लोगोंने धन्यवाद दिया। पश्चात् सीता ने शाक्तसदन के अन्नभंडार से खान-पान के सब पदार्थ दिए। भोजनकर विश्रान्ति लेने के बाद चलने की तैयारी होने लगी। रोहिणी अशक्त थी। अतः ऊँटपर खाट बिछाकर वह सीता के साथ बैठाई गई। बाघूमल वगैरः पहले ही की तरह ऊँटपर बैठे। पुलिस सिपाहियों से चारों ओर घिरे हुये वे लोग करांची की ओर रवाना हुए। सीता ने चतुरता से दो थैली सोना-मुहर और हीरा-मोती के कुछ आभूषण साथ में ले लिए। शाक्तसदन से निकलते समय उन्हें किसी प्रकार का विघ्न न पड़ा।

यहाँ यह स्वाभाविक प्रश्न हो सकता है कि जो लोग शाक्तसदन में बन्दी बना दिये गये थे उनकी क्या अवस्था हुई? शाक्तसदन के दो-तीन आदमी यात्रियों के साथ हिंगुलादेवी का दर्शन करने गये थे। वे उसीदिन दो-तीन बजे वहाँ आये। उन्होंने दरवाजों को तोड़कर सबको बंधन-मुक्त किया। घटना का असल कारण उन्हें नहीं मालूम हो सका। पर, इतना सबने समझ लिया कि इसमें सीता और चन्द्रशंकर का अवश्य हाथ था। अतः उन्हे मारने के लिए

दो शाक्त रवाना हुए और शाक्तसदन की संरक्षकता का प्रबन्ध नये ढंग से किया गया ।

२७

गत प्रकरण में वर्णन की हुई घटना को बीते लगभग एक सप्ताह हो गया था। वृन्दा के सिंधुतट के समीप वाले प्रासाद की विशाल बारहदरी में संध्या समय वृन्दा और गोपालदास एक दूसरे के कर-कमलों को पकड़े हुए बैठे थे। इतने में एक दासी एक पत्र लेकर उनके पास आई। तुरत ही दोनों के हाथ छूट गए। दासी ने पत्र को वृन्दा के हाथ में दे दिया। वृन्दा ने उसे खोलकर पढ़ा और गोपालदास से कहा—'यह रजिष्ट्रार का पत्र है। उन्होंने लिखा है कि कल संध्या की ट्रेन से तुम्हारे दानपत्र की रजिष्ट्री करने के लिये हम वहाँ आ पहुँचेंगे। बाधूमल वकील और एक-दो गृहस्थ हमारे साथ वहाँ साक्षी के-रूप में आवेंगे।' चलो अच्छा हुआ। संसार-बन्धन से मुक्ति पाने का समय और भी निकट आ रहा है।' यह कहकर उसने महात्मा के हाथ में पत्र रख दिया। महात्मा ने पत्र पढ़कर कहा—'रजिष्ट्रार कल सन्ध्या समय आवेंगे, इससे कोई विशेष हानि की सम्भावना नहीं है।'

'देवरजी ! अभी आपने हमारे मनोभाव को नहीं समझा। इस संसार में रहने की मेरी लेशमात्र भी इच्छा नहीं है। मेरा मन अब केवल वृन्दावन की ओर लगा है। इतने दिन तो जिस-तिस तरह से बिताया है। देखें, अब कल कब आता है और वह काम कब होता है। अरे रे ! वृन्दावन ! तू मुझे अपने पास कब बुलावेगा।' वृन्दा ने महात्मा का अनुकरण करते हुये कहा।

'बड़ीबहू ! तुम्हारी तरह महाभाग्यवती रमणी इस संसार में दूसरी कौन है ? तुम वृन्दावन जाने को कहती हो। मेरा शरीर वहाँ जाने में असमर्थ है; परन्तु मेरा मन तो अवश्य तुम्हारे साथ वहाँ ही रहेगा।' महात्मा ने कहा।

'देवरजी ! आप भूल क्यों जाते हैं ! आपने मुझसे कहा था कि आपके मनके साथ ही आपका सुन्दर और पवित्र देह भी वृन्दावन में वर्ष में पाँच बार मेरे पास आया करेगी, और आज आप ऐसा कहते हैं कि आपका मन केवल मेरे साथ रहेगा। आपके इस द्व्यर्थक वचन को मैं समझ नहीं सकती। अरे, मेरे प्यारे देवरजी !' वृन्दा ने कटाक्ष और हावभाव-सहित यह मार्मिक बात कह दी।

ढोंगी गोपाल सिर खुजलाते-खुजलाते कहने लगा—

'हाँ, हाँ प्यारी बड़ी बहू! यह बात तो मुझे भूल ही गई थी। प्रथम कहे अनुसार मैं अवश्य वृन्दावन आऊँगा। अच्छा रजिष्ट्रार वगैरः कल संध्या समय आवेंगे तो सही? लगभग सात बजे संध्या को वे आ जायँगे। और रात ही को सब कार्य समाप्त हो जायगा।'

'जी हाँ, ऐसा ही होगा।' वृन्दा ने कहा।

'इससे आज की रात और कल का दिन मैं यहीं बिताऊँगा। बड़ी बहू! मेरे जप में अब तक बाधा थी। मेरी इच्छा है कि अब नीचे चलकर श्री राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के सामने बैठकर कुछ देर तक जप करूँ। यदि कल मैं जप करता रहूँ और वे लोग आ पहुँचे तो मुझे खबर देना, इससे मैं तुरत आ जाऊँगा। यदि जप करता-करता मैं अचेत हो जाऊँ तो मेरे कानों में तीन बार राधा, राधा कहना। इससे मैं शीघ्र ही शुद्धि मे आ जाऊँगा।' महात्मा ने कहा।

'देवरजी! अब नीचे जाकर जप करने की क्या आवश्यकता है। ऊपर की कोठरी में बैठकर जहाँ मैं जप करती हूँ अब वह कमरा भी आप ही का है।' वृन्दा ने कहा।

'अब वह कमरा भी आप ही का है'— यह वाक्य

सुनकर मन में प्रसन्न होकर भी महात्मा दंभ के कारण बाहर से दुःख प्रदर्शित करते हुये कहने लगा—'बड़ी बहू! तुम्हारी इस आखिरी बात से मेरा हृदय शोकातुर हो गया है। यह मेरा है, और इस घर का मालिक मै हूँ। यह अहंभाव मुझ में आरोपित कर रही हो। बड़ी बहू! अब ऐसा आरोप कभी न करना। इस प्रकार की बातों से मेरा हृदय कलुषित हो जाता है। इस समस्त विश्व के स्वामी श्री कृष्ण हैं। जिस वस्तु और विषय का उल्लेख करती हो उन सबको श्रीकृष्ण के नाम उल्लेख करती रहना। यही उचित है। यह मंदिर श्रीकृष्ण का है, यह अटारी श्रीकृष्ण की है, मैं जो वस्त्र इस समय पहने हूँ वह भी श्रीकृष्ण का है; और यह सब स्थावर और जंगम सम्पत्ति भी श्रीकृष्ण की है। हमलोग तो केवल निमित्त मात्र हैं।'

'देवरजी! मैं एक महामूर्खा और ज्ञानहीना स्त्री हूँ यह अलौकिक, गूढ़ तत्व समझने की मेरी बुद्धि में शक्ति कहाँ से हो सकती है?' वृन्दा ने कहा।

'अरे, स्त्रियों की बात तो दूर रही। अनेक बुद्धि-मान कहे जानेवाले पुरुष भी इस गूढ़ तत्त्व को नहीं समझ सकते हैं। इनसे भी अधिक गूढ तत्व शास्त्रों में है। मैं

धीरे-धीरे यह सब तत्त्व तुमको समझा दूँगा।' महात्मा ने कहा।

'एकाध तत्त्व तो देवरजी, अभी समझाओ।' वृन्दा ने उत्सुकता से कहा।

'यह राधाकृष्ण का प्रेम एक अद्भुत व्यापार है। इसके रहस्य के अधिकारी लोगों के अतिरिक्त अन्य कोई समझ नहीं सकता, और गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला तो बहुत ही अद्भुत है। किस प्रकार रस-सागर में लीन होकर गोपियो को मुक्ति मिली—यह गुप्त रहस्य किसीके जानने मे नही आया।' महात्मा ने गूढ़ तत्त्व का प्रस्ताव किया।

'देवरजी! केवल इसीके लिए मैं वर्ष में पांच-छः बार आपको वृन्दावन आने का आग्रह कर रही हूँ।' वृन्दा ने कहा।

'बड़ी बहू! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं बराबर वृन्दावन में आकर उन गोपियों के गुप्त-प्रेम-कथा—उस अपूर्व रासलीला के रहस्य की वार्ता—यथार्थरूप से सुनाऊँगा, और उन रहस्यों की शिक्षा भी दूँगा।' महात्मा ने कहा।

इस समय वृन्दा की दो सखियाँ वहाँ आईं और रोती हुई कहने लगीं—'कृपामयी! यहाँ अकेली किसी प्रकार हम

रह नहीं सकतीं। हम आपके साथ वृन्दावन चलेंगी। हमें अपने चरणों में रहने दीजिये। हमें यहाँ छोड़कर चली न जाइये।'

'तुमको यहाँ रहने में क्या डर है। यहाँ हमारे देवरजी गोपालदास तुम्हारे स्वामी हैं। यह मेरी ही तरह तुम्हारा प्रतिपालन करेंगे।' वृन्दा ने उनके मन का समाधान किया।

'यही नहीं कि मैं इनका प्रतिपालन करूँगा। इनको हरिप्रेम की दीक्षा देने का विचार भी मेरा है।' महात्मा ने कहा।

'आगे बढ़ आओ और महात्मा के चरणों मे प्रणाम करो। महात्मा की चरण-धूलि मुख में रखो और मस्तक पर धारण करो। इनकी चरण-सेवा करो। तुम जितना आनन्द हमारे सहवास से भोगती थी, उससे कहीं अधिक इनके सहवास में आनन्द-भोग करोगी।' वृन्दा ने कहा।

आज्ञानुसार दोनों दासियों ने महात्मा के चरणों में प्रणाम किया। उनकी चरण-धूलि को मुख में तथा सिरपर धरकर उनकी चरण-सेवा में लग गईं!

'भली और भावुक दासियों! इस समय यह चरण-सेवा रहने दो। कारण कि अभी तक हमारे जप की समाप्ति नहीं हुई है। बड़ी बहू! क्या ऊपर जप करने के लिये बैठने की जगह है।' महात्मा ने कहा।

वृन्दा ने उँगली से एक कोठरी की ओर इशारा किया। उस कमरे में पाँव रखते ही गोपालदास की आँखें फट पड़ी ; और बोलती बंद हो गई। उसने इस संसार में इतना सजा हुआ और सुशोभित कमरा कभी देखा ही न था। वैष्णव-जीवन के प्रथम अवस्था में वह अनेक जगहों के राजाओं तथा जमीन्दारों के मकान में हरिकीर्तन करने तथा भजन गाने को गया था। पर, वहाँ ऐसी कारीगरी के आसन, ऐसा गलीचा, ऐसा सोने का घंटा और चाँदी के झाँझ आदि वस्तु कहीं न दिखाई पड़ी थीं। श्रीराधाकृष्ण के वस्त्रों को रखने वाली संदूक पर मोती की झालर जगजगा रही थी। ये मोतियाँ सच्ची हैं या कृत्रिम; यह निश्चय करने के लिये उन मोतियों को अपने हाथ से दाब-दाब कर जाँचने लगा। अंत में वह विस्मित होकर मन में कहने लगा—'ये तो सच्ची मोती हैं। पर, मणि, मुक्ता, सोना, चाँदी आदि जो साढ़े तीन लाख रुपए के द्रव्य की बात वृन्दा ने कही थी उनमें ये मोतियाँ भी हैं या ये उनके अतिरिक्त हैं। पचास हजार रुपये की कीमत की तो इस झालर में मोती ही हैं। इसके भीतर भाग में मखमल जड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है उसमे केवल मोती ही नहीं; वरन् हीरा भी जड़े हैं

जो चमचमा रहे हैं। ओह! वृन्दा कितनी धनी लक्ष्मीपुत्री है। चाहे कुछ हो; परन्तु उसने बहुत सुख किया है और सुखोपभोग से ऊब गई है। जिसके भाग्य में जितना सुख होता है उतना सुख वह भोग लेता है। अब तो इनका सारा भोग-विलास और वैभव-सुख हमारे और दयामयी के भाग्य में लिखा है।'

ऐसा विचार करता-करता गोपालदास भीतर से सीकड़ बन्द करके जप करने लगा। पता नहीं यह जप कृष्ण का था या कान्ता का। विराग का था आसक्ति का। निस्पृहता का था या लोभ का। चैतन्य का था या जड़ का। विज्ञान का था या विलास का। विद्या का था या अविद्या का। इसके विषय में निश्चयपूर्वक मुझसे नहीं कुछ कहा जाता। पाठक इसकी स्वयं कल्पना कर लें।

❀ ❀ ❀

उस मकान की एक विशाल दालान में मुनीमजी का बैठक था। बैठक का ठाठ-बाट अब तक जैसा-का-तैसा था। केवल मुनीमजी नहीं थे। नीलनभोमंडल उसी प्रकार था; किन्तु शरच्चंद्र का अभाव था। वह रात और दूसरा दिन बीत गया। पुनः संध्याकाल आया और करांची से

आनेवाले लोग आगये। इस समय वृन्दा के मकान में रजिष्ट्रार, बाघूमल और मोहनलाल भीतर आये; और दूसरे चार-छः आदमी बाहर ही रह गये। रजिष्ट्रार वगैरः आकर मुनीमजी वाली दालान में बैठ गये।

रजिष्ट्रार का नाम मेठाराम था। वह बहुत वृद्ध हो गये थे। उनके सिर के अधिक बाल पक गए थे, और अधिकांश दाँत गिर गये थे। उनके चमड़े का रंग गोरा था। उनका लम्बा कद और लम्बी सफेद दाढ़ी देखकर सबके मन में उनके प्रति पूज्यभाव उदय होता था। उस समय उनकी अवस्था ६५ वर्ष की थी। इतने दिनों के अनुभव से वह बहुत होशियार हो गये थे, और करांची तथा हैद्राबाद के लोग उनके प्रति विशेष आदर और मान प्रकट करते थे। वे स्वयं अच्छे धनवान थे। इससे लोग उनसे भय भी करते थे। गाँव में यह बात प्रसिद्ध थी कि मेठाराम नौ को छः और छः को नौ करने में अद्भुत शक्ति रखते थे। इससे मेठाराम की यशोगंध चारों दिशा में अच्छी तरह फैल गई थी; और वह बहुत लोक-प्रिय हो गये थे। कोर्ट में प्रायः सब तरुण वकील उनका आदर-मान करते थे। बड़े-बड़े जागीरदारों और जमींदारों के घर को अपने

हाथ में करने के लिये कितने ही वकील दिन और रात उनकी खुशामद करते थे।

रजिष्ट्रार मेठाराम और बाधूमल को आता देखकर वृन्दा ने ध्यान-मग्न गोपालदास को उद्देश्य कर कहा—'देवरजी! शीघ्र आओ, रजिष्ट्रार और वकील साहब आ गये हैं।'

यह सुनते ही, गोपालदास उठा और साँकल खोलकर झटपट कमरे से बाहर निकल पड़ा।

'देवरजी! समय अधिक हो गया है। अब झटपट सब काम कर डालो।' वृन्दा ने आतुरता से कहा।

'बड़ी बहू! जब मैं तुमको वचन दे चुका हूँ तो अब अपना वचन-भंग नहीं कर सकता। यदि सूर्य पूर्व में उदय होने की अपेक्षा पश्चिम में उदय हों, तो भी इस संपत्ति की रक्षा का भार अपने सिरपर अवश्य लूँगा।' गोपालदास ने कहा।

'देवरजी! आपके इन्हीं गुणों को देखकर मैंने आपका आश्रय स्वीकार किया है। पहले रजिष्ट्रार साहब के साथ मुलाकात करके भोजन कर लो; तुम्हारी उपस्थित व अनुमति के बिना दस्तावेज नहीं लिखा जा सकता।' वृन्दा ने कहा।

'आज भोजन करने का क्या काम है; बड़ी बहू! आज भोजन किये बिना ही तुम्हारे कार्य की पूर्ति करूँगा। जब मेरे सिरपर किसी कार्य्य का भार आ पड़ता है तो मेरी क्षुधा-पिपासा नष्ट हो जाती है। समय योहीं कुछ अधिक बीत गया है। इससे अब भोजन कार्य मे अधिक देर करने की आवश्यकता नहीं है। शुभ कार्य को शीघ्र करना चाहिये।' महात्मा ने कहा।

'देवरजी! यह तो हो नहीं सकता। तुम भूखे बैठे रहो; यह मुझसे कैसे देखा जा सकता है। तुम्हे मट्ठा बहुत पसंद है। गाय के दूध का मट्ठा मेरे हाथ का बना तैयार है। श्रीमती दयामयी भी बैठी तुम्हारे भोजन करने की बाट जोह रही है। देवरजी! जो तुम यह मट्ठा नहीं खाओगे तो मेरे मन मे बहुत दुःख होगा। देवरजी! तुम्हें मेरी सौगन्ध है जो तुम मट्ठा न खाओ।'

'बड़ी बहू! ऐसा खेद न करो, तुम्हारे लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ। जब तुम्हारा इतना अधिक आग्रह है तो मैं यह मट्ठा अवश्य पीऊँगा।' महात्मा ने कहा।

'तो आओ, पहले रजिष्ट्रार साहब के साथ मुलाकात करलो।' वृन्दा ने कहा।

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' महात्मा ने अपनी संमति दी। गोपालदास को उस विशाल दालान में आया देखकर रजिष्ट्रार ने प्रणाम किया।

महात्मा ने रजिष्ट्रार से कहा—'रजिष्ट्रार साहब! प्रणाम, तबीयत तो ठीक है।'

'कौन महात्मा गोपालदासजी! आज बहुत दिनोंपर आपका दर्शन मिला। आओ-आओ।' रजिष्ट्रार साहब सत्कार करने के लिए उठकर खड़े हो गए। गोपालदास थोड़ा करीब में गया। दोनों एक दूसरे से मिले और भेंटे। दो-चार मीठी-मीठी बातें करने के पश्चात् गोपालदास रजिष्ट्रार से आज्ञा लेकर भोजन करने चला गया।

वृन्दा और मेठाराम का कई वर्ष का पुराना परिचय था। सिंध प्रदेश में पर्दा प्रथा होने पर भी वृन्दा उनके साथ खुलकर बातें करती थीं। भोजनालय में महात्मा को बैठाकर वह अपने प्राइवेट कमरे में गई और मेठाराम को बुलवा धीमे स्वर से कितनी ही बातचीत की। अंत में मेठाराम ने हँसकर कहा—'कोई चिंता नहीं; मैं जिस ढंग से कहता हूँ उसी रीति से सब व्यवस्था कर डालो; सब काम ठीक हो जायगा!'

वृन्दा के प्रासाद में ऊपर के भाग में एक ऐसा कमरा था जिसके भीतर और बाहर का सम्बन्ध एक तरह का था। इस कमरे में पर्दे के पीछे वृन्दा के बैठने की व्यवस्था की गई थी। यहाँ से कमरे के भीतर और बाहर दोनों ओर का कार्य-क्रम समान रूप से दिखाई पड़ता था। यहीं पर सब तैयारी होने लगी।

महात्मा के भोजन करते समय ही वृन्दा उसके पास गई। महात्मा गोपालदास हाथ धोने की तैयारी कर रहा था। वृन्दा ने कहा—'यह क्या देवरजी! तुमने तो कुछ खाया ही नहीं; अभी हाथ क्यों धोने जा रहे हो? तुम्हें मेरी सौगन्ध, चार ग्रास और खालो।'

'मुझे पूरी भूख नहीं लगी है।' महात्मा ने कहा।

'नहीं-नहीं, तुम शरमाते हो।' वृन्दा ने आग्रह किया।

'भला, आहार-व्यवहार में लज्जा कैसी! अतिशय भोजन करने का मेरा स्वभाव नहीं है। बड़ी बहू! क्या यह बात तुम नहीं जानतीं?'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' वृन्दा ने कहा।

झटपट हाथ धोकर महात्मा वृन्दा के साथ उतावली से दालान की ओर गया। चलते-चलते वृन्दा ने कहा—

'देवर्जी ! तुम इस दरवाजे से दालान में जाओ, और मैं उस कमरे से होकर आती हूँ। दालान में अधिक आदमी आ गये हैं। मैं पर्दे के पीछे [illegible]। तुम जाकर दालान में अपने आसन पर बैठो।'

'क्या वहाँ तुम्हारा दर्शन न मिलेगा?' महात्मा ने कहा।

'यदि कोई ऐसी आवश्यकता हो तो मेरे पास चले आना। वहाँ पर अधिक आदमियों के आजाने से मुझे पर्दा करना पड़ रहा है। लाचार हूँ।' वृन्दा ने कहा।

'हाँ, हाँ ठीक है। स्त्रियों को पर्दा में रहना ही चाहिये। पर दयामयी तुम्हारे ही पास बैठे तो कोई बाधा तो नहीं है?'

'नहीं, दयामयी की वहाँ बार-बार आवश्यकता पड़ेगी, इससे उन्हें अपने ही पास बैठने दो।' वृन्दा ने कहा।

वृन्दा कमरे में जाकर पर्दे के पीछे बैठ गई। महात्मा ने दालान में जाकर देखा तो वहाँ पर उस समय की शोभा अपूर्व थी। अनेक गण्यमान्य लोग बैठे थे। पर्दे के अत्यंत निकट ही मसनद से उठँगकर मेठाराम रजिष्ट्रार बैठे हुए थे। उनकी बगल मे वाघूमल थे। उनसे थोड़ी ही दूरपर उनका मुहर्रिर भी बैठा हुआ था। हैदराबाद के कितने ही प्रतिष्ठित गृहस्थ वहाँ पर आये हुये थे। वृन्दा के सब दास,

दासी और कर्मचारी एक ओर पंक्ति बाँधकर बैठे हुए थे। दालान का भाग्य मानों हँस रहा था। महात्मा गोपालदास का प्रधान पार्षद भी आया हुआ था। उसके साथ दूसरे अप्रधान पार्षद भी आये हुये थे। महात्मा का आगमन होते ही वृद्ध मेठाराम रजिष्ट्रार अपने आसन पर से उठ खड़े हुए और बोले—'पधारो-पधारो; इस बीच के उच्च आसन पर विराजो।' दालान के मध्यभाग में पहले ही से रेशम की गद्दी शीशम की ऊँची चौकी पर बिछी हुई थी। रजिष्ट्रार के उठने से सब लोग खड़े होकर कहने लगे—'आओ, ब्रह्मर्षिराज; आओ।'

इस परिस्थिति को देखकर गोपालदास आश्चर्य से मुग्ध हो गया। धीरे-धीरे उसकी समझ मे आया मानों राज्याभिषेक का प्रसंग आया है। ज्यों-ज्यों गोपालदास को निर्दिष्ट आसन पर विराजमान होने की विनती लोग करते जाते थे, त्यों-त्यों वह कहता जाता था—'यह कदापि नहीं हो सकता। मैं अति क्षुद्र हूँ। मैं तो आप लोगों के चरणों मे बैठने के योग्य भी नही हूँ।'

उसका यह ढंग देखकर मेठाराम आगे बढ़े और महात्मा का हाथ पकड़ लिया। 'बैठो, बैठो' और 'मैं एक क्षुद्र

कृमि हूँ; मैं सबके चरणों की धूलि हूँ' आदि वाक्यों की भरमार सुनाई पड़ती थी। अन्त में सबके अत्यन्त अनुरोध से महात्मा अपने आसन पर बैठ गया। उसके बैठते ही पार्षद वगैरः तुरत उस आसन के आस-पास बैठ गये। प्रधान पार्षद और गोपालदास के बीच नेत्रों से कुछ सम्भाषण हुआ। वृद्ध मेठाराम कथावाचकों के स्वर में धीरे; किन्तु गंभीर भाव से बोले—'आज एक महान कार्य होनेवाला है। मेरी वृद्धावस्था हो गई पर ऐसे सत्कार्य की बात मेरे सुनने में न आई थी। आज का यह कार्य इस विश्व मे अलौकिक है। इतनी संपत्ति और इतने वैभव को त्याग कर भला कौन स्त्री वन-वासिनी हो सकती है! संसार के भोग-विलास की लालसा भला किसके मन में नहीं होती। परन्तु आप सब लोग आज देख लें; श्रीमती वृन्दा की यह आत्म-त्याग-शक्ति प्रत्यक्ष देखने में आती है। वृन्दा ने शुभ समय में मानव-जन्म लिया था। अन्यथा ऐसी सद्भावना कभी भी संभव नहीं है।'

'वृन्दा मानवी नहीं; अपितु देवी है। मैं इसके अंग में देव-चिन्ह देखता हूँ। वह चिन्ह अति सुन्दर और शुभ्र है। सर्व श्रीहरि की लीला है। हे हरि! पार उतारो।' महात्मा ने कहा।

'महात्माजी जो कुछ कह रहे हैं, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। वास्तव में गोपालदास महासाधु हैं। इनकी बातें कभी भी मिथ्या नहीं हो सकतीं। महात्मा ने भूमि का भार उतारने के लिए मनुष्य का अवतार लिया है।' मेठाराम ने कहा।

यह सुनकर महात्मा अपने दोनों कानों में उँगली डालकर कहने लगा—'मैं क्षुद्रकीट हूँ। अति क्षुद्र हूँ। काकविष्टा हूँ।'

'महात्मा चाहे जो कहें; पर यह ईश्वर के बहुत प्रिय-जीव हैं। यह बात किसीसे भी छिपी नहीं है। भगवान ही में इनकी मति, रीति एवं गति है। यह सदा ही हरिप्रेम में मग्न और उन्मत्त रहते हैं। यह विषय-कर्म से निस्पृह और निष्काम हैं। यह स्वप्न में भी चाँदी-सोने को स्पर्श नहीं करते। इसका कारण शायद यही है कि दृष्टि-विकार से कहीं लोभ न उत्पन्न हो जाय। इसीसे यह इन वस्तुओं पर अपनी दृष्टि भी नहीं पड़ने देते। यह इस कलिकाल के साक्षात् विदेह राजर्षि जनक हैं।' मेठाराम ने कहा।

पुनः अपने दोनों कानों को उँगली से बंद कर महात्मा ने कहा—'नहीं, मुझमें यह योग्यता नहीं है। मैं क्षुद्र नरक-कीट हूँ।'

'महात्माजी अपनी विनय और नम्रता दिखा रहे हैं। मेरे देखने में संसार में ऐसा कोई भी साधु पुरुष नहीं है। आप लोग जरा ध्यान से सुनें, इन्होंने एक प्रकार से आहार छोड़ दिया है। यह केवल तोला भर ही हविष्य बनाते हैं और उसमें से भी केवल चौथाई भाग प्रसाद करते हैं।' मेठाराम ने कहा।

'हे हरि! हे दयामय! अब इस नरक-तुल्य संसार में रहने की मेरी इच्छा नहीं है। मुझे बैकुंठ में ले चलो। हे श्री राधिके! तुम कहाँ हो?' महात्मा ने कहा।

'हे उपस्थित सभासद् महाशयो! महात्माजी की उदारता की बात आपने सुनी होगी। इनकी इस संसार में पलमात्र भी रहने की इच्छा नहीं है। इन्होंने श्रीमती वृन्दा के बड़े गुरु विषय का भार, कृपापूर्वक अपने सिर पर लेना स्वीकार किया है। यह सब आपने केवल परोपकार-बुद्धि से किया है। सब लोग जानते हैं कि परोपकार के लिए ही साधुओं का जन्म होता है। इनके ऊपर चाहे संकट का पर्वत ही क्यों न टूट पड़े; परन्तु साधु-पुरुष परोपकार से कभी भी पराङ्मुख नहीं होते। अपना प्राण देकर भी साधु लोग दूसरे की भलाई करते हैं।' मेठाराम ने कहा।

'बन्धन ! बन्धन ! पूर्वजन्म के दुष्कर्म का फल !' महात्मा ने करुणा-जनक वाणी से कहा ।

'भाइयो ! एकाग्र होकर सुनो । आज श्रीमती वृन्दा की समस्त स्थावर और जंगम सपत्ति के संरक्षण का भार महात्माजी के सिर पर रखा जाता है । श्रीमती वृन्दा अपनी इच्छा, सरल अन्त.करण और प्रेमपूर्ण हृदय से देव-सेवा के लिए महात्मा गोपालदासजी को अपनी सब संपत्ति दे रही है...... ।'

मेठाराम आगे कुछ कह रहे थे इतने में महात्मा बीच ही में बोल उठा—'हे हरि ! विषय-बंधन ? मैं इस बंधन की वेदना को सहन नहीं कर सकता । रक्षा करो नाथ ! रक्षा करो ।'

'पूज्य महात्मा ! कृपा करके एकबार इस दस्तावेज का मजमून आप देख लें तो बड़ी कृपा हो ।' मेठाराम ने कहा ।

'मुझसे नहीं देखा जाता । विषय-कर्म मेरे लिए विष-समान है । क्या यह आप नही जानते ?' महात्मा ने कहा ।

'अच्छा, मैं पढ़ता हूँ, आप सुनें ।' मेठाराम ने कहा ।

'मेरे कानों में यह विष न डालो । राधारमण ! तुम इस समय कहाँ हो ? मुझे इस दारुण दुःख से बचाओ ।'

'श्रीमती वृन्दा कहती हैं कि जिस-जिस तिजोरी में जितनी अशरफी, रुपए, मोहर आदि रखे गये हैं, उन सब को आप एक बार देख लें।' मेठाराम ने कहा।

महात्माजी ने जीभ दबाकर कहा—'धिक्कार! मुझसे यह बात न कहो। उसे दयामयी और प्रधान पार्षद को दिखला दो। वे लोग जाँचकर हिसाब लिख लेंगे।'

'अच्छा, यही सही।' मेठाराम ने कहा।

दयामयी और प्रधान पार्षद कोश की जाँच करने गये। लौटकर प्रधान पार्षद ने महात्मा के कान में कहा—'पिता जी! इतना धन-भंडार तो हमारी सात पीढ़ी में भी किसीने न देखा होगा। रुपया, मुहर, आभूषण और नोटों से कोश इतना भरा है कि वर्णन नहीं कर सकता।' यह सुनकर महात्मा के हृदय में स्वर्ग का साक्षात्कार होने लगा।

मेठाराम और बाधूमल स्टाम्प का कागज साथ ही लेते आये थे। इससे मेठाराम ने बाधूमल के मुहर्रिर को बुला कर कहा—'भाई, यह मेरा लिखा कच्चा खर्रा तैयार है। इसे पक्के कागज पर लिख डालो। जरा भी भूल न होने पावे; नहीं तो स्टाम्प का रुपया व्यर्थ जायगा और यह आवश्यक काम रुक जायगा।'

दस्तावेज लिखा जाने लगा। महासाधु गोपालदास उस मुहर्रिर के लेखन-कार्य को अपने आसन पर से निमेष शून्य नेत्रों से देखने लगा। आनंद से उसकी देह पुलकित हो गई। मुहर्रिर प्रसन्नता से लिख रहा था। जहाँ कच्चे चिट्ठे में उसे कोई अस्पष्ट अक्षर दिखाई पड़ता था वहाँ मेठाराम से रुककर पूछ लेता था। बीच-बीच में गोपालदास दूर-ही से बोल उठता था—'बहुत साफ-साफ स्पष्ट लिखना। शीघ्रता न करना। यह स्टाम्प का कागज है इससे इसमें काट-छाँट न करना पड़े। इसकी सम्हाल रखना।' पर्दे के पास वृन्दा और मेठाराम से धीमे स्वर से कुछ बातचीत हुई। मेठाराम ने महात्मा से कहा—'महात्माजी! श्रीमती कहती हैं कि दस्तावेज मे एक शर्त यह भी होनी चाहिये कि आप अपने मंदिर को छोड़कर सपरिवार इस पर्णकुटी में आकर निवास करें। इस विशाल हवेली में नित्य नियमित स्वच्छता और दीपक आदि की व्यवस्था न रहेगी तो उससे अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होंगे। आप इस भवन मे अतिशय आनंद के साथ रह सकते हैं।'

'मेरे लिये तो प्रासाद और अरण्य दोनों बराबर हैं।

मुझे भवन में जो सुख दिखता है उतना ही एक वृक्ष की छाया में भी अनुभव होता है। किं बहुना ! वटवृक्ष और अशोक वृक्ष की छाया में मुझे अलौकिक आनंद मिल सकता है। वट और अशोक को देखकर मुझे वंशीवाला राधारमण श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है। सुवर्ण की शय्या में दुग्धफेन-समान स्वच्छ चादर से ढका हुआ रेशम का गद्दा और केलि-कदंब के नीचे धूलिशय्या मेरे लिये समान आनंददायक है। इसी कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़कर एकबार श्रीकृष्ण ने गोपियों की चीर चुराकर चीर-लीला की थी। अहा ! हा।' इस प्रकार महात्मा ने कदंब का इतिहास कह सुनाया।

'आपका कहना ठीक है। हमने अभी तक श्रीकृष्ण-तत्व को नहीं समझा है। इस संसार में आकर केवल विषयों में लिप्त रहे और इसीसे अबतक हमने उत्तम और विशाल अट्टालिका को सब सुख का भाण्डार समझा है। अस्तु; चाहे जो हो, पर इस समय श्रीमती वृन्दा जिस शर्त के विषय में कहती हैं उस शर्त को स्टाम्प पर लिखें या नहीं ? आपको क्या आज्ञा है ?' मेठाराम ने कहा।

'हाँ, आप लिख सकते हैं और न भी लिख सकते हैं।

आप अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ कर सकते हैं। इसके लिये मुझसे पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है।' महात्मा ने संदिग्ध स्वीकृति दी।

'अब वृन्दा की यह अट्टालिका आपकी हो गई है, इससे इसकी व्यवस्था आपको रखनी होगी। यह हवेली भी आपकी ही है।' मेठाराम ने कहा।

जीभ दबाकर महात्मा ने कहा—'मेरी अट्टालिका, मेरा उद्यान और मेरा तड़ाग? इस संसार में कोई भी वस्तु मेरी नही है। मैं कौन हूँ? इस संसार का सब पदार्थ मिथ्या है। केवल एक श्रीकृष्ण सत्य है।'

'आपकी तरह साधु और ज्ञानी इस संसार में अधिक नहीं हैं, आप साक्षात् शुकदेव हैं।' बाघूमल ने बीच ही मे कहा।

गोपालदास हाथ जोड़कर कहने लगा—'इतनी बड़ी प्रशंसा—मिथ्या प्रशंसा करके मुझे बिना कारण अपराधी—महापापी न बनाओ। मैं अति क्षुद्र नरक-कीट हूँ।'

इतने ही में बाहर के दरवाजे से कोलाहल की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मालूम होता था कि मानों बाहर मार-पीट हो रही है। दालान के सब मनुष्यों का ध्यान उसी

ओर आकृष्ट हो गया। दरवान ने आकर समाचार दिया कि पुलिस के कितने ही आदमी महात्मा गोपालदास को खोज रहे हैं। वे यहाँ आना चाहते हैं; पर अपने आदमी उनको दरवाजे पर रोके हैं। उनके साथ में एक बड़ा अफसर भी आया है।'

'पुलिस के आदमी! और वह हमें खोज रहे हैं? क्यों? किस लिए? मेरा और पुलिस का क्या संबंध है?' महात्मा ने घबड़ाकर कहा।

'यह मैं कुछ नहीं जानता।' दरवान ने उत्तर दिया।

'उनको यहीं ले आओ' बाधूमल ने कहा।

'नहीं, यहाँ अपरिचित मनुष्य का आना उचित नहीं है, और यह तो पुलिस के आदमी हैं। इससे वे यहाँ पर किसी प्रकार आ नहीं सकते। यहाँ एक गुरुतर पवित्र कार्य की तैयारी हो रही है। इससे परिचित मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे किसीका आना अच्छा नहीं है। महात्माजी स्वयं जा सकते हैं। इनके मन में द्वैतभाव है ही नहीं। यह सबको परम प्रिय समझते हैं और यह उचित भी है।' मेठाराम ने कहा।

'ठीक है महाशय! तुम्हारा कथन यथार्थ है। तुम सत्य

कहते हो। मैं मित्र और शत्रु को समान समझता हूँ। किसी मनुष्य को जो अपने साथ प्रेम करे उसे हरिप्रेम सिखाने और गोद में लेने की इच्छा हो जाती है। तो मैं ही बाहर जाकर उनसे मिल आऊँ ?' महात्मा ने पूछा।

'हाँ, ऐसा करें तो इसमें कोई बुराई नहीं है।' मेठाराम ने कहा।

'परन्तु पुलिस मुझे क्यों खोजने आई है ?' महात्मा ने पूछा।

'आप महान प्रतिष्ठित हैं। कदाचित किसीके विषय में आपकी सम्मति लेनी हो; इसके अतिरिक्त आपके खोजने का और क्या कारण हो सकता है ?' मेठाराम ने कहा।

'हाँ, यही होगा। श्रीकृष्ण! सहाय करो। अब मैं नीचे जा रहा हूँ।' यह कह महात्मा उठकर नीचे जाने लगा।

ज्योंही महात्माजी उठे त्योंही वृन्दा ने दयामयी को बुला कर कहा—'श्रीमती! चलो, हम लोग भी नीचे जाकर खिड़की से देखें कि पुलिसवाले किस लिए आए हैं ?'

'अच्छा, जैसी तेरी इच्छा।' दयामयी ने सम्मति दी।

दोनों भीतर की सीढ़ी से उतर कर नीचे के कमरे में आईं। वहाँ कोई दूसरा नहीं था। महात्मा पुलिस के

यूरोपियन अफसर के पास जा पहुँचे थे, और खिड़की में खड़ी हुई वृन्दा और दयामयी उनकी बातचीत सुनने लगीं। मेठाराम, बाघूमल, मुहर्रिर और दूसरे गृहस्थ अटारी पर आकर नवीन नाटक देखने के लिए आतुरता से खड़े हो गये।

गत प्रकरण में धन-भांडार के मानसिक दर्शन से महात्मा को स्वर्ग का जो साक्षात हुआ था उसके विपरीत अब पुलिस का दर्शन कर नरक का साक्षात्कार होने लगा। कहा है कि:—

दोरंगी जमाने की मशहूर है।
कहीं साया औ कहीं नूर है॥

'क्यों महाशय! इस पामर जीव को याद करने की क्या आवश्यकता पड़ी? इस अधम मनुष्य के पास इतनी रात के समय आपके आने का क्या कारण है? मेरे बिना क्या अड़चन पड़ी है? राधाकृष्ण! कृष्ण-राधे।' महात्मा ने पुलिस अफसर से कहा।

'साधुराज! आप इस हैदराबाद नगर के एक परोपकारी और अलौकिक साधु पुरुष हैं। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। पर, सरकारी नौकर होने से मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना पड़ रहा है। इसके लिए मैं विवश हूँ और आपसे क्षमा माँगता हूँ।' पुलिस-अफसर ने कहा।

'अपने कर्तव्य का पालन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। मैं भी बहुत विवश हो गया हूँ। मुझे क्षमा माँगनी पड़ रही है। वह कौन-सा कर्तव्य आपके सिर पर आ पड़ा है? सरकार की आज्ञा से जल्लाद की तरह आपको किसीका बध तो नहीं करना है? श्रीहरि! उद्धार करो; पाप-नौका को पार लगाओ।' महात्माजी ने कुछ दूसरा ही अर्थ समझ कर कहा।

'यदि किसी पापी का बध करना होता तब तो मुझे बड़ा आनंद मिलता। परंतु आज मुझे एक महाधर्मात्मा, प्रभु-भक्त का घर तलाश करने का हुक्म मिला है। इसीसे मुझे शोक हो रहा है।' पुलिस अफसर ने कहा।

'हरिश्चन्द्र की तरह महासत्यवादी और दानशूर राजा पर विपत्ति आई थी तो दूसरे की कौन बात है! उसके भाग्य में यह आपत्ति भोगने को लिखा ही है तो इसमे आपका क्या दोष? परन्तु वह महाधर्मात्मा और प्रभु-भक्त कौन है? राधारमण! पापी को बचाओ।' महात्मा ने कहा।

'वह एक ऐसा अलौकिक महात्मा पुरुष है कि इस प्रसंग में उसका पवित्र नाम लेने में भी जीभ अटकती है

और आँख में संकोच और शर्म आती है। यदि आज यह पुलिस की नौकरी न होती तो यह प्रसंग मेरे सिर पर क्यों आता ? जिस महात्मा ने कभी स्वप्न में भी पाप की इच्छा मात्र तक नहीं की थी; किसीको त्रास तक नहीं दिया था और सबके कल्याण के लिये ही अपना जीवन व्यतीत कर रहा था उस महात्मा के ऊपर विश्वासघात, प्रपंच, और सदोष मनुष्यापहार आदि अपराध आरोपित किये गये हैं। यह इस कलिकाल का एक महान कार्य कहा जा सकता है।' पुलिस अधिकारी ने मार्मिकता से कहा।

'कृष्ण! वृजविहारी कृष्ण, राधारमण कृष्ण!' महात्मा अपने हृदय की घबड़ाहट को व्यक्त न होने देने के लिये इन शब्दों को कहकर तर्क-वितर्क करने लगा।

'हे परमात्मन्! क्या अंत में मुझे एक धर्मावतार को पापी की तरह पकड़ना पड़ेगा।' पुलिस अधिकारी ने कहा।

'उसका नाम बताओ। तब मैं उपदेश दूँ कि उसके साथ तुम्हें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये। वैकुंठनाथ! सुबुद्धि दो।' महात्मा ने कहा।

'तो निरुपाय होकर मैं बतलाता हूँ कि महात्मा गोपालदास के सिर अपराध आरोपित हुआ है। मेरे

पास आपके नाम का वारंट है। इस समय आपके घर की तलाशी लेने और कानून के अनुसार अन्य व्यवस्था करने की मुझे आज्ञा मिली है। इतना ही नहीं, पर आपकी साली दयामयी को भी गिरफ्तार करने का वारंट मुझे मिला है। बताइए, मैं किस रीति से व्यवहार करूँ?' पुलिस-अफसर ने सब भेद खोल कर कहा।

जिस तरह किसी पर बिजली गिरने से मनुष्य जल जाता है और उसके शरीर का रंग बदल जाता है, उसी प्रकार पुलिस अधिकारी की इन बातों को सुनकर महात्मा का प्रफुल्ल वदन कमल मुरझा गया। उसपर मलिनता और निस्तेजस्विता की छाया फैल गई। कुछ देर तक वह बोल नहीं सका। फिर कुछ सावधान होकर और घबड़ाहट को दबाकर महात्मा ने पूछा—'मुझपर इस आरोप का लगाने वाला वह दुष्टात्मा कौन है? क्या सरकार ने भी मेरी प्रतिष्ठा का विचार नहीं किया! एक महान धर्मगुरु को तुम पकड़ नहीं सकते। यदि मेरा अपमान किया जायगा तो हैदराबाद के हिन्दुओं में महाविक्षोभ उत्पन्न होगा और धर्म का बल जग उठेगा। इसलिये मुझे न छेड़ने में ही तुम्हारी भलाई है। सरकार को यह सब बातें बतला

दो और तब मुझे या मेरी साली को पकड़ने आओ। यह मेरा शुभ उपदेश है।'

'आपका उपदेश योग्य है। पर, पराधीन होने से मैं इस उपदेश के अनुसार वर्ताव नहीं कर सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। गाड़ी तैयार है। आप अपनी साली को बुला लें और मेरे साथ अपने मंदिर में चलें।' पुलिस-अफसर ने नम्रता से तथा पुलिस की रीति के अनुसार कठिनाई दिखलाते हुये कहा।

'पर, मुझपर यह भयंकर अपराध आरोपित करने वाला कौन है? श्रीकृष्ण!' दुष्ट कंस की तरह उसका भी नाश तुम क्यों नहीं कर डालते।' महात्मा ने कहा।

'जिन्होंने आप पर यह अपराध आरोपित किया है वह महाशय आपके मंन्दिर में दिखाई पड़ेंगे। इससे अभी उनके नाम जानने की आवश्यकता नहीं है। आप निरपराधी हैं तो आपको भय काहे का है? आपके कथनानुसार जब हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी और धर्मपरायण राजापर संकट आया था लेकिन वह निष्पाप थे; अतः अंत में निष्कलंक होकर प्रतिष्ठापूर्वक मुक्त हो गये। उसी प्रकार यह क्यों न होगा? परमेश्वर आपको सत्य की कसौटी क्यों नहीं कर देंगे? साहस रखो।'

'क्या तुम्हें भी मेरे प्रति पूज्यभाव नहीं है।' महात्मा ने कहा।

'मेरा आपके प्रति पूज्यभाव है।' इसीसे अबतक कार्य में विलम्ब करके आपको मानपूर्वक ले जाने की चेष्टा कर रहा हूँ। यदि ऐसा न होता तो हम अपने पुलिस के नियम के अनुसार आपकी बाँह पकड़कर गाड़ी मे बैठा दिये होते और अब तक आपको घर की ओर ले गये होते। अब कृपा करके चलो।' पुलिस अफसर ने थोड़ा पुलिस का रंग दिखाते हुए कहा।

महात्माजी पुलिस के ढंग को भली-भाँति जानते थे। इससे वह समझ गये कि अब तीन-पाँच करने से कोई लाभ नहीं है और पुलिस के साथ गये बिना अब छुटकारा नहीं है। कहाँ वृन्दा की अगाध सम्पत्ति का सर्वाधिकारी स्वतन्त्र-स्वामी होने का प्रसंग और कहाँ पुलिस के हाथ मे गिरफ्तार होने का रंग! महात्मा अपने मन में स्वर्ग और नर्क की तुलना करने लगा। कुछ देर तक महात्मा से कुछ उत्तर न पाकर पुलिस अफसर ने जरा कड़क कर कहा—'महात्माजी, शीघ्र चलो। आपके जाने के लिए पुलिस के पंद्रह आदमियों को देर हो रही है। यह काम

जल्द खतम हो जाय तो हम घर जाकर आराम करें। चलो, अपनी श्रीमती सालीजी को भी बुला लो; स्वेच्छा से या बलात्कार से चले बिना अब आपका छुटकारा नहीं है। आप विद्वान हैं। विश्वास है कि आप इतने ही से सब समझ जायँगे।'

'चलो, मैं चलता हूँ। दयामयी के आने का क्या काम है? मैं हाजिर हूँ। इतना यथेष्ठ है। हे कुंजविहारी प्रतिष्ठा रखो!' महात्मा ने कहा।

'दयामयी को भी आना पड़ेगा। कारण यह है कि उसपर भी वारंट है, और हम सरकार के नौकर हैं और हमें सरकार के हुक्म का पालन करना ही पड़ेगा। इसलिये उसको भी बुलाओ।' पुलिस अफसर ने जरा रोब से कहा।

अब महात्मा को कोई उपाय नहीं रह गया। वह दयामयी को बुलाने के लिये अन्दर जाने का यत्न करने लगा। पर, उसको ऐसा करते पुलिस अफसर ने रोका, और कहा—'नहीं, अब आप हमसे दूर नहीं जा सकते। देखो, दयामयी उस खिड़की मे खड़ी है। इससे उसको यहीं से बुलाओ।'

महात्मा के बुलाने पर लाचारी से दयामयी वहाँ आ गई। तीन गाड़ियाँ तैयार थीं। एक गाड़ी में दयामयी,

पुलिस असलदार और एक सिपाही—ये चार आदमी बैठे थे। दूसरी गाड़ी में चार-पाँच आदमी थे। तीसरी गाड़ी में पूर्व ही से चार आदमी बैठे थे। सब तैयारी हो जाने पर पुलिस अफसर ने गाड़ी हाँकने की आज्ञा दी। हैद-राबाद की ओर लगभग आधे दूर जाने पर महात्मा आदि वाली गाड़ी मन्द चलने लगी, और तीसरी गाड़ी वेगसे आगे बढ़ गई। कुछ देर बाद ये दोनों गाड़ियाँ भी तेजी से चलने लगीं और महात्मा के कृष्ण-मंदिर के पास पहुँच गई।

महात्मा, दयामयी, पुलिस अफसर और दूसरे सिपाही गाड़ी से उतर मंदिर के द्वार पर पहुँचे। मन्दिर के चौक में चार दीपक झलमलाते हुए जल रहे थे। वहाँ पर चार-पाँच प्रतिष्ठित गृहस्थ बैठे हुये थे। बाहर पुलिस का सख्त पहरा पड़ रहा था। आँगन के कोने में दो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। चौक में बैठे हुए गृहस्थ को देखकर महात्मा के मुख का रंग बदल गया। वह भ्रमिष्ट की तरह हो गया। दयामयी घबड़ा तो जरूर गई पर उसकी घबड़ाहट महात्मा से कम थी। यह गृहस्थ कौन था? महात्माजी ने जिसकी सम्पत्ति हड़प ली थी; वही काशी-निवासी दीवान आलमचंद!

महात्मा को फँसाने के लिये इस जाल का विस्तार

वृन्दा की आज्ञा से बाबूमल ने कर रखा था। जो गाड़ी आवे मार्ग से आगे निकल गई थी उसमें आलमचन्द, यशोदा, रोहिणी आदि थे। जो दो स्त्रियाँ कोने में बैठी थीं वे यशोदा और रोहिणी थीं। इनको महात्मा और दयामयी किसी ने न पहचाना। केवल आलमचन्द को ही देखकर उनका साहस छूट गया। इसके अतिरिक्त दो-चार गृहस्थ थे। उनको पंच की तरह पुलिस ने बुला रखा था। आलमचन्द के साथ साधु आनन्दानन्द भी था। उन सब लोगों के अन्दर जाने के पश्चात् पुलिस अफसर ने कहा—'गृहस्थो! यह दीवान आलमचन्द ने महात्मा गोपालदास पर विश्वासघात का अपराध आरोपित करके वारंट निकलवाया है। इन्होंने जेवर और नोट मिलाकर लगभग दो लाख रुपये की रकम महात्मा के यहाँ अमानत की तरह रखी थी। पर पीछे से महात्मा इनकार कर गया और इसीसे यह हथकड़ी-बेड़ी पड़ी है। इनकी दी हुई लिस्ट के अनुसार महात्मा के पास सब सामान निकलता है या नहीं, इसीके लिये इस मन्दिर की हमें तलाशी लेनी है और इसी कारण आपको पंच की तरह बुलाया गया है। जो आज्ञा हो तो अपने कार्य का आरंभ किया जाय।

'आप करें; हमें कोई इन्कार नहीं है।' सबने कहा।

महात्मा! तुम अपनी पेटी-पेटारी खोलो और जो हो सो बताओ।' पुलिस अफसर ने महात्मा से कहा।

'मैं पैसा-रुपया हाथ से नहीं छूता। यह सब दयामयी बतावेगी। हे राधिके! नौका डूब रही है।' महात्मा ने कहा।

इतने ही में आलमचन्द जरा आगे बढ़ आये और दयामयी के शरीर पर के अलंकारों को दिखाकर बोले—'प्रथम इस स्त्री के शरीर पर जो अलंकार चमक रहे हैं वे सब मेरे हैं। इसका सबूत मैं दूँगा। इसलिये प्रथम इन्हें उतार अपने अधिकार में कर लो।'

'बाई! अपने अलंकार उतार डालो।' पुलिस ने आज्ञा दी। लाचार होकर दयामयी ने सब अलंकार उतार दिये, और आज वह सचमुच विधवा दिखाई पड़ने लगी।

पुलिस अफसर की आज्ञा के अनुसार दयामयी ने सब पेटी, पेटारी और तिजोरी इत्यादि खोलकर दिखला दिया। आलमचन्द ने अपने पास जिन जेवरों और नोटों का नोट रख लिया था उसकी नकल वारंट निकलवाते समय कोर्ट में नत्थी कर दिया था और यह लिस्ट

इस समय पुलिस अफसर के हाथ में थी। जो आभूषण दयामयी के शरीर पर मिले थे उसके अतिरिक्त दूसरे जेवर भी निकले और नोटों का बण्डल भी मिल गया। उनमें से जो कुछ नोट कम हो गये थे और जो नोट मिले थे उनका नम्बर आलमचन्द की नोट के अनुसार ही मिला। जाँच करते-करते अधिक ध्यान खींचनेवाली एक वस्तु मिली। वह आलमचन्द की बाल्यावस्था में चोरी गई हुई पुत्री के गले में पहने जानेवाला हीरा-मोती का हार था। आलमचन्द ने उसको पहचाना और पुलिस अमलदार को सब बातें समझाते हुए कहा—'मेरे उस नोट में इस वस्तु का उल्लेख नहीं है; परन्तु यह हार भी मेरा ही है। एक बार इस हार को अपनी लड़की को पहनाकर मैं यहाँ कथा सुनने आया था। इसके बाद से ही पुत्री गुप्त हो गई। तबसे अब तक हमारी पुत्री का कुछ पता न मिल सका। इसलिये इस हार को अलग नोट करके रख लो। इससे शायद कोई दूसरी बात भी निकल आवे।'

'अच्छा, यही सही। मैं अब इस महाशय गोपालदास के प्रति पूज्य-बुद्धि नहीं रख सकता। अतः मुझे अब ऐसा

करने में कोई बाधा नहीं है।' इस प्रकार कहकर पुलिस अफसर ने हीरे के हार को भी नोट कर लिया।

सब माल मिल गये। इससे पंच के सामने पुलिस अफसर ने सब चीजों को नोट कर लिया। उस पर पंच का दस्तखत करा लिया। और सब माल पुलिस अफसर ने अदालत में दाखिल करने के लिये अपने कबजे में कर लिया। और फिर कहा—'महात्माजी! अब तुम क्या कहते हो? हमारी तलाशी मे लिस्ट के अनुसार सब ठीक-ठीक माल तुम्हारे मंदिर से मिले हैं। इससे अब तुम दोनों को करांची जेल जाना पड़ेगा।'

'इस समय तुम्हे जो अत्याचार करना हो, कर लो; मेरे कृष्ण देख रहे हैं। यह माल किसके बाप का है? वह कोर्ट मे भली-भाँति मालूम हो जायगा। मुझे जेल में भले ही ले चलो। पर, वहाँ के लिये देव-सेवा के साधन मुझे ले लेने दो। कृष्ण की पूजा किये बिना मैं अन्न न ग्रहण करूँगा। दयामयी! देव-सेवा ले लो।' महात्मा ने लाल आँखें करके कहा।

'महात्माजी! क्षमा करो। जेल में आपके रहने के लिए कोई बँगला सजाकर नही रखा है कि जहाँ आप देव-मूर्ति रख सकें। कैदी को इन सब बातों की सुविधा देने का

मुझे अधिकार नहीं है। इस मुकद्में से एकदम निकलना मुश्किल है। इसलिये कल मजिस्ट्रेट साहब के पास से इसके लिये पहले आज्ञा ले लो और तब देवमूर्ति मँगाओ।' पुलिस अफसर ने कहा।

'हे कृष्ण, हे मुरारि, हे चाणूरमर्दन, हे कंस-संहारक! इन राक्षसों का संहार क्यों नहीं कर डालते? अपने भक्त के ऊपर इस प्रकार का अत्याचार तुम कैसे देख रहे हो; इन अनाचारों को तुम किस प्रकार सहन कर रहे हो। कलिकाल! कलिकाल घोर पाप! महापातक! चलो! नरक में ले चलो। तुम देखोगे कि इस अनाचार और अत्याचार का कैसा कटुफल भगवान तुमको चखाते हैं। तुम्हारा नाश हो, तुम निर्वंश हो जाओ; और तुम्हारे ऊपर अनेक संकट आवें। क्यों दयामयी! तुम कोई शाप क्यों नहीं देती।' महात्मा एकदम सर्प की तरह फुफकार मारने लगा।

दयामयी अब तक कुछ भी न बोली थी। इससे उसने महात्मा के प्रश्न का कुछ उत्तर न दिया। उसके मौनावलंबन में भी कुछ भेद भरा था। इस अवसर पर विवाद करने से कोई लाभ नहीं है; यह वह चतुर चपला जानती थी। सचमुच पुरुष तो पढ़कर पंडित होवे हैं; पर स्त्रियाँ तो स्वा-

भाविक पंडिता होती हैं। कभी-कभी समय-सूचकता और सहनशीलता का गुण पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में विशेष परिमाण में देखने में आता है। इस समय भी वही बात हुई। जब दोनों को ले जाने की पूरी तैयारी हो चुकी तब दयामयी ने पुलिस अमलदार से कहा—'भाई और कुछ तो नहीं; पर दो कपड़े एक चादर और पानी पीने का लोटा तो ले लेने दो। यदि आप इसके लिये आज्ञा दें तो बड़ा आभार रहेगा।'

पुलिस अफसर ने दयामयी को इन चीजों के लेने की आज्ञा दे दी। दयामयी उन चीजों को लेने के लिए कमरे में गई। इतने ही में अचानक उसकी दृष्टि रोहिणी पर पड़ी। उसे देखकर शाक्तसदन के ऊपर अवश्य कोई आपत्ति आई होगी—ऐसी उसने कल्पना कर ली और चीजों के लाने के पीछे आनन्दानन्द को देखने पर उसकी यह कल्पना दृढ़ हो गई। कारण यह कि यही आनन्दानन्द तो शाक्तसदन में चन्द्रशंकर था। यह सब कुछ—एक भयंकर जाल—देखकर दयामयी ने अपने मन में कहा—'चिन्ता नहीं। चाण्डालो! तुमने तो हमलोगों के लिये इतना भयंकर जाल फैलाया है, और हमें इसमें फँसा ही लिया है; परंतु इस जाल को छेदकर एकबार आजाद हो निकल न जाऊँ और

तुम्हें धत्ता न बता दूँ तो मेरा नाम दयामयी नहीं। एक स्त्री क्या कर सकती है उसे तुम ध्यान रखकर देखना।'

तत्काल महात्मा को गाड़ी में बैठने की आज्ञा मिली। सारांश कि महात्मा और दयामयी को पुलिस जेल ले गई, और उनके जाने के बाद आलमचन्द, यशोदा, बाधूमल, आनन्दानन्द अपनी-अपनी गाड़ी में बैठ कर वृन्दा के घर की ओर गिडुबन्दर जाने को रवाना हो गये। वृन्दा को उन्होंने सब वृतान्त कह सुनाया। आज वृन्दा को गाढ़ी निद्रा आई। उसके मन का भार कम हो गया।

२८

प्रभात होने पर ज्यों-ज्यों भावुक स्त्री-पुरुष महात्मा के मन्दिर में दर्शन करने आने लगे, त्यों-त्यों विगत रात्रि में महात्मा और दयामयी के सिर पर आनेवाले सङ्कट की वार्ता धीरे-धीरे उनके सुनने में आई। दस बजे तक इस बात का इतना प्रसार हो गया कि घर-घर में इसकी अच्छी या बुरी चर्चा चलने लगी। जो स्त्री-पुरुष कुछ शिक्षित और विवेकशील थे वे तो तटस्थ हो मौन अवलम्बन करके बैठ रहे। जो उद्धत और उच्छृंखल थे वे महात्मा की निन्दा करने लगे। हैदराबाद सिंध में अन्धश्रद्धालु स्त्री-पुरुषों की

संख्या कुछ कम न थी। महात्मा गोपालदास के गिरफ्तार होने का समाचार सुनकर धर्म-प्रेमी और प्रेमिका के समाज में जो कोलाहल उत्पन्न हुआ वह अपार और अवर्णनीय था। मन्दिर में सौ सवा सौ स्त्रियाँ दर्शन करने आई थी। वे इस बात को सुनकर आपस में बातें करने लगी—'बहन! देखो, इस कलिकाल का प्रभाव! पापी लोग आनन्द करें और साधु को सङ्कट! दुष्ट पुलिस वाले ईश्वर के अवतार महात्माजी को गिरफ्तार कर ले गये!' एक ने कहा।

'मन्दिर का सेवक कहता है कि कुलेली-तट पर रहने-वाले दीवान आलमचन्द ने महात्मा के यहाँ दो-चार लाख रुपये अमानत रखे थे पर उनके माँगने पर महात्मा ने कान पर हाथ रख लिया। इसीसे दीवान आलमचन्द ने नालिश करके महात्मा को गिरफ्तार कराया है।' दूसरी ने कहा।

'यह दीवान तो पत्नी-सहित काशी चला गया था!' तीसरी ने कहा।

'हाँ, पर वह अपनी मिल्कियत वसूल करने के लिए स्त्री सहित लौट आया है।' दूसरी ने कहा।

'बाई, गोपालदास की तरह महात्मा जो कभी सोना, चाँदी हाथ से भी न छूता था और किसी प्रकार का लोभ नहीं

रखता था वह दीवान आलमचन्द का रुपया और आभूषण अपने मंदिर में रख ले और माँगने पर उसे वापस न दे—यह बात विश्वास में नहीं आती। महात्मा के ऊपर झूठा आरोप करनेवाले दीवान आलमचन्द को अवश्य दंड मिलेगा, मुझे तो यही साफ दिखाई पड़ता है।' चौथी ने कहा।

'अरे! महात्मा गिरफ्तार हुए सो तो ठीक। पर, देवी की तरह दयामयी को भी दुष्टों ने जेल में बंदकर दिया है। देखो तो भला आज कल का अत्याचार! बदमाशों को स्त्री को बेड़ी पहनाने में कुछ हिचक न मालूम हुई। वे सब भगवान को भी नहीं डरते।'

'हाय भगवान! वे सब दयामयी को भी जेल ले गये! देवी दयामयी जब शाप दे देंगी तो ये सब पापी आपही जल जायँगे। बाप रे बाप! कितना अधर्म कितना अत्याचार!'

महात्मा की तरह परोपकारी पुरुष कोई हो नहीं सकता। जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती थी उसे वह वस्तु महात्मा के पास से अवश्य मिलती थी। वह अपने तन, मन एवं धन को परोपकार में लगाते थे। अरे भगवन्! तुम क्यों इस तरह अत्याचार देख रहे हो?'

महात्मा के यहाँ दिन-रात पड़ी रहने वाली सुंदरी और हृष्टपुष्ट शरीर वाली एक तरुण विधवा ने कहा।

'मैं कहती हूँ कि महात्मा दीवान की इतनी संपत्ति खा ही गया तो इससे क्या ? यह महात्मा हमारी संपत्ति भोग कर डाले ऐसी हमारी भाग्य कहाँ! जिसके स्पर्श मात्र से अपना उद्धार हो जाता है उसकी कृपा के आगे दो-चार लाख रुपये की क्या हस्ती ! चार लाख व्यय करने पर ऐसे महात्मा के चरण-स्पर्श का सौभाग्य भी नहीं मिल सकता।' एक दूसरी विधवा ने छाती ठोककर अपना भाव प्रकट किया।

'पर, बहनो ! अब इस प्रकार आलोचना करने से कुछ लाभ नही है। महात्मा में यदि तुम लोगों का सचमुच स्नेह और श्रद्धाभाव हो, और उनके वियोग से तुम्हारे मन में वास्तविक दुःख हो रहा है तो इसी समय इस संकट से उन्हें निकालने की झटपट कोशिश करो। तुम लोगोंमें से बहुत-सी धनी और सरकार में मान्य गृह की हैं। अभी जाकर पति को समझाओ, रोओ, उपवास करो और गाली दो ; इससे वे अवश्य महात्मा के छुड़ाने का प्रयत्न करेंगे और तभी हमें महात्मा के दर्शन और समागम का लाभ मिलेगा। ऐसे संकट के समय महात्मा की सहायता आप

लोग न कर सकीं तो आपके प्रेम और भक्ति को धिक्कार है।' महात्मा की एक भक्त भामिनी ने कहा।

यही निश्चय करके सब स्त्रियाँ अपने-अपने घर चली गईं। स्त्रियाँ जो निश्चय करें, और न कर सकें ऐसा तो हो नहीं सकता। अतः उनके निश्चय का तत्काल परिणाम दिखाई पड़ा। दोपहर के बाद तीन बजे कुलेली के किनारे पर एक मंदिर में भक्तों की एक सभा हुई। सभा में प्रतिष्ठित तथा धनाढ्य गृहस्थ उपस्थित थे। इनमें कितने ही व्यापारी, वकील और सरकारी नौकर भी थे। अनेक अन्ध-श्रद्धालु थे। कितने ही तो गुरु का अवगुण न देखना चाहिए, इस विचार के थे, और बहुतेरे मन में विपरीत भाव होने पर भी समाज के भय से हाँ में हाँ करने वाले थे। सब जाति के गृहस्थों के आ जाने पर सभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ।

सबसे पहले दीवान वासणमल ने कहा—'अपने पूज्य महात्मा गोपालदास के कैद होने की बात तो आप सब लोगों ने सुन ही ली है। यह काम रातोरात हो जाने से किसी प्रकार हमलोगों को मालूम न हो सका, और पापी सफल हो गये। अपने गुरु के इस प्रकार कैद में जाने से हम लोगों की नाक कट गई। अब यदि अपनी नाक रखने की

लाज हो तो महात्मा और उनकी साली को मानपूर्वक जेल से छुड़ाना चाहिये। आप सब भाइयों का क्या अभिप्राय है ?'

'देखो, चाहे लाख रुपये की होली हो जाय; पर अपने को तो अपनी नाक रखनी ही होगी। आज मेरे घर में चूल्हा तक नहीं जल सका। अपने धर्मगुरु पर इस प्रकार अत्याचार होवे; यह सहन कैसे किया जा सकता है। स्त्रियों की आँखों का आँसू सूखता ही नहीं!' वेद्रूमल ने कहा।

'इतने बड़े धर्मगुरु को पुलिस का अफसर एकाएक साधारण लुच्चा और आवारा की तरह पकड़कर जेल में ले जाय और धर्म की मर्यादा का कुछ ख्याल न रखें। पुलिस की इस ज्यादती को सरकार में सुनाना चाहिये।' चौथे ने कहा।

'भाइयो! सुना जाता है कि महात्मापर जो अपराध आरोपित हो चुका है, वह भयंकर है। मुझे इस बात में भी शंका है कि वह किसी प्रकार जमानत पर छूट सकते हैं; और यदि सरकार दया करे तब भी बहुत बड़ी रकम जमानत के लिये देनी पड़ेगी। उस समय अधिक रुपये की आवश्यकता पड़ेगी।' शौकीराम वकील ने कहा।

'चिंता नहीं। जो पाँच लाख रुपए नगद लगेंगे, तो

वह भी जमानत दूँगा। अपने धर्म से धन अधिक प्यारा नहीं है।' सेठ हीराचंद ने कहा।

'चलो, आज ही मजिस्ट्रेट के पास चलें।' एक ने कहा।

'आज रविवार है। इससे कुछ नहीं किया जा सकता।'

'क्या गतरात्रि की तरह आज भी महात्मा और दया-मयी को जेल में ही रात बितानी पड़ेगी? आप खानगी तौर पर मजिस्ट्रेट के पास जा सकते हैं और वह जमानत पर छोड़ सकते हैं।' टोडरमल ने चिल्लाकर कहा।

'अच्छा है, यदि सबका विचार हो तो इसमे मेरी कोई अस्वीकृति नहीं है। मैं भी साथ चलूँगा और महात्मा को छुड़ाने के लिये जितनी कोशिश हो सकती है, करूँगा। चलो, तैयार हो जाओ।' शौकीराम ने अनुमति दिखाई।

सब लोग उठने की तैयारी कर रहे थे इतने ही मे सेठ रणमल कहने लगे—'भाइयो! मेरी एक और प्रार्थना है और वह यह कि जिस दीवान आलमचन्द ने इस प्रकार अपने धर्मगुरु पर अपराध लगाया उससे इसका लिखित जवाब मँगाया जाय। कदाचित महात्मा पर लगाया अपराध सत्य हो; तो भी इस प्रकार से एकदम कोर्ट मे

जाना उसे उचित न था, तथा अपनी संपत्ति वसूल करने का उसे अन्य उपाय करना चाहता था।'

'उनका सब माल तो महात्मा के मन्दिर ही में से निकला है।' एक मनुष्य ने कहा।

'मेरे विचार के अनुसार तो इस अधर्मी को अपने जाति-मण्डल से सदा के लिये वहिष्कृत कर दिया जाय।' जेठूमल ने कहा।

'यदि कोर्ट से महात्मा निर्दोष सिद्ध होकर छूट जाँय तब आलमचन्द को जाति-वहिष्कृत करने में कोई बाधा नहीं है। पर, आज जो वह किसी प्रकार दण्डित हो जाँय तो यह कार्य जाति का अन्याय कहा जायगा, और सरकार भी इसे अपराध मानेगी।' विचारशील शौकीराम ने कहा।

चार प्रतिष्ठित गृहस्थ गाड़ी में बैठकर मैजिस्ट्रेट के बँगले पर गये। पर, वह हैदराबाद से सात-आठ मील दूर जंगल में आखेट खेलने चले गये थे। इससे मुलाकात न हो सकी। वे वापस लौट रहे थे। इतने ही में एक गृहस्थ ने कहा—'यदि यह नहीं हो सका तो आप लोग एक कार्य करें। जेल के नियम के अनुसार महात्मा तथा दयामयी अलग-अलग रखे गये हैं और उनके शयन आदि की

व्यवस्था भी ठीक नहीं है। आप लोग जेलर से मिलकर ऐसा प्रबन्ध कर दें कि वे दोनों साथ ही रहें और खाने-पीने की आवश्यक वस्तुएँ भी उन्हें सरलता से मिल सकें।'

'ठीक है, जेलर अपनी जाति का है। यदि वे आना-कानी करेंगे तो रुपये से उसका मुँह बन्द कर दिया जायगा। वह कुछ लोभी भी है।' शौकीराम वकील ने कहा।

सब लोग जेल की ओर गये और जेलर से मिल और रिश्वत देकर महात्मा के साथ मिले। दयामयी भी बुलाई गई। भक्तों ने उन्हें छुड़ाने का अपना निश्चित कार्य-क्रम सुनाया और प्रयत्न सफल न होने पर अपना खेद प्रकट किया।

'जैसी राधारमण की इच्छा! पापियों का नाश होने वाला है।' महात्मा ने कहा।

एक कमरे में महात्मा तथा दयामयी के निवास के लिए प्रबन्ध हो गया। भोजन आदि की सब व्यवस्था करके भक्त लोग चले गये।

दयामयी को छुटकारे की अपेक्षा महात्मा से एकांत में मिलने की अधिक इच्छा थी। यह आकांक्षा ऐसी अचिन्त्यपूर्ण थी कि उसके हर्ष का ठिकाना ही न रहा।

परन्तु अपने उस हर्ष के भाव को व्यक्त न होने देकर उसने गम्भीरता धारण कर ली। भक्तों के चले जाने पर वह एक ध्यान से महात्मा के मुख को अवलोकन करने लगी। इसमें कोई गुह्य भाव अन्तर्हित था। पर, महात्मा कुछ समझ न सका। स्त्रियों की चेष्टा को देव भी नहीं जानते तो महात्मा की क्या गति हो सकती है।

'महात्मा जी! यह सब गड़बड़ किस प्रकार हो गया। इतने बड़े चतुर और चालाक होने पर और दुनियाँ के छलकपटों को जानते हुए भी तुम इन फितूरबाजों के फंदे में कैसे फँस गये। अपना पैर क्यों कर फँसाया?' दयामयी ने अपने हृदय के गुब्बार को निकालना प्रारम्भ किया।

'मेरा पाँव कैसे फँस गया—यह मैं स्वयं नहीं समझ सकता। मालूम होता है कि इस जाल को फैलाने और उसमे मुझे फँसाने के लिए शत्रुओं का प्रयत्न कुछ समय से चल रहा था। पर, मैं महामूर्ख हूँ कि लोभ में पड़कर दुश्मन के दाँवपेच को जरा भी नहीं जान सका।' महात्मा ने निराशा सूचक वचन कहे।

'तुम मरे-तो-मरे ही; पर अपने साथ बिना कारण मुझे भी लेकर मरे। मैं शाक्तसदन में आनन्द करती थी।

वहाँ से तूने मुझे बुलाया और आपत्ति के जाल में फँसा दिया। अपने तो डूबा ही और मुझे भी ले डूबा।' दयामयी ने कहा।

'जैसी करनी, वैसी भरनी'—यह कहावत तो प्रसिद्ध है। पर, ऐसे वक्त में तुम्हारा यह व्यंग सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। कारण कि आज तक इतना सुख और वैभव भोगने को तू सदा तैयार रही; और आज थोड़ी सी आफ़त आ जाने पर इतना घबड़ा गई। अच्छे समय में साथ रही, अब बुरे समय में दूर रहना चाहती है। दुनियाँ स्वार्थी है—यह जो कहा जाता है वह कुछ बुरा नहीं है।' महात्मा ने क्रोध से कहा।

'वाह! वाह! स्वार्थ की बात तो ठीक कही। पर, महात्मा जी! तुमने अपना मतलब साधने में कौन सी कचाई रखी है। पैसा पैदा करने के लिए तुमने पाप-पुण्य, सारासार और धर्माधर्म का जरा भी विचार नहीं किया, और कितनों ही का गला घोट दिया। तुमने अपनी नीच कामवासना को तृप्त करने के लिये स्वर्ग-नरक का भावी विचार त्याग करके अनेक अबलाओं के सतीत्व का नाश किया और उनको सदैव के लिये पतित बना दिया। तुम

नरक के सर्वोत्कृष्ट अधिकारी हो चुके हो। कामविकार तृप्ति के विषय में तुमने पुत्री, भगिनी अथवा किसी अन्य सम्बन्ध की परवाह नहीं की। जिस स्त्री को पुत्री, भगिनी के नाम से पुकारा जाता है, उनके साथ भी तूने भ्रष्टाचरण किया। इससे अधिक अब और क्या स्वार्थपरायणता और नीचता हो सकती है। संसार के लोगों की यह खूबी है कि अपने दुर्गुण और पराये के सद्गुण को किसी प्रकार देखने के लिये ध्यान ही नही देते। अरे! दूसरे की क्या बात कहूँ? मेरा अपना दावा क्या कम है? मैं तुम्हारे सगे चचा की बेटी हूँ। पर, मेरे पति को मेरे ही हाथ जहर दिलाकर तूंने मरवा डाला, और मुझे यहाँ उड़ा लाया। बहन को संसार की दृष्टि मे साली बनाया, और अन्तःपुर में मुझे अपनी स्त्री—एक अधम वेश्या बनाया। ऐसा कुत्सित कर्म करके भी तू मुझसे सन्तुष्ट नहीं हुआ और जहाँ-तहाँ स्वच्छन्दता से विहार करने लगा। क्या यह सब तुझे दिखाई नहीं पड़ता। पहले अपने को स्वयं देखो तब दूसरे पर आक्षेप करो।' दयामयी ने चंडिका-रूप धारण करके कहा।

'दयामयी! शाक्तसदन की एक सुज्ञ अधिष्ठात्री और शाक्तधर्म के उत्तम तत्त्वों को जानने वाली तुम्हारी सदृश

विदुर्षी के मुख से ऐसे शब्द सुनने की मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। इसके रीति वर्त्ताव के अनुसार मैंने कुछ भी अयोग्य कृत्य नहीं किया है, और इसमें कुछ पाप भी नहीं है। तुम शाक्तधर्म के आज्ञात्मक वचन को जानती हो। शास्त्रों में केवल जन्मदात्री माता के अतिरिक्त सब स्त्रियाँ ग्राह्य हैं।' महात्मा ने कहा।

'जल जाय तुम्हारा यह धर्म और तुम्हारे इस भ्रष्ट धर्म का तत्व। यदि तुम्हारी मीठी-मीठी बातों में पड़कर मैं इस कुकर्म में न पड़ी होती तो मुझे इस जेलखाना—जीवित नरक—में नहीं आना पड़ता। यह तुम्हारी कृपा का फल है। पर, चिंता नहीं। मैं अपना छुटकारा करने में समर्थ हूँ। तुम अपने छुटकारे का प्रबन्ध कर लेना। मैं अपने को संभालती हूँ; और तुम अपने को संभालो। अब मैं तुम्हें किसी प्रकार का दोष न दूँगी। जो कर्म तुमने किया है, उसका फल तुम्हें मिलेगा ही।' दयामयी ने धिक्कारते हुए कहा।

'दयामयी! ऐसा कहना तुम्हें शोभा नहीं देता। कारण यह है कि हम दोनों ने सब कर्म साथ किए हैं। अब उन कर्मों का फल अलग-अलग कैसे भोगें! हम लोगों के

समान हिस्सेदारी का सम्बन्ध तो कदापि टूट नहीं सकता। शायद तुम्हारी उसे तोड़ने की इच्छा हो; पर मैं तोड़ना नहीं चाहता।' महात्मा ने कहा।

'अब ऐसी शक्ति तुममें नहीं है कि तुम मेरा कुछ भला या बुरा कर सको। अतः अब यह विवाद करने में कुछ सार नहीं है।' दयामयी ने हँसकर कहा।

'तो क्या मेरे बचाने की कोई सूरत नहीं है? हाय! कैसी दुर्दशा! अन्तिम कार्य वृन्दा को फँसाने का मैंने केवल तेरे लिये ही किया था। यदि ऐसा नहीं होता तो मैं स्वयं लिखकर तुमको क्यों बुलाता। स्त्री की बुद्धि बहुत चपल होती है। मेरी बुद्धि अब मन्द हो गई है। अब यदि कोई उपाय मेरे बचने का हो तो कृपा करके बताओ।' महात्मा ने दयामयी की निर्दयता देखकर अपना अस्त्र छोड़ा और गद्गद स्वर से कहा।

'गोपाल! तुमने लोगों का माल लेना तो सीखा; पर उसको पचाने की कला तुम्हें नहीं आई। आलमचन्द के सब माल को मन्दिर में रहने दिया; यह तुम्हारी सबसे बड़ी भूल हुई। सारा माल अपने मन्दिर से ही निकल आया है। अब कानून के अनुसार तुम्हारे बचने की कोई

सूरत नहीं रह गई है। अब सिर पर हाथ रखकर रोओ। यह तुम्हारे दुःख को शान्त करने का एकमात्र उपाय है।' कुछ विलक्षण चेष्टा से दयामयी ने कहा।

'यदि ऐसा है, तो फिर तेरी चपलता और बुद्धि का क्या उपयोग ठहरा? छूटकर मेरे बिना जगत में जीना क्या तुझे अच्छा लगेगा? क्या तुम्हें हमारे वैभव-विलास की याद नहीं आती। स्त्री को अपने प्रियतम बिना रसहीन-जीवन कितना असह्य और भाररूप हो जाता है; इसका अनुभव तुम्हें मेरे वियोग होनेपर होगा। मेरे समागम का स्मरण तेरे कोमल हृदय को बारबार जलाएगा और तुम्हारे जीवन को विषतुल्य बना देगा।' महात्मा ने दयामयी के हृदय को पिघलाने के लिये एकबार और यत्न किया।

'एक वेश्या, पतिव्रता का उपदेश करे तो उसका जितना परिणाम हो, उतना ही व्यभिचारी के शुद्ध चरित्र-विषयक उपदेश का परिणाम होता है। इस उपदेश और लोभ का प्रलोभन मुझे मत दो। जब शाक्तसदन के पुरुषों को किसी भी स्त्री के साथ व्यभिचार करने में पाप नहीं लगता तब शाक्तधर्मधारिणी स्त्री को भी किसी पुरुष के साथ विहार करने में क्या बाधा है? मैं कोई पतिव्रता स्त्री नहीं हूँ कि

तुम्हारे वियोग से सूख-सूखकर मर जाऊँगी। तुमने जिस धर्मतत्व का मुझे उपदेश दिया है; इतना ही नहीं, पर जिसका उपयोग करके बतलाया है उसी धर्मका अनुसरण करके चलने में मुझे तुम्हारा स्मरण मात्र भी नही होगा। तुम्हारी उपस्थिति में तुम्हारे कहने के अनुसार जब मैं अनेक कामातुरों को अपने पतिव्रत का दान देकर संतुष्ट कर चुकी हूँ तो तुम्हारी अनुपस्थिति में सुंदर-सुंदर पुरुषों के समागम का लाभ लेने में मुझे क्या चिंता होगी? मेरे लिये तुम कोई चिंता मत करना। मेरा भाग्य मेरे साथ है। तुम अपने भविष्य का विचार करो।' दयामयी ने अतिशय हसित मुद्रा से कहा।

'हाय! भारतवर्ष की स्त्रियाँ इतनी नीच और अधोगामिनी हो गई। उनके पूर्व का सब सत्त्व चला गया?'

'भारतवर्ष की स्त्रियाँ स्वयं नीच और अधोगामिनी नहीं बनी हैं। किन्तु तुम्हारी तरह धर्म के नाम को लज्जित करनेवाले साधु और धर्मगुरु रूप शैतान राक्षसों ने उनको नीच, अधोगामिनी, पतिभक्तिहीना और नरकाधिकारिणी बना दिया है। यह सब तुम्हारे बुरे उपदेश का परिणाम है।' दयामयी आर्य स्त्री के आवेश से बोली।

महात्मा एक बालक के समान रोने लगा और दया-मयी उसे रोते देखकर हँसने लगी। उसे हँसती देखकर महात्मा ने रुँधे कंठ से कहा—'दयामयी! तू मेरी दुर्दशा देखकर हँसती है। दया के बदले शत्रुता दिखाती है? आह!'

'मैं तेरी दुर्दशा देखकर नहीं; पर मूर्खता देख हँसती हूँ। तुम स्वयं कहते हो कि मिर्च खाने से तीता लगेगा, तो फिर इस तरह रोने का क्या कारण है? अब इस बात को जाने दो। अब मेरे मन में तेरे लिये दया का कुछ भाव नहीं होता। मैं यह कह देना चाहती हूँ कि मेरी धारणा के अनुसार तू कोर्ट से छूट नहीं सकेगा। कारण तुझपर बहुत बड़ा आरोप लगा है। परन्तु धर्मगुरु होने से तुझमें सद्भाव रखनेवाले बेवकूफों की संख्या कम नहीं है। वे आँख के अंधे और गाँठ के पूरे होने से चाहे कितनी ही तरद्दुद और द्रव्य-खर्च क्यों न पड़े; वे कानून के चंगुल से तुझे छुड़ाने की तदबीर करेंगे। अंधश्रद्धा रखने वाले धर्म के शिष्य बेवकूफ जबतक संसार में जीते हैं तबतक तेरी तरह बगुला साधुओं को किसी प्रकार की भीति रखने का कोई कारण नहीं है। उनकी अंधश्रद्धा का परिचय अभी तुमको मिल ही चुका है। जो उन लोगों ने प्रयत्न न किया होता तो इस जेल

में हमलोगों के रहने और बातचीत करने का अवसर नहीं मिल सकता था। जो तेरी भलाई के लिये अभी से इतना उत्साह दिखला रहे हैं, कल कोर्ट में भी तेरी ओर से लड़ने के लिये वकील, वैरिष्टर अवश्य तैयार रखेंगे। परन्तु कल ही इस केस का फैसला होता नहीं है। तुम्हे समय अधिक मिलेगा; तबतक कोई उपाय सोच निकालना।'

'यदि अपने को जमानत पर छोड़े, तब तो आसाम में भाग जाँय और वहाँ के महान शाक्तसदन के ऐसे गुप्त भाग मे छिप जायँ कि सरकार के वाप भी खोजकर मर जायँ; परन्तु अपना पता न पा सकें।' महात्मा ने कहा।

'पर वेचारे जमानतदार मर जाँयगे; उनके लिये भी कुछ विचार किया है ?' दयामयी ने कटाक्ष से पूछा।

'उनके लिये अपने को क्या विचार करना है। अपना छुटकारा हो जाय यही पर्याप्त है। यह तो ससार का नियम है कि एक की हानि के बिना दूसरे का लाभ नहीं हो सकता।' महात्मा ने अपना विचार प्रकट किया।

'पर मुझे यह विश्वास नहीं होता कि तुम जमानत पर छूट जाओगे। इस प्रकार की आशा रखनी व्यर्थ है।' दयामयी ने निराशा दिखलाई।

'तो फिर केस चल जाने पर इस भयङ्कर आरोप से बिना दण्ड मिले छुटकारा होने की आशा करना भी व्यर्थ है। हम लोगों पर जो आरोप लगाया गया है उसके निवारण के लिये अपने पास एक भी सबूत नहीं है। श्रद्धालुभक्त चाहे कितना नाचें, कूदें पर अँग्रेज सरकार के सत्य न्याय के आगे उनका कुछ वश नहीं चल सकता।' महात्मा ने कहा।

'यदि तुझे छूटने की इच्छा हो तो मेरा एक उपदेश मान जा। यदि तेरा मुझमे दृढ़ और अविचल विश्वास हो तब मैं तुझे उपदेश दूँ। नहीं तो मैं अपनी इच्छा के अनुसार अपना मार्ग लूँगी।'

'मेरा विश्वास है।'

'सुनो, कोर्ट में केस चलते समय मैं अपने पर का सब दोष तेरे पर लगाऊँगी और तू भी बिना कुछ इन्कार किये समय देखकर सब स्वीकार कर लेना। यदि तुझे दण्ड मिलेगा और मैं छूट जाऊँगी तो तुझे इस कारागृह से अवश्य मुक्त करूँगी। यह निश्चय मानना।' दयामयी ने कहा।

महात्मा कुछ विचार में पड़ गया, और फिर थोड़ी देर बाद बोला—'दयामयी! हमें तेरे मुख से जो उद्गार और विरुद्ध बातें सुनने में आई हैं और तेरा यह आश्वासन

परस्पर विरोधी दिखलाते हैं। अतः तुम्हारे वचन में मेरा विश्वास नहीं जमता, यह स्वाभाविक है। परन्तु डूबता हुआ मनुष्य किसी भी तृण को पकड़ता है उसी तरह मैं भी तेरे वचन में विश्वास कर वचन देता हूँ कि मैं तुझे न फँसाऊँगा।' पर, मेरे बन्धन-मुक्ति का उपाय तू अवश्य करना। मेरे लिए तेरे अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है।' महात्मा ने नम्रता और विनयपूर्वक कहा।

'इसके लिये तुम निर्भय और निश्चिन्त रहो।' दयामयी ने गम्भीरता से कहा।

'पर, मुझे छुड़ाने का तुम्हारे पास वह कौन-सा अद्भुत उपाय है?'

'वह अभी बतलाने योग्य नहीं है। कारण यह कि वह बहुत भयंकर है। उसे जानकर संभव है, तू घबड़ा जावे; और यथा समय उसके उपयोग करने में भारी अड़चन पड़ जाय।'

'मनुष्यों का रक्तपान करने में जो महात्मा गोपाल-दास भयभीत नहीं होता था वह इस भयंकर उपाय को सुनकर भयभीत होवे; ऐसा तुम्हें कदापि नहीं सोचना चाहिये। उसकी भयंकरता की सब बातें मुझे सुना दो।'

'अन्य मनुष्य का रक्तपान करने में कोई विशेषता नहीं है। किन्तु यह उससे सर्वथा भिन्न है। सम्भव है कि उस उपाय का उपयोग करने में मृत्यु के मुख में जाना पड़े। बस, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकती।'

'मुझे इतने संशय में क्यों रखती है?'

'कारण यह कि मेरी आँखों में नींद आ रही है।'

'मुझे तो अब तक निद्रा का स्मरण तक भी नहीं आता।'

'तुम्हारे मन में चिंता का निवास है। चिंतातुर मनुष्य को निद्रा नहीं आती।'

'क्या तेरे मन में चिन्ता नहीं है।' महात्मा ने आश्चर्य से पूछा।

'मेरे मन में चिन्ता कैसी? मेरी इच्छा हो तो इसी क्षण इन सब दुःखों से छुटकारा पा सकती हूँ। इतनी मुझ में शक्ति है। मैं सब प्रकार से निर्भय हूँ। मुझे निद्रा का आस्वाद मिलना स्वाभाविक है। तू विचार करते बैठा रह और मुझे थोड़ा सोने दे।' यह कह कर दयामयी अपनी शय्या की ओर जाने को उठी।

महात्मा ने उसकी इस चेष्टा से उसे पागल समझ लिया। दयामयी प्यासी थी। चारपाई के नीचे रखे हुए लोटे

को लेने चली। इतने ही में उसकी चोली की जेब से एक छोटी-सी शीशी गिर पड़ी। उसकी आवाज को सुनकर महात्मा ने पूछा—'क्या गिरा है?' दयामयी ने तृष्णा को शांत कर उत्तर दिया—'यह शीशी गिर पड़ी थी।'

'इस शीशी में क्या है और तुम किस लिए लाई हो।'

'इसमें एक चमत्कारिक वस्तु है, और इसे मैं तेरे कल्याण के लिये लाई हूँ।'

उस आधे औंस की शीशी में पानी की तरह श्वेत रंग का कोई तरल पदार्थ दिखाई पड़ता था। महात्मा ने पूछा—'मेरे कल्याण के लिये यह सवा तोला पानी?'

'अच्छा हुआ कि नीचे चटाई थी जिससे यह शीशी फूट न गई। नहीं तो इस सवा तोले पानी का चमत्कार अभी दिखलाई पड़ जाता। तुम्हारी मुक्ति का भेदभरा मार्ग एवं उपाय इस आधे औंस सफेद पानी में भरा है। इसकी करामात वक्त आने पर जान जाओगे।' दयामयी ने गम्भीर भाव से कहा।

महात्मा एकाग्र दृष्टि से उस शीशी को देख रहा था। मानो कोई उसे मंत्रमुग्ध कर दिये हो। दयामयी मीठी नींद का आस्वाद लेकर लेटी हुई जागती थी। उस समय महात्मा

खड़ा था। उसकी इस एकाग्रता को देखकर प्रथम तो दया-मयी घबड़ा गई। पर, पीछे धैर्य धारण करके बोली—'गोपाल आँखें चढ़ तो नहीं गई हैं?'

'इस चमत्कारिक पदार्थ का नाम जानने की जिज्ञासा से मेरी आँखें चढ़ गई हैं। क्या तुम मुझे इसका नाम न बताओगी?' महात्मा ने कहा।

'इसका नाम मैं स्वयं नहीं जानती। केवल इसके गुण को जानती हूँ। भला, इसका नाम तुम्हे कैसे बताऊँ?'

'इसमें क्या गुण है?'

'यह मृत्यु भी है और जीवन भी है। विष है और अमृत भी है। यदि इसका दुरुपयोग किया जाय तो हला-हल है और सदुपयोग किया जाय तो अमृत है।'

महात्मा शय्या पर लेट गया। उसकी आँखें बन्द हो गई। वह निद्रा में था या मूर्छित—यह दयामयी न जान सकी।

रात्रि बीत गई और अरुण के रक्तवर्ण प्रकाश में दिवस के आगमन की सूचना जगत को मिलने लगी। दया-मयी जागती थी। उसने महात्मा को नींद से जगाया और कहा—'समय बीतते देर नहीं लगती। अब नित्यकर्म कर डालो और कोर्ट में जाने के लिये तैयार हो जाओ। वह

पर जो प्रश्न पूछे जायँगे, उनका क्या उत्तर देना होगा इसपर भी साधारण तौर से थोड़ा विचार कर लो।'

महात्मा मंत्रमुग्ध की तरह हो गया था। तुरत दयामयी की आज्ञा को शिरोधार्य करके नित्यकर्म में लग गया। इतने ही में जेल के एक सिपाही ने आकर कहा—'तुम्हारी ओर से आज कोर्ट में खड़े रहने के लिये दो बैरिष्टर और तुम्हारे कितने ही भक्त आये हैं। वे तुमसे मिलना चाहते हैं।'

'मैं स्नान आदि करके अभी आतो हूँ।' दयामयी ने कहा।

दयामयी ने कमरे मे ही स्नान कर लिया। महात्मा ने अपनी धार्मिकता का पूरा-पूरा आडंबर दिखाने के लिए लगभग आध घंटा ईश्वर के नाम-स्मरण में विताया। इतने संकट के समय में महात्मा की चित्तवृत्ति को इस प्रकार शांत और स्थिर देखकर भक्तो की उनके प्रति अधिक श्रद्धा बढ़ गई। वे महात्मा को पूर्ण निर्दोष और ईश्वरांश मानने लगे।

अन्त में दयामयी और महात्मा दोनों जेलर के आफिस में गये। एक भक्त ने कहा—'महात्माजी! आपको बचाने के लिए यथाशक्ति हमने प्रबन्ध कर लिया है।'

'महाशय! आप हमारे लिए जो इतना अधिक परिश्रम उठा रहे हैं इसके लिए मैं आपका बहुत उपकार मानता हूँ।

पर, वास्तव में मेरे सच्चे बैरिस्टर श्रीकृष्ण, कोर्ट में आकर मेरा बचाव करेंगे। जिसने कौरव-सभा में द्रौपदी की लज्जा रखी थी क्या वह अब मेरी लाज न रक्खेंगे ?' महात्मा ने कहा।

'अहा हा ! महात्मा का ईश्वर में इतना विश्वास ! महात्मा, वास्तव में महात्मा हैं। इतने भयंकर संकट में भी यह जरा विचलित नहीं दिखाई पड़ते।' एक भक्त ने कहा।

'भाई ! सूर्य जिस प्रकार उदयकाल में तथा अस्त होते समय एकही तरह रक्तवर्ण रहता है उसी तरह संपत्ति-विपत्ति में साधु पुरुषों की एकरूपता दिखाई पड़ती है। हर्ष और विषाद तो हम तुच्छ जीवों का धर्म है।'

'महात्माजी ! मैं आपके केस की पैरवी करनेवाला हूँ। आपसे कुछ प्राइवेट बात करना चाहता हूँ। इसलिये आप अपने कमरे में चलें।' बैरिष्टर ने कहा।

'चलने में मुझे कुछ इन्कार नहीं है। पर, तुम इस साध्वी दयामयी से सब बातें जान सकते हो। मुझसे पूछने से विशेष लाभ नहीं होगा। संसार के विषयों में मेरा जरा भी ध्यान नहीं रहता।' महात्मा ने कहा।

दयामयी बैरिष्टर के साथ कमरे में गई। लगभग आधघंटे बातचीत करने के बाद वे पुनः लौटे। इस समय

वैरिष्टर की मुखमुद्रा कुछ प्रसन्न दिखाई पड़ती थी। सब भक्त और वैरिष्टर जाने के लिये उठे। एक भक्त ने कहा—'महात्माजी! आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं जमानत के लिए कोर्ट में उपस्थित रहूँगा।'

'कृष्ण तुम्हारा कल्याण करें।' महात्मा ने आशीर्वाद दिया।

२८

कोर्ट का समय हो गया। जेलर दोनों अपराधियों के साथ गाड़ी में बैठ गया। साथ में एक दूसरी गाड़ी में चार हथियार बंद सिपाही बैठे। दोनों गाड़ियाँ कोर्ट की ओर चलीं। महात्मा को देखने के लिए हजारों लोग मार्ग में खड़े थे। पर, गाड़ी की खिड़की बंद थी। इससे उन बेचारों को महात्मा और दयामयी के अपूर्व दर्शन का लाभ नहीं मिल सका।

कोर्ट के आसपास हजारों लोगों की भीड़ लगी थी। अनेक लोग विभिन्न प्रकार की चर्चा कर रहे थे। महात्मा पक्ष के कितने ही भक्त गृहस्थ अपनी स्त्री-बच्चों के साथ बंद गाड़ी में वहाँ आये थे। केस के साथ जिनका संबंध न था, उन्हें कोर्ट में आज जाने की सख्त मना ही हुई थी। पुलिस का सख्त पहरा था। जनता कोर्ट के कंपाउन्ड में

तथा बाहर खुली जगह में टोली बाँधकर बैठी थी। नगर की बहुत-सी दुकानें बंद थीं। हड़ताल-जैसा प्रतीत होता था। हैदराबाद ने आज एक नया ही रूप धारण कर लिया था।

कोर्ट के सामने जनता का इतना समुदाय और कोलाहल था कि जेलर महात्मा को पिछवाड़े के मार्ग से कोर्ट में ले गया। इससे महात्मा का कोर्ट में जाना, जनता को ज्ञात न हो सका। महात्मा को वन्दी के रूप में पुलिस-पहरे के अन्दर देखने की जनता की आकांक्षा अनिवार्य थी।

आज का केस कुछ विलक्षण था। हैदराबाद के बहुधा सब वकील-बैरिस्टर कोर्ट में आये थे। आलमचन्द, बाधूमल, और आनन्दानन्द आदि वादी-पक्ष के लोग समय पर आकर उपस्थित हो गये थे। वादी-पक्ष से करांची के दो बैरिस्टर भी आये थे। उसमें मि० चार्ली नाम का एक यूरोपियन भी था। वृन्दा भी सीता को साथ लेकर आई थी। पर, वह कोर्ट-कम्पाउन्ड में गाड़ी में ही वैठी रही। वृन्दा का कोर्ट में कोई काम न था; पर सीता की आवश्यकता केस में थी। अतः सीता किसी प्रकार घबड़ा न जाय इसलिए वृन्दा भी उसके साथ आई थी। रोहिणी

की प्रकृति खराब होने से मोहन उसकी देख-रेख की लिए मकान ही पर रह गया था।

ठीक साढ़े ग्यारह बजे न्यायासन के पासवाले कमरे का दरवाजा खुला और रंगभूमि की तरह कटघरे में चबूतरे के ऊपर न्यायासन पर बैठने के लिये मजिस्ट्रेट बाहर निकले।

महात्मा का केस पेश हुआ। मजिस्ट्रेट की आज्ञा से वादीपक्ष के बैरिष्टर ने कहना शुरू किया—'श्रीमान्! वारंट निकलवाते समय वादी मि० आलमचंद ने जो हलफनामा दाखिल किया था, उसमें महात्मा के नाम से पुकारा जानेवाला साधु गोपालदास के पास नकद तथा अलंकार जो उसने रखा था उसके संबंध में इस महात्मा ने कितना और किस प्रकार विश्वासघात किया है वह स्पष्ट हो जाता है। इसके विषय में मैं अधिक विवेचन करके कोर्ट का अमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट नहीं करना चाहता। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि हलफनामे में लिखे हुए दिन को जब मेरा मुवक्किल यहाँ से काशी-निवास को चला उस समय यह साधु गोपालदास को एक बहुत प्रतिष्ठित और त्यागी महात्मा जानकर अपना द्रव्य और आभूषण आदि सब मिलाकर लगभग दो लाख की संपत्ति इसके हाथ में अमानत रख गया और

उसकी रसीद उसने महात्मा से न ली। हिन्दुओं का अपने धर्मगुरुओं में दृढ़ विश्वास होता है। धर्मगुरु—धन, माल और अन्य सांसारिक चीजों को तुच्छ मानते हैं इससे वे कभी भी विश्वासघात नहीं कर सकते। यही श्रद्धा थी जिससे महात्मा के यहाँ उन्होंने अपनी अमानत रखने की बात किसीसे कहने की आवश्यकता न समझी। पर, कुछ समय के बाद आनंदानंद नाम के एक साधु को महात्मा के नाम उन्होंने पाँच सौ रुपये देने के लिए पत्र लिखा। महात्मा ने रुपये देने से इन्कार किया। इससे वादी के मन में संशय हुआ, और उसने बाद को महात्मा के पास कई पत्र लिखे, पर जवाब नहीं मिला। अंत में लाचार होकर वह हैदराबाद आया और जाब्ते के साथ महात्मा को गिरफ्तार कराया। हलफनामे में लिखित सब चीजें तलाशी लेते समय महात्मा के मन्दिर से निकली हैं। अब अधिक सबूत की आवश्यकता नहीं है। कोर्ट अब उचित न्याय करे। यही मेरी प्रार्थना है। इन आक्षेपों के साथ ही महात्मा स्वयं वैष्णव धर्म का एक गुरु है और इस धर्म में मांस, मद्य आदि पदार्थों का कठिन निषेध होने पर भी प्रतिवादी नं० १ (महात्मा) इन वस्तुओं का अच्छी तरह

छिपकर उपभोग करता है। इतना ही नहीं; वरन् व्यभि-
चार से सदाचार की नीति को भ्रष्ट करता है, और शाक्त-
धर्म की तरह अनीतिप्रसारक और भयंकर पंथ का एक
प्रसिद्ध नेता है। इसका सबूत भी दिया जायगा।

इस गुनाह के साथ ही जनता को साधारण रीति से
ठगने और नीति भ्रष्ट करने के अपराध में सहायिका दूसरी
अपराधिनी दयामयी को सख्त सजा मिलनी चाहिये। इन
अपराधों को सिद्ध करने के लिये इनके पापों का भागीदार
एक साथी हमारे पास है। यदि अदालत उसके अपराध
को क्षमा करने का वचन देवे, तो वह साक्षी देने को उद्यत
है। कितनी ही स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाला, तरुणी युवतियों
को कुत्सित विचार से चुराने वाला और मनुष्य-हत्या करने
वाला प्रथम अपराधी का यह प्रतिवादी नं० २ दाहिना
हाथ रही है, और इसके लिए करांची की पुलिस से पर्याप्त
सबूत मिल सकता है। इससे दोनों को उचित दंड मिलना
चाहिये। यही कोर्ट से मेरी प्रार्थना है।'

कठघरे में महात्मा की बुलाहट हुई। मजिस्ट्रेट ने पूछा—
'साधु गोपालदास ! तुमपर जो यह अपराध आरोपित हुआ
है इसके लिये अपने बचाव में तुम्हें कुछ कहना है ?'

'मैं इस कोर्ट में अपने मुकदमे की सुनवाई नहीं कराना चाहता। मुझे जो कुछ कहना होगा अथवा बचने के लिए करना होगा वह सब मैं शेसन-कोर्ट में कहूँगा। इस केस को आप शेसन सुपुर्द कर दें तो बड़ा उपकार हो।' महात्मा ने जवाब दिया।

'तुम यहाँ कुछ कहना नहीं चाहते?' मजिस्ट्रेट ने पूछा।

'जी नहीं।' महात्मा ने कहा।

यह साफ जवाब पाकर अदालत ने दयामयी को बुलवाया और उससे पूछा—'बाई! तुमपर जो अपराध लगाया गया है उसके विषय में तुम्हें क्या कहना है?'

'मैं बिलकुल निरपराधिनी हूँ। यह सब क्या गड़बड़ हुआ है, मैं कुछ नहीं जानती। मुझपर क्या आरोप लगा है इसकी मुझे कुछ खबर नहीं है।' दयामयी ने कहा।

'महात्मा पर विश्वासघात, व्यभिचार, ठगी और सदोष मनुष्यापहार आदि अपराध करने का आरोप लगा है और उनके उन कार्यों में तुम उनकी सहायिका थी; यही तुम्हारे पर आरोप है।' मजिस्ट्रेट ने कहा।

'हे कृष्ण! यह कैसा अन्याय है! मैं महात्मा के दुष्ट कर्मों की मददगार हूँ; यह बिलकुल झूठ है। हाँ, यह बात

है कि मैं महात्मा के साथ रहती हूँ और उनकी सेवा करती हूँ। परन्तु उनके इन अपराधों की मुझे कुछ भी खबर नहीं थी। मेरा केवल इतना ही काम था कि वह जितना कहे उतना काम करके चुपचाप घर में बैठी रहूँ।' दयामयी ने कहा।

'बाई! तुम कहती हो कि महात्मा जो कहते थे वही कार्य तुम करती थीं। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि घर में रुपया-पैसा और अन्य कीमती चीजों की रक्षा का भार क्या तुम्हारे ही ऊपर था? कारण कि महात्मा स्वयं रुपया-पैसा या अन्य कोई पदार्थ अपने हाथ से छूते तक नहीं थे। यह जगत्प्रसिद्ध है।' वादी के बैरिस्टर ने पूछा।

'जी हाँ, यह काम मेरा था।' दयामयी ने कहा।

'तब दीवान आलमचंद का आभूषण और नकद भी तुम्हीं ने रखा होगा। यह सत्य है या नहीं?' मि० चार्ली ने पूछा।

'जो आभूषण और नोट इत्यादि इस समय कोर्ट में हैं वह दीवान आलमचंद के थे; या किसी दूसरे के थे, या यह सब मंदिर की ही संपत्ति थीं; इसके विषय में मैं कुछ नहीं जानती। पर, यह ठीक है कि ये सब मेरी ही संरक्षकता में थे। मैं इसे अस्वीकार नहीं करती।' दयामयी ने कहा।

'जिस समय तुम शाक्तसदन में थीं उस समय महात्मा ने तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा था ?' मि० चार्ली ने पूछा।

'नहीं, मुझे याद नहीं पड़ता।' दयामयी ने कहा।

यहाँ पर चार्ली ने आनंदानंद उर्फ चंद्रशंकर से उस पत्र को जो शाक्तसदन में महात्मा ने दयामयी को लिखा था पेश किया और कहा—'दयामयी ! देखो, यही पत्र तुमको मिला होगा।'

दयामयी ने उस पत्र को पढ़कर अपने मुख पर जरा भी परिवर्तन न होने देकर गंभीरता से उत्तर दिया—'इस पत्र की लिखावट महात्मा की है। पर, यह पत्र मुझे मिला नहीं था। इससे इसके विषय में मैं कुछ नहीं जानती।'

'यह पत्र तुमको अवश्य मिला था और उसके बाद तुम वृन्दा की संपत्ति पर लुब्ध होकर हैदराबाद चली आई थीं। इसका सबूत मैं दूँगा।' मि० चार्ली ने यह कहकर चन्द्रशंकर को साक्षी की तरह बुलाया। उसे यह पत्र किस संयोग से मिला था और किस प्रकार दयामयी के पास शाक्तसदन में पहुँचाया गया था, और उसके सामने दयामयी ने उस पत्र को पढ़ा था; आदि सबका पूरा वृत्तान्त चंद्रशंकर ने कह सुनाया। पश्चात् मि० चार्ली ने कोर्ट से कहा—

'यह बाई झूठ बोलती है । इसी बात के सबूत में जबानी शहादत देने के लिए मैंने अदालत का इतना समय लिया । अतः इस प्रतिवादी पर विशेष ध्यान रखने की मैं कोर्ट से प्रार्थना करता हूँ ।'

'पर, यदि मैंने इस आदमी को कभी देखा ही न हो तब? यह कृत्रिम सबूत है। इस आदमी ने इस पत्र को अमुक दिन मुझे दिया था क्या इसका सबूत वह कुछ दे सकता है?' दयामयी ने पूछा ।

घाघूमल ने सीता को बुलाया । उसने अपना सब वृत्तान्त कहकर अन्त में कहा—'यह चंद्रशंकर एक पत्र लाया था अवश्य । पर, पत्र यही था, या कोई दूसरा था यह मैं नहीं कह सकती । परन्तु यह सत्य है कि पत्र पाने के पश्चात् दयामयी तुरत ही हैदराबाद चली आई ।'

'मैं हैदराबाद आने को रवाना हुई सही ; पर यह पत्र पढ़-कर नहीं। शाक्तसदन के कुकर्मों से मैं इतनी तंग आ गई थी कि उनमें अधिक भाग लेने का मेरा विचार बदल गया । इसीसे मैंने उस स्थान का त्याग किया था ।' दयामयी ने कहा ।

शाक्तसदन में कुकर्म होते थे और महात्मा का शाक्तसदन से गाढ़ा संबंध था इसे तुम मानती हो ।' मि० चार्ली ने पूछा ।

'शाक्तसदन में कुकर्म होते थे, और महात्मा का शाक्त-सदन से संबंध अवश्य था; पर वह साधारण संबंध था या प्रगाढ़, यह मैं ठीक नहीं कह सकती।' दयामयी ने कहा।

वादी पक्ष के मि० चार्ली और बाधूमल आदि ने यह सलाह किया कि यदि शाक्तसदन की सब सही बातें दयामयी स्वीकार कर ले तो अपने केस में सहायता मिलेगी और उस पर से आरोप उठाकर उसे साक्षी बना लिया जाय। इस विषय में दयामयी से अधिक पूछने में गड़बड़ होगी—यह सोचकर मि० चार्ली ने मजिस्ट्रेट से कहा—'मेरा यह अभिप्राय है कि दयामयी के बयान में सत्य और निर्दोषता की छटा दिखाई पड़ती है। इससे इसपर से आरोप उठाकर महात्मा के अपराध की जाँच करने के लिये मैं इस दयामयी को साक्षी के रूप में दर्ज कराने की आज्ञा चाहता हूँ।'

'पर इसके पहले महात्मा से मुझे कितने ही प्रश्न पूछने हैं।' यह कहकर मजिस्ट्रेट ने महात्मा से पूछा—'क्यों साधु गोपालदास ! यह बाई तुम्हारे कार्य में वास्तविक सहायिका थी ?'

'मैंने कोई बुरा कार्य ही नहीं किया। फिर कोई सहायक कहाँ से होगा ? उसकी आवश्यकता ही क्या थी ?

पर, यदि तुम मुझे अपराधी मानते हो तब भी श्रीमती दयामयी धार्मिका हैं। वह किसी भी कुकृत्य मे सहायिका थीं; वह 'न भूतो न भविष्यति' । इस धर्ममूर्ति को तथा मुझे जो पापी, इस यमसभा मे प्रपंच और बलात्कार से खींच लाये हैं उन्हे सत्य ही रौरव-नरक-निवास करना पड़ेगा। मेरे कृष्ण उनके मद को तोड़ डालेंगे। हे राधाविहारी! पापियों का नाश करो।' महात्मा ने कहा।

महात्मा के इस भाषण से सब लोग चकित हो गये। भक्त लोग उसे महापरोपकारी जीव समझने लगे।

'क्या तुम्हारे कहने का यह मतलब है कि बाई दयामयी तुम्हारे किसी भी कार्य में भागीदार नहीं थी और यह नोट और आभूषण आलमचन्द का है; यह बात तुमने इन्हें नहीं बतलाया था?' मजिस्ट्रेट ने पूछा।

'जी नहीं।' महात्मा ने कहा।

यह सब सवाल-जवाब जिस समय चल रहा था उसी समय आलमचन्द का मन तड़फड़ाने लगा। वह दयामयी से कुछ पूछना चाहते थे। पर, बाधूमल ने उन्हे रोका और कहा—'अपना सब माल हाथ में आ ही गया है। अब अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह भी बहुत

चालाक और पहुँची हुई मालूम होती है। यदि इसपर दबाव डाला जाय तो यह मर जायगी और अपना अपराध स्वीकार न करेगी। अतः साम्य उपचार से इसे छोड़ देने का प्रलोभन दिया जाय तो महात्मा पर रोहिणी-हरण के अपराध की जाँच में अपने को पूरी सहायता मिल सकती है। मेरा अनुभव यह बतलाता है कि यदि इस पर आरोप रहने दिया जाय तो बहुत सम्भव है कि यह सब दोष महात्मा पर लगाकर स्वयं छूट जाय; क्योंकि महात्मा सब दोष अपने ऊपर लेने को तैयार है। जैसी वस्तुस्थिति है, उससे कुछ लाभ मिलने की आशा है।' इस पर दीवान आलमचन्द चुप रह गये।

सब बातों पर विचार कर मजिस्ट्रेट ने अपना फैसला सुनाया—'यह केस अन्त में सेशन सुपुर्द होगा। अपराधी पर जो आरोप किया गया है यदि वह सिद्ध हो जाय तब उसके लिये कानून ने जो दण्ड निर्धारित किया है, उतना दण्ड देने के लिए इस कोर्ट को अधिकार नहीं है। प्रतिवादी का सेशन कोर्ट में अपना बचाव करने का विचार है। मुझे कोई इनकार नहीं है। प्रतिवादी की इच्छानुसार मैं उसे सेशन सुपुर्द करता हूँ। साथ ही दयामयी के ऊपर

आरोपित अपराध—इसका खास हाथ महात्मा के कामों में स्वेच्छापूर्वक था—सिद्ध नहीं हो सका। महात्मा इसे स्वयं निर्दोष बतलाता है, और वादी-पक्ष से भी इसे अपराधी की तरह रखने का आग्रह नहीं है। शाक्तसदन के संबंध में दयामयी ने अधिक बातें स्वीकार कर ली हैं। अतः इस बाई को इस शर्त पर मुक्त करता हूँ कि यह कोर्ट में साक्षी की तरह अपना नाम लिखा ले। इसके लिये पचीस हजार की नक़द जमानत देनी पड़ेगी। जमानत न मिलने पर दयामयी को जब तक मुकदमा फैसला न हो जाय; करांची जेल में रहना पड़ेगा।'

तुरत ही चार सद्गृहस्थ जमानत के लिए आगे बढ़े। प्रतिवादी के बैरिष्टर ने कोर्ट से कहा—'मेरा मुवक्किल महात्मा यदि जमानत पर छोड़ दिया जाय तो सेशन कोर्ट से अवश्य छूट जायगा। वह एक प्रतिष्ठित धर्मगुरु है। उसकी जमानत के लिए बड़े-बड़े धनी रईस तैयार हैं।'

'साधु गोपालदास पर जो आरोप लगाया गया है वह अवश्य सिद्ध हो जायगा। यह अबतक की कार्यवाही से सिद्ध हो चुका है। अपराधी ने अनेक आरोप को संदिग्धता से स्वीकार भी कर लिया है। एक पवित्र गुरु इतना निंदित कार्य

करे, इसकी चर्चा करना मैं महापाप समझता हूँ। अतः मैं इसे छोड़ नहीं सकता।' यह कहकर अदालत ने महात्मा की जमानत लेना अस्वीकार कर दिया।

कोर्ट का हुक्म हो जाने पर जेल के सिपाही महात्मा को बंद गाड़ी में बैठाकर जेल की ओर ले गये। जय-जय-कार के साथ भक्तलोग दयामयी को बाहर ले आये, और एक धनाढ्य भक्त उसे अपनी गाड़ी में बैठाकर अपने घर ले गया। दयामयी के छुटकारे की खुशी में उस गृहस्थ ने अपने यहाँ सत्यनारायण की कथा कहवाई और सहस्रों स्त्री प्रेमिकाओं ने आकर दयामयी को मुबारकबादी दी।

३०

प्रकृति की अस्वस्थता के कारण रोहिणी वृन्दा के साथ कोर्ट मे नहीं आई थी। उसकी देख-रेख के लिए मोहन-लाल को भी वहीं रुकना पड़ा था। रोहिणी की तबीयत कुछ अस्वस्थ तो थी; परन्तु इस शारीरिक अस्वस्थता के रहते भी वह मोहनलाल के साथ एकान्त में चार बातें करने की मानसिक पीड़ा से अधिक अस्वस्थ थी, और यही कारण था कि अस्वस्थता का बहाना बताकर वह घर में रह गई थी। मोहनलाल और रोहिणी की प्रेम-वार्ता

को वृन्दा भलीभाँति जानती थी। मोहनलाल के सहवास से रोहिणी को विशेष आनंद मिलता है यह भी वह जानती थी, और यही मोहनलाल के वहाँ छोड़ जाने का एक सबल कारण था। रोहिणी जबसे शाक्तसदन से लाई गई, तबसे अब तक मोहनलाल के साथ एकान्त में बात करने का एक बार भी उसे अवसर न मिल सका था।

उस दिन उसके मन में जो आनंद और उल्लास हुआ वह सर्वथा अवर्णनीय था। उसके इस आनंद और उल्लास की मात्रा, उसके जैसी प्रणय-पिपासु नवयौवना नारी के अतिरिक्त अन्य कोई भी कल्पना नहीं कर सकता। इससे एक पुरुष लेखक उसके मनोगत उल्लास का यथोचित चित्र किस प्रकार अंकित कर सकता है?

रोहिणी सादा वस्त्र पहनकर सिंधु नदी की ओर वाली एक कोठरी में कोचपर मस्तक पर हाथ रख लेटी हुई थी। मोहनलाल उसके पास ही कुर्सी पर कोच के एक तरफ घुटने टेककर बैठा था। उस समय वह कमीज और पायजामा पहने था। रोहिणी के सिर को हाथ से छूकर उसने कहा—'तुम्हारी तबीयत कैसी है? तुम्हारा सिर कुछ गरम मालूम पड़ता है।'

'हाँ, हमारा सिर थोड़ा दुःख रहा है। परन्तु अब कम होता जा रहा है। शरीर में कोई विशेष अस्वस्थता नहीं है। मुझे विश्वास होता है कि दो-चार दिन में भली प्रकार अच्छी हो जाऊँगी।' रोहिणी ने जरा शर्माकर कहा।

'तुम्हारी शारीरिक स्वस्थता के विषय में अब भय नहीं रह गया है। परन्तु तुम्हारी मुख-मुद्रा पर जो शोक की गंभीर छाया दीख पड़ती है इसका कारण मैं नहीं समझ सकता। तुम अपने मन की बात मुझसे क्यों नहीं बतलातीं?' मोहनलाल ने प्रेमपूर्वक पूछा।

'मैं सब तरह से प्रसन्न और सुखी हूँ। माता वृन्दा का मुझपर अपार प्रेम है। पानी माँगने पर दूध मिलता है और किसी प्रकार के आनंद में कमी नहीं है। तिसपर तुम्हारे ऐसे सहृदय मेरी देख-रेख के लिए सदा उद्यत हैं यह मेरे सौभाग्य की खूबी है। परन्तु मेरे मन में, जो एक विचार निरंतर वेदना उत्पन्न किया करता है वह यह है कि मेरे सच्चे माता-पिता कौन हैं; यह मैं अब तक न जान सकी। जब से माता वृन्दा अपने साथ मुझे अनाथालय से घर लाईं तबसे मैं अपने को उनकी पुत्री मानती हूँ। पर, जबसे उन्होंने यह बतलाया कि मैं उनकी पालिता पुत्री हूँ तबसे यह चिंता मेरे

मन में अखण्ड निवास करती है, और यह चिंतारूपी चिता निरंतर हृदय में जला करती है।' रोहिणी ने अपने शोक का कारण बतलाया।

'रोहिणी! जिस संशय के निवारण का कोई उपाय नहीं है उस संशय के लिये चिंता करना उचित नहीं है। तुम्हारे मन में—जो तुम्हारे माता-पिता का नाम-पता नहीं मिले तो मैं तुम्हें अस्वीकार कर दूसरी स्त्री का पति बनूँगा—यह संशय तो नहीं है? यदि यह संशय हो तो निकाल दो। कारण यह कि यदि विवाह होगा तो तुम्हारे ही साथ होगा, नहीं तो मैं आजन्म अविवाहित ही रहूँगा; यह मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। यदि कुछ खटका है तो केवल इस अस्वस्थता का है। नहीं तो मेरे साथ तुम्हारा विवाह कर देने का वचन श्रीमती वृन्दा ने कभी ही दे दिया है।' मोहनलाल ने कहा।

'चलो, एक बात की चिन्ता तो टल गई। अब भगवान चाहेंगे तो दूसरी बात भी प्रकाश में आ जायगी।' रोहिणी ने कहा।

'जिन परम दयालु भगवान ने इतनी बड़ी आपत्तियों में तुमको बचाया है, वही परमात्मा तुम्हारे सुख-मार्ग के

इस चिंता रूपी कंटक को दूर करके निष्कंटक बनावेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अपनी चिंता परमेश्वर पर है। हमें चिंता करने का कोई कारण नहीं है।' मोहनलाल ने आश्वासन दिया।

'श्रद्धा के साथ निरुपाय होकर परमेश्वर में विश्वास कर चुपचाप बैठे रहने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय ही क्या है! इससे तुम्हारे उपदेश को मैं सिर पर चढ़ाती हूँ। रोहिणी ने निःश्वास लेकर कहा।

रोहिणी फिर बोली—'मेरे हृदय में चिंता यह है कि यदि मेरे कुल का पता न मिलेगा और हमलोगों का विवाह धर्मशास्त्रानुसार एक दूसरे के साथ न होगा तो आज तक मुझपर तुम्हारे जो अनेक उपकार हुये हैं उन उपकारों का बदला देने का अवसर मुझे न मिलेगा। यदि तुम्हारी स्त्री होने का मुझे सौभाग्य मिले तब तो अनेक प्रकार से तुम्हारे चरणों की सेवा करके ऋण मुक्त हो जाती, और इससे मेरा स्त्री-जन्म भी सार्थक हो जाता। पर, मेरी यह आशा वंध्या-पुत्र के समान है। यह मेरे मनोदेवता मुझसे बार-बार कहते हैं।'

'रोहिणी! इस प्रकार की स्थिति संसार में बहुधा

हुआ करती है। यह केवल तुम्हारे ही लिए ऐसा हुआ है ऐसा तुम्हें नहीं सोचना चाहिये। गुम हुये मनुष्यों का, अथवा किसी कारण से वियुक्त हुये और बहुत दिनों तक एक दूसरे से न मिलने वाले एव एक दूसरे को न पहचान सकने वाले के वर्षों पीछे भेट होने के अनेक उदाहरण प्राचीन इतिहासों और दन्त-कथाओ मे मिलते हैं; तो तुम्हारे संबंध मे ऐसा क्यों नहीं संभव है ? आशा को त्याग कर निराशा को सर्वथा ग्रहण करना उचित नहीं है। आशा-ही मनुष्य प्राणी का वास्तविक जीवन है। आशा का कदापि त्याग नहीं करना चाहिये। कंगाल-से-कंगाल मनुष्य को भी जो कुछ सम्पत्ति होती है उसी पर उसकी आशा रहती है। आशा गरीब मनुष्यों की सबसे बड़ी सहचरी है, और आशा-ही दीन मनुष्यो की खाद्य वस्तु है। आशा की प्रेरणा से करोड़ों असंभव कार्य भी संभव और संपूर्ण किये जा सकते हैं। अमर आशा की अविचलता को अंतःकरण में धारण करना चाहिये। यह प्रत्येक मनुष्य-प्राणी का धर्म है। शेहिरीं तुम तो विदुषी हो, अब तुम्हारे लिए अधिक उपदेश की आवश्यकता ही क्या है ? निराशा की मनोवेदना से शरीर-शोषणा का उदय होता है, और अंत

में प्राण के प्रयाण का समय आ जाता है इसलिये तुम्हें निराशा को हृदय में कदापि स्थान न देना चाहिये। यही मेरा आग्रह और अनुरोध है।' मोहनलाल ने कहा।

'भगवान तुम्हारे वचनों और तुम्हारी इस आशा को सफल करें।' इतना कहकर रोहिणी एकटक मोहनलाल के मुख को देखने लगी। अपने प्रिय का परिरम्भण कर अपने बाहुपाश में आबद्ध कर लेने की इस युवती को अनेक बार इच्छा हुई। पर, विनय उसके इस कार्य को रोकता था। वह मन में कहने लगी—'कदाचित् तप्त होकर कामातुर हो जाय तो? ना-ना, विनय और धर्म, मैं कदापि त्याग नहीं सकती। भाग्य में जो लिखा होगा वह तो होगा ही। विशेष चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

मोहनलाल के मन में कुछ इसी प्रकार का विचार चल रहा था। दोनों विनयसम्पन्न और मनोनिग्रही थे। अबतक उन लोगों ने प्रेम की अधिकता से मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया था। सचमुच प्रेम—ऐसा ही मर्यादायुक्त और धर्म-भाव-मिश्रित होना चाहिये। यूरोपियन, कोर्टशिप के बहाने जो आनन्द लेते हैं, जो स्वतन्त्रता लेते हैं और जिस पाश्चात्य कोर्टशिप का हिन्दुस्तानी-पारसी इत्यादि कितने

ही सुधरे समाज की जातियों में प्रचार हो गया है वह अतिशय निंद्य और परित्याज्य है। आर्य-प्रेम का यह आदर्श नहीं है और होना भी नहीं चाहिये। दोनों प्रेमी जब इस प्रकार विचारों में तल्लीन थे इतने ही में अचानक नीचे के रास्ते में कुछ कोलाहल होने लगा, और उसकी ध्वनि उनके कानों में पड़ी। अचानक विचार-निद्रा से जाग्रत होकर रोहिणी ने पूछा—'मार्ग में यह कैसा कोलाहल हो रहा है ?'

'शरारती लड़के घूम-चौकड़ी करते हुए चिल्ला रहे हैं—'हमको क्या ? वे स्वयं चले जाएँगे।' मोहनलाल ने कहा।

'नहीं-नहीं, चलो हम लोग जरा जंगले से देखें कि इस कोलाहल का क्या कारण है ?' रोहिणी ने आग्रह किया।

स्त्री के स्वभाव में कोई भी नवीन वस्तु देखने की अधिक आतुरता रहती है, और इस समय यदि चित्त दूसरी ओर लग जाय तो मन की चिंता कुछ कम हो जाय; इन्हीं दो कारणों से रोहिणी ने आग्रह किया।

मोहनलाल अपनी प्रियतमा की इच्छा के अधीन हो गया। तत्काल ही दोनों खिड़की में खड़े होकर नीचे चलनेवालों को देखने लगे।

मार्ग में लड़कों का बड़ा झुण्ड इकठा हुआ था। बीच में एक पागल की तरह मनुष्य खड़ा था। आदमी की उम्र ५० वर्ष से अधिक दिखाई पड़ती : उसके दु:खमय जीवन को सूचित करनेवाली मुख-मंड झुर्रियाँ भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती थीं। इस संकट में पर भी उसके नेत्रों में एक प्रकार का विशिष्ट तेज चमक रहा उसके वस्त्र फटे और चिथड़े थे। सिर तथा दाढ़ी-मूछ बाल अधिक बढ़ गया था। अन्तिम चार-पाँच महीने में पागल गिदूबन्दर में तीन-चार बार आया था। जभी आता, तभी गाँव के लड़के उसके आसपास इकट्ठा हो उसे चिढ़ाते थे। वह रास्ते ही में बैठ गया था, इ पत्थर वगैर: की मार अपनी पीठपर सहने लगा। उसकी दुर्दशा को देखकर सरलहृदया रोहिणी और पर-पी सहिष्णु मोहनलाल के मन में अतिशय भय होने लगा उनका अंत:करण दया तथा करुणा से पिघल गया। आकर उस पागल ने कहा—'मरे हुए को मारने से तुम क्या लाभ मिलेगा। मेरी तरह एक दुःख से पीड़ित मट पर दया दिखलाकर आश्रय देने के बदले इस प्रकार दुःख अच्छा नहीं है। मैं सब्र करता हूँ; पर मेरा ईश्वर नहीं

करेगा। क्या, यहाँ पर ऐसा कोई दयालु आत्मा नहीं है कि मुझ-जैसे दीन की सँभाल रखे और मुझे इस भय से छुटकारा दिलावे।'

यह बात कहते-कहते वह रो पड़ा। ऊपर खिड़की में खड़ी हुई रोहिणी और मोहनलाल उसके मुख, अंग-चेष्टा और अश्रुधारा को देखकर उसके मनोभाव को थोड़ा-बहुत समझ गये। रोहिणी ने मोहनलाल से कहा—'प्रियवर! इस गरीब की इस समय हमें मदद करनी चाहिये। नहीं तो दुःख से सन्तप्त होकर वह स्वयं आत्महत्या करलेगा।'

'चलो, इस बेचारे को नीचे के एक कमरे में लाकर बैठावें और जो आवश्यक हो उसे दें।' रोहिणी ने कहा।

मोहनलाल नीचे आकर दो-तीन नौकरों को लेकर उस पागल के पास आया, और उससे कहा—'भाई! मेरे साथ इस समीप वाले मकान मे चलो। मैं तुम्हारी सब जरूरतें पूरी करूँगा।

'भगवान तुम्हारा भला करें। गरीबों पर दया रखते हो; उसका बदला भगवान तुमको शीघ्र देगें।' पागल, मोहनलाल के साथ वृन्दा के महालय में आया।

मोहन ने दो नौकरों को उस गरीब आदमी को स्नान

कराकर वस्त्र एवं सादा और हलका भोजन देने की आज्ञा दी। स्नान करके धुले हुये कपड़े पहनकर बैठने के बाद रोहिणी और मोहनलाल उसके पास आकर बैठे और भोजन में कुछ विलम्ब होने के कारण रोहिणी ने सरलता से पूछा—'तुम कौन हो, और इस दुर्दशा में कैसे आपड़े ? तुम अपना वृत्तान्त कह सुनाओ। मैं तुम्हारा दुःख निवारण करने का यथाशक्ति प्रयत्न करूँगी।'

'बहन! मेरी कर्म-कथा बहुत लम्बी है। मैं पागल नहीं हूँ। पर, मेरी भयंकर भाग्य-रेखा मुझे पागल बनाये है। तुम्हारी तरह दयालु और भले मनुष्य को अपनी कर्म-कथा सुनाने में मुझे किसी प्रकार की बाधा नहीं है। पर, अभी मेरे में अधिक बोलने की शक्ति नहीं है कि तुम्हारी आकांक्षा को मैं तृप्त कर सकूँ। इसके लिये मुझे खेद है। यदि एक-दो दिन दया करके मुझे यहाँ रक्खो और मुझे आहार मिले तो मैं अपना सब वृत्तान्त कह सुनाऊँगा। आज तीन दिन से मैंने कुछ नहीं खाया है।' यह कहकर वह चारपाई पर लेट गया।

थोड़ी ही देर में रसोइया भोजन लाया, और रोहिणी तथा मोहनलाल के पास बैठाकर उसे भोजन कराया। आहार के उदर में जाते ही उस दुःखी मनुष्य के मुखमंडल

पर कुछ तेज की छटा दिखाई पड़ने लगी। यह सब काम होते-होते संध्या हो गई और वह गरीब आदमी भोजन कर रहा था कि कोर्ट से वृन्दा, आलमचंद, यशोदा, आनंदानंद, सीता तथा बाघूमल को लेकर गाड़ी दरवाजे पर खड़ी होगई। एक नौकर को इस दीन अतिथि की सब प्रकार संभाल रखने की आज्ञा देकर रोहिणी तथा मोहनलाल दरवाजे पर गये।

वृन्दा ने गाड़ी से उतरते ही रोहिणी के सिर पर हाथ रख कर पूछा—'क्यों बेटी! अब तबीयत कैसी है?'

'ठीक है माता' रोहिणी ने उसकी छाती में अपना सिर रख दिया।

सब लोगों के घर में आकर बैठ जाने के बाद पहले मोहन ने बाघूमल के मुख से कोर्ट की सब बातें सुनीं। फिर रोहिणी ने वृंदा को उस कंगाल मनुष्य के दुःख की बात कह सुनाई और स्वयं उसे आश्रय देकर घर में रखने की बात कहकर पूछा—'इसमें आपकी अनुमति है या नहीं?'

'ऐसे परोपकारी कार्य में कौन अपनी संमति न देगा। ऐसी अभागिनी कौन होगी?' वृन्दा ने कहा।

'परन्तु अब तक अपने शत्रुओं की संख्या अधिक

है। इस अज्ञात मनुष्य को यकायक अपने गृह में आश्रय देने के पूर्व भले-बुरे का विचार कर लेना चाहिये। धर्मान्धता एक महाविलक्षण वस्तु है। प्रेमी धर्मान्ध भक्त क्या कर डालें और क्या न कर डालें इसका भी कुछ ठीक नहीं है।' बाधूमल ने कहा।

मोहनलाल के मन में भी यह संशय उदय हुआ। उसने दो आदमियों को उस गरीब मनुष्य की कोठरी के पास देख-रेख करने के लिये और आधी रात में बारी-बारी से जाकर पहरा देते रहने की सख्त आज्ञा दे दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल चाय-जलपान करने के लिये सब लोग बड़े कमरे में इकट्ठे हुये। वृन्दा, यशोदा, रोहिणी और सीता ये चार स्त्रियाँ और आलमचंद, वकील बाधूमल, मोहनलाल और आनंदानंद उर्फ चंद्रशंकर ये चार पुरुष मिलकर आठ आदमियों की महफिल बैठी थी। नौकर सबके आगे मेजपर पूरी तथा मुरब्बा की थाली और चाय से भरा प्याला रख गया। जलपान शुरू करने के साथ ही बाधूमल वकील ने कहना शुरू किया—'वृन्दाबाई! आज रात को मेरा करांची जाने का विचार है। कारण यह कि महात्मा का यह केस सेशन-सुपुर्द हो गया है। और

सेशन बैठने में अभी देर है। मि० चार्ली और अमीर अली रात ही को चले गये। केस के समय मैं आकर हाजिर हो जाऊँगा। इसके लिये तुम्हें जरा भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। क्यों मोहनलाल! तुम करांची कब आते हो?'

'तुमको मैं रोक नहीं सकती। तुम्हारा वकालत का धन्धा है। पर, मोहनलाल ने एक महीने की छुट्टी ली है, और यहाँ से लेख लिखकर भेजा करता है इससे इसे तो अभी करांची जाने की आवश्यकता नहीं है। यह चार-छः दिन यहीं रहेगा।' वृन्दा ने उत्तर दिया।

'आपकी इच्छा है तो मुझे यहाँ रहने में कुछ बाधा नहीं है। मैं चार दिन बाद करांची जाऊँगा।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा; मुझे तुम्हारे करांची चलने के लिए कोई आग्रह नहीं हैं। तुम यहीं रहो; इससे वृन्दाबाई और रोहिणी का मन प्रफुल्ल रहेगा। पर, मोहनलाल! यदि कोई ऐसा काम पड़े और मेरी आवश्यकता हो तो तुरत मुझे तार से खबर भेजना।' बाघूमल ने कहा।

'इसके लिये आप सर्वथा निश्चिन्त रहें।' मोहनलाल ने कहा।

उनकी इस बात की समाप्ति होने पर आलमचंद ने कहा—'वृन्दाबाई! मेरी गई हुई संपत्ति को लौटाने वाली

तुम हो। यह केवल तुम्हारे चातुर्य का परिणाम है। इन सब-के लिये मैं किन शब्दों में तुम्हारा आभार प्रकट करूँ; वह मुझे सूझ नहीं पड़ता। मैंने तुमको बहुत कष्ट दिया; उसके लिये मैं क्षमा माँगता हूँ और अब मुझे छिपे रहने का कोई कारण नहीं है। यदि तुम आज्ञा दो तो हम अपने घर जावें। इस मुकदमे का फैसला हो जाने पर फिर नये ढंग से अपने रुपये-पैसे का प्रबन्ध कर हम काशी जावेंगे।'

'मेरा भी यही विचार है। अब अपने घर में जाकर रहें तो बहुत अच्छा हो।' यशोदा ने पति-इच्छा की पुष्टि की।

'सब लोगों ने एक साथ ही प्रयाण करके मेरे गरीब घर को शून्य, जनहीन बनाने का षटयंत्र किया है क्या? बहन, मेरी यशोदा बहन! क्या तुम भी मेरे घर को पराया घर समझती हो। अधिक होशियार और व्यवहार में तो पूरी हो। बाधूमल तो अपने व्यवसाय की लाचारी से जाते हैं। पर, कुलेली के किनारे पर जाकर तुम क्या करना चाह-ती हो? क्या यह घर तुम्हारा नहीं है? क्या तुम इस घर को अपना घर नहीं मानतीं? तुम्हारे इस भाव का तो मुझे आज ही पता चला!' वृन्दा ने खेद से कहा।

यशोदा ने अपने पति की इच्छा का अनुमोदन किया

तो जरूर था। पर, वृन्दा के इस व्यंग से उसकी बोली बंद हो गई। इसके जवाब में वह कुछ बोल न सकी। आलमचंद भी अधिक न बोल सके।

जलपान का कार्य समाप्त हुआ। आलमचन्द ने यशोदा से कहा—'तो अब हम लोगों को क्या करना चाहिये ?'

'अब मैं तो कुछ कह नहीं सकती। जैसा वृन्दा बहन कहे वैसा किया जाय।' यशोदा ने सब भार वृन्दा पर रख दिया।

'ठीक है। यदि तुम्हें घर जाने की अधिक इच्छा हो तो कल जाना और दो-चार दिन वहाँ रहकर फिर लौट आना। यदि ऐसा न करोगी तो हमारा संबन्ध न रह जायगा।' वृन्दा ने अनुमति दी।

'तुम्हारी यही इच्छा है तो ऐसा ही करूँगा।' आलमचन्द ने कहा।

'सबका बन्दोबस्त तो हो गया। पर, मुझे निकलने का रास्ता नही दिखाई पड़ता। हमें घरबार तो है ही नहीं ; इससे हम कहाँ जाने की प्रार्थना करें।' आनन्दानन्द उर्फ चन्द्रशंकर ने कहा।

'तुम अपने पिता की जागीर और मालमिलकियत संभालने को भावनगर जाओ।' सीता ने कहा।

'क्यों सीता ! अब तुम्हें भी हास्य-विनोद करने की इच्छा होती है ?' आनन्दानन्द ने कटाक्ष किया।

'दयामयी की सुनाई हुई तुम्हारी बातें मुझे याद आ गईं।' सीता ने उत्तर दिया।

'तुम्हारा कहाँ जाने का विचार है ?' आनन्दानन्द ने कहा।

'मेरी स्थिति भी तुम्हारी ही तरह है। मैं कहाँ जाऊँ और कहाँ न जाऊँ इस विचार में पड़ गई हूँ।' सीता ने कहा।

'इसका निर्णय मुझे करना पड़ेगा। आनन्दानन्द, काशी में प्रथम परिचय होनेपर मेरे ही कारण तुम्हें इधर सिंध की ओर आना पड़ा है। इससे तुम मेरे घर चलो, और सीता ने रोहिणी को आपत्ति से बचाया है, इससे सीता को यहीं रहने दो।' आलमचन्द ने बीच का मार्ग निकाला।

'अतिथियों में भी अब हिस्सा पड़ने वाला है ?' वृन्दा ने कहा।

'यदि यह भाग बुरा हुआ हो तो कह डालो ?' आलमचन्द ने कहा।

'यह आक्षेप तो मुझसे न किया जायगा। ऐसा करने में कुछ बाधा नहीं है। सीता की तरह सुशीला और परोप-

कारिणी अबला मेरे हिस्से में आई, इसके लिए मैं अपना बहुत सद्भाग्य समझती हूँ।' वृन्दा ने कहा।

सीता आनंदानंद से अलग होना नहीं चाहती थी। वृन्दा के घर में या आलमचंद के घर में उसके साथ रहने की उसकी प्रबल इच्छा थी। पर, विनयशीलता उसके मुख को बंद कर दिये थी।

रात में बाधूमल करांची चले गए, और दूसरे दिन आलमचंद, यशोदा और आनंदानन्द कुलेली के किनारे पर अपने घर में रहने को चले गये। मोहनलाल और सीता—ये दो अतिथि वृन्दा के घर में रह गये। हैदराबाद में यद्यपि मोहनलाल के पिता का घर था। पर, रोहिणी के सहवास-सुख के लोभ से उसने वृन्दा के ही यहाँ रहना अधिक पसंद किया।

३१

एक दिन संध्या-समय चार बजे एकाएक तीन-चार भाड़े की गाड़ी वृन्दा के घर के नीचे आकर खड़ी हो गईं। नौकर ने आकर कहा—'अपनी जाति-विरादरी के कितने ही प्रतिष्ठित लोग आकर आपसे मिलना चाहते हैं और वे आने की आज्ञा माँगते हैं।' वृन्दा इस समय बैठी हुई सीता के मुख से शाक्तसदन की बातें सुन रही थी। उसने

सीता और रोहणी को दूसरे कमरे में जाने की आज्ञा दी और नौकर को उन अग्रसर लोगों को आदर पूर्वक ऊपर लाने की अनुमति दी। वे लोग ऊपर आए। वृन्दा ने उनका आदर-सत्कार कर बैठाया। आनेवाले आज वृन्दा के पर्दे में न रहकर इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्वक वर्ताव से आश्चर्य चकित हो गये। वृन्दा ने नम्रता से पूछा—'आज इस गरीब दासी की पर्णकुटी को चरणस्पर्श से पवित्र करने का क्या कारण है ?'

'कारण यह है कि श्रीमती, तुमने महात्मा गोपाल-दास को गिरफ्तार कराने में प्रमुख भाग लिया है, और तुम्हारे कौशल के प्रताप से आज परमेश्वर-तुल्य महात्मा को कारागृहवास भोगने का प्रसंग मिला है। यह तुमने बहुत अनुचित कार्य किया है, इससे अपनी सारी जाति-बिरादरी और वैष्णवधर्म की नाक सदा के लिये कट गई। महात्मा गोपालदास हम लोगों के महान धर्मगुरु हैं, और गुरु के दुर्गुणों को प्रकट करना अथवा गुरु की निन्दा करना यह एक बड़ा-से-बड़ा पातक माना जाता है। यह पाप तुम्हारे हाथ से हुआ है। अतः बिरादरी को तुमसे इसका जवाब माँगने का पूर्ण अधिकार है। तिस पर तुम अपने

प्राचीन रीति-रिवाजों को छोड़ती जाती हो; यह भी तुम्हारे एक धर्मभ्रष्टता का परिणाम है।' एक ने कहा।

'तो क्या तुम महात्मा के बन्दी होने से आज इतना क्रुद्ध हुए हैं? मैं अपनी जाति के किन रिवाजों को छोड़े हूँ और कौन-सी धर्मभ्रष्टता की है? एक पापात्मा, चाण्डाल को तुम्हारे मण्डल से दूर कर मैंने तुमको हर प्रकार भ्रष्ट होने से बचाया है। क्या यही मेरा अपराध है?' वृन्दा ने जरा कड़ककर जवाब दिया।

'तुम पर्दा करने की अपेक्षा इस समय हमारे सामने बैठी हो। धर्मगुरु को कारागृह में भेजवाया है। उसको पापात्मा, चाण्डाल कहती हो, और एक अज्ञात कुलशीला को पाल-पोसकर बड़ी किये हो और उसको अपना वारिस बनाना चाहती हो; ये सब जाति और धर्म का भंग करना नही तो और क्या है?' एक दूसरे मुखिया ने कहा।

'मैं तुम सबको अपना सहोदर भ्राता मानती हूँ। इससे अपने भाइयों के समक्ष भगिनी को पर्दा रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसमें, जिसमें कि धर्मगुरु का एक भी लक्षण नहीं है; ऐसे महादुराचारी और अधम पुरुष को पापात्मा, चाण्डाल कहने में और उसे जेल

भिजवाने में मैं कोई पाप नहीं मानती। जिस अज्ञातकुल-शीला बाला को पाल-पोसकर बड़ी किया है और जिसको मैं अपनी सारी सम्पत्ति का वारिस बनाना चाहती हूँ, वह बाला अवश्य उच्चकुल की है यह उसके लक्षणों और सामुद्रिक चिन्हों से सिद्ध हो चुका है। इससे इसमें मैंने जाति-नियम किंवा धर्म-नियम को लेश मात्र भी भंग नहीं किया।' वृन्दा ने अपने पर किये गये आक्षेपों को अस्वीकार कर दिया।

'इन सब कामों को तुम अपराध नहीं मानती हो; पर जाति-बिरादरी के लोग तो अवश्य मानते हैं और उन लोगों ने हमसे यह कहा है कि यदि महात्मा पर के मुकदमा को सिद्ध करने के लिये सब सबूत दबा रखो; अपने मुकदमे को कमजोर कर दो तो तुम्हारे इन अपराधों को हम क्षमा कर देंगे। पर, जो हमारी प्रार्थना को अस्वीकार करोगी, तो हम तुमको इस केस की समाप्ति के बाद जाति से अलग कर जातिच्युत कर देंगे। इतना ही नहीं; तुम्हारी बर्बादी के लिये हमसे जो कुछ भी हो सकेगा उसके करने में हम आगा-पीछा कुछ न सोचेंगे।' एक दूसरे सेठ ने कहा।

'अब महात्मा के बचाने का उपाय मेरे हाथ में अथवा किसी दूसरे के हाथ में नहीं है। कारण यह कि सब

सबूत कोर्ट में दाखिल हो चुके हैं। पर, मान लो कि आलम-चन्दवाले मुकदमा से महात्मा छूट भी जाँय तब भी शाक्त-सदन का भयंकर केस तो उसके ऊपर कायम ही रहेगा। उस केस में तो पुलिस ही मुद्दई है। उसमें किसीकी चाल नहीं चल सकती। यह बात तुम जानते हो या नहीं?' वृन्दा ने दूसरी आपत्ति दिखलाई।

'तुम अपने मुकदमे की बात करो। पुलिस के साथ जो प्रबन्ध करना होगा, हम कर लेंगे। द्रव्य से सब कुछ हो सकता है। धर्मगुरु को दण्ड तो हम नहीं देने देंगे।' चौथे ने कहा।

अबतक वृन्दा का जो क्रोध दबा हुआ था, वह उबल पड़ा। वह कहने लगी—'अबतक अपने गृह में आये अतिथियों का किसी प्रकार अपमान करने का मेरा विचार नहीं था। पर, सचमुच जब तुम लोग अपना अपमान माँग रहे हैं तो अब तुम्हारी भर्त्सना किये बिना मेरा छुटकारा नहीं है। पाखंडी तुम्हारे अन्न और धन से पुष्ट होकर तुम्हारी बहू-बेटी को भ्रष्ट करता है। उनको व्यभिचार की शिक्षा देता है और तुम्हारी आँखों में दिन-रात धूल डालता है उसे तुमलोगों को धर्मगुरु कहने में शर्म नहीं

आती। यही मुझे आश्चर्य प्रतीत होता है। मदिरापान, मांसाहार, परधनापहार, व्यभिचार और विलास-विहार; क्या यही तुम्हारे धर्म के तत्त्व हैं? यदि यही हों तो इस धर्म की मुझे आवश्यकता नहीं है। ऐसे धर्म के तत्त्वों का पालन करके और पाखंडियों की पूजा करके तुम अकेले ही स्वर्ग में चले जाओ। मुझे स्वर्ग नहीं मिलेगा तो मुझे इसके लिये कोई चिंता नहीं। अहा! जो क्षत्रिय अपनी माता, भगिनी, पत्नी, पुत्री या पुत्रवधू को बुरी आँख से देखता था, उसे मार डालते थे और स्त्रियों के सतीत्व को अपना प्राण से अधिक मूल्यवान और पवित्र मानते थे; वे ही क्षत्रिय आज धर्म के नाम की दुकान खोलकर बैठने वाले और धर्मगुरु के नाम को कलंकित करने वाले पाखंडियों के हाथ सारे दिन और खुले बाजार अपनी बहू-बेटी की लज्जा लुटी जाती देखकर शांति से टुकुर-टुकुर देखा करते हैं। इतना ही नहीं; वरन् उनको अन्न और धन से पोषणकर उनके पापों को ढँकने की कोशिश करते हैं। इससे अधिक बढ़कर पागलपन और क्या हो सकता है? तुम्हारी जानकारी में तो स्त्रियाँ दर्शन करने जाती हैं। वहाँ दर्शन तो अलग ही रहता है और दूसरे क्या-क्या

कार्य होते हैं, यह सब तुम अंधों को क्या खबर है ! हो भी कहाँ से ? अंधश्रद्धालुओं को तो वास्तविक ज्ञान होता ही नहीं, और कदाचित् कोई जान भी लेता है तो अंध-श्रद्धालु धर्मकृत्य मानते हैं। तुम्हारे इस आँख मूँदने ही से वर्णशंकर सन्तान उत्पन्न होने का मूल कारण है। अब इससे अधिक तुमसे क्या कहूँ।'

भक्तों का डेपुटेशन चला गया। वृन्दा ने चाय वगैरः पीने का आग्रह किया। पर, उन लोगों ने इसे स्वीकार नहीं किया। उनके जाने के बाद वृन्दा मन में विचार करने लगी—'मुझपर इनमें से और कोई अपराध तो आरोपित नहीं हो सकता। केवल रोहिणी को मेरी सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणी बनाना और जात-पाँत को बिना बतलाए इसका पालन करना कदाचित् इसी अपराध के लिए मुझे जाति-बाहर होना पड़े। पर, चिंता नहीं; ईश्वर सहायक है।'

रोहिणी और सीता बगल के कमरे से ये सब बात सुन रहीं थीं। वे आकर वृन्दा को आश्वासन देने लगीं। पर, अनुभवी और चतुरा वृन्दा को ऐसे आश्वासन और सान्त्वना की कोई आवश्यकता नहीं थी। रोहिणी ने कहा—'यदि

मेरे कारण से तुमको दुःख उठाना पड़ता हो तो मुझे दूर करो। मेरा भाग्य मेरे साथ है।'

'बेटी! क्या तू पागल हो गई है। तुम इस किस्म की बात न करना। इनको यथोचित फल देने के लिए मैं समर्थ हूँ।' वृन्दा ने कहा।

इतने ही में आलमचन्द का पत्र लेकर एक आदमी आ पहुँचा। पत्र में लिखा था—

'श्रीमती वृन्दा की सेवा में—

कल प्रातःकाल बहन रोहिणी, सीता और मोहनलाल आदि को लेकर हमारे दीन घर में आओ तो बड़ी कृपा हो। कल यहीं भोजन भी करना। चार घड़ी आराम से कटेंगे। आभारी—आलमचन्द'

वृन्दा ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर नौकर से कहा—'जाकर दीवान से कहना कि प्रभात में जहाँ तक हो सकेगा हम शीघ्र वहाँ आ जायँगी।'

चन्द्रशंकर के मिलने का प्रसङ्ग आने से सीता के मन में एक प्रकार का अज्ञेय आनन्द उत्पन्न हुआ। सीता के अन्तःकरण में चन्द्रशंकर के लिए अधिक उत्सुकता क्यों हो रही है?

३२

आरोप से बच जाने पर महात्मा को न भूलने का दया-मयी ने वचन दिया था। इसका उसने यथार्थ पालन किया। जिस दिन वह छूटी उसके दूसरे ही दिन वह कारागृह में गई। महात्मा विचार और चिंता में डूबा हुआ बैठा था। वह मन ही-मन कह रहा था—'क्या दयामयी वास्तव में मेरे छुटकारे का उपाय करेगी। बहुधा सब स्त्रियों का हृदय निर्दय होता है और शाक्तसदन की अधिष्ठात्री का हृदय तो अधिक विषमय है। यह मुझ पर दया करे, यह आशा तो आकाश-कुसुम की तरह है। वृन्दा की तरह धार्मिक और धर्म-भीरु अबला ने मेरे प्रति इतनी अधिक क्रूरता दिखाई तो फिर दयामयी तो एक नीच नारी है। वह मेरे नाश में ही आनंद मानती है। वह जो न कर डाले वही आश्चर्य है। यदि दयामयी मेरे छुटकारे के लिये प्रयत्न करे तो यह सफल कैसे होगा ? मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ता। ब्रिटिश-न्याय से मेरे-जैसा अपराधी जिसपर सब आरोप सिद्ध हो चुके हैं, कोर्ट से साफ छूट जाय इसका होना कदापि संभव नहीं है। अब तो जो परमेश्वर सहायक होवे तभी इस विपत्ति से छूटने की कुछ आशा हो सकती है।'

इन विचारों में वह डूबा हुआ था, इतने ही में अचानक दयामयी वहाँ आकर खड़ी हो गई। दिन में दो-चार भक्त आया करते थे उनमें से कोई भी उसके साथ नहीं था। वह किसी खास उद्देश्य से अकेले आई मालूम पड़ती थी। उसे आई देखकर महात्मा के सर्वथा हताश और निराश हृदय में कुछ आशा का संचार हुआ और उसके मुख-मंडल पर हर्ष की छाया दिखाई पड़ने लगी। दयामयी आने के साथ ही महात्मा के अंग में अंग सटा कर बैठ गई और हाव-भाव से बोली—'कहो, कैसी स्थिति है।'

'तुम्हारे नाम की माला जपा करता हूँ और इस नरक से छुटकारा पाने की राह देखता हूँ। तुम तो छूट गईं पर मेरे लिए भी तुमने कोई रामवाण जीवनबूटी शोधी है या नहीं?' महात्मा ने आतुरता से पूछा।

'जीवनबूटी तैयार है। केवल तुम्हारे खाने भर की देर है।' दयामयी ने हँसकर उत्तर दिया।

'दो, दो, मेरी देवी! वह जीवनबूटी मुझे शीघ्र दो।' महात्मा ने उसका अँचल पकड़कर बड़ी आर्जवता से कहा।

'इतना आतुर मत हो। यह काम बहुत सँभाल कर

करना है। अपने प्रेमी-भक्तों को भी यह बात किसी प्रकार न मालूम होने पावे। इस कार्य को गुप्त रखने में तुम्हारी और मेरी दोनों की भलाई है। यदि मेरी आज्ञा के विरुद्ध तुमने थोड़ा भी आचरण किया तो यह समझ लो कि मुझे जितना पानी पीना पड़ रहा है, उस समय तुम्हें भी उतना ही पानी पीना पड़ेगा।' दयामयी ने गंभीरता से कहा।

'मैं सब प्रकार से तुम्हारी आज्ञा के आधीन हूँ।' महात्मा ने कहा।

'तो बताओ कि मंदिर में किन-किन गुप्त स्थानों में तुमने धन आदि छिपाया है। तुमको छुड़ाने के बाद हमें अब हैदराबाद रहना नहीं है। तुम्हारे निकल जाने के बाद मैं भी आऊँगी और भविष्य में तुम जिस देश में चल कर रहोगे वहाँ यदि तुम्हारे पास धन रहेगा तो अपना जीवन आनंद से बीतेगा। यदि मुझमें तुम्हारा विश्वास है तो यह भेद मुझे शीघ्र बता दो।' दयामयी ने कहा।

महात्मा फिर विचार में पड़ गया। दयामयी के विषय मे उसके मन में नानाप्रकार की शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं। वह मन में कहने लगा—'एक तो प्रपंच-जाल करके यह कोर्ट से छूट गई और अब हमारी सब संपत्ति अपने अधिकार

में करना चाहती है। यदि मेरा सब धन इसके हाथ में आ जाय तो फिर यह मुझे छुड़ाने का किस लिए यत्न करेगी। पर नहीं, मान लिया कि मैं छूटता नहीं, तब यह सब धन मेरे किस काम का है। जो कुछ हो इसे बतादूँ और भाग्य पर विश्वास रखूँ। यदि छूट सका तो धन की सहायता से इसके साथ मौज-मजा उड़ाऊँगा। अन्यथा कारागृह में सड़-सड़ कर मरना तो निश्चित ही है। पर हाँ, थोड़ा धन बताकर शेष को बचाना होगा।'

मन में इस प्रकार निश्चय करके उसने दयामयी से कहा—'देवि! तुमसे कोई बात मैंने छिपा नहीं रखी है और न रखने का विचार ही है। अपने मंदिर में श्रीराधा-कृष्ण की जो विशालमूर्ति है वह भीतर से पोली है। उन दोनों मूर्तियों में कितने ही कीमती मोती, पोखराज, पन्ना और सोना-मोहर भरी हुई हैं। इसमें से लगभग तीन लाख की संपत्ति मिलेगी। इनके सिवा मैंने कहीं भी कुछ छिपाया नहीं है और यदि कहीं छिपाया भी हो तो अब मुझे स्मरण नहीं है।'

'तो तुमने आलमचन्द की संपत्ति को इन मूर्तियों के पोलेभाग में क्यों नहीं छिपाया? नहीं तो आज इस कारा-गृह का प्रसंग ही क्यों आता।' दयामयी ने पूछा।

'उस समय यह करने का ध्यान नहीं रहा। भाग्य ही जब बिगड़ गई तो विचार और पश्चात्ताप करना सब व्यर्थ है।' महात्मा ने कहा।

'तुमने मेरे वचन और व्यवहार में विश्वास करके जो यह भेद बता दिया सो ठीक किया। पर, मैं भी तुमको बतलाती हूँ कि मैं कभी भी इस विश्वास को भंग न करूँगी। एकबार मैं अपने जीवन को खतरे मे डालकर तुम्हे इस कारागृह से मुक्त करूँगी। अब अपने प्रपंच-नाटक के विषय में तुम्हे क्या और किस प्रकार करना होगा, कुछ कहना चाहती हू।'

'मैं उसे सुनने के लिए तैयार हूँ।' महात्मा ने कहा।

दयामयी ने ऊपर से महात्मा की निष्कपटता की प्रशंसा की। पर, मन में वह भली प्रकार जानती थी कि चारों ओर आफत से घिर जाने से महात्मा ने पोली-मूर्ति में छिपे हुए धन का भेद खोला है। वह मन में कहने लगी—'जो मेरे में इसका सच्चा प्रेम और विश्वास होता तो यह हमे अब तक इस भेद को अवश्य बता दिये होता। पर चिन्ता नहीं; इसके अविश्वास का फल तो इसे मिलेगा ही। मेरा स्वार्थ सिद्ध हो चुका है। अब दुनियाँ है, यह है और मैं हूँ। देखें, कौन जीतता है।'

दयामयी के औपचारिक आश्वासन से महात्मा के मन में छूटने के बाद नवीन विलास-उपभोग की आशा उदय होने लगी। दयामयी ने पलायन करने के विषय में अनेक उपदेश दिये। महात्मा ने कहा—'मेरी प्राणेश्वरी! मैं बराबर तेरी आज्ञानुसार कार्य करूँगा। अबतक अनेक प्रकार से वेष बदलकर भोली दुनियाँ को ठगने के काम में सफल हो चुका हूँ तो तुम्हारे बताये हुये इस वेष-परिवर्तन की क्या बात है?'

कुछ बातचीत कर दयामयी वहाँ से जाने को उठी। महात्मा ने केवल उसके आलिंगन से अपने मनोविकार को तृप्त किया। वह कपट-कला-निपुण नारी जब कारागृह से निकली उस समय संध्या के ६ बज गए थे। मंदिर में आरती का समय हो गया था। वह गाड़ी में बैठकर तुरत मंदिर में गई। आज से मन्दिर का अधिकार उसे मिल गया था। महात्मा के बदले वह ठाकुरजी की पूजा स्वयं करती थी। सर्वकला-प्रवीण-प्रमदा क्या नहीं कर सकती!

रात के बारह बजे थे। मन्दिर के सब मनुष्य निद्रा-वश हो गये थे। दयामयी पिछले द्वार से ठाकुरजी की बैठक में गई। चतुर-चतुरा चारों ओर चञ्चल चक्षु चमकाती हुई

धीरे-धीरे देवालय के सिंहासन के पास आई और राधा-कृष्ण की मूर्तियों का वस्त्राभूषण उतारकर नग्न कर दिया। कृष्ण की मूर्ति का गुप्तअङ्ग स्क्रूपदार था। उसे घुमाते ही वह खुल पड़ा, और उदर के भाग में से सोना मोहर तथा अन्य कीमती चीजें तुरत बाहर निकल पड़ी। राधा की मूर्ति के स्तन में भी यही भेद था। उसका द्वार बड़ा था। उसमें हाथ डालकर भीतर की वस्तु निकाली जा सकती थी। यदि महात्मा ने इसका भेद उसे न बताया होता तो जब तक सब मूर्ति तोड़ न डाली जाती तब तक उसमें के धन-भण्डार का मिलना असंभव था। महात्मा की बताई हुई कीमत से अधिक माल उन मूर्तियों के पेट से निकला दिखाई पड़ा। दयामयी के मन मे परम संतोष हुआ।

'अब सब धन को कहाँ रखे। अभी तो इन्हे मूर्ति के पेट में रहने देना ही अच्छा है। जब अवसर आवेगा तब ले लूँगी। सत्य मे जो देव-मूर्ति के निमित्त इन धन-मूर्तियों का पूजन, भजन करते हैं उनके धन-संचय की यही दशा होती है। इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। महात्मा के अनेक पापों से संचित यह धन मेरे काम आवेगा और यह दयामयी इससे नाना प्रकार के आनंद-विलास लूटेगी और लुटावेगी।'

इस प्रकार के विचार से वह थोड़ी देर तक अपने देह-ज्ञान को भी भूल गई थी। दयामयी उन्मादिनी बन गई थी। परन्तु फिर होश में आकर उसने समस्त संपत्ति को मूर्ति के उदर में रख दिया। मंदिर के द्वार को बन्द कर ताला लगा अपने शयनगृह में आकर शय्या पर पड़ गई। निद्रा आई पर उस निद्रा में राधाकृष्ण की भेद-भरी धनमंजूषारूप मूर्तियाँ और उनमें के धन-भंडार का दर्शन करने लगी। प्रभात में वह आरती करने को उठी। उस समय उसे यही भास होता था, मानों वह धन की आरती उतारती हो।

दोपहर के बाद दयामयी महात्मा के स्थानपर कथा कहने बैठी। दयामयी आज कथा बाँचने और उसकी व्याख्या करने बैठी है इससे स्त्री-पुरुष का श्रोतृसमुदाय अधिक आकर भर गया था। दयामयी ने नलदमयंती की कहानी ही पसंद की थी। उसके कथा सुनाने के ढंग से सब श्रोता प्रसन्न हो गये। कथा की समाप्ति होनेपर दयामयी ने दुःखदर्शक गंभीरता से कहा—'भक्तजन! विगत संध्या को यह दासी महात्मा से मिलने गई थी। उस समय महात्मा की प्रकृति बहुत अस्वस्थ थी। इस अत्याचार से उनके

गंगाजल-समान निर्मल मन में महाभयंकर आघात हुआ है और मुझे डर लगता है कि कहीं यह अस्वस्थता बढ़ न जाय और अलौकिक महात्मा का प्राण कारागृह में ही छूट न जाय।'

दयामयी कुछ आगे कहने वाली थी इतने में महात्मा के प्रधान पार्षद ने आकर कहा—'देवी, महात्मा की प्रकृति अधिक खराब हो गई है और इस समय वह कारागृह से अस्पताल में लाये गये हैं। उनकी हालत देखकर डाक्टर भी घबड़ा गये हैं। शरीर का बहुत अल्प ज्ञान होनेपर भी उनकी जिह्वा से राधाकृष्ण का जप एकपल के लिये भी नही रुकता।'

यह समाचार सुनकर श्रोतृ-समाज में हाहाकार मच गया। कितने ही प्रेमी भक्त वहाँ से बिना घर गये ही गाड़ी में बैठकर कारागृह की ओर गये। परन्तु महात्मा को विशेष कोलाहल से बुरा होना संभव था। इससे जेल-अस्पताल के डाक्टर ने आज किसीको भी महात्मा के पास आने और मिलने की इजाजत न दी थी। केवल दो-एक प्रतिष्ठित गृहस्थों को दूर से महात्माजी की स्थिति बतला दिया था। वास्तव में दयामयी को आलिंगन कर विदा करने के चौबीस घंटे बाद महात्मा गोपालदास की स्थिति बहुत भयंकर और

निराशाजनक हो गई थी। डाक्टरों की यह राय थी कि यह मानसिक परिणाम है। महात्मा के हृदय की गति मंद पड़ गई और छाती में भयंकर दर्द होने लगा। यदि हृदय की गति बंद हो जाय तो इस रोग से तत्काल अचिन्त्य मरण हो जाना संभव था। सब भक्तजन निराश हो गये, और महात्मा की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। सब लोग इस प्रकार कहने लगे—'महात्मा को इस नरक-तुल्य पापी संसार में रहने की अब इच्छा नहीं है।'

३२

कुलेली के किनारे पर एक नई शर्मा दिखाई पड़ती है। आलमचन्द और उनकी धर्मपत्नी यशोदाबाई की अनुपस्थिति से जो भवन उजाड़ और जनशून्य पड़ गया था, वही आज मानव-निवास होने से इन्द्रनिलय की शोभा को प्रदर्शित कर रहा था। गमले के सूखे हुए पौधों में जल-सिंचन से पुनः नवीन-जीवन का संचार दिखाई पड़ता था। निशानाथ चन्द्र के संयोग से जैसे निशादेवी प्रफुल्ल दिखाई पड़ती थीं। विरहिणी स्त्री के मन मे अपने पति के मिलन से जितना हर्ष होता है, मित्र के भाग्य से जिस प्रकार सद्मित्र को सन्तोष मिलता है; उसी तरह

आज दीवान आलमचन्द और यशोदाबाई के आगमन से उनका उजड़ा हुआ गृह मानों महाआनंद और हर्ष को प्राप्त होकर प्रफुल्ल हास्य कर रहा है। आज वृन्दा, रोहिणी, मोहनलाल तथा सीता आदि अतिथियों का आगमन है। इससे आलमचंद ने अपने भवन को पुष्प, पर्ण एवं मोतियों की तोरण आदि से शृंगारित किया है। इससे उस भवन की भव्यता तथा शोभा में अति वृद्धि हो गई है।

लगभग नौ-साढ़े नौ बजे आलमचन्द आमन्त्रित अतिथियों को आदरपूर्वक गृह में ले गये। जिस कंगाल भिक्षुक को रोहिणी ने अपने गृह में दया करके आश्रय दिया था वह मोहनलाल तथा रोहिणी की देखरेख और सेवा से बहुत स्वस्थ हालत में हो गया था। आज उसके मुखमण्डल पर एक प्रकार की विलक्षण तेजस्विता दिखाई पड़ती थी। सुंदर वस्त्रों ने उसके शरीर की कांति को अधिक बदल दिया था। अमृतवल्लरी का पान कर जिस प्रकार मृत मनुष्य को पुनरुज्जीवन मिल जाता है उसी तरह उसमें सब प्रकार से पुनरुज्जीवन दिखाई पड़ता था।

आनंदानंद को सीता के और सीता को आनंदानंद के मिलन से एक प्रकार का पुनरुज्जीवन मिला था। आलम-

चंद तथा यशोदा को—स्नेही जनों के लिए भूखे होने से इस अतिथि-मण्डल के आने पर लगभग पुनरुज्जीवन-जैसा आनंद प्राप्त हुआ। चारों ओर नवीन जीवन ही दृष्टि-गोचर हो रहा था।

ऊपर के सुसज्जित कमरे में अतिथियों को बैठाकर आलमचंद ने सबका कुशल-मंगल पूछा। अंत में उन्होंने उस अज्ञात भिक्षुक से पूछा—'अब तुम्हारी तबीयत कैसी है?'

भिक्षुक ने कहा—'महाशय! रोहिणी देवी तथा मोहन-लाल देव की कृपा तथा सेवाओं से मुझे बिलकुल नया जन्म मिला है। मैं पूर्ण आनंद में हूँ। कहाँ आपका यह मकान और कहाँ मेरी योग्यता! वास्तव में यह सब सुसंगति ही का प्रभाव है।'

'भाई! अब इन विचारों को अपने मन में न लाओ। तुम हमारे सगे बन्धु हो।'

'यह आपकी उदारता है।' भिक्षुक ने कृतज्ञता प्रकट की।

इसके पश्चात् अन्य कितनी ही बातें चलीं, और भोजन का समय हुआ। नाना प्रकार की थाली में रखी हुई स्वादिष्ट वस्तुओं की प्रशंसा और विनोद-वार्ता करते हुए सब लोगों ने आनंद से भोजन किया। तृप्त होकर आचमन

आदि करने के पश्चात् वे लोग बैठक वाले कमरे में आए। आलमचंद ने कहा—'गया धन फिर मिल गया, और हर प्रकार से आनंद हुआ। पर, मेरी अदृश्य हुई पुत्री का कोई भी पता न मिलने से यह चिन्ता मेरे हृदय में ज्यों-की-त्यों ही कायम रह गई है। क्या करूँ; भगवान की इच्छा!' यशोदा की आँखों से भी आँसू गिर पड़े। वह मुँह से कुछ बोल न सकी।

आनंदानंद ने आश्वासन दिया—'दीवानजी! मेरे मन-में जो एक संशय आज कितने ही दिनों से उद्भव हुआ है, वह यदि सत्य है तो आपकी प्राण-प्रिय पुत्री आपको आज से पहले ही मिल चुकी है। आप यह निश्चय पूर्वक समझ लें।'

'यह कैसे? मैं तुम्हारे भेद भरे वचन के भावार्थ को कुछ भी नहीं समझ सकता।' आलमचंद ने कहा।

'आपकी सुकुमार बालिका को चुरा उसका जेवर उतार इस कुलेली के जल-प्रवाह मे फेंकने वाला मैं स्वयं हूँ, यह तो मैंने काशी मे आपसे प्रथम मुलाकात मे ही बतला दिया था। आपको स्मरण होगा ही।'

'स्मरण तो बराबर है, पर उससे लाभ ही क्या है?' आलमचन्द ने निःश्वास लेते हुए कहा।

'कुलेली के जल-प्रवाह में तुमने किसी लड़की को फेंक दिया था; यह कितने दिन की बात होगी ?' अज्ञात भिक्षुक ने बीच में ही सवाल किया।

'इसे बीते लगभग तेरह या चौदह वर्ष हुए होंगे।' आनंदानन्द ने कहा।

'ठीक है। वह समय संध्या काल था। मेरे ख्याल से उस समय अंधकार फैल गया था। सच है न ?' भिक्षुक ने कहा।

'हाँ, ठीक है।' आनंदानंद ने आश्चर्य से कहा।

'बस महाशय, जरा शांत रहो। मेरे अनुमान के अनुसार आज से तेरह-चौदह वर्ष पहले रात्रि के समय कुलेली जल-प्रवाह में से एक सुकुमार बालिका को मैंने बचाया था। वह बालिका यही है। तबीयत की खराबी और चिंता के उन्माद के कारण मैंने अपना वृत्तान्त अपने आश्रय-दाताओं को सुनाया ही न था। अपनी कर्मकथा कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनने की कृपा कीजिए।

भिक्षुक अपना वृत्तान्त सुनाने लगा—'मैं इसी हैदराबाद जिले का निवासी हूँ। मेरे पिता गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे। मुझे व्यापार के योग्य शिक्षा नहीं मिली थी। हमारा जीवन आनंद से बीत रहा था। अचानक उस

गाँव में कालरा का कोप हुआ और उसके पंजे में पड़कर मेरे माता-पिता भाई-बहन सब छः-सात दिन के भीतर ही मर गये। हम स्त्री-पुरुष जीते रहे। अब तक कभी जीवन में दुख का अनुभव नहीं हुआ था। अचानक दुख का पहाड़ टूट पड़ने पर मैं पागल हो गया। अन्त मे आत्मीय-जन की उत्तर-क्रिया करके अपना गाँव छोड़कर हैदराबाद में आकर रहने लगा। मेरे पास इतना धन था कि मैं बैठ कर उससे अपना जीवन निर्वाह कर सकता था। पर, मैंने बाजार में एक दुकान कर ली। दुर्भाग्य से स्त्री भी मर गई। मेरा सर्वस्व चला गया। मैंने व्यापार बन्द कर दिया। पैसे का अभाव न होने से कुलेली के किनारे आकर साधुओं की सोहबत में गाँजा-भाँग पीने लगा। मैं इसीमें आनंद से दिन बिता रहा था। साधुओं को अच्छा-अच्छा पक्वान्न खिलाता। खर्च बढ़ता गया और आय बन्द हो गई। हमारा सब द्रव्य खतम हो गया। इसके बाद मै घर छोड़ कर साधुओं के साथ रहने लगा। गृहस्थ का सब आचार-विचार मैंने छोड़ दिया। एक दिन शाम को कुलेली के किनारे पर टहल रहा था। वहाँ जल प्रवाह में कोई बालक बहता हुआ दिखाई पड़ा। वह बालक किनारे से बहुत दूर

नहीं था। तुरत ही मैं पानी में पैठ गया और उस बालक को बाहर निकाल लाया। बाहर लाकर देखा तो वह पाँच वर्ष की सुन्दर बालिका थी। पेट में पानी चला गया था। पहले मैंने उसे साधुओं के आश्रम में लाकर उसके पेट का पानी निकाला और उसे सचेत करने का उपचार करने लगा। मेरा परिश्रम सफल हो गया। बालिका होश में आ गई। उस रात को तो मैंने बालिका को वहीं रखा; पर विचार करने लगा कि उस कोमल बालिका को कठोर साधुओं के समाज में रखने की अपेक्षा यदि किसी गृहस्थ के घर में रखने की व्यवस्था हो सके तो बहुत सुन्दर हो। संध्या को ऐसे गृहस्थ को खोजने के लिए लड़की को साथ लेकर बाहर चला। फिरते-फिरते मैं कम्पनी गार्डन में गया। वहाँ जाने का मेरा यह उद्देश्य था कि वहाँ कितने ही गृहस्थ वायु-सेवन के लिये आते हैं; और उनमें से कोई-न-कोई गृहस्थ उस अनाथ बालिका को आश्रय देने के लिए अवश्य तैयार हो जायगा। गार्डन के पास एक घोड़ा गाड़ीखड़ी थी और उसमें एक तरुण स्त्री बैठी थी। स्त्रियों के हृदय में बालकों के प्रति अधिक प्रेम होता है; इससे मैंने उस स्त्री से बालिका की सब बातें कह दीं। उस स्त्री ने तुरत उस लड़की को

अपनी गोद में ले लिया, और मुझे दस रुपये इनाम में दिये। उसने मेरा नाम और पता-ठिकाना लिख लिया। उसके पश्चात् उस बालिका की क्या अवस्था हुई; यह मैं नहीं जानता। अंत में साधुओं के संग से मैं भिक्षुक बन गया। गाँव में भिक्षा माँगने जब निकलता तब लड़के मुझे पागल कहकर पुकारते थे। उस दिन हैदराबाद से तंग आकर मैं गिदूबन्दर आया। वहाँ भी मानों लड़कों को तार मिल गया हो, इस तरह तुरत ही वे मेरे पीछे पड़े। उस दिन यही बहन रोहिणी और भाई मोहनलाल मुझे अपने शरण में न लिए होते तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो गई होती। भगवान तुम सबका कल्याण करें।'

'तुम्हारा नाम देवमल तो नहीं है ?' वृन्दा ने अचानक पूछा।

'हाँ, है तो; पर तुम मेरा नाम कैसे जान गई ?' भिक्षुक ने कहा।

'कम्पनी गार्डन में गाड़ी में बैठी हुई जिस स्त्री से पुरस्कार लेकर तुमने बालिका सौंपी थी वह स्त्री कोई दूसरी नहीं वरन् मैं स्वयं थी, और तुम्हारा जो नाम मैंने लिख लिया था वह अबतक मेरे स्मृति-पट पर अंकित है।' वृन्दा ने कहा।

'पर जहाँ तक मुझे याद है मैंने उस लड़की को टंडा मुहम्मदखाँ के अनाथाश्रम में देखा था।' आनन्दानन्द ने कहा।

'उस अनाथाश्रम में उसको रखनेवाली भी मैं स्वयं थी।' इस प्रकार वृन्दा ने रोहिणी को अनाथाश्रम से लाने आदि का वृत्तांत कह सुनाया।

'वह लड़की इस समय कहाँ है ?' आलमचन्द और यशोदाबाई ने एक साथ ही सवाल किया।

'यह तुम्हारे सामने बैठी हुई रोहिणी—यह वही बालिका है।' वृन्दा ने कहा।

'दीवानजी ! आपकी लड़की के दाहिने गाल के ऊपर एक तिल था। यह तो आप भूल नहीं गये होंगे ?' आनंदानंद ने स्मरण दिलाया।

'रोहिणी के दाहिने गाल पर तिल है।' वृन्दा ने अनुमोदन किया।

'तो हमारी गुप्त हुई पुत्री यह रोहिणी ही है !' आलमचन्द और यशोदा ने साथ ही आश्चर्य दिखाते हुये कहा।

अन्धे को आँखें मिल गईं। यशोदा हर्ष से विह्वल होकर मूर्छित हो गई और आलमचन्द भी प्रसन्नता से मन्त्र-मुग्ध हो गये। मूर्छा से सचेत होने पर यशोदा ने—'अरे मेरी

ठाकुरी !' कहकर रोहिणी को गले से लगाकर हर्ष के आँसू बहाने लगी। उस लड़की का मूल नाम ठाकुरी था, और रोहिणी उसका नवीन नाम श्रीमती वृन्दा ने अनाथाश्रम में रखते समय दिया था।

अब आलमचन्द के आवास में आनन्द की लहरें उठने में कमी न थी। सबका हृदय आनन्द से छलछला उठा। सबसे अधिक आनन्द मोहनलाल को हुआ। कारण कि रोहिणी, आलमचन्द और यशोदा जैसी कुलीन और श्रीमन्त माता-पिता की पुत्री निकली। अब उसके साथ विवाह-सम्बन्ध करने मे किसी प्रकार की भी बाधा या निंदा न थी। ऐसी कुलीन और सद्गुणी कन्या किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त हो सकती है, इससे वह अपने को एक महाभाग्यशाली पुरुष मानने लगा।

'पर बहन ! मेरी पुत्री तुम्हारे हाथ में आई और उसको तुमने पहचाना नहीं, यह क्यो ?' यशोदा ने वृन्दा से पूछा।

'तुम्हारी लड़की जब दो वर्ष की थी तब मैंने उसे देखा था, और उसके बाद तुम मेरे बहनोई के साथ करांची में रहती थीं। इससे इसे फिर देखने का मुझे अवसर ही न मिला। इससे मैं ठाकुरी को तुरत न पहचान सकी। वरन्

इसको अनाथाश्रम में रखकर मैं उसके दूसरे ही दिन तीर्थ-यात्रा करने को चली गई थी। इससे इसके बाद भी इसकी चर्चा मुझे कुछ न सुनाई पड़ी, और जब मैं वापस आई तब सब बात ठंढी पड़ गई थी। परन्तु चाहे जान में हो या अनजान में, मेरी बहन की लड़की का लालन-पालन मेरे ही हाथ हुआ। यह भी ईश्वर की कृपा ही कहनी चाहिये। जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। बीती बातों को भूल जाओ, और परमेश्वर का आभार मानकर पुत्री के मिलन का आनन्द मनाओ।' वृन्दा ने कहा।

बातों-ही-बात में संध्या हो गई। उस समय एक आदमी ने आकर खबर दी—'महात्मा जेल में बीमार है और उसके जीने की आशा डाक्टरों ने छोड़ दी है।'

'हैं!' सबने आश्चर्य दिखाया।

'जाने दो। महात्मा की बीमारी के साथ अपना क्या सम्बन्ध है। पर, बहन यशोदा! रोहिणी को आज हमारे साथ जाने दोगी या अपने ही यहाँ रखोगी?' वृन्दा ने कहा।

'यहीं रखूँगी।' यशोदा ने कहा।

'नहीं, आज तो मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगी। दो दिन पीछे फिर भेजूँगी। अथवा हम सबलोग वहीं आकर

रहें तो बहुत अच्छा हो। रोहिणी का वियोग अब मुझसे सहा न जायगा।' वृन्दा ने कहा।

आलमचंद और यशोदा ने इस विषय मे अधिक बाधा न देकर रोहिणी को वृन्दा के यहाँ जाने की आज्ञा दे दी, इससे मोहनलाल अधिक खुश हुआ।

३४

सुबह सात बजे थे। रात में बारह बजे के बाद महात्मा गोपालदास की स्थिति अतिशय भयंकर एवं निराशाजनक हो गई, और उनके जीने की लेशमात्र भी आशा न रह गई थी। जेलर ने इस आशय का सन्देश दयामयी के पास भेजवा दिया। दयामयी ने उस समाचार को महात्मा के भक्तों को खूब बढ़ा-चढ़ा कर कह दिया था। इससे जेल के पास भक्तों की बड़ी भीड़ लगी हुई थी। हजारों आदमी इकट्ठे हो गये थे। दयामयी और कितने ही प्रतिष्ठित गृहस्थों को सुपरिन्टेन्डेंट ने महात्मा के पास बैठने की आज्ञा दी थी। वे महात्मा की मृत्यु-शय्या के पास बैठ, उसे मरणोन्मुख देखकर आँसू बहा रहे थे। दयामयी का विलाप, सुपरिन्टेन्डेन्ट, डाक्टर और भक्तजनों के हृदय को विदीर्ण कर रहा था। दयामयी को भक्तजन अनेक प्रकार का आश्वासन

देकर शांत करने का यत्न करते थे। पर, उसका शोक कुछ भी कम न होता था। रह-रहकर वह अपना सिर पीटती और बालों को नोचती खसोटती थी। महात्मा का जीवन घड़ी पल पर आ रहा था। डाक्टरों ने भी अपना निश्चित अभिप्राय कह दिया। इस प्रकार बंदीगृह में मरने वाले के लिये पंचनामा की प्रथा थी। कुछ भक्तों ने जेल के डाक्टर को बुला कर कहा—'डाक्टर साहब! अब महात्मा के जीवन की आशा नहीं है। इससे किसी प्रकार झंझट न होने पावे और उनकी मिट्टी, ठिकाने लगाने के लिये हमें शीघ्र आज्ञा मिल जाय, ऐसी कृपा आप करें; इसमें आपको भी पुण्य होगा।'

'यदि आप इतनी कृपा करें तो हम सब पर और वैष्णवधर्म पर आपका बहुत उपकार होगा।' दूसरे ने कहा।

'हम आपका यह उपकार भूलेंगे नहीं। हमसे जो कुछ हो सकेगा आपकी सेवा करेंगे।' तीसरे ने लोभ दिखाया।

'अभी मजिष्ट्रेट साहब को सूचना देनी है। वह यहाँ आयेंगे तब यथाशक्ति मैं उनको समझाऊँगा और तुम लोगों का जो विचार हो उसे करना।' डाक्टर ने उनके हृदय को सन्तोष दिया।

इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि इतने हीं में दयामयी का निम्न क्रन्दन उनके कानों में पड़ा—'अब यह मेरा आधार चला गया। धर्म का स्तम्भ टूट गया। एक महापुण्यशाली जीव इस पापी संसार को छोड़कर सदा के लिये चला गया। धर्म का सूर्य अस्त हो गया। प्रपंची संसार को छोड़कर महाभाग्यशाली महात्मा निरुपद्रवी वैकुंठधाम में पहुँच गया। महात्मा! आप तो स्वर्गधाम मे चले गये और पापी जनों के कारागृह से मुक्त हो गये। पर, मुझ अकेली को इस पापपंक में सड़ती हुई क्यों छोड़ गए? अब मुझे धर्म की शिक्षा कौन देगा? उपदेश का अमृत कौन पिलायेगा और आत्ममुक्ति का मार्ग कौन बतलाएगा! हे वेदांतवेत्ता! अब इस कलिकाल में आपकी तरह एक भी महापुरुष न जन्म लेगा। इस अभागिनी शिष्या को अब आपकी तरह परम सदगुरु का दर्शन और समागम का लाभ नहीं मिल सकता!'

जेल के अस्पताल में ही महात्मा श्री गोपालदास का शरीर छूट गया। जगत् से महात्मा अलग हुए और महात्मा से जगत् का छुटकारा हुआ। थोड़ी ही देर में मजिस्ट्रेट आ पहुँचे। उनके मन में शंका थी कि शायद महात्मा ने आत्म-

हत्या कर ली है; और इससे उन्होंने पोर्टमार्टम की आज्ञा दी। डाक्टर और अन्य गृहस्थों के समझाने पर कि यह मृत्यु, हृदय में असह्य आघात होने से हुई है; निरुपाय होकर मजिष्ट्रेट ने अधिक बाधा नहीं दिया। कानून के अनुसार ऊपर-ही-ऊपर जाँच करके महात्मा के मृत शरीर की उत्तर-क्रिया करने की आज्ञा दे दी।

महात्मा के वैकुंठवास का समाचार वायु-वेग से सारे हैदराबाद में फैल गया। दस-ग्यारह बजते-बजते हजारों आदमियों की भीड़ जेल के पास इकट्ठी हो गई। बाजार की सब दूकाने बंद हो गईं। सब वैष्णव नागरिकों के गृह में महात्मा की भक्तिनियों के रोने-चिल्लाने से आकाश-पाताल एक हो गया था। कितने ही गृहस्थ अपनी-अपनी दुकान बंदकर घर में आकर बैठे थे, और महात्मा की श्मशान-यात्रा में जाने की इच्छा के न होनेपर भी उनकी स्त्रियोंने ताना मारकर उनको श्मशान-यात्रा के कार्य में प्रवृत्त कर दिया। वस्तुतः वैष्णव महात्माओं के धर्ममंदिर के नाम से पापकर्म का जो व्यापार चलता हुआ देखा जाता है; वह बहुधा इन्हीं अंधश्रद्धालु एवं मूर्ख अबलाओं के प्रताप से अन्धाधुन्ध चलता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि ये भोली

स्त्रियाँ न हों अथवा शिक्षा से उनके मन में सारासार का विवेक आ जाय तो इन ढोंगी धूर्तों का घड़ी भर में दिवाला निकल जाय।

हैदराबाद में चैतन्यमत का दूसरा कोई भी वैष्णव साधु नहीं था। महात्मा के मंदिर मे इसके पूर्व किसीके मरने का प्रसंग नहीं आया था, और सिंधी लोग चैतन्य मत के कर्म-विधि से अज्ञात होने के कारण महात्मा के शव को अग्नि दाह करें या भूमि दाह करें—आदि विचार में पड़ गये और यह उनके लिये स्वाभाविक भी था। इससे कुछ अग्रसर लोगों ने दयामयी के पास जाकर नम्रता से पूछा—'हे देवी! महात्मा के शव को अग्निदाह किया जाय या भूमिदाह। आपके पंथ मे जो परिपाटी हो उसके अनुसार हम व्यवस्था करें।'

दयामयी का अश्रुप्रवाह रुका न था। इससे उसने रोते-रोते जवाब दिया—'मृत शरीर का अग्निदाह करो, भूमिदाह करो; जलदाह करो; या आकाशदाह करो; वह सब समान ही है। परन्तु भिन्न-भिन्न पंथों ने अपना जो नियम बना रखा है, उसी प्रकार अपने लोगों को भी करना चाहिये। यह एक बंधन है। हमारे पंथ के साधु

महात्माओं के मृत शरीर को भूमिदाह करने का नियम है। इससे उसीके अनुसार व्यवस्था करते तो बहुत अच्छा होता; परन्तु यदि वैसा न हो सके तो सब हिन्दुओंकी तरह अग्निदाह तो सब प्रकार से उचित ही होगा।'

'ऐसा क्या है, जो नहीं हो सकता ? सब हो सकता है। यह प्रसंग तो बार-बार आता नहीं है। महात्माजी के पवित्र शरीर के योग्य शव को सन्मान से भूगर्भ में रखा जायगा और उसके बाद उनके अविचल स्मरण के लिये समाधि भी बनायेंगे।' सबसे बड़े अग्रसर ने कहा।

तुरत-ही जेल के बाहर एक काम चलाऊँ छप्पर खड़ा किया गया और वहाँ की जमीन गोबर से लीप-पोत और गोमूत्र से शुद्ध करके महात्मा के शव को वहीं रखा गया। इसके बाद शव को सौगंधित द्रव्यों से मिले हुए गंगाजल जल से स्नान कराने की क्रिया आरंभ हुई। मृत शरीर को नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रालंकारों और तिलक आदि धार्मिक चिह्नों से विभूपित क्रिया गया। अब शव को ले जाने के लिये पालकी आदि के आने में देर थी और उसे भी ले आने को आदमी दौड़ चुके थे। जरी का गुच्छा, मखमल की गद्दी, और पुष्पमाला आदि से शृंगार की

हुई सुन्दर पालकी आई और महात्मा का मृत शरीर पद्मासन से उसमें बैठाया गया।

यह सब तैयारी होने में संध्या के लगभग चार बज गये। इसके पश्चात् शव उठाया गया। जितने प्रतिष्ठित और बड़े-बड़े धनी गृहस्थ थे उन लोगों ने मृतक की पालकी पहले उठाई। हैदराबाद के दूसरे नानकपंथी साधु भी महात्मा की श्मशान-यात्रा में आकर मिल गये। सिंध में शव के साथ भजन, कीर्तन, गाना और मृदंग, सारंगी आदि के बजाने का चलन था। इससे नगर की अच्छी-से-अच्छी चार भजन-मंडलियाँ बुलाई गई थीं। इससे शव उठाने के साथ ही भजन का आलाप भी शुरू हुआ और बाजों का भी मंगलाचरण हुआ।

पहले शव के साथ चलनेवाले मनुष्यों की संख्या हजारों की थी। उसके साथ मार्ग में दूसरे आदमियों की संख्या क्षण-क्षण बढ़ती ही गई। जेल से निकलकर मार्केट की राह से होकर शव का जुलूस बाजार में पैठा। बाजार के मकानों में चिक या मच्छरदानी लगाकर स्त्रियों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था, जिससे वे बेचारी भी अन्तिम बार महात्मा का दर्शन कर अपने नेत्रों को पवित्र

कर सकें। अबीर-गुलाल आदि पदार्थ मनों की तायदाद में महात्मा के शव पर पड़ रहे थे। शव जब बगीचे में पहुँचा दयामयी जेल से गाड़ी में बैठकर पहले ही पहुँच चुकी थी। पहले से आये हुये आदमियों ने खड्डा खोदकर पहले ही से तैयार कर लिया था। उस खड्डे के पास एक बड़ी और मजबूत पेटी पड़ी हुई थी। उसीके पास पालकी उतारी गई और महात्मा के पवित्र शव की पूजा तथा आरती वगैरः की विधि हो जाने के बाद उनको खड्डे में रखने की तैयारी की जाने लगी। इस समय दयामयी ने कहा—'पहले इस सन्दूक को खड्डे में उतार दो। इसमें मखमल की गद्दी वगैरः रखो; तब शव को उतारो; सुगन्धित वस्तुओं को शव के आस-पास छिड़क दो। सन्दूक को भली-भाँति बन्द करो; और तब गड्ढे को बन्द कर दो। इसमें जरा भी भूल न होने पावे, और महात्मा के कोमल शरीर को जरा भी आँच न आने पावे। इसकी सँभाल रखना।'

दयामयी की आज्ञा के अनुसार भक्तलोगों ने सब व्यवस्था करके युक्ति से शव को भूगर्भ में छोड़ दिया, और ऊपर से मिट्टी भर दिया। पुनः बाजे और सङ्गीत की

भयङ्कर ध्वनि होने लगी। साथ ही महात्मा की कीर्ति के भयङ्कर जयनाद से आस-पास का प्रदेश गूँज उठा।

इस प्रकार महात्मा के शव को भूमिदाह करने के पश्चात् सब लोग अपने-अपने घर की तरफ रवाना हुए। दयामयी भी गाड़ी में बैठकर मंदिर में आई। मन्दिर में आकर उसने विश्राम लेने का विचार किया। पर, वहाँ पहले ही से आकर बैठी हुई स्त्रियों को देख उसका विचार हवा मे उड़ गया। स्त्रियाँ दयामयी को आश्वासन देने और अपना शोक प्रकट करने के लिए आई थीं। स्त्रियो के आने-जाने का कार्य लगभग दस बजे तक चलता रहा। उसके बाद मन्दिर का दरवाजा बन्द कराकर दयामयी अपने खानगी कमरे में गई, और अन्दर से दरवाजे की मज-बूत साँकल चढ़ाकर अपने शारीरिक परिश्रम का संहार करने का उपाय सोचने लगी। इसके खानगी कमरे के पास खानगी रसोई-घर था, और उसमें भीतर के दरवाजे से जाया जाता था। उस दरवाजे को खोलकर दयामयी ने किसी को सम्बोधित करके कहा—'रामदयाल! सब तैयार है।'

रामदयाल आकर बोला—'देवी! सब तैयार है। ब्रान्डी की दो बोतल मैं ले आया हूँ और कोकता, कूर्मा,

समोसा और परेठा भी गरमागरम जरा तेज तीखा बनाकर रखा है। आपके हुक्म की देर है।'

'चलो, तैयारी करो।' दयामयी ने कहा।

रामदयाल ने रसोई घर में एक कालीन बिछाया और ब्रान्डी का बोतल, प्याला, बरफ, जल और मांस वगैरः दस्तरखान पर रकाबी में रख दिया। दयामयी पलहथी मार कर बैठ गई और बोली—'पहले मुझे थोड़ी ब्रान्डी दो। कारण कि अभी ठंढे पानी से नहाया है। शरीर ठिठुर गया है। कहीं सर्दी न लग जाय।'

रामदयाल ने ब्रान्डी दिया। उसमें जल मिला कर दयामयी पी गई। इसका कुछ रंग आतेही उसने रामदयाल से कहा—'तुम भी थोड़ा ले लो और मेरे साथ खाने बैठ जाओ।'

थोड़ी ही देर में दोनों एक बोतल पी गये, और भोजन करते-करते मस्त होकर झूमने लगे। भोजन की समाप्ति के बाद दयामयी हिलती-डोलती अपनी शय्या पर जा पड़ी और रामदयाल को पाँव दबाने के लिए बुलाया। एक तो पहले से ही विकार मय हृदय, उसपर मदिरा का नशा और अन्त में हृष्ट-पुष्ट पुरुष का स्पर्श—इन तीनों वस्तुओं

के एकत्र मिल जाने से कामातुरा स्त्री अपने मन को कैसे रोक सकती है।

दयामयी का रामदयाल के साथ हैदराबाद-जेल में भेंट हुई थी। वह जेल का वार्डर था। जेलर ने इसे महात्मा और दयामयी की सेवा के लिये आज्ञा दे रखी थी। दयामयी के छूटने के तीन-चार दिन बाद रामदयाल भी दंड की अवधि बीत जाने से मुक्त कर दिया गया। दयामयी ने उसे अपने मंदिर में आश्रय दिया। वह तीस-पैंतीस वर्ष का था। रूपवान्, देखने लायक और मजबूत शरीर का मर्द था। दयामयी को महात्मा की अनुपस्थिति में एक पुरुष की आवश्यकता थी, और भाग्य से यह उसे मिल भी गया। वह मंदिर में नौकर की तरह कामकाज करने लगा। वह निपुण पाकशास्त्री था। सब प्रकार के खाद्यपदार्थ अत्यन्त स्वादिष्ट बनाता था। इससे दयामयी का वह अधिक प्रिय बन गया।

प्रभात में दयामयी जगी। उसने रामदयाल को जगाया और स्वयं स्नान आदि करके देव-पूजा कार्य में प्रवृत्त हुई। महात्मा को मरे आज दूसरा दिन था। इससे वह कथा कहने के लिये तीसरे पहर के समय जा बैठी। स्त्रियों की टोली आती थी। परन्तु अस्वस्थ प्रकृति और शोकातिशय का

कारण बताकर वह किसीसे नहीं मिलती थी। दोपहर को खानपान से निवृत्त होकर उसने रामदयाल से उसके जेल जाने का कारण पूछा। रामदयाल ने अपने कारावास का वृत्तान्त कह सुनाया कि किस प्रकार वह एक अरब व्यापारी की स्त्री से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध रखता था और किस प्रकार उसके पति ने इस भेद को जानकर उसे चोरी और विश्वास-घात में आठ वर्ष की सजा दिलाई थी।

रामदयाल का वृत्तान्त सुनकर दयामयी ने उसकी प्रशंसा करते हुये कहा—'रामदयाल! तुम्हारा सौन्दर्य और तुम्हारे शरीर की बनावट इतनी अधिक आकर्षक और मनमोहक है कि कोई स्त्री भी तुम्हें अपना प्रेम देने को तैयार हो जायगी। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।'

यह सुनकर रामदयाल ने कुछ शर्माकर अपना सिर नीचा कर लिया। उसे इस प्रकार शर्माता हुआ देखकर दयामयी पुनः प्रेमभाव दिखलाती हुई कहने लगी—'रामदयाल! जो होना था, वह हो गया। यह संसार का साधारण व्यवहार है। इसमें शर्माने और सकुचने की कोई बात नहीं है। पर, अब मुझे एक बात खुलासा कर लेना है। वह यह है कि अब तक हमारा तुम्हारा सम्बन्ध प्रेम का नहीं

था; किन्तु मदिरा के मद से था। यह प्रेम-संबंध दृढ नहीं कहा जा सकता। बताओ, इस सम्बन्ध को सदा के लिए दृढ़ रखने की तुम्हारी इच्छा है या नहीं। यहाँ तुम्हें किसी वस्तु की कमी न होगी। खान-पान ऐश-आराम की कमी नहीं है। इसके साथ शर्त इतनी ही है कि हमें अपने सुख-मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिये दो कार्य करने आवश्यक हैं और उन कामों में मैं जो सहायता माँगू वह तुम्हे देना होगा। यदि हमारी यह माँग स्वीकार हो तो यह दयामयी और यह सब संपत्ति तुम्हारी है, और यदि तुम्हारा हृदय इस बात को न स्वीकार करे तो तुम्हें जितने रुपए की जरुरत हो लेकर चले जाओ, तुम्हारे सामने दोनों बातें हैं। मैं तुमसे किसी प्रकार का आग्रह नहीं करती।'

रामदयाल पहले ही से पाप-पंक मे डूब चुका था। कनक और कान्ता का लोभ उससे छोड़ा नहीं गया। उसने तुरत निश्चय करके कहा—'श्रीमती! मैं आपकी इस कृपा और प्रेम-दृष्टि के लिए जितना अधिक आभार मानूँ वह तुच्छ है। जेल से छूटते ही इस प्रकार अचानक मेरा भाग्य चमक उठेगा और लक्ष्मीदेवी मुझ पर प्रसन्न होंगी—इसका मुझे स्वप्न मे भी अनुमान नहीं था। आपका

आश्रय पाकर मैं अपने को महाभाग्यशाली मानता हूँ। आप जो काम करने को कहें यह दास तैयार है।'

'तुम्हारी बातों में मुझे पूरा विश्वास है। पर, हमें जो दोनों काम करने हैं वे बहुत भयंकर हैं। यह बात तुम्हें भलीभाँति याद रखनी चाहिये। ठीक समय पर यदि तुम्हारा मन भयभीत हो जाय तो मेरा किया कराया सब श्रम रद्द हो जायगा।' दयामयी ने कहा।

'अधिक विचार करने से मनुष्य का मन भ्रमिष्ट हो जाता है। इससे विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो आज्ञा देनी हो उसे कह दो; रामदयाल अपने वचन को कहाँ तक पालन कर सकता है वह भी देख लो; अधिक बोलने की अपेक्षा कार्य करना ही उसकी दृढ़ता का परिचायक है।'

दयामयी समझ गई कि शिकार बराबर जाल में फँस गया है। इससे पुलकित वदन होकर उसने कहा—'रामदयाल! हमें जो दो कार्य करने हैं उनमें एक यमदूत का है और दूसरा कार्य ईश्वर का है।'

'यमदूत का कार्य या परमेश्वर का कार्य क्या है? तुम्हारे इस कथन का भावार्थ मैं नहीं समझ सकता। जरा स्पष्ट कहो।'

'किसी भी प्राणी का प्राण हर लेना यह कार्य यमदूत का है, और किसी मृत प्राणी के प्राण को सजीव करना, यह शक्ति परमेश्वर के सिवा किसी दूसरे में नहीं है।' दयामयी ने कहा।

'यह सिद्धान्त सब लोग जानते हैं। इसमें नवीनता क्या है?'

'नवीनता यह है कि ये दोनों कार्य हम लोगों को करने हैं। निर्भय होने के लिये हमें एक प्राणी को मारना है। और परोपकार के लिये हमें एक मत व्यक्ति को जीवित करना है। इस कार्य में मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। बताओ, यह कार्य तुमसे हो सकेगा?'

'किसी को मार डालना तो सहज में हो सकता है। पर मृतक को सजीव करने की शक्ति मुझमें नहीं है।'

'यह शक्ति मुझमें है। मैं जैसे कहूँ वैसे तुम्हें करना होगा। मुझे जो करना होगा, वह मैं स्वयं कर लूँगी।'

'जिसे मृत्यु-मुख में भेजना है वह कौन है? और जिसे जीवदान देना है; वह कौन है?'

'अभी सब भेद मैं खोल नहीं सकती। केवल इतना कह देना चाहती हूँ कि यह कार्य आज रात्रि के अंधकार

में कर डालना है। कारण यह है कि यदि आज की रात योंही बीत जाय, तो कल हमारे इस प्रयोग के सफल होने की आशा नहीं है। इसलिये आज रात के ग्यारह बजे काला वस्त्र पहन कर मेरे साथ, मैं जहाँ ले चलूँ वहाँ चलने को तैयार रहना; सबके सो जाने पर पिछले दरवाजे से हम लोग निकल चलेंगे। दूसरा कार्य दो दिन के बाद होगा इसमें कोई हरकत न होगी।'

'यह दास आपकी आज्ञा के आधीन है।'

दयामयी ने शिकार हाथ से निकल न जाय इसलिये विषय-बंधन में पुनः एकबार मजबूत बाँधने के लिये कहा—'रामदयाल! तुम्हारी स्वीकृति से मेरा हृदय छलक रहा है और अबतक जिस कार्य को मैं बहुत बड़ा समझती थी वह अब सरल और सुगम हो गया है। अब इस काम को करने की मेरी इच्छा प्रबल होगई है। तुम्हारी सहायता की मुझे जरूरत थी और भगवान ने वह तुमसे स्वीकार करा दिया।'

दयामयी की बातों ने जादू की तरह असर किया। रामदयाल उन्मत्त हो गया, और रात के आने के लिये आतुरता से बाट देखने लगा। स्त्रियों के सौन्दर्य और

मधुर वचन का कितना अलौकिक प्रभाव होता है। वनिता के जाल में न फँस जाय ऐसा विरक्त और भाग्यशाली पुरुष तो कोई विरला ही होगा।

३५

यशोदा और आलमचंद अपनी पुत्री का वियोग न सह सकने के कारण पुनः वृन्दा के घर में आकर रहने लगे। वृन्दा, रोहिणी एवं मोहनलाल के सहवास में उनका समय बहुत आनंद से बीतने लगा। उनको भी महात्मा के बैकुंठ-वास का समाचार मिला। आलमचंद ने कहा—'महात्मा के इस अचानक मरण-समाचार को सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य होता है। जब वह कोर्ट में लाया गया था तब हृष्ट-पुष्ट और नीरोग था। इस प्रकार यकायक उसका प्राण किस प्रकार निकल गया?'

'मानव-जीवन क्षणभंगुर है। कितने ही मनुष्य इस संसार में अनित्य सुख के लिए नाना प्रकार के पाप करते हैं। पर, अन्त में उनको यही परिणाम भोगना पड़ता है।' यशोदा ने कहा।

'महात्मा ने पाप से इतना धन संचित किया; पर अन्त में सब कुछ यहीं रह गया। साथ मे न तो दयामयी

ही गई और न यह संचित संपत्ति ही गई। कोई भी न गया।' मोहनलाल ने कहा।

'पर, मुझे इसमें संशय है कि महात्मा ने अपनी स्वाभाविक मृत्यु से इस संसार को छोड़ा है। संभव है, भावी-संकट से मुक्त होने के लिए उसने आत्महत्या कर ली हो।' वृन्दा ने कहा।

'मेरे मन में भी यह शंका उठा करती है। हमारा अनुमान परस्पर मिलता है।' आनंदानंद ने कहा।

'मान लो कि मृत महात्मा फिर सजीव हो जाय और कहीं भाग जाय तो उससे भी कोई हानि नहीं है। अब वह जीता रहकर भी ब्रिटिश राज्य में कुछ कर नहीं सकता। जब तक जीता रहेगा इधर-उधर घूमता फिरेगा। उसका जीना मृत्यु के ही समान है। उसका वैकुंठवास हो गया और मजिस्ट्रेट के कोर्ट में पूरा सबूत दाखिल है। इससे अपनी संपत्ति अवश्य मिलेगी। चिन्ता करने का कोई कारण नहीं हैं।' आलमचंद ने कहा।

'दयामयी छूट गई थी। महात्मा जेल में था। इससे दयामयी का अकेले ही कपट-प्रयोग कर लेना असम्भव मालूम पड़ता है।' मोहनलाल ने कहा।

'दयामयी छूटने पर महात्मा से मिलने के लिए नित्य जेल जाती थी, और स्वतंत्रता से उन्हें बातचीत करने का जेल में प्रबन्ध था। इससे दयामयी को प्रयोग के लिए प्रसंग मिला था अवश्य। संभव है, उसने इसका प्रयोग न किया हो और यह घटना स्वाभाविक रूप से परिणत हुई हो।' सीता ने कहा।

'यदि सीता की शंका सत्य हो और महात्मा को कानून के चंगुल से दयामयी स्वतंत्र कर दे और सबकी आँखों में धूल डालकर अपने कपट-जाल में सफल हो जाय तब बड़ा अनुचित होगा। अपने लोगों का सारा श्रम व्यर्थ हो जायगा।' वृन्दा ने कहा।

'पर उपाय क्या किया जाय?' आलमचन्द ने पूछा।

'खोफिया पुलिस के अफसर को यह सूचित कर दिया जाय कि हमारे मन में इस प्रकार का संशय है। जिलाने के लिए महात्मा को खड्डे से निकालना पड़ेगा। इसलिये यदि उस खड्डे के आसपास छिपे रूप से सख्त निगरानी रखी जाय तो वह तुरत पकड़ा जा सकता है।' वृन्दा ने कहा।

'मेरे मन में भी यही विचार उठ रहा है कि महात्मा के मरण में कोई भेद समाया है। संभव है, यह सब भी

कपट-नाटक हो। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है।' सीता ने कहा।

'महात्मा की मृत्यु जेल में हुई है और डाक्टरों से भलीभाँति परीक्षा किये जाने पर उसका भूमिदाह किया गया है। इसमें कपट-नाटक का प्रयोग संभव नहीं प्रतीत होता। क्या तुम्हारे कहने का यह तात्पर्य है कि महात्मा मर कर पुनः जीवित हो सकता है?' आलमचंद ने कहा।

'मर करके भी महात्मा जीवित हो सकता है। यह संभव है।' सीता ने कहा।

'ऐसा?' वृन्दा ने पूछा।

'ऐसा इसलिए संभव है कि शाक्तसदन में दयामयी के पास ऐसी कितनी ही औषधियाँ दिखाई पड़ती थीं; जो बड़े-बड़े चतुर डाक्टरों के भी छक्के छुड़ा देवें। उस औषधि में एक सीमा तक मद रहता है और उस अवधि की समाप्ति होने के पूर्व एक दूसरी औषधि के प्रयोग से वह मनुष्य पुनः चैतन्यावस्था में आ सकता है। यदि वह अवधि बीत जाय तो उसका मरण हो जाता है। दयामयी भावी संकट से महात्मा को बचाने के लिए यदि इस कपट का प्रयोग किये हो तो क्या आश्चर्य है? मैं निश्चयपूर्वक कुछ

कह नहीं सकती। पर, यह मेरे मन में एक शंका है।' सीता ने कहा।

यह सुनकर सब लोग स्तब्ध रह गये। वृन्दा ने कहा—'यह शंका विचार करने योग्य है। इस संसार में न हो सके, ऐसी कोई वस्तु नहीं है। ऐसी औषधियों के विषय में मैंने भी कभी-कभी सुना है। इसीसे इस शंका को मानने के लिए मेरा मन विवश हो रहा है।'

'इसमें कोई हानि नही है। तुम्हारी शंका ठीक होने पर सरकार की ओर से अपने लोगों को धन्यवाद मिलेगा। चैतन्य रहना अपना धर्म है।' आनंदानंद ने कहा।

'खोफिया पुलिस को खबर देने कौन जायगा?' वृन्दा ने पूछा।

'कहो तो यह काम मैं कर आऊँ।' मोहनलाल ने कहा।

'तुम्हारे सिवा यह कार्य दूसरे से ठीक होगा भी नहीं।' वृन्दा ने कहा।

'अच्छा, तो ऐसे कार्य में विलम्ब करना ठीक नहीं है। कारण—इस विलक्षण औषधि के प्रयोग किये जानेपर चौबीस या अधिक-से-अधिक अड़तालिस घंटे के भीतर यदि वह मनुष्य सजीव न किया जाय तो वास्तव में उसका

मरण हो जाता है। संभव है, आज रात को ही यह पाप का घड़ा फूटने वाला हो।' सीता ने कहा।

'मोहनलाल! तुम अभी चले जाओ।' वृन्दाने कहा।

'मैं चला।' कहकर मोहनलाल तुरत ही कपड़ा बदल कर खोफिया पुलिस के अफसर के पास जाने को रवाना हुआ।

* * *

चाय पीने का समय हो गया था। वृन्दा ने रोहिणी से कहा—'बेटी! जा; आज तेरे ही हाथ की चाय पीने की इच्छा है।'

रोहिणी के जाने के पश्चात् वृन्दा ने आलमचन्द और यशोदा से कहा—'रोहिणी अब विवाह योग्य हो गई है। जब यह अनाथाश्रम में थी, तभीसे इसका और मोहनलाल का परस्पर प्रेम हो गया था। यह बात मैंने तुम लोगों से पहले भी कही थी। रोहिणी की जाति और माता-पिता का पता नहीं था। इससे विवाह में कुछ शंका थी। मोहनलाल के पिता और अन्य सम्बन्धियों की अनुमति मिल गई है। इससे मेरा विचार है कि जहाँ तक हो शीघ्र ही रोहिणी का विवाह कर डालें। अब इसे अधिक दिनों तक संसार-सुख से वंचित रखना और बलात् संयम एवं इन्द्रिय-निग्रह कराना

उचित नहीं जान पड़ता। भगवान ने सब साधन अनुकूल कर दिये हैं और वर भी सद्‌गुणी, सुन्दर, विद्वान और तरुण है। अतः बिना कारण इस शुभ कार्य में विलंब क्यों करें? मुझे तो भगवान ने सन्तान-सुख दिया ही नहीं। अब रोहिणी की सन्तान से अपनी लालसा पूरी करने के लिए मैं आतुर हूँ। आशा है, तुम लोग मेरे इस प्रस्ताव से अपनी सहमति प्रकट करोगे।'

'बहन! रोहिणी को हमने केवल जन्म दिया था। पालपोषकर तुमने उसे इतनी बड़ी और योग्य बनाया है। उसकी सच्ची माता तुम्ही हो। हमें इसमें हाँ या ना करने का कोई अधिकार नहीं है। तुम जो चाहो सो करो, हमें सब स्वीकार है।' यशोदा ने कहा।

'दीवान साहब! तुम्हारा क्या अभिप्राय है। पिता की सम्मति सबसे पहले आवश्यक है।' वृन्दा ने कहा।

'स्त्रियों का काम स्त्रियाँ जानें। मेरे कहने का क्या काम है। तुम दोनों बहनों की इच्छा के प्रतिकूल हमें कुछ नहीं कहना है। मोहनलाल की योग्यता के विषय में कोई प्रश्न नहीं है। जमाई योग्य है।' आलमचन्द ने कहा।

'दीवान साहब! दूसरी बात इसके संबंध में मुझे यह

कहनी है कि इस विवाह में जो कुछ खर्च होगा वह हमारे कोष से होगा। तुम्हें एक पाई भी खर्च न करने दूँगी। इसके पश्चात कन्या और जमाई को जो तुम्हें देना हो सो दे देना; क्योंकि तुमने स्वयं यह बात स्वीकार कर ली है कि रोहिणी की वास्तविक माता मैं हूँ।' वृन्दा ने कहा।

'इसमें हमें उज्र है। तुम जबरदस्ती हाँ कराओ तो बात दूसरी है। पर, तुम्हारा यह कहना उचित नहीं है। क्या तुम अपना और मेरा रुपया अलग मानती हो? जो इस समय अपनी इच्छानुसार खर्च करने का प्रसंग योहीं छोड़ दूँ तो फिर यह अवसर मुझे कब मिल सकता है? दूसरी लड़की या लड़का तो कोई है ही नहीं। अबतक तुमने रोहिणी के लिए सहस्रों रुपये खर्च करके अपनी साध मिटा ली है। अब हमारी लालसा को पूर्ण करने की आज्ञा हमें मिलनी चाहिये। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।' आलमचन्द ने कहा।

'यदि तुम लोगों का मन इससे दुखता है तो वैसा ही करो। परन्तु विवाहोत्सव मेरे घर में ही हो; इतनी कृपा तो अवश्य करना।' वृन्दा ने कहा।

'बहुत अच्छा; यदि इससे तुम्हारे मन को संतोष मिले तो ऐसा ही किया जायगा।' आलमचंद ने कहा।

इतने ही में रोहिणी चाय लेकर आई। चाय कभी की तैयार हो गई थी और रोहिणी दो बार उस कमरे के दरवाजे तक आई थी। पर, अपने विवाह की चर्चा सुनकर वह लौट गई थी। मोहनलाल के साथ अपने विवाह के निश्चय को जानकर उसके मुख-मण्डल पर एक मन्द मुसकान हास्य कर रहा था। अपने मन के अनुकूल पुरुष की प्राप्ति का निश्चय हो जाने पर भला किस युवती की छाती आनंद और हर्ष से नहीं उभर जाती! यह नैसर्गिक है।

चाय पीते-पीते वृन्दा ने रोहिणी की प्रशंसा करते हुए कहा—'हमारी रोहिणी जिस तरह विद्या आदि में निपुण है, उसी तरह पाक-विद्या मे भी प्रवीण है। पुत्री के योग्य अपने कर्तव्य का पालन करती है। हमें चाहिये कि इसे किसी उत्तम पदवी से भूषित करें।'

'तुम्हे कौन-सी पदवी उचित जान पड़ती है?' यशोदा ने पूछा।

'जिसके बिना योग्य पुरुष भी प्रतिष्ठा हीन हो जाता है और अनेक साधन और संपत्ति-युक्त गृह भी अरण्य बन जाता है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाली गृहिणी की पदवी रोहिणी के योग्य है और यही

पदवी इसे देनी चाहिये।' वृन्दा ने विवाह-संबंध का संकेत किया। इतने ही में मोहनलाल आया। उसे देखकर वृन्दा ने पूछा—'क्यों, सब व्यवस्था कर आये?'

'खोफिया के अफसर अपने किसी मित्र के यहाँ भोज में गये थे। इससे उनके साथ मुलाकात न हो सकी। जो कुछ कहना था सब एक पत्र पर लिखकर उनकी मेज पर रख आया हूँ और उनकी पत्नी से भी सब कह आया हूँ।' मोहनलाल ने कहा।

मोहनलाल चाय पीने लगा। रोहिणी सदा ऐसे अवसर पर मोहनलाल के समक्ष बैठने में आनंद मानती थी। पर, आज वह तुरत विजली की चमक की तरह अदृश्य हो गई। चाय पी लेने के बाद मोहनलाल ने आनंदानंद को संकेत से बाहर बुलाकर धीमे स्वर से कुछ कहा। वृन्दा और सीता की आज्ञा लेकर आनंदानंद ने हैदराबाद का मार्ग लिया।

३६

मध्य निशा बीत चुकी थी। नगर में सर्वत्र शांति और निःशब्दता व्याप्त हो गई थी। नगर के बाहर कुलेली-तट प्रदेश के सर्वथा जन-शून्य और उजाड़ भाग में भयंकर

निस्तब्धता और शांति का पूर्ण प्रसार स्वाभाविक था। महात्मा के शव का जिस उद्यान में भूमिदाह हुआ था वह भूमि-भाग उद्यान के नाम कहे जाने पर भी अरण्य के समान था। केवल इतना था कि नगर के समीप था। उसमें एक रखवाला रहता था। पर, जहाँ महात्मा की समाधि दी गई थी उस स्थान से रखवाले की झोपड़ी बहुत दूर थी। रात्रि में इस ओर ध्यान से सुनने पर भी कुछ सुनाई पड़ना असंभव था। रात्रि के समय में बहुधा कोई भी इसके आस-पास आने का साहस नहीं करता था। निशा कृष्ण पक्ष की थी। आकाश में तारे चमकते थे। जंगली कीटों के स्वर के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार भी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी। ऐसे भयंकर समय में इस भयानक स्थान में दो कृष्ण वस्त्रधारी व्यक्ति उस उद्यान में प्रवेश किये। उनके वस्त्र काले होने के कारण घने अंधकार के साथ उनकी एकता हो गई थी। अतः अंधकार के गर्भ में प्रवेश करते हुए उन्हें कोई देख नहीं सकता था। दोनों व्यक्ति महात्मा की समाधि स्थान पर आकर रुक गये। उनमे से एक व्यक्ति ने कहा—'यही वह स्थान है।'

'मैं अपना काम आरंभ करूँ?' दूसरे ने पूछा।

'जरा ठहरो, आस-पास में जाँच-भाल कर लो।' प्रथम व्यक्ति ने कहा।

'तुम अकारण घबड़ाती हो। इतनी बड़ी रात को ऐसे भयानक स्थल में हिंसक पशु भी आने का साहस नहीं कर सकते। भला, कोई मनुष्य कैसे आ सकता है? अब विलम्ब करना अनुचित है।' दूसरे ने कहा।

'संभव है, हमें आते देख कर कोई पीछे-पीछे आया हो। हम लोगों के दुश्मन अधिक हैं?' प्रथम व्यक्ति ने कहा।

'अजी, देखा किसी ने नहीं है। बिना कारण विलंब हो रहा है और समय बीता जा रहा है।' यह कह कर दूसरे आदमी ने आसपास तलाश किया। पर, कोई दिखाई न पड़ा। उसने अपने कार्य को आरंभ किया। वह कुदाली से महात्मा की समाधि खोदने लगा। लगभग तीन हाथ भूमि खोदने पर कुदाली संदूक पर आ अटकी और आवाज हुई। प्रथम व्यक्ति ने कहा—'बस, अब धीरे-धीरे संदूक पर की मिट्टी को हटाकर संदूक खोल दो।'

थोड़ी ही देर में संदूक को खोल कर दोनों व्यक्तियों ने महात्मा के शव को बाहर निकाला। प्रथम व्यक्ति ने अपने वस्त्रों से औषधि निकाल कर महात्मा के कपाल पर

मल दिया और एक दूसरी औषधि की कुछ बूंदें उसके मुँह में डाल दी। लगभग बीस मिनट के पीछे निर्जीव शरीर में चैतन्यता का चिन्ह दिखाई पड़ने लगा। आधे घंटे के बाद मृत महात्मा ने आँखें खोल कर पूछा—'मैं कहाँ हूँ ? यह इतना अंधकार क्यों दिखाई पड़ता है ? मुझे किसने जीवित किया ?'

'धीमे स्वर से बोलो। जोर से न चिल्लाओ। मैंने अपने वचन का पालन किया है और तुम्हारा प्राण तुम्हारे शरीर में डाल दिया है। पहने हुए वस्त्र को उतार दो और इन वस्त्रों को पहन लो। यह बनावटी बाल की टोपी तथा दाढ़ी वगैरः धारण कर लो जिससे तुम्हें कोई पहचान न सके।' प्रथम व्यक्ति ने कहा।

कुछ देर तक महात्मा वहाँ पड़ा रहा। औषधि की पुनः मालिश की गई। एक तीसरी शीशी में से प्रथम व्यक्ति ने नई औषधि उसे पिलाई। कुछ देर के पश्चात् महात्मा चैतन्य हो गया।

'दयामयी ! अन्त में तुमने मेरी खोज ली। पर, इस प्रकार वेश बदल कर मैं कहाँ जाऊँ ? अँग्रेज सरकार की सत्ता सब जगह है। मैं पकड़ा जाऊँगा।' महात्मा ने पूछा।

'तुम पागल हो गये हो। मेरे साहस के साथ अपनी तुलना करो और जरा शर्म करो। सुनो, तुम संसार की दृष्टि में मर गये हो। अब तुमपर वारंट निकल नहीं सकता। इस वेश में तुम्हें कोई पहचान भी नहीं सकता। इससे अब तुम्हारा पकड़ा जाना कैसे सम्भव हो सकता है ? यहाँ से तुम एक बार अपने शाक्तधर्म के प्रमुख स्थान में पहुँच जाओ तो फिर यह बात खुल जाने पर भी तुम्हें कोई पकड़ नहीं सकता। तुम सीधे वहीं चले जाओ और यह पत्र जो मैं लिख लाई हूँ मेरे पास भेज देना। इससे मैं जान जाऊँगी कि तुम सकुशल वहाँ पहुँच गये। तुम्हारे खर्च के लिये दो सौ रुपये लाई हूँ। कुछ दिनों बाद तुम्हारी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी।' यह कहकर पुरुषवेश-धारिणी दयामयी ने रुपये और पत्र महात्मा को दे दिये। अधिक सवाल-जवाब न करके महात्मा ने वस्त्र को पहन लिया और नकली दाढ़ी और टोपी भी लगा ली।

महात्मा और दयामयी में यह संवाद और कार्यक्रम जिस समय चल रहा था उस समय समाधि का खोदनेवाला श्रम से थककर विश्रान्ति ले रहा था। रामदयाल ने दयामयी से कहा—'कार्य समाप्त हुआ या नहीं ?'

'अब केवल एक काम करना और बाकी है। वह जब हो जाय तो चलने में कोई विलंब नहीं है।' दयामयी ने मंद-स्वर से उत्तर दिया।

'वह कौन काम है? उसमें मेरी जरूरत है?' रामदयाल ने पूछा।

'तुम्हारी जरूरत न पड़े, यह कैसे हो सकता है?' दयामयी ने भौंहें वक्र करके कहा।

दयामयी ने महात्मा के कान में कहा—'यह मनुष्य जिसे मैं अपनी सहायता के लिये लाई हूँ, कदाचित् हम लोगों के भय का कारण हो सकता है। यह सब भेदों को जान गया है। यदि कभी यह मुझसे असन्तुष्ट हो जाय और सारा भेद खोल दे तो तुम्हें हथकड़ी पड़ने के पहले मेरे गले में फाँसी पड़ जायगी। यह निश्चित है। इससे इस भय का निवारण कर डालना चाहिये।'

'यह किस प्रकार किया जाय? यहाँ कौन-सा साधन है?' महात्मा ने पूछा।

'साधन को मैं अपने साथ लेती आई हूँ। जिस औषधि ने तुम्हें शव के रूप मे परिवर्तित कर दिया था; उसीको मैं अब इसके ऊपर प्रयोग करूँगी और वह अधिक

परिमाण में दी जाने पर प्राणहारक हो जायगी। निश्चेष्ट हो जाने पर तुम्हारी समाधि में इसे सुलाकर ऊपर से मिट्टी डालकर हम चले चलेंगे। तब हमें संसार में किसी प्रकार का भय नहीं रह जायगा।' दयामयी ने कहा।

'क्या इसकी हत्या करनी है?' महात्मा ने पूछा।

'तुम्हारे बचाने के लिए इसका प्राण लेना ही पड़ेगा। नर-हत्या की वृत्ति तुम्हारे लिये नई नही है। जैसे सड़सठ वैसे अड़सठ।' दयामयी ने कहा।

दयामयी अन्य कितनी ही सूचनायें महात्मा को देकर रामदयाल के पास आई और बोली—'क्यों तुम इस प्रकार हाथ-पैर बटोर कर चुपचाप क्यों बैठे हो?'

'क्या करूँ नाचूँ? मैं अधिक थक गया हूँ।' रामदयाल ने बैठे-बैठे आजिज आकर कहा।

'तुम्हारी थकावट उतारने का साधन मेरे पास तैयार है। काहे घबड़ाते हो।' यह कहकर दयामयी ने एक छोटी-सी शीशी निकाल कर उसे देते हुए कहा—'घर से चलते समय मुझे यह सूझ पड़ा कि कदाचित यह प्रसंग आ जाय, इससे थोड़ी मदिरा साथ में लेती आई हूँ। लेलो; इसमें आधा हिस्सा तुम पी लो और आधा हमारे लिए रहने दो।'

दयामयी के भेदों को जानकर—यह एक भयंकर स्त्री है और इसमें अधिक विश्वास नहीं रखना चाहिये—ऐसा विचार रामदयाल के मन मे आया जरूर; पर प्रसंग को देख और उसके सहवास से भोग-विलास के आनंद का स्मरण कर उसने इस शंका को दूर कर दिया। जरा भी आनाकानी किये बिना उसने अंधकार में दिखाई न पड़ने के कारण आधी मदिरा पीने की अपेक्षा सबका सब पी लिया।

काल जिस पर आने को होता है वह डंका बजा-कर नहीं आता। गुप्तरीति से धीरे-धीरे आता है। जिसका मरण होने को होता है काल उसे अपने आने की जरा भी सूचना नहीं देता। यही उसका धर्म है। दयामयी ने आरम्भ में रामदयाल को बतला दिया था कि एक को मारना और दूसरे को सजीव करना है। परन्तु विकार के उन्माद में उसने उस गूढ़ रहस्य को नहीं समझा था और अन्धे की तरह मृत्यु-जाल में फँस गया। उस शीशी के जलीयद्रव्य के उदर में पहुँचने पर बड़ा आघात लगा और वह पलमात्र में प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा। चिल्लाने का भी उसे अवसर न मिला।

दयामयी ने जो उसकी नाड़ी देखी तो उसकी गति लुप्त

हो गई थी और शरीर की शीतलता आदि मरण के अन्य चिह्न भी दिखाई पड़े। दयामयी ने महात्मा से कहा—'आओ, हाथ लगाओ। इस अभागे के शव को तुम्हारे स्थान पर डाल देवें।'

दोनों ने मिलकर रामदयाल के खोदे हुए खड्डे में रामदयाल के शव को डाल दिया। महात्मा के जो वस्त्र थे उन्हें भी उसी में छोड़कर उसके ऊपर से मिट्टी डाल दी। इस कार्य की समाप्ति होने पर दयामयी और महात्मा वहाँ से चल पड़े। दयामयी ने कुदाली को अपने हाथ में ले लिया।

वहाँ से चलते समय महात्मा ने कहा—'दयामयी! दैत्यगुरु शुक्राचार्य की संजीवनी-विद्या के चमत्कार का वर्णन पुराणों में पढ़ा और सुना है। पर तुम्हारी मृत-संजीवनी का मैंने प्रत्यक्ष परिचय और प्रमाण देखा है। इससे तुम्हें शुक्राचार्य का अवतार कहा जाय तो कोई बुरा नहीं है। पर तुम यहाँ से शीघ्र आना; किसी के मोह में न फँस जाना; तुम्हारे बिना मुझे वहाँ चैन न पड़ेगा और जीवन भाररूप हो जायगा।'

'मैं थोड़े ही दिनों में वहाँ आ जाऊँगी। चिंता न करो। यहाँ से सीधे स्टेशन पर चले जाओ। वहाँ रानी

की बाग में साधुओं के पास बैठे रहना। फर्स्ट क्लास का टिकट लेकर सुबह पाँच बजे की गाड़ी से चले जाना।'

दोनों उद्यान के बाहर निकले और बिना कुछ बोले-चाले कुलेली के पुल के पास आये। दयामयी ने जलप्रवाह में कुदाली को फेंक दिया। मार्केट के पास से दयामयी अपने मंदिर की ओर चली गई और महात्मा ने स्टेशन का रास्ता लिया। इस समय दोनों पापी निकल गये और संसार इनसे अज्ञात रह गया।

* * *

मोहनलाल पत्र लिखकर खोफिया पुलिस को अपनी शंका बता आया था। पर तब भी एक हत्या हो गई। महात्मा स्वतन्त्र निकल गया और दयामयी आकर आराम से सेज पर सो गई। वह खोफिया पुलिस का अफ़सर एक ऐसी पार्टी में गया था कि जहाँ से रात को वह तीन बजे घर आया। मदिरा में मस्त होने के कारण उससे पत्र पढ़ने का कष्ट न उठाया गया। पुलिस के इस प्रमाद से दयामयी और महात्मा का पाप कार्य निष्कंटक हो गया। मोहनलाल ने आनन्दानन्द को इस कार्य की शोध में भेजा था। पर उसने भी मन्दिर में आकर देखा तो रात के बारह बजे तक

दयामयी कथा बाँचती हुई बैठी थी। बारह के बाद श्रोता-गए मन्दिर के बाहर निकले और मन्दिर के सब द्वार बन्द हो गए। दो-अढ़ाई बजे तक आसपास घूमकर जब दयामयी के हिलने-डुलने का कुछ पता नहीं मिला तब वह इस शंका को निर्मूल समझकर गिदूबन्दर की ओर चला गया। जिस गुप्तद्वार से दयामयी अपने साथी को लेकर निकल गई थी उससे चन्द्रशंकर अनभिज्ञ था। इस कारण उसे उसके जाने का कुछ पता न मिल सका।

दयामयी अगले दिन की निर्भयता के लिए एक दूसरी ही व्यवस्था कर लिए थी। दूसरे दिन उत्तम मुहूर्त है; अतः समाधि का कार्य आरम्भ करना चाहिये—यह उसने अपने भक्तजनों से कह रखा था। सूर्योदय होते ही सब सामग्री वहाँ प्रस्तुत कर दी गई थी। दयामयी अरुणोदय होते ही गाड़ी में बैठकर वहाँ गई। विधिपूर्वक समाधि की नींव पड़ी और चबूतरे का कार्य आरंभ हो गया।

प्रभात में नौ बजे खुफिया पुलिस के अफसर ने चाय पीते-पीते मोहनलाल का पत्र पढ़ा। और दस बजे बागीचे में जा छिपकर तलाश किया। उस समय समाधि का चौथाई भाग बन चुका था और सन्ध्या तक उसके पूरी बन

जाने की सम्भावना थी। अतः बहुत तलाश करना व्यर्थ समझकर वह वापस चला गया।

३७

आनंदानंद जिस समय शाक्तसदन में था उसी समय सीता के हृदय-मंदिर में उसके प्रति प्रेम का अंकुर उदित हुआ था। इसके पश्चात् वृन्दा के घर में आकर रहने और वहाँ उसका सतत समागम होने से इस स्नेह का अंकुर वृक्ष का स्वरूप धारण कर लिये था। सीता का चंद्रशंकर विषयक प्रेम दिन-दिन अधिक बढ़ने लगा। स्त्री में पुरुष की अपेक्षा लज्जा का भाव स्वभाविक रूप से अधिक होता है। इससे सीता अपने मुँह से इस प्रेम को प्रकट कर विवाह के लिए याचना नहीं कर सकती थी। अतः उसकी मनोवेदना क्रमशः बढ़ती ही गई।

संध्याकाल आ रहा था। घर में रोहिणी के विवाह की तैयारी की धूमधाम चल रही थी और जाति-बिरादरी के स्त्रियों की टोलियाँ आती जाती थीं। इससे वृन्दा और रोहिणी को निराले में बैठकर सीता के साथ चार बातें करने का अवसर भाग्य से मिलता था। अपने मन की अशांति के कारण सृष्टि सौन्दर्य का अवलोकन कर मनोरंजन के लिए

सीता हवेली की एक छत पर बैठ गई। और स्वगत कहने लगी—'मैं अपनी वेदना किससे कहूँ ? एक अतिथि की तरह मैं श्रीमती वृन्दा के घर में कितने दिन काटूँगी। रोहिणी का विवाह हो जाने के बाद अधिक दिन यहाँ रहना उचित न होगा। भाररूप होने के पूर्व प्रतिष्ठा पूर्वक यहाँ से चले जाना शोभास्पद है। चंद्रशंकर की दशा भी मेरी ही तरह है। वह भी इस प्रकार कितने दिनों तक रह सकते हैं। एक बात है। वह पुरुष हैं। जहाँ चाहें उद्योग कर अपना निर्वाह कर सकते हैं। पर मैं क्या करूँ ? मुझसे कौन सा व्यवसाय हो सकता है ? मेरे पास धन है; तब भी उससे क्या होता है ? पति बिना स्त्री का जीवन व्यर्थ है। यदि चंद्रशंकर मुझे पत्नी रूप में स्वीकार कर लें और गृहस्थ जीवन को व्यवथा करें; तो कुछ भावी-सुख की आशा की जा सकती है। पर लज्जा को त्यागकर इस प्रकार की याचना के लिए मुख कैसे खुलेगा ? हाय ! मेरे भाग्य में सुख लिखा ही नही है।'

शोक के आवेश में यह अन्तिम वाक्य उसके मुख से निकल पड़ा। इसी समय चंद्रशंकर कहीं से छतपर चढ़ आया। यह अन्तिम वाक्य उसने अच्छी तरह से सुन

लिया था। इससे आते ही उसने सीता से पूछा—'सीता ! अकेली तुम यहाँ किस विचार में डूबी हो ? और दुःख से भरे इस उद्गार के निकालने का क्या कारण है ? मुझपर तुम्हारे अनेक उपकार हैं। इससे यदि तुम अपने हृदय की मनोवेदना कह दो तो उसे टालने के लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँ।'

ये शब्द सीताके दग्ध हृदय को अमृत सिंचन की तरह प्रतीत हुए। कुछ देर तक वह बिना कुछ बोले-चाले एकाग्र-दृष्टि से उसके मुँह को देखती रही और पुनः कुछ विचार कर बोली—'चन्द्रशंकर ! तुम वास्तव में मुझे अपना उपकारिणी मानते हो या यह कोई कहने का औपचारिक ढंग है। यदि तुम्हारी भावना सत्य है तो अपने किए हुए उपकार के बदले में मैं जो माँगू तुम्हें देना चाहिये। तुम स्वयं सुज्ञ हो; अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।'

'मुझसे जो दिया जा सके; वह कोई भी वस्तु मैं देने को तैयार हूँ। मेरी कृतज्ञता के विषय में तुम्हें लेशमात्र भी संशय न करना चाहिये।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'तुम्हारी इस कृतज्ञता के लिए मैं बहुत आभार मानती हूँ। मैंने शाक्तसदन का त्याग किसी भावी आशा पर ही किया था। और वह आशा यह थी कि मेरे पतित

जीवन का विनाश हो जाय और मुझे ऐसा प्रसंग मिले कि मैं अपने को एक आदर्श अबला की तरह सिद्ध कर दिखाऊँ।' सीता ने कहा।

'तुम्हारा आशय स्तुत्य है।' चन्द्रशंकर ने कहा।

'मेरे इस आशय के पूर्ण होने में कुछ अनुकूल साधनों की आवश्यकता है। यदि वे साधन न मिलें तो मेरा यह आशय कभी सिद्ध नहीं हो सकता। यह साधन किस प्रकार मिलेगा इसी विचार में मैं डूबी हुई थी।'

'वे कौन से साधन हैं?' चन्द्रशंकर ने पूछा।

कहूँ या न कहूँ—इस प्रकार सीता के मनमें विचार-युद्ध होने लगा। पर यह लजाने का समय नहीं है—यह निश्चय कर वह बोली—'मैं बलात्कार से भ्रष्टता पर बलिदान की गई एक पतित अबला हूँ। मेरे हृदय की पवित्रता का तुम्हें पर्याप्त परिचय मिल चुका है। मुझमें जैसा ही दूषण है वैसा ही भूषण भी है। मेरे दूषण को भूलकर और मेरे गुणों को प्राधान्य देकर तुम मेरी सेवाओं को स्वीकार करो और अपनी पत्नी का पद मुझे देने की कृपा करो। मेरी उच्च-भावना को सिद्ध करने के लिए यह गृहिणी पद ही सर्वश्रेष्ठ साधन है।' सीता ने कहा।

चन्द्रशंकर के मन में भी सीता के प्रति प्रेम का अंकुर पैदा हुआ था। सीता की इस बात से उसके हृदय में प्रेम का प्रवाह बहने लगा। अनुराग के आवेश में वह बोल उठा—'सीता! तुमने संसार की लीला देखी है। तुम्हारा हृदय शुद्ध है। तुम्हें अपनी गृहिणी बनाने से अवश्य ही मेरी संसार-यात्रा सुखदायक होगी। हम दोनों के जीवन का कल्याण होगा। तुमको पत्नी की तरह स्वीकार करने में मुझे किसी प्रकार की अस्वीकृति नहीं हो सकती। मैं इन सब बातों को श्रीमती वृन्दा से कहकर उनकी अनुमति लूँगा। मैं योग्यतापूर्वक अपना गृह-संसार चला सकता हूँ। इतनी शक्ति भगवान ने मुझे दी है।'

रात में भोजन के पश्चात् चन्द्रशंकर ने श्रीमती वृन्दा के प्राइवेट कमरे मे भेंट करके संध्या समय की सीता के साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञा का सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर प्रसन्नता प्रकट करती हुई वृन्दा ने कहा—'चन्द्रशंकर भाई! एक अनाथ और पतित अबला को पत्नी-रूप में स्वीकार कर तुमने सत्य ही अपनी अलौकिक उदारता और परोपकार बुद्धि का परिचय दिया है। इसके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। मैं जानती हूँ कि रोहिणी

शाक्तसदन-जैसे नरक में पवित्र और जीती हुई जो मुझे मिली ; वह केवल सीता का ही प्रताप है। इसका बदला मैं इस जन्म में नहीं दे सकती। परन्तु मैं तुम दोनों की यथाशक्ति सहायता करने को उद्यत हूँ।'

'आप कृपा कर सीता को यहीं बुलाकर उसका विचार भी जान लें; तो बड़ी कृपा हो।' चन्द्रशंकर ने कहा।

वृन्दा ने दासी को भेजकर सीता को बुलवाया। वह आई ; पर चन्द्रशंकर को देख लज्जा से एक कोने में चुप-चाप खड़ी हो गई।

वृन्दा ने कहा—'बहन! शरमाने की कोई बात नहीं है। चन्द्रशंकर भाई ने सब बातें मुझसे कह दिया है। इससे मैं कह सकती हूँ कि तुम जो सत्कार्य करना चाहती हो वह उचित है। आर्यस्त्रियों में ऐसी आकांक्षा का होना योग्य है। जब तुम दोनों इस कार्य में सहमत हो तो अब विलम्ब किस लिये किया जाय। रोहिणी का विवाह होनेवाला है। इससे तुम्हारा विवाह भी साथ ही कर दिया जाय तो अच्छा होगा।'

'उस प्रकार की धूमधाम से विवाह होना मुझे स्वीकार नहीं है।' सीता ने कहा।

'यह कहो कि तुम्हारा सिविल मैरिज करने का विचार है।' वृन्दा ने कहा।

'हाँ, ऐसा करने से किसी जाति-बंधन का आना संभव नहीं हो सकता।' सीता ने कहा।

'ऐसा विवाह तो कल एक दिन में हो सकता है। मोहनलाल से कह एक वकील बुलाकर मै सब प्रबंध कर देती हूँ। सीता, तुम्हारा पति एक साधु है। अतः वह बराबर गृह-संसार निबाह सकेगा या नहीं; इसके लिए तुम जरा भी चिंता न करना। मैं तुम्हारे नाम दस हजार रुपए बैंक में जमा कर देती हूँ और चंद्रशंकर को अपनी जमींदारी का एक सहायक व्यवस्थापक बना सौ रुपए मासिक दूँगी।' वृन्दा ने कहा।

'माता के समान आपके इस उपदेश का आभार हम जितना ही मानें उतना ही थोड़ा है। परन्तु श्रीमती, आप जो उदारता बतला रहीं हैं वह आपके परोपकारी स्वभाव की शोभा के उपयुक्त है। परन्तु इस प्रकार का कष्ट आपको देने का मेरा मनोभाव नहीं है। शाक्तसदन से मैं इतना धन ले आई हूँ कि यदि वह उचित ढंग से व्यय किया जाय तो दो-चार पीढी तक मजे में चल सकता है।

आप केवल उसे सुरक्षित रखने की व्यवस्था कर दें। आपकी मुझपर जो पूर्ण कृपा और छाया है वही पर्याप्त है।' सीता ने कहा।

'सीता, तुम्हारे पास भले ही करोड़ों की सम्पत्ति हो, उन सबकी व्यवस्था कर दी जायगी। पर मैं तुम्हारी माता के समान हूँ। मेरी इतनी भेंट तुम्हें स्वीकार करनी ही पड़ेगी। यदि तुम मेरी इच्छा का अनादर करोगी तो मेरा मन दुखेगा।' वृन्दा ने कहा।

'आपके वचन का निरादर करने का मेरा अभिप्राय नहीं है। आपका आग्रह है तो मुझे यह अस्वीकार नहीं है। मैं इस रकम को किसी शुभ कार्य में लगाऊँगी।' सीता ने कहा।

'अखंड सौभाग्यवती होओ।' वृन्दा ने आशीर्वाद देकर दोनों प्रेमियों को विदा किया।

वृन्दा ने अपने कथनानुसार मोहनलाल से कह-कर दूसरे ही दिन ग्यारह बजे उनके विवाह की तैयारी कर दी। ब्राह्मण बुलाकर साधारण धर्मविधि से विवाह करा दिया। बाद एक अच्छे वकील के साथ उन्हें रजिष्ट्रार के पास भेजा। नियम के अनुसार विवाह रजिष्ट्री हो गया। प्रकृति की कैसी अद्भुत लीला है! जिस बात की स्वप्न

में भी कल्पना नहीं थी वह विवाह रोहिणी के लग्न के पहले ही केवल एक दिन में हो गया। आज तक सीता स्त्री-मंडल में रहती थी और रात को रोहिणी के कमरे में सोती थी। पर आज नूतन विवाहित दम्पति के शयन के लिए संसार व्यवहार-दक्षा वृन्दा ने एक अलग कमरा ठीक करा दिया था। आज वास्तवमें सीताका नारी जन्म सार्थक हुआ।

* * *

आनन्द का दिन बीतते विलम्ब नहीं लगता। इससे देखते-देखते रोहिणी का पाणिग्रहण भी आज आ पहुँचा। गिदूबन्दर में आज कितने ही दिनों से धूमधाम चल रही थी। प्रभात में दीनजनों को मिष्ठान्न भोजन दिया जाता था और फिर उनको वस्त्रादि देकर बिदा किया जाता था। दीनजनों के आशीर्वाद की ध्वनि चारों ओर सुनाई पड़ती थी। अतिथि स्त्री-पुरुषों की भी गणना आज नहीं की जा सकती थी। कहीं भिखारी लोग यशगान करते थे; कहीं पर ब्राह्मण वेद-मंत्रों को ललकार रहे थे। इस प्रकार सर्वत्र आनन्द की बहार बिखर रही थी।

ठीक चार बजे हैदराबाद से वरराज मोहनलाल की सवारी आने को थी। कन्या-पक्ष के कुछ लोग आगे बढ़

कर गये और वरराज को गाजे-बाजे के साथ विवाह-मंडप में ले आए। मोहनलाल विवाह के वस्त्र पहनकर एक उत्तम घोड़े पर सवार था। और उसके साथ अन्य लोग गाड़ी में आये थे। वरराज के मण्डप में प्रवेश करते ही ब्राह्मणों के आशीर्वाद और स्त्रियों के मंगल-गीत से उसका स्वागत किया गया।

वर के आगमन होते ही उत्तम वस्त्रालंकार से सुसज्जित रोहिणी भी मण्डप में लाई गई। वर-कन्या दोनों समीप ही अलग-अलग चौकी पर बैठाए गये। ब्राह्मणों ने यज्ञ की अग्नि को प्रज्ज्वलित किया और मन्त्र उच्चारण भी आरम्भ हुआ। विधि समाप्त होने पर मोहनलाल और रोहिणी को आर्य-धर्मशास्त्र के नियम के अनुसार पति-पत्नी के रूप में घोषित किया गया। रोहिणी के पिता आलमचन्द ने मोहनलाल से कहा—'प्रिय जामाता! आज तक रोहिणी हमारी थी। पर आज से इस पर तुम्हारा सब प्रकार का अधिकार हो गया है। अब मेरा केवल नाम मात्र का सम्बन्ध रह गया है। मेरी यह पुत्री हमें पुत्र से भी अधिक प्रिय है। इससे मेरी प्रार्थना है कि इसके साथ प्रेम एवं दया से वर्ताव करना।'

दूसरी ओर वृन्दा भी रोहिणी को यह उपदेश दे रही थी—'प्रियपुत्री ! आज स्त्री-जाति का भूषण पत्नी का पद तुझे प्राप्त हो गया है और ईश्वर की कृपा से तुझे पति भी सद्गुणी और स्नेही मिला है। ऐसा पति किसी भाग्य-शालिनी स्त्री ही को मिल सकता है। अब हमारे प्रति से स्नेह कम कर सब प्रेम अपने स्वामी को समर्पित करना। उसकी आज्ञा के आधीन रहना; दृढ़ता से पतिव्रत का पालन करना और गृह में सास-ससुर आप्तगोत्र, और सेवक जनों से प्रेम से मिलना; यही तुम्हारे जीवन का सर्वोत्तम कर्तव्य है।'

यशोदा का कार्य वृन्दा के कर देने से यशोदा ने केवल इतना ही आशीर्वाद दिया—'पुत्री ! तुम्हारी संसारयात्रा सुखदायक हो; तुम्हारा सुहाग अखण्ड रहे और तेरे गृह में सुख-संपत्ति तथा सन्तति आदि की निरंतर वृद्धि होती रहे; यही इस दीन माता का अंतःकरण-पूर्वक आशीर्वाद है।' इतना कहते ही उसके नेत्रों से हर्ष के आँसू वहने लगे।

सिंध में वहुधा पुत्र और पुत्री वयस्क होने पर विवाह-वन्धन में आवद्ध होते हैं। अतः विवाह कर उसी दिन वर

अपनी वधू को अपने घर ले जाता है। नियम के अनुसार रोहिणी आज विदा होनेवाली थी। वियोग के समय आलमचन्द, वृन्दा और यशोदा के नेत्रों से पानी की धारा प्रवाहित होने लगी। यद्यपि रोहिणी फिर अपने पति के साथ वहीं आकर बसनेवाली थी पर तब भी जनक, जननी और पालक माता को उसका अल्प-वियोग भी असह्य हो गया। वास्तव में वात्सल्य और संसार की माया व ममता इसी को कहते हैं।

वर अपनी नवोढ़ा वधू को लेकर हैदराबाद गया। वृन्दा को अपना गृह शून्य दिखाई पड़ता था; इससे उसने दो-चार दिन के बाद मोहन तथा रोहिणी को अपने यहाँ बुलवा लिया।

रोहिणी और मोहनलाल का विधि-पूर्वक शरीर-सम्बन्ध—विवाह हो गया। अतः यहीं पर अपने उपन्यास की कथा समाप्त हुई समझनी चाहिये। पर विवश होकर हमसे ऐसा नहीं किया जाता। अभी हमें दयामयी के एक विशेष कृति का निरीक्षण करना है। हम अपने पाठकों को एक दूर प्रदेश में मानसिक यात्रा करके उसे अवलोकन करने का आग्रह करते हैं।

३८

गत प्रकरण में वर्णन की हुई घटना को हुए लगभग तीन-चार महीने हो गए थे। महात्मा के मरने का शोक भक्त भक्तिनियों के मन से धीरे-धीरे भूल गया था और नवविवाहित दम्पति अपने समय को आनन्द से बिता रहे थे। इतने ही में दयामयी ने एक दिन अपना विचार भक्त-भक्तिनियों पर प्रकट करते हुए कहा—'भक्तजनों! मुझे एक-दो दिन में मथुरा एवं वृन्दावन की यात्रा के लिए जाना है। कारण यह कि स्वर्गीय महात्मा गोपालदास के पुण्य के निमित्त वहाँ की पुण्यभूमि मे दान-धर्म करना और पिंडदान आदि देना बहुत आवश्यक है। अपने धर्मशास्त्र की आज्ञा और वैष्णव-धर्म की रूढ़ि के अनुसार यह क्रिया अवश्य करनी पड़ती है। इससे मेरी प्रार्थना है कि आपसे जो वन पड़े उतने द्रव्य की सहायता करें और मृत महात्मा के प्रति अपने पूज्य भाव को प्रत्यक्ष कृति से व्यक्त कर दिखावें। आप भक्त लोग जानते हैं कि महात्मा जी स्वयं बहुत उदार थे। मंदिर में जो कुछ आता था वह श्रीराधाकृष्ण के उत्सव में और दानधर्म में व्यय कर देते थे। इससे मन्दिर के धन-भंडार में अधिक रकम नहीं रह गई है। भाग्य से दो हजार रुपए निकल

सकते हैं। और ऐसे महात्मा की उत्तर-क्रिया वहाँ करने में कम-से-कम दस हजार रुपए लगेंगे। यदि महात्मा की योग्यता के अनुसार वहाँ पर उत्तर क्रिया नहीं होगी तो इससे उनके भावुक शिष्यों की अपकीर्ति होगी। अपने गुरु के नाम को उद्दीप्त करना शिष्यजनों का कर्तव्य है। हम साधु हैं। हमारे साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आप लोग इतनी व्यवस्था कर दें तो शारीरिक परिश्रम मैं कर लूँगी।'

थोड़ी देर तक भक्तमंडल में निस्तब्धता छा गई। पश्चात् वे लोग आपस में धीरे-धीरे कुछ गुपचुप बात करने लगे। अन्त में उनके एक अग्रसर ने उठ कर कहना शुरू कर दिया—'बन्धुओ! श्रीमती का कथन अक्षर-अक्षर सत्य है। मथुरा-वृन्दावन में बड़ी धूमधाम से महात्माजी की उत्तरक्रिया होनी चाहिये। दस हजार रुपए की रकम इकट्ठा करना और वह भी ऐसे शुभ और धार्मिक कार्य के लिये कोई बड़ी रकम नहीं है जो हम लोगों से न हो सके। मैं एक हजार की रकम देता हूँ।'

भक्तों में अब लाग-डाँट लग गई। तुरंत कोई हजार, कोई पाँच सौ, कोई दो सौ, और कोई सौ—इस प्रकार

झटपट लोगों ने देने के लिये अपना नाम लिखाया। छ-सात विधवाओं ने दो-दो हजार की रकम देनी स्वीकार की। इस तरह देखते-देखते दस के बदले बीस हजार की रकम इकट्ठी होने की बात तय पा गई और उस रुपए को दूसरे दिन देने का निश्चय हुआ।

दयामयी भक्तों को उनकी एकनिष्ट भक्ति के लिये कोटिश धन्यवाद देकर उसी दिन यात्रा की तैयारी करने लगी। रात्रि में उसने मूर्ति में से सब संपत्ति निकाल ली। और दूसरा भी जो कुछ था उसे झाड़-बटोर कर इकट्ठा कर लिया। केवल दो दिन तक मन्दिर के खर्च के लिये जरूरी रुपया रख दिया। इसके पश्चात् उसने- अपने एक शिष्य को बुलाया और कहा—'इस मंदिर को व्यवस्था ठीक-ठीक चलाना। मैं शीघ्र ही आऊँगी। इतना ध्यान में रखना कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों से और सो भी विधवाओं का अधिक सत्कार करते रहना; और उनकी कोई भी इच्छा तृप्त करने में जरा भी बिलम्ब नहीं करना; अधिक धन-प्राप्ति का मार्ग स्त्रियाँ ही हैं। यदि ये स्त्रियाँ न होंय तो इस मन्दिर का द्वार तुरत खुला दिखाई पड़ने लगे। इससे इनका अनादर कभी न करना।'

'देवी ! आपका यह शिष्य इस आज्ञा का यथोचित पालन करके वैकुण्ठवासी महात्मा तथा आप श्रीमती का नाम अवश्य फैलावेगा ।'

दूसरे दिन सवेरे आठ बजते ही बीस हजार रुपये का करेंसी नोट दयामयी के हाथ में आ गया । और उसी दिन रातको बारह बजे की पंजाब मेल से जाने का उसने संदेश सबको कहला दिया । दयामयी ने अपने साथ ले जाने के लिये बहुत थोड़ा सामान बाँधकर तैयार किया था और जो सन्दूक भरी हुई थी उसमें अधिक भाग जेवरात और दूसरी मूल्यवान वस्तुओं का था । रात के नौ बजते ही भक्तलोग गाड़ी के साथ आकर मंदिर के दरवाजे पर उपस्थित हो गये । दयामयी ने लगभग एक घण्टे तक उनको कथामृत का पान कराया और साढ़े दस बजे वहाँ से चलने की तैयारी होने लगी । दयामयी भक्तलोगों के समुदाय के साथ स्टेशन पर आई । ऐसा दिखाई पड़ता था मानों किसी राजा की रानी की विदाई हो रही है । भक्त-पुरुषों और स्त्रियों की दौड़-धूप वहाँ विचित्र दिखाई पड़ती थी । भक्तजनों के साथ बात-चीत करने और उनको मंदिर की पूरी देख-भाल रखने की सूचना देने में दयामयी

को लगभग घण्टे-सवा घण्टे लग गये। इतने ही में ट्रेन आ गई। इससे दयामयी अपने दो नौकरों के साथ एक रिजर्व कम्पार्टमेंट में बैठ गई। सब सामान वहाँ रख दिया गया। और भक्तजनों के हर्ष-ध्वनि के साथ गाड़ी सीटी देकर खुल गई। नौकरों को सावधान रहने की सूचना देकर श्रीमती दयामयी फर्स्ट क्लास की गद्देवाली नरम सीट पर रेशम का गद्दा बिछवा उसे अधिक मुलायम कर सो गई। देखने में वह सोई हुई प्रतीत होती थी पर उसकी आँखों में धन की चिंता थी। इससे उसे गाढ़ी नींद न आसकी।

दूसरे दिन सन्ध्या को साढ़े चार बजे ट्रेन समासरा नामक स्टेशन पर आई। यहाँ दयामयी ने हैदराबाद में अमुक कार्य करने के बहाने नौकरों को पीछे वापस कर दिया और स्वयं मथुरा न जाकर सहारनपुर से दूसरा टिकट कटा कलकत्ता की ओर रवाने हुई।

ज्यों-ज्यों कलकत्ता नगर समीप आता जाता था त्यों-त्यों प्रवासिनी दयामयी के मन में एक विशिष्ठ चिंता बढ़ती जाती थी। हैदराबाद के मंदिर में से वह जो इतनी बड़ी सम्पत्ति साथ लिए थी उसे किस रीति सँभाले और इस समय कहाँ पर रखे एवं भविष्य में उसका क्या

उपयोग करे—आदि चिंताओं से उस महत्त्वाकांक्षिणी और साहसी स्त्री का हृदय जर्जर हो रहा था। सोचते-सोचते वह परिश्रांत हो गई। उसने कहा—'हे देवि चंडिके! अब तू सहाय कर। मैं तुमको मनुष्य का रुधिर पिलाकर सन्तुष्ट करूँगी। इस चिंता से मुक्त होने का मुझे कोई सरल मार्ग बतला दे।'

बहुत देर तक इस तरह चिंता में डूबी रहने के बाद अचानक उसे एक उपाय सूझ पड़ा। और उसके अनुसार व्यवस्था निश्चय करके वह स्वस्थ होकर बैठ गई। पटना से कलकत्ता के परिचित यूरोपियन होटल के मैनेजर के पास उसने एक तार दिया कि फर्स्टक्लास का एक कमरा उसके रहने के लिए रिजर्व रखा जाय। ट्रेन हवड़ा स्टेशन पर आ पहुँची। वहाँ उसे होटल की गाड़ी तैयार मिली। उसमें बैठकर दयामयी होटल में गई। उसकी आज्ञा के अनुसार एक सुन्दर सजा हुआ कमरा तैयार रखा था।

होटल में उसने तीन दिन बिताया। उस अवधि में उसने रात में बैठकर जितने कीमती जवाहिरात आदि सन्दूक में थे उनको निकालकर तोशक और तकिये में भर दिया और इस ढंग से सी दिया कि कोई भी देखकर

मालूम न कर सके। पश्चात् सब सामान को होटल के नौकर के हाथ खूब मजबूत बँधवाकर गट्ठर बना लिया। चौथे दिन होटल के मैनेजर को बुलाकर उसने कहा—

'महाशय! मैं आठ दिन के लिए आसाम की यात्रा करना चाहती हूँ। तब तक आप मेरा यह सब सामान अपने संरक्षण में रखे रहें तो बहुत उपकार हो। यह कमरा जब तक मैं न आऊँ तब तक मेरे ही नाम पर रहेगा। इसका सब भाड़ा वगैरः मैं अभी भुगतान कर देती हूँ। केवल आप हमारे सामान की रसीद लिख देवें। वहाँ से लौट आने पर पन्द्रह-बीस दिन कलकत्ते में रहने का मेरा विचार है। और चूँकि इस होटल का प्रबन्ध बहुत अच्छा है इसलिए मैं कहीं अन्यत्र न जाकर यहीं पर आकर ठहरूँगी।'

'श्रीमती! आपकी आज्ञानुसार कार्य करने में मुझे कोई बाधा नहीं है। आप प्रसन्नता से आसाम हो आवें। सामान की कुछ चिन्ता न करें। जब आपको वापस आना हो उस समय तार भेज दीजियेगा, जिससे आपको ले आने के लिये गाड़ी वगैरः भेजी जा सके।' मैनेजर ने मानपूर्वक जवाब दिया।

दयामयी होटल के पन्द्रह दिन का भाड़ा और चार दिन के खाने-पीने का हिसाव चुकता कर और सामान की रसीद लेकर अपने कमरे की ताली और केवल एक हैण्ड-वेग और थोड़ा विछावन वगैरः साथ में ले आसाम के प्रवास के लिये बाहर निकली। होटल की गाड़ी तैयार थी। उसमें वैठकर नदी के किनारे आ पहुँची। आसाम की यात्रा स्टीमर से करनी पड़ती है। दयामयी चार दिन जल-यात्रा करने के वाद आसाम के किनारे पर पहुँची। नदी के उभय तट पर विस्तृत अलौकिक सृष्टि सौन्दर्य को अवलोकन करने में चार दिन कहाँ और किस प्रकार वीत गये; यह उसे कुछ जान ही न पड़ा।

यहाँ हम वतला देना चाहते हैं कि जिस देश को काम-रूप कहा जाता है। और जिस देश की जादूगर स्त्रियों के विषय में अनेक प्रकार की अद्‌भुत कथाएँ प्रचलित हैं वह यही आसाम है। वहाँ की स्त्रियों के विषय में जो सुना जाता है उसमें सत्य का अंश कितना है; यह तो भगवान जानें; परन्तु इतनी वात अवश्य सत्य है कि वहाँ की स्त्रियाँ आर्यावर्त के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा विशेष विषय-लंपट और कामातुरा होती हैं। इन वातों का अनेक लोगों को साक्षात् परिचय

मिल चुका है। इस देश के लोगों का स्वभाव—अभि-रुचि देवीपंथ और शाक्तधर्म के तत्वों के स्वाभाविक अनुकूल होता है।

कामरूप देश अथवा आसाम में कामाक्षा देवी का मन्दिर सब वाममार्गियों का प्रधान तीर्थ माना जाता है। और समस्त शाक्तमण्डल पर इसका मुख्य अधिकार रहता है। दयामयी इस वरिष्ट शाक्तसदन में जाने के लिये आई थी। यहाँ उसके आने का यह उद्देश्य था कि महात्मा गोपालदास दयामयी के प्रताप से पुनरुज्जीवन पाकर यहीं शाक्तसदन में आकर रहता था। और अपनी एक विशिष्ट आकांक्षा को पूरा करने के लिये महात्मा से मिलने के निमित्त दयामयी ने इस प्रवास का कठिन श्रम उठाया था।

संसार के किसी भी भाग में भारी-अपराध करके कोई भी शाक्त कुशलपूर्वक आसाम के इस वरिष्ट शाक्त-सदन मे स्वतंत्रतापूर्वक रह सकता है। उसे किसी प्रकार भी अपने पकड़े जाने की आशंका नहीं रहती। वहाँ आने पर अपराधी शाक्त गुप्त स्थानों में निर्भर रह सकता है। महात्मा भी अपराधी शाक्तों के आश्रयस्थल इस शाक्त-सदन में आ पहुँचा था। वह सर्वथा निर्भय था। वहाँ

अपने गुप्त निवास स्थान में बैठा हुआ वह दयामयी के आगमन का काक-दृष्टि से मार्ग देख रहा था। दयामयी भी उससे मिलने के लिए अत्यन्त चिन्तित थी।

सूर्य के उदय हुए लगभग एक पहर हो गया था। इस समय लगभग नौ बजे थे। महात्मा अपने कमरे में एक स्त्री के साथ बैठा हुआ बातें कर रहा था। इस शाक्तसदन में एक अधेड़ उम्र की स्त्री थी। और यहाँ आने के बाद महात्मा बहुधा इसी की कृपा से अपना समय आनन्द से बिताता था। वह इस स्त्री के समागम में इतना अधिक लीन हो गया था कि दयामयी की उसे स्वप्न में भी याद न आती थी। दयामयी के आगमन की जो वह मार्ग-प्रतीक्षा कर रहा था उसमें उसका एक दूसरा ही उद्देश्य समाया हुआ था। उस स्त्री का नाम चपला था। चपला की प्रत्येक कृति चपला की तरह थी। उसने महात्मा से कहा—'जब से मैं आई हूँ तब से मेरी यह इच्छा हुआ करती है कि यहाँ से किसी दूसरे स्थान में जाकर स्वतन्त्रता से अपना जीवन आनंद से बिताऊँ। यहाँ बन्धन में रहकर सब धर्मगुरुओं की विषयेच्छा के आधीन होना मुझे अब जरा भी अच्छा नहीं लगता।'

'चपला ! यह मैं तुमको पहले ही बतला चुका हूँ कि मेरे पास अपार सम्पत्ति है। पर मुझपर ऐसी विकट परिस्थिति आ पड़ी कि वह सम्पत्ति इस समय मेरी पूर्व अर्धाङ्गी दयामयी के हाथ में जा पड़ी है। वह सम्पत्ति लेकर यहीं आनेवाली है। इससे जब वह आ जाती है तब उसे सदा के लिये सुलाकर अपने लोग कहीं दूसरे देश में चले जायँ और उस संपत्ति की सहायता से यथेष्ट मौज उड़ावें। यही कारण है कि मैं दयामयी के आने की बाट जोहता हूँ। उसका माथा फट गया है। अब वह मेरे काम की नहीं है।' महात्मा ने अपना आंतरिक भाव प्रकट किया।

'पर उस रॉड को सदा की निद्रा में कहाँ और किस रीति से सुलाना होगा ?' चपला ने चपलता से प्रश्न किया।

'यदि यहीं हो सकेगा तो यहीं; अन्यथा कहीं मार्ग में।' महात्मा ने कहा।'

'भगवान करें वह दिन शीघ्र आवे।' चपला ने कहा।

इसी समय एक नौकर ने आकर कहा—'महात्मा श्री ! हैदराबाद से श्रीमती दयामयी देवी आई हैं और वे यहीं आने की आज्ञा माँगती हैं।'

'जा, उसे शीघ्र ले आ—अरे नहीं—मैं ही उसको लाने

के लिये चलता हूँ। उसके सत्कार के लिये मुझे स्वयं जाना चाहिये।' यह कह चपला को वहाँ से चले जाने का संकेत करके महात्मा दयामयी को लेने के लिए अपने आसन पर से उठा। चपला गुप्त द्वार से मन्दिर के दूसरे भाग में चली गई। महात्मा ज्योंही दरवाजे से कमरे के बाहर निकला त्योंही दयामयी उसको खड़ी दिखाई पड़ी। उसे द्वार पर खड़ी देखकर उसके मन में संशय हुआ कि कही चपला के साथ हमारी बात को इसने सुन तो नही लिया है। परंतु दया-मयी आनन्ददर्शक और हँसित मुद्रा से महात्मा से ज्योंही मिली त्योंही उसके मन से यह संशय निकल गया। आदर-पूर्वक वह दयामयी को अपने कमरे में ले गया और कुशल प्रश्न के बाद पूछा—'क्यों दयामयी ! अपनी सब सम्पत्ति को सम्भाल कर लेती आई हो न ? इतना परिश्रम और प्रपञ्च करके धन-भण्डार को भूलनेवाली जैसी गाफिल तो तुम नहीं हो। इसका मुझे पूरा विश्वास है। वह सब धन-भण्डार कहाँ है ?'

'सब धन-भण्डार कलकत्ते में एक सुरक्षित स्थान में जिसे कोई न जान सके; गुप्त रखआई हूँ। कारण यह कि यहाँ लाने से कदाचित प्रधान धर्माध्यक्ष उसको हड़प कर

जाँय इसका मुझे भय था। यदि तुम्हारी इच्छा हो; तो यहीं लाऊँगी; नहीं तो हमलोग जहाँ कहीं नवीन स्थान में निवास करेंगे वही इस सम्पत्ति का उपयोग किया जायगा।' यह कहकर दयामयी ने होटल में सब सम्पत्ति किस प्रकार रख आई थी आदि सब वृत्तान्त सुना दिया और होटल के नाम की रसीद भी महात्मा को देखने के लिये दे दी जिसे महात्मा ने अपने जेब में रख लिया।

कुछ देर चुप रहने के बाद महात्मा ने हँसकर दयामयी से कहा—'दो-तीन दिन के बाद कलकत्ता की ओर जाना पड़ेगा। यह शाक्तसदन भी देखने लायक है। इससे दो-तीन दिन के भीतर दर्शनीय स्थानों को देख लेना।'

'यहाँ मनुष्य बलिदान कहाँ होता है?' दयामयी ने पूछा।

'वह स्थान आज रात को मैं दिखाऊँगा; पर वहाँ की भयंकरता से भयभीत न होना। महा भयङ्कर है।' महात्मा ने कहा।

'चिन्ता नहीं; अपना निज का भी क्या कम भयङ्कर था?' दयामयी ने मार्मिकता से कहा।

इसके पीछे वरिष्ट धर्माध्यक्ष के साथ मुलाकात कर भोजन आदि कार्यों से निवृत्त हो मध्याह्न मे नींद का सुख लेकर दयामयी ने अपने यात्रा-श्रम को मिटाया।

दयामयी जिस समय नींद में पड़ी हुई थी उस समय महात्मा ने चपला के पास जाकर सूचना दी—'संपत्ति अपने हाथ में आ चुकी है। कलकत्ता में यह रसीद दिखाने पर वह अपने को मिल जायगी। आज मध्यरात्रि में मैं दयामयी को जहाँ मनुष्य का बलिदान होता है ले जाने-वाला हूँ। इससे तू भी वहाँ आना और उस राँड का काम तमाम कर डालना।'

दयामयी ने संध्याकाल में शाक्तसदन के महान् धर्मा-ध्यक्ष से खानगी में मुलाकात करके यह सूचना दी—'आज मध्यरात्रि होने के पूर्व आप मानव-बलिदानवाले स्थान में दो शस्त्रधारी अङ्गरक्षकों के साथ छिपकर खड़े रहें; महात्मा गोपालदास के साथ मैं वहाँ आनेवाली हूँ। वहाँ पर आपको नवीन बातें दिखाई पड़ेंगी। फिर जैसा न्याय हो; उसे करने का आपको पूर्ण अधिकार है।'

'पर वह नवीन बात क्या है ?' धर्माध्यक्ष ने पूछा।

'इस समय उसके विषय में मैं कुछ कह नहीं सकती। सब कुछ आपको प्रत्यक्ष देखने में आएगा।' दयामयी ने कहा।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न गुप्त व्यवस्था करके ये सब पात्र अपनी-अपनी आकांक्षा और ईर्ष्या को तृप्त करने के लिए

निश्चित समय की उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगे। उनको क्षणमात्र भी युग के समान भासित होता था।

मध्य-निशा का समय था। समय की सूचना देने के लिये घड़ियाल में बारह का टंकोर सुनाई पड़ा। महात्मा दयामयी को लेकर मानव-बलिदान के स्थान की तरफ़ रवाना हुआ और चलते-चलते वे एक सीढ़ी के पास आये। इस पत्थर की सीढ़ी से उतर कर भूगर्भ मे जाना पड़ता था। दोनों अन्धकार में नीचे उतरे और नीचे की भूमि पर पैर रखते ही महात्मा ने अपने हाथ की मोमबत्ती जला कर उँजेला कर लिया। उसके मन्दप्रकाश मे दयामयी को भूमार्ग में एक विशाल कमरा दिखलाई पड़ा। इसके मध्यभाग में एक छोटा कलशयुक्त मन्दिर बना था।; और उसमे देवी की भयङ्कर स्वरूपा नरमुण्डधारिणी मूर्ति स्थापित थी। इस मन्दिर के सुवर्ण-द्वार के समीप एक कुंड बना था। और किसी बड़े अवसर पर वहाँ मनुष्य का बलिदान किया जाता था। इस स्थल पर कौन जाने कितने निर्दोष मनुष्यों पर शाक्तजनों की तीखी धारवाली तलवार फिरी होगी। और कितना रक्त-प्रवाह हुआ होगा। इसकी कल्पना मात्र भी मस्तिष्क में आनी असम्भव है। ऊपर भी ऐसा

ही दूसरा मंदिर था। उसको खड़ा करने के लिये नीचे के भाग में पत्थर का ऐसा विशाल स्तम्भ खड़ा किया गया था जिसके आड़ में एक ओर दो मनुष्य छिपकर खड़े हों, तो दूसरी ओर का कोई मनुष्य उन्हें देख न सके। उस कुण्ड में जिस अभागे मनुष्य का वलिदान दिया जाता था उसकी अस्थि आदि को भीतर ही भीतर अदृश्य करने के लिए देवी के मन्दिर के पीछे एक ऐसी खाई बनी हुई थी कि जिसका तलप्रदेश दृष्टिगोचर नहीं होता था। महात्मा ने इन सब का वर्णन कर दयामयी को सुनाया।

वर्णन सुन लेने के बाद दयामयी ने पूछा—'यहाँ पर मानव-वलिदान किस प्रसङ्ग पर दिया जाता है?'

'चैत्रमास और आश्विन मास की शुक्लाष्टमी के दिन वर्ष में दो बार मानव-वलिदान खासकर दिया जाता है। और इसके उपरांत जो कोई शाक्तधर्मीय स्त्री-पुरुष शाक्तधर्म के तत्त्वों के विरुद्ध वर्ताव करता है अथवा शाक्तधर्म के रहस्य को प्रकट करता है या अपने धर्मगुरु और धर्मबन्धु के साथ कृतघ्नता करता है उसे यहाँ लाकर उसके रुधिर को देवी को पान कराया जाता है। वर्ष में दस-पाँच ऐसे मानव-वलिदान होते हैं और

इसीसे इस देवी को अन्य प्रतिमा के अनुसार पाषाण की नर-मुण्डमाला नहीं वरन् सचमुच नरमुंडमाला पहनाई जाती है। दूसरी देवियाँ नाम मात्र के लिए नरमुंडमालाधारिणी हैं, पर यह देवी तो प्रत्यक्ष नरमुंडमालाधारिणी हैं। और इसीसे इनका इतना अलौकिक प्रभाव है।' महात्मा ने कहा।

'कृतज्ञ धर्मबंधु के साथ कृतघ्नता करनेवाले पापी-मनुष्य के रक्त को इस साक्षात् नरमुण्डमालाधारिणी देवी को बलिदान देने मे किसी प्रकार का दोष तो नहीं है न ?' दयामयी ने वक्रभृकुटी से पूछा।

'जरा भी नहीं।' महात्मा ने कहा।

'ऐसे पापी को इस देवी को बलिदान देने के लिए किसी भी उपाय से यहाँ लाया जा सकता है, यह सत्य है न ?' दयामयी ने पुनः भेदभरा हुआ प्रश्न किया।

'यह सूर्य के प्रकाश के समान सत्य है।' महात्मा बोला।

'महात्मा, तुम्हारा महाभाग्य है कि यहाँ के वरिष्ट धर्माध्यक्ष और अन्य शाक्त तुम्हारे धर्म विद्रोह और भयङ्कर अपराधों से सर्वथा अज्ञात हैं; नहीं तो यदि वे सब रहस्यों को जानते होते तो तुम्हारे-जैसे बलिदान का पात्र दूसरा कोई भी ऐसा भयंकर अपराधी भाग्य ही से मिल

सकता है। तुम्हारे लिए दया एवं क्षमा की कोई आशा ही नहीं हो सकती।' दयामयी ने साधारण भाव से कहा।

'दयामयी! इन सब घटनाओं का स्फोट इस स्थान पर नहीं हुआ है। इन बातों को इस स्थल पर कहना अति भयंकर है?' महात्मा ने भय दिखाते हुए कहा।

'इस स्थान पर इस समय कोई नहीं है। इससे भय-भीत होने का कोई कारण नहीं है। मेरी तो यह इच्छा है कि इस समय एकांत में अपने पापों को स्वीकार कर देवी से क्षमा माँग लो; इससे नरकवास के अधिकारी होने से बचोगे। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा!' दयामयी ने उप-देश देते हुए कहा!

'मैं फिर कहता हूँ कि इस बात को रहने दो, नहीं तो इसका परिणाम अच्छा न होगा। जो भयंकरता कुछ दिन पीछे होनेवाली है वह अभी हो जायगी।' महात्मा ने कहा।

पर इस बात पर ध्यान न देती हुई दयामयी पुनः कुछ जोर से कहने लगी—'महात्मा! दूसरे पापों की बात जाने दो; तुमने सिंधुदेश में शाक्तधर्म के अधिकारी बनने पर आसाम के श्रेष्ठ धर्माध्यक्ष के प्रतिनिधि को जो विष-प्रयोग करके मार डाला है उस पाप की क्षमा तुम्हें इस आसाम-

वासिनी नरमुण्डमालाधारिणी देवी के पास अवश्य माँगनी चाहिये। इस पाप को क्षमा करने के लिए अन्य स्थान की किसी देवी को कुछ भी अधिकार नहीं है। इससे अधिक भयंकर द्रोह और क्या हो सकता है?'

'पर इस द्रोह में तो तुमने भी भाग लिया था।' महात्मा ने कहा।

'लिया था अवश्य। पर वह केवल तुम्हारी आज्ञा से। और यदि मैं तुम्हारी आज्ञा के अनुसार वैसा नहीं करती तो तुम कदाचित् मुझे भी उसी मार्ग का पथिक बना देते। यही बड़ा भय था। इस पाप का मैं जरा भी जवाबदेह नहीं हूँ। और इसलिए मुझे क्षमा माँगने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

'ठीक है। इस अपराध के लिए मैं ही देवी से क्षमा माँगता हूँ। मैं हार गया और तुम जीतीं। अब कुछ मत कहना।' महात्मा ने नम्रता से अपना पराजय स्वीकार किया।

'तो अब?' दयामयी ने पूछा।

'अब प्रयाण का समय हो चुका है।' महात्मा ने कहा।

'किसका प्रयाण?' दयामयी ने पूछा।

'दुष्ट और निर्दय दयामयी का नरक प्रयाण।' मंदिर के आंतरिक भाग से यह ध्वनि सुनाई पड़ी।

'यह कौन बोल रहा है।' दयामयी ने आश्चर्य से कहा।

अचानक एक खड्गधारिणी अबला मन्दिर के द्वार पर खड़ी दिखाई पड़ी और उसने महात्मा को आज्ञा दिया—'क्या देख रहे हो; बिना कारण विलम्ब करने में लाभ नहीं है। खींच लाओ इस दुष्टा को कुंड के पास; इसको कत्ल कर दें। यह खड्ग रुधिर पान करने के लिए लालायित है।'

'कौन! चपला है क्या? महात्मा के साथ यहाँ से भाग जाने की इच्छा करनेवाली पापिनी!' दयामयी ने निर्भयता से कहा।

सचमुच में वह चपला ही थी। दयामयी के मुख से इन शब्दों को सुनकर—यह बात इसके जानने में कैसे आई—इस विचार में पड़कर वह जरा रुक गई। इतने ही में दयामयी ने उसके शरीर में धक्का देकर उसे कुंड में डाल दिया और उसके हाथ की तलवार लेकर उसके गले में खोंस दिया। तुरत् ही सूखा कुण्ड चपला के रक्त से भरने लगा। अब दयामयी को जीवित रहने देना भयंकर समझकर महात्मा ने उसके शरीर में धक्का दिया और कुण्ड में ढकेलने ही पर था कि इतने ही में एक गम्भीर ध्वनि उसके कानों

में पड़ी —'ठहर जा।' भौंचक होकर महात्मा इधर-उधर देखने लगा। इतने ही में दो शस्त्रधारी मनुष्य दौड़े हुए आकर उसको बाँध लिये और उनके साथ ही वरिष्ट धर्माध्यक्ष लालपोशाक मे क्रूरमुद्रा से उनके सामने आकर खड़े हो गए। भयंकर रूप से काँपता हुआ महात्मा चुपचाप खड़े रहने में असमर्थ होकर भूमि पर गिर पड़ा।

'चाण्डाल! उठ और अपने धर्मद्रोह तथा अन्य अपराधों का भयंकर दण्ड भोगने के लिये तैयार हो जा। यह भी तेरा महाभाग्य है कि देवी के उदर मे तुझ पापी का शरीर सार्थक होता है।' रक्तवस्त्रधारी वरिष्ट धर्माध्यक्ष ने महात्मा पर लात प्रहार करके कोप दर्शक स्वर से कहा। मोमबत्ती के मन्द प्रकाश मे जिस प्रकार उनका लाल वस्त्र चमक रहा था उसी प्रकार उनके नेत्रों से क्रोध की रक्तशिखाएँ भी निकलती हुई दिखाई पड़ती थीं।

'हाय! अन्त में मेरे अकाल मरण का समय आ पहुँचा। और वह भी मेरे प्रेम और पाप की भागिनी दयामयी के पास ही!' महात्मा ने दीनता दर्शक वाणी से कहा।

'दयामयी शाक्तधर्म की एकनिष्ठ और अनन्य उपासिका है जिसने तेरे संबंध का विचार न कर धर्म की डर

से तेरे सब पापों को प्रकट कर दिया है और ऐसा करके यह स्वयं पाप के दंड से मुक्त हो गई है। अब यह इस वरिष्ट धर्माध्यक्ष के अङ्क में विराजेगी।' धर्माध्यक्ष ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

'यदि आपके अङ्क में विराजमान् होने का प्रसंग मिले तब मेरी तरह दूसरी भाग्यवती स्त्री कोई भी नहीं हो सकती।' दयामयी ने आनंद प्रकट करते हुए कहा।

'प्रसंग है; पर देवी दयामयी ! यह चपला महात्मा के साथ उसके पाप-कार्य में इतना अधिक भाग लिये थी इसका क्या कारण ? मैं अब तक इसके यथार्थ कारण को जान नहीं सका हूँ।' धर्माध्यक्ष ने पूछा।

'पूज्य महाशय ! मैं भी अधिक कुछ नहीं जानती। केवल आज सवेरे जब मैं यहां आई तब चपला महात्मा के साथ उसके ही कमरे में बात करती हुई बैठी थी। मैं सुनने के लिए बाहर खड़ी हो गई। यह बातचीत महात्मा का चपला के साथ अधम सम्बन्ध का था। यह मालूम हो गया और उनलोगों ने मुझे यमधाम में पहुँचाने का प्रबन्ध किया था। मुझे यहाँ सदा के लिए सुलाकर ये लोग कहीं दूसरी जगह में भाग जाने की तैयारी में थे। संभव था कि

ये लोग अपने वचन के अनुसार कार्य कर डालते; इसी-लिये मैंने प्रार्थना कर आपको यहीं बुला लिया था। मेरी वह धारणा सत्य हुई। काकतालीय न्याय से इनका दुष्ट एवं कुत्सित लक्ष्य मुझे ज्ञात हो गया। अन्यथा आज मैं इन दोनों पापियों के हाथ यहीं देवी के चरणों मे बलि-दान की गई होती।' दयामयी ने विनयपूर्वक उत्तर दिया।

'अरे चांडाल! चपला मेरी मुख्य प्रेम-पात्री थी; यह तू भली प्रकार जानता था। तथापि उसे भ्रष्ट कर तूने पतित बनाने का साहस किया। यह तेरा कितना भयंकर और अक्षम्य पापकर्म है। पर मुझपर देवी की पूर्णकृपा थी इससे तेरी दुष्टवासना फलीभूत न हो सकी। अब तू यहीं पर अपने पापों का परिणाम भोगने के लिए मृत्यु की गोद में जा और तेरी स्नेहभागिनी यह दयामयी सदा के लिए मेरी रतिशय्या को सुशोभित करेगी। पार्षदो! तलवार की एक घात से इस दुरात्माका सिर इसके धड़ से अलग कर दो और इसके रक्त से देवी का खप्पर भर दो।' धर्मा-ध्यक्ष ने भयंकर आज्ञा सुनाई।

यह आज्ञा सुनकर अंगरक्षकों ने ज्योंही म्यान से खड्ग को बाहर निकाला त्योंही दयामयी ने धर्माध्यक्ष के

चरणों में मस्तक नवाकर प्रार्थना किया—'महापूज्य महाशय ! आप जरा धैर्य अवलंबन करें; कृपया मेरी प्रार्थना सुनकर आज्ञा देवें ।'

'तुम्हारी जो आज्ञा हो उसे सुनने और पालन करने के लिए मैं तैयार हूँ ।' धर्माध्यक्ष ने कहा ।

'मेरी यह प्रार्थना है कि मुझे यहीं अकेली महात्मा के पास छोड़ आप अपने अंग रक्षकों को साथ लेकर चले जायँ । अभी इस दुरात्मा को मुझे कुछ धिक्कारदर्शक शब्द सुनाने हैं । पर मैं इन्हें आपकी उपस्थिति में नहीं सुना सकती । मुझमें विश्वास रखिये । अपने हार्दिक उद्गार निकालने के पश्चात् आपके पार्षदों के कर्तव्य को मैं स्वयं पूरा करूँगी ।' दयामयी ने कहा ।

'देवी ! तुम्हारे वचन में पूरा विश्वास है । पर सुनो; इस चांडाल के अनुनय-विनय में पड़ भूलकर भी इसका छुटकारा न करना । नही तो यह तुम्हारे पुण्यशाली प्राण का नाश कर देगा । पार्षदो ! इस दुष्ट को भलीभाँति कसकर बाँध दो और मेरे साथ बाहर चलो ।' धर्माध्यक्ष ने अपना प्रभुत्व दिखाते हुए कहा ।

अंग-रक्षकों ने महात्मा को बाँधकर कुंड के पास रख

दिया और जाने के लिए तैयार हो गये। धर्माध्यक्ष ने जाते-जाते कहा—'देवी ! हम ऊपर दरवाजे के पास खड़े रहेंगे, आवश्यकता पड़ने पर तुरत बुला लेना।'

'आपको खड़े रहकर कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं। आप अपने शयन-मन्दिर में चलकर मद्य आदि की तैयारी करें। इतने ही मे मैं आपके कार्य की समाप्ति करके वहाँ आती हूँ। हम लोगो के संबंध का आज श्री-गणेश होगा।' दयामयी ने कहा।

'जैसी आज्ञा'—कहकर धर्माध्यक्ष अपने अंगरक्षकों को लेकर चले गये। ऊपर से कोई नीचे न आ सके, इस-लिये दयामयी ने सीढ़ीवाले द्वार को बन्द कर दिया और भीतर से सीकल भी कस दिया। और पहनी हुई साड़ी के अञ्चल को सिर पर से खींचकर काछ मार चपला के खड्ग को हाथ मे लेकर दयामयी महात्मा के पास आई और तिरस्कार के स्वर में गर्जकर बोली—'चांडाल ! मेरे जीवन को इतनी सीमा तक धूल मे मिलाकर तुझे संतोप नहीं हुआ और अन्त में पापिष्ठा चपला के हाथ से मुझे मरवा डालने को उद्यत हो गया ! क्या मैंने तुझे हैदराबाद के कब्र से निकाल और जीवित कर यहाँ इसीलिये भेजा था कि

तू एक कुलटा के साथ मिलकर मुझे मार डाले। आज तुझे मार डालने का एक और भी कारण है।'।

'क्या मुझे मारने ही के लिए तूने जिलाया था?' महात्मा ने आश्चर्य दिखाते हुए पूछा और ऐसी कातरदृष्टि से देखने लगा मानो दया एवं करुणा दिखाने के लिए प्रार्थना कर रहा हो।

'कारण पूछते हुए तुझे शर्म नहीं आती? हैदराबाद के जेल में मैंने अपने हृदय का जो उद्गार निकाला था वह तुझे स्मरण है या नहीं। तेरे वे कुकृत्य मेरे हृदय में अब भी रहकर साला करते हैं और जब तक मैं नहीं मर जाती तब तक साला करेंगे। इस शोक से मुक्त होने के लिए अब मुझे कोई मार्ग नहीं है। और तेरे मरे बिना मेरा जीवन सुधरनेवाला नहीं है। तूने मुझे दुर्व्यसनों के इतने उच्च शिखर पर चढ़ा दिया है कि अब वहाँ से उतरना असम्भव हो गया है। आत्मबल के रहते भी विकारों की मुझमें इतनी विशेष प्राबल्यता हो गई है कि संयम-जैसा शब्द अब मेरे जीवन में दिखाई ही नहीं पड़ता। मदिरा, मांस और व्यभिचार की तूने मुझे इतनी अधिक आदत लगा दी है कि यदि इनमें से कोई पदार्थ किसी

दिन मुझे न मिले तो मुझे चैन ही नहीं पड़ता। और मन में न जाने क्या-क्या होने लगता है। इनमें से यदि एक भी वस्तु मुझे नहीं मिलती तो चौबीसों घण्टे मुझे काल की तरह दिखाई पड़ते हैं। इससे बढ़कर दूसरा पाप क्या होगा! तुम्हारे संचित किये हुये धन को मैं अपनी कुत्सित इच्छाओं के पूर्ण करने के उपयोग मे लाऊँगी और मरण पर्यन्त तुम्हारे नाम की गीत गाती रहूँगी। इस वरिष्ट धर्माध्यक्ष की इच्छा के आधीन मुझे अवश्य होना पड़ेगा। पर उसे मैं देख लूँगी। नरकस्थान—शाक्तसदन के बन्धन में मैं अधिक दिन रहनेवाली नहीं हू। यह तू निश्चय-पूर्वक समझ लेना। मेरे लिये नरक तैयार है और तू मुझे नरकाधिकारिणी बनानेवाला मेरा गुरु है। मुझसे पहले वहाँ जाकर तू मेरे लिये एक जगह सुरक्षित रखना। यह तेरा कर्तव्य है। पर दुःख है उस कर्तव्य को भूलकर आत्मघात करने के बदले मुझे मार डालने को तू तैयार हो गया। पर, अब बलात्कार से मैं तुझे कर्तव्य पालन करने का मार्ग बताती हूँ। चल, मरने को तैयार हो जा। वरिष्ट धर्माध्यक्ष मेरा मार्ग देखता हुआ बैठा होगा। मैं अपने को पापमार्ग में लगाने वाले को अपने हाथ से

नरक में भेजना चाहती हूँ । इससे मरते समय मेरे हृदय में संतोष रहेगा । तेरी हत्या से वह सन्तोष मुझे मिलेगा ।'

'अब मेरा जीना असम्भव मालूम होता है । दयामयी ! मेरे इस अन्तिम अपराध एवं पाप को एक बार क्षमा करके तू मेरे प्राण की रक्षा कर दे । यदि ऐसा तू कर दे तो भविष्य में मैं कितनी तेरी आज्ञा पालन करूँगा वह मैं तुझे किन शब्दों में बताऊँ ? देवी ! मुझे बचाओ । निर्दयता से बकरे की तरह मुझे मार न डालो । अरे ! अभी मेरे मन में कुछ-कुछ लालसायें बाकी हैं; मैं यदि उन लालसाओं को लिए हुए मरूँगा तो मेरी अवगति होगी ।' इस प्रकार विनय करते हुए महात्मा एक बालक के समान रोने लगा ।

दयामयी इसके उत्तर में विकट हास्य करती हुई कहने लगी—'चाँडाल महात्मा ! क्षमा माँगते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ; यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है । क्षमा माँगने का अब तू लेशमात्र भी अधिकारी नहीं है । सच पूछो तो तेरी बातों का किसी को विश्वास नहीं हो सकता । भला, मैं जो तेरे चरित्र को भलीभांति जानती हूँ किस प्रकार तेरा विश्वास कर सकती हूँ । इसका तू स्वयं विचार

कर ले। तू आज साठ बरस का बुड्ढा होकर मृत्यु से इस तरह क्यों डरता है ? जिस समय अनेक तरुण नरनारियों की तूने हत्या की थी उस समय तेरे निर्दय मन में कभी यह विचार आया था ? क्या उनकी लालसाएँ अतृप्त नहीं थीं और उनकी अवगति नहीं हुई होगी ? जिस प्रकार तूने बिना कारण अन्य लोगों की दुर्गति की है उसी तरह तुम्हारी भी होनी उचित है। तभी ईश्वर न्यायी और निष्पक्ष कहा जा सकता है। यदि तुझे तेरे पाप-कर्मों का उचित दंड नहीं मिलेगा तो लोगों का ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रह सकता। समझा ! अब मरे बिना तेरा उद्धार नहीं हो सकता।'

'मैं घोर पापी और रौरवनरक का अधिकारी होने पर भी तेरे चरणों में अपना मस्तक नवाकर दीनता से याचना करता हूँ कि मुझे एक बार प्राणदान देकर अपने नाम को चरितार्थ करो।' महात्मा ने कहा।

'महात्मा ! आज तक मैं तुझे शैतान—चांडाल-प्रकृति का पुरुष समझती थी; पर आज मुझे ज्ञात हुआ है कि इस राक्षसीय स्वभाव के साथ तेरे में उतनी ही मूर्खता का अंश भी भरा है। अरे शैतान ! अब तेरे जीने से जगत या जगत के किसी विशिष्ट व्यक्ति को क्या लाभ है ?

यदि तू अधिक दिन जीता रहेगा तो अधिक पाप करेगा? और अनेकों का जीवन भ्रष्ट करेगा? किसी का भला तेरे हाथ से न होगा। यदि सैकड़ों निर्दोष नर-नारियों का बचाव संभव हो और उन्हें बचाने के लिये केवल एक पापी-दुष्ट-जीव का बलिदान देना आवश्यक हो तो वह मनुष्य-बध एक परम दुर्लभ पुण्यकर्म के समान गिना जाता है। यह कलियुग नहीं पर करयुग है। दिन में जो कार्य किया जाता है उसका फल रात को मिल जाता है। जैसा बोओ वैसा काटो—इस तत्त्व को हृदय में स्मरण करके संतोष और आनंद से मृत्यु की शरण में जा। इस युग का तू एक महिषासुर है और मैं तुझको संहार करनेवाली महिषासुर-मर्दिनी देवी के अवतार होने से अपने को महाभाग्यवती मानती हूँ। चल, अपने अत्याचारों का पश्चाताप कर करुणेश्वर की अंतिम करुणा माँगनी हो तो माँग ले। अब अधिक समय मेरे पास नहीं है। साधू के लिबास में शैतान के धर्म का विस्तार करनेवाला पापी! अपना सिर झुका और तीक्ष्ण खड्ग के प्राणहारक आघात को सहन कर।'

महात्मा की इस प्रकार भर्त्सना कर एक उन्मादिनी के

समान चेष्टा करती हुई कितने ही निर्जीव तत्त्वों तथा नैसर्गिक पदार्थों को सम्बोधन कर दयामयी कहने लगी—'हे भयंकर भूगर्भ के मंद दीपक! तेरे प्रकाश मे आज एक पापात्मा का संहार होता है। इससे तू अपने को महा भाग्यवान समझना। गुहा के पत्थरो! एक निर्दय के इस प्रत्यक्ष परिणाम को देखकर तुम अपनी कठोरता को त्याग दो। मेरी प्यारी तलवार! इस पापी के रुधिर पान करने से भ्रष्ट होने का यदि तुझे भय हो तो उसे निकाल दे; कंस और चाणूर-जैसे दुरात्मा दैत्यों को जगत के कल्याण के लिए श्रीकृष्ण-जैसे महात्मा को भी स्पर्श करना पड़ा था तब तेरी क्या हस्ती। परोपकार के लिये यदि अपने शरीर को दूषित वा भ्रष्ट करना पड़े तो इसे भ्रष्टता नहीं कहते। इसलिये बिना संकोच के तू अपने कर्तव्य का पालन कर। देवी चामुण्डे! अभी क्षण-दो-क्षण के लिये मेरे शरीर में निवास कर। अथवा अपने बल का प्रवाह मेरे शरीर और बाहु में बहा दे जिससे मेरा हृदय यह पुण्यकर्म करते हुए डगमगा न जाय और मेरे देह के बाहु में कम्प न होने पावे। पापी महात्मा! तैयार हो जा!'

यह उद्गार निकाल एवं हाथ में नंगी तलवार लेकर

दयामयी महात्मा के पास गई और उसके मस्तक को देवी की प्रतिमा के सन्मुख इस प्रकार रखकर मानों वह देवी को प्रणाम कर रहा हो, उसने तलवार का इतने जोर से प्रहार किया कि एक ही प्रहार से सिर धड़ से अलग होकर दूर जा गिरा। महात्मा का शरीर मतवाले सांड़ की तरह पुष्ट था। इससे उसमें से रक्त का प्रवाह इतना अधिक निकला कि देखते-देखते आधा कुंड भर गया।

दयामयी ने अपने हाथ के अँगूठे से देवी के ललाट में तिलक लगाकर महात्मा के कटे हुए सिर को उठाकर उनके चरणों में डाल दिया। इसके बाद चपला के मृत शरीर को उठा महात्मा के शव पर रखकर तिरस्कार करती हुई वह कहने लगी—'राक्षस और राक्षसी! आनंद से काम-विहार करते रहो। अब तुम्हारे सुख-विलास में यह दयामयी लेशमात्र भी विघ्न न करेगी। तुम दोनों की जिसके साथ एकान्त में निवास करने और विषय-भोग का आनंद लूटने की जो आकांक्षा थी वह एक दूसरे रूप में पूर्ण हो गई है। इसके लिये तुमलोग ईश्वर का और मेरा जितना अधिक आभार मानो वह उतना ही तुच्छ है। अरे मंद बुद्धि महात्मा, तू इतना भी नहीं जान सका—

'स्त्री का प्रेम जब ईर्ष्या और तिरस्कार में परिवर्तित हो जाता है तब वह इतना विशाल रूप धारण कर लेता है कि अनन्त-आकाश में भी नहीं समा सकता। प्रेम में अपमानित और तिरस्कृत अबला विषमयी सर्पिणी बन जाती है तब उसके क्रोध में पड़ने वाला पुरुष रौरव-नरक से भी अधिक यातना और कष्ट पाता है।'

सब काम समाप्त कर दयामयी जलती हुई मोमबत्ती हाथ मे लेकर वहाँ से बाहर निकली। द्वार खोलकर सीधे वरिष्ट धर्माध्यक्ष के शयन-मंदिर में पहुँची। धर्माध्यक्ष उसकी बाट जोह रहे थे। आतुरता से उन्होंने पूछा—'क्यों देवी! काम समाप्त हो गया?'

'महात्मा का काम तमाम और हमलोगों के लिए भोग-विलास और ऐश-आराम का मार्ग स्वतंत्र।' दयामयी ने मोहक एवं कटाक्षपूर्ण उत्तर दिया। इसके बाद मदिरा-पान आरंभ हुआ। मद से दोनों बेहोश हो गये। इसके पश्चात् जो हुआ पाठक उसकी कल्पना कर लें। क्षणभंगुर जीवों की कैसी विलक्षण पाप-प्रियता होती है!

उपसंहार

गत प्रकरण में वर्णन की हुई घटना को लगभग छः वर्ष हो गये थे। सीता और चन्द्रशंकर तथा रोहिणी एवं मोहनलाल के विवाह के बाद दो वर्ष तक श्रीमती वृन्दा, आलमचन्द और यशोदा गीदुबंदर में रहे, और उतने समय में सीता को एक पुत्री और रोहिणी को एक पुत्र पैदा हुआ। बालक खेलाने के सौभाग्य को भोगकर तीनों धार्मिक व्यक्तियाँ काशा निवास करने चली गईं, और वहाँ ईश्वर-स्मरण में समय बिताकर अपने क्षणभंगुर जीवन को सार्थक करने लगीं; उनके काशी निवास के बाद भी सीता को एक पुत्र और रोहिणी को एक पुत्री हुई। उन बालकों के आनन्द-कल्लोल को देखकर रोहिणी अपने माता-पिता तथा पालक माता वृन्दा के वियोग को भूल जाती थी। मोहनलाल; वृन्दा और आलमचन्द की संपत्ति का स्वामी हो गया था और चन्द्रशंकर भी रुपये-पैसे से सुखी था। वह मोहनलाल का मुनीम था। दोनों विवेकशील पुरुषों के हृदय में अभिमान का लेशमात्र भी न था। सीता और चन्द्रशंकर तथा रोहिणी और मोहन ये दोनों आदर्श दंपति बन गये थे। प्रतिवर्ष एक मास, वे काशी में जाकर रहते थे जिससे

समस्त कुटुम्बी लोगों के एकत्र निवास का थोड़ा-बहुत आनंद मिल सके। मोहनलाल श्रीमान, विवेकी, उदारात्मा और प्रेमी पुरुष था, इससे जैसे वह हैदराबाद में सबका प्रिय हो गया था; वैसेही बारबार काशी आने से वह वहाँ भी सबका प्रिय बन गया था।

❀ ❀ ❀ ❀
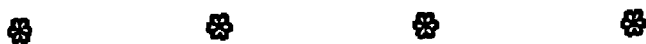
हैदराबाद के भक्त और भक्तिनियाँ दयामयी के आगमन की बाट बारबार जोहती रहीं। पर, वह नहीं आई। उन लोगों ने मथुरा में कितने ही तार भेजे; परंतु उनका कुछ पता नहीं मिल सका। क्या दयामयी आसाम के शाक्तसदन में रह गई ? नहीं; कलकत्ता में रखी हुई अपनी अगाध सम्पत्ति लेने का व्याज बताकर आसाम से निकल कर पुनः वह कलकत्ते के होटल में आई। उस समय उसके साथ एक और स्त्री भी थी, और वह गृहस्थ नहीं; किन्तु संसार-त्यागिनी सन्यासिनी थी। आसाम से लौटते हुए स्टीमर में इस सन्यासिनी के साथ दयामयी का परिचय हो गया था और उसके हृदय की पवित्रता, वाणी की निर्मलता और भव्य मुख-मंडल की तेजस्विता का दयामयी के पाप से मलिन अन्तःकरण में इतना चमत्कारिक और अद्भुत

प्रभाव पड़ गया कि उसके प्रभाव से उसके समान होने की आकांक्षा ने दयामयी के मन में अपने पापिष्ट-जीवन का त्याग और मोक्षदायक पवित्र-जीवन को स्वीकार करने एवं अवशिष्ट जीवन को वैराग्य में बिताने का दृढ़ निश्चय हो गया। मन की इतनी बड़ी सत्ता होती है कि चिंता—भयङ्कर चिंता—के एक निशाने के आघात से तरुण नर या नारी का कृष्ण सर्प के समान केश प्रभात में दुग्ध समान श्वेत हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण देखे गये हैं। उसीके अनुसार कितनी ही बार अमुक प्रकार के विशिष्ट बलवान मनोविकार से महाधर्मिष्ठ मनुष्य यकायक महापापात्मा बन जाता है और कितने ही बार महाभयङ्कर पापात्मा एक मनोविकार के सद्भावना के परिणाम से क्षण-मात्र में महाधर्मावतार बन जाता है। ऐसी घटनाएँ इस संसार में हुआ करती हैं और प्रलयकाल-पर्यन्त होती रहेंगी। दयामयी के सम्बन्ध में भी यही बात हुई। पारस-मणि' के स्पर्शमात्र से जिस प्रकार लोह; सुवर्ण हो जाता है 'उसी प्रकार उस पवित्र सन्यासिनी के समागम-मात्र सें उसका मन तत्काल परिवर्तित हो गया। वह राक्षसी होने की अपेक्षा देवी होने का भाव धारण करने लगी।

दयामयी होटल से सपत्ति अपने अधिकार में लेकर उसे सन्यासिनी के चरणों मे रख अपने पापमय जीवन की आदि से अन्त तक की सब कथा कह सुनाई। दोनों हाथ जोड़कर उसने अपने लिये मोक्ष का मार्ग बताने की प्रार्थना की। पापी का उद्धार करना यह धर्मात्मा या सन्यासी का धर्म है। उस पवित्र सन्यासिनी ने दयामयी का तिरस्कार न करके उसे आश्वासन दिया, और उस सम्पत्ति को देशहित के कार्य मे व्यय करके संसार-त्याग कर सन्यास की दीक्षा लेने मे ही परम कल्याण है इसका उपदेश दिया। दयामयी ने तत्काल उसके उपदेश को शिरोधार्य कर देशहितकारिणी संस्थाओ को अपनी संपत्ति भेंट कर दी, और उस सन्यासिनी के साथ ही हरिद्वार में जाकर सन्यस्तधर्म की दीक्षा लेकर कषाय वस्त्र धारण कर लिया। हरिद्वार से कनखल जाते हुए मार्ग में गंगा का बाँध पड़ता है उसीके किनारे पत्थर का एक चबूतरा बनाकर और उसमे एक गुहा बनवाकर सन्यासिनी दयामयी उसमे निवासकर परमात्मा की चिन्ता में अपना समय बिताने लगी। वह केवल दुग्धपान कर अपने शरीर का पोषण करती थीं और वहाँ जानेवाले भावुकजन

या यात्री उसे अनेक वस्तु देने की चेष्टा करते थे। पर, वह किसीकी एक कौड़ी भी स्वीकार न करती थी। इस समय उसकी उम्र पचास वर्ष से भी अधिक थी। पर, पवित्रता के प्रभाव से उसकी शारीरिक सुंदरता तथा शक्तियों में कुछ भी कमी नहीं आई थी। अब उसे लोग गंगावतार तथा हरिद्वार की देवी पुकारते हैं। हमारी लालसा है कि कुमार्ग-गामिनी अवनति-पंक में पड़ी हुई आर्य-अबलाएँ इस पवित्रता को ग्रहण करें और आत्मोन्नति के योग से अपना उद्धार करें। श्यामदी के मुख से सदा यह श्लोक निकलता रहता था—

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं।
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो।
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्॥

सिंध-प्रदेश के शाक्तसदन का सब भेद प्रकट हो गया। और ब्रिटिश सरकार ने उसे तुड़वा डाला। अब शाक्तसदन का वहाँ कोई भी चिन्ह अवशेष नहीं है। उधर से जाने वाले यात्रियों को वहाँ के मार्ग दर्शक उस स्थान को दिखा कर कहते हैं—'यहाँ एक विशाल दुर्ग के समान शाक्तसदन था। पर, ब्रिटिश सरकार ने उसे विध्वंश कर डाला।'
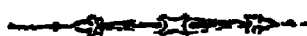
मनोरंजक, शिक्षाप्रद कहानियाँ और उपन्यास

मेरी हजामत—शिक्षापूर्ण हास्यरस की कहानियों का संग्रह। जिंदादिली का जीता-जागता नमूना। मूल्य ।।≈)

मगनरहु चोला—रोते हुए को हंसानेवाली अपने ढंग की निराली पुस्तक। एक-एक शब्द पर हँसते-हँसते दुहराकर देने वाली। मूल्य ।।।)

महाकवि चचा—हास्यरस का इतना सुन्दर और मीठा मजाक आपने अपने जीवन में न पढ़ा होगा। मूल्य १)

मीनाबाजार—नवयुग की तेरह सामाजिक और राजनैतिक सुन्दर एवं सरस कहानियों का संग्रह। मूल्य १)

अश्रुदल—चुनी हुई सुन्दर, सरस, साहित्यक एवं सामाजिक कहानियों का चित्ताकर्षक संग्रह। मूल्य ।।।)

मुन्नी की डायरी—समाज की प्रत्येक कुरीति का नग्नचित्र इसी पुस्तक मे आप पढ़ सकते हैं। मूल्य १)

भयंकर डकैती—अपने ढंग का निराला जासूसी उपन्यास। मूल्य ।।)

प्रेम-कहानी—दो विदेशी लेखकों की प्रेम-कथा—।।)

विदेशी दैनिक पत्र—विदेश के समाचार-पत्रों की सभी जानकारी इसमें है। मूल्य ।)

विनोदशंकरव्यास की ४१ कहानियाँ—२)

मेरी आह—हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का नजारा मू० ।।।)